हरिदास संस्कृत सीरीज ३४५

आदिशंकराचार्य

स्तोत्रसञ्चयः

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

हरिदास संस्कृत सीरीज
३४५
***

आदिशंकराचार्यस्य

स्तोत्रसञ्चयः

पदच्छेद-अन्वय-शब्दार्थ-अनुवाद-व्याख्यासहितः

कल्याणलाल शर्मा
द्वारा सम्पादित

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

HARIDAS SANSKRIT SERIES
345

***

ĀDI ŚAṄKARĀCĀRYA

STOTRASAÑCAYAḤ

With

Padaccheda-Anvaya-Śabdārtha-Hindī Anuvāda & Commentary

Edited & Translated By

KALYAN LAL SHARMA

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
Varanasi

Publisher : Chowkhamba Sanskrit Series Office, Varanasi.
Printer : Chowkhamba Press, Varanasi.

ISBN : 81-7080-162-1

Publishers and Oriental and Foreign Book-sellers
K . 37/99, Gopal Mandir Lane
At the North Gate of Gopal Mandir
Near Golghar (Maidagin)
Post Box No. 1008, Varanasi- 221001 (India)
Phone { Office : (0542) 2333458
Resi. : (0542) 2334032, 2335020
Fax : 0542-2333458
e-mail : cssoffice@satyam.net.in
web-site : www.chowkhambaseries.com

Also can be had from :
CHOWKHAMBA KRISHNADAS ACADEMY
Oriental Publishers & Distributors
K. 37/118, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1118, Varanasi- 221001
(INDIA)
Phone : (0542) 2335020

प्रस्तावना

आचार्य शंकर अलौकिक बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न थे। परम्परागत मान्यता है कि उनके माता-पिता की भक्ति से प्रसन्न होकर स्वयं भगवान् शिवने उनके पुत्र के रूप में अवतार लिया था। आठ वर्ष की आयु में उन्होंने चारों वेद पढ़ लिये, बारह वर्ष की आयु में सब शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर लिया, सोलह वर्ष की आयु में प्रस्थानत्रयी पर भाष्य लिख लिये, और बत्तीस वर्ष की अवस्था में उनका स्वर्गारोहण हो गया।

अष्टवर्षे चतुर्वेदी द्वादशे सर्वशास्त्रविद्।
षोडशे कृतवान् भाष्यं द्वात्रिंशे मुनिरभ्यगात्॥

बत्तीस वर्ष की छोटी-सी आयु में उन्होंने जितने कार्य किये उनकी गिनती करते समय आश्चर्य होता है। उन्होंने मुख्य दस *उपनिषदों, ब्रह्मसूत्र* और *गीता* पर आधिकारिक भाष्यों की रचना की। *विष्णुसहस्रनाम, सनत्सुजातीय* और *ललितात्रिशती* पर भी उनके भाष्य मिलते हैं। अद्वैत वेदान्त की शिक्षा के प्रसार के लिये उन्होंने २०-२२ प्रकरण ग्रन्थ लिखे। साथ ही, लगभग ६५ स्तोत्रों में गणेश, शिव, शक्ति, विष्णु, कृष्ण, गङ्गा, यमुना, नर्मदा आदि की पूजा-अर्चना का वर्णन किया।

उन्होंने उत्तर में कैलास से दक्षिण में कन्याकुमारी तक, और पूर्व में जगन्नाथपुरी से पश्चिम में द्वारका तक, समस्त भारत का अनेक बार भ्रमण किया, और वे भिन्न-भिन्न मतावलम्बियों को शास्त्रार्थ में पराजित कर दिग्विजयी हुए। उन्होंने अपने लेखन से, अपने भाषणों और प्रवचनों से, भारत की चारों दिशाओं में मठस्थापना से, और विविध देवालयों और तीर्थों के पुनरुत्थान द्वारा वैदिक संस्कृति में नवजीवन का संचार किया।

आचार्य शङ्कर ईसवी सातवीं शताब्दी के मध्य से नवीं शताब्दी के मध्य के बीच में कभी, संभवतया ७८८ से ८२० ई. तक, अथवा ६५०-७०० ई. तक, रहे होंगे। यह उत्तरभारत में सम्राट् हर्षवर्धन और दक्षिण

भारत में पुलकेशिन द्वितीय के बाद का युग था। गुप्तसाम्राज्य के छिन्न-भिन्न होने के बाद केन्द्रीय सत्ता का ह्रास हो गया था, और छोटे-बड़े राजा-महाराजा आपस में लड़-भिड़ कर अपनी-अपनी सत्ता स्थापित करने में लगे थे। उत्तरभारत में कश्मीर, कन्नौज और गौड़देश के राजा – पाल, प्रतिहार और राष्ट्रकूट – आपस में लड़ रहे थे, और दक्षिण भारत में चालुक्य, पल्लव और पाण्ड्य वंशों में सत्ता के लिये सङ्घर्ष हो रहा था। आठवीं शताब्दी के पूर्व भाग में अरब आक्रमणकारियों ने इस उथल-पुथल के युग में देश की सांस्कृतिक चेतना को और भी विखण्डित कर दिया।

इस राजनीतिक उथल-पुथल का सामाजिक व्यवस्था और धार्मिक संस्थाओं पर भी प्रभाव पड़ा। बौद्धों और जैनों के प्रचार ने वर्णाश्रमधर्म की जड़ें हिला दीं। वैदिक कर्मकाण्ड, यज्ञ और अनुष्ठानों द्वारा, इस लोक और परलोक में फल प्राप्त करने का साधनमात्र रह गया। सनातनधर्म की देव-पूजाओं में विकृतियाँ आ गईं। तान्त्रिक, वाममार्गी शाक्त, पाशुपत, कापालिक आदि भोले-भाले साधारण लोगों को डराने-धमकाने के खेलों द्वारा अपना प्रभाव बढ़ाने लगे।

ऐसी पतनोन्मुख व्यवस्था के विरुद्ध एक प्रकार का नवजागरण भी आरम्भ हो गया। कुमारिल भट्ट और मण्डन मिश्र जैसे मीमांसकों ने एक प्रकार का वैचारिक परिवर्तन आरम्भ किया, तो आचार्य शंकर ने अद्वैतवादी वेदान्त के प्रचार-प्रसार द्वारा दूसरे प्रकार की वैचारिक क्रान्ति का झण्डा उठाया। उन्होंने एक ओर, सैद्धान्तिक स्तर पर, अद्वैत वेदान्त की शिक्षा द्वारा वैदिक धर्म में नई स्फूर्ति का सञ्चार किया, वहीं, दूसरी ओर, व्यावहारिक स्तर पर, षण्मत स्थापना की और स्मार्त पञ्चायतन पूजा के लिये स्तोत्र रचे। यहाँ यह नहीं भूलना चाहिये कि आचार्य शंकर का युग– सातवीं और आठवीं शताब्दी– दक्षिण भारत में भक्ति-आन्दोलन का समय था। वैष्णव आल्वार और शैव नायनार जिस सरल भक्ति का प्रचार कर रहे थे उसमें ऊँच-नीच, जाति-पाँति, कर्म-काण्ड का दिखावा, अथवा दान धर्म का छलावा नहीं था। इन्हीं आल्वारों का भक्ति-आन्दोलन, रामानन्द जैसे सन्तों द्वारा, कर्नाटक, महाराष्ट्र, गुजरात के मार्ग से उत्तर भारत लाया गया। भागवत माहात्म्य में बताया गया है कि भक्ति, अपने बेटों ज्ञान और वैराग्य के साथ, कैसे व्रज और बंगाल तक पहुँची।

आचार्य शंकर की स्तोत्र-रचना को इसी भक्ति आन्दोलन के सन्दर्भ में देखना चाहिये। उन्होंने गाणपत्य, शैव, शाक्त और वैष्णवों की पूजा-आराधना के लिये सौ से अधिक– कम-से-कम ७०-७५ स्तोत्रों की रचना की होगी। वाणीविलास प्रेस द्वारा प्रकाशित ग्रन्थावली में ७२ स्तोत्र, और समता बुक्स द्वारा प्रकाशित संस्करण में ६५ स्तोत्र मिलते हैं।

लेकिन, कुछ विद्वानों का मत है कि इनमें अधिकतर स्तोत्र दूसरे लोगों द्वारा बनाये गये होंगे, और प्रचार और महत्त्व को ध्यान में रखकर, इनके साथ आदि शङ्कराचार्य का नाम जोड़ दिया गया होगा। उदाहरण के लिये, बैलवाल्कर केवल इन आठ स्तोत्रों को आदि शंकराचार्य की रचना मानते हैं— *आनन्दलहरी, गोविन्दाष्टकम्, दक्षिणामूर्तिस्तोत्रम्, दशश्लोकी, द्वादशपञ्जरिका–चर्पटपञ्जरिका, षट्पदी* और *हरिं ईडे*।

ऐच. आर. भागवत के अनुसार ये रचनाएँ शंकराचार्य की हो सकती हैं– *अद्वैतपञ्चकम्, आत्माष्टकम्, उपदेशपञ्चकम्, काशीपञ्चकम्, कौपीनपञ्चकम्, चर्पटपञ्जरिका, दक्षिणामूर्तिस्तोत्रम्, द्वादशपञ्जरिका, धन्याष्टकम्, निर्गुणमानसपूजा, निर्वाणमञ्जरी, परापूजा, मनीषापञ्चकम्, विज्ञाननौका, षट्पदीस्तोत्रम् और हरिं ईडे।*

अनेक स्तोत्र, जो आदि शङ्कराचार्य के नाम से प्रचलित हैं, किन्तु उनकी रचनाएँ नहीं मालूम होतीं, उनके एक-दो उदाहरण दिये जा सकते हैं। *देव्यपराधक्षमापणस्तोत्रम्* शङ्कराचार्य रचित बताया जाता है, किन्तु उसमें एक श्लोक है :

परित्यक्ता देवा विविधविधिसेवाकुलतया।
मया पञ्चाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि॥

आचार्य शंकर "मैंने अपनी पचासी वर्ष से अधिक आयु बीत जाने पर विविध विधियों द्वारा पूजा करने से घबड़ाकर सब देवों को छोड़ दिया है" कैसे कह सकते हैं? यह स्तोत्र किसी और शंकराचार्य द्वारा– शायद स्वामी विद्यारण्य द्वारा– बनाया हुआ हो सकता है। इसी तरह, *द्वादश पञ्जरिका* और *चर्पटपञ्जरिका* के श्लोकों की शैली में भिन्नता स्पष्ट दिखाई देती है। इस सम्बन्ध में कहा जाता है कि पहले बारह श्लोक शंकराचार्य ने बनाये, बाकी चौदह उनके चौदह शिष्यों ने। यदि शब्द संयोजना और शैली को ध्यान से देखें तो कुछ स्तोत्रों के रचनाकार के विषय में संदेह

हो सकता है। गोविन्दचन्द्र पाण्डे ने शंकराचार्य पर लिखी अपनी पुस्तक (पृ. १२२-१२६) में कुछ स्तोत्रों पर इस दृष्टि से विचार प्रकट किये हैं।

शङ्कराचार्य के परम्परावादी जीवनी-लेखकों ने उनके स्तोत्रों को दूसरे सन्दर्भों में देखा है। उदाहरण के लिये, चित्सुखाचार्य ने अपनी *बृहत्शङ्करदिग्विजय* में बताया है कि शङ्कर ने *देवीभुजङ्गस्तोत्रम्* (२८ श्लोक) पाँच वर्ष की अवस्था में बनाया, *कनकधारास्तोत्रम्* की रचना सात वर्ष की आयु में की होगी। *अच्युताष्टकम्* परिव्रजन के आरम्भ की रचना है। नर्मदा-तट पर गोविन्दपाद से दीक्षा लेने के बाद *नर्मदाष्टकम्, प्रातःस्मरणम्, साधनापञ्चकम्, यतिपञ्चकम्, दशश्लोकी* आदि श्लोक लिखे होंगे। हिमालयनिवास में *षट्पदी, हरिस्तुति, परापूजा, दक्षिणामूर्तिस्तोत्रम्, धन्याष्टकम्* आदि की रचना हुई होगी।

अपनी माता के अंतिम समय में *कृष्णाष्टकम्* और *मातृस्तुति* सुनाये होंगे। प्रयाग-यात्रा में *गङ्गाष्टकम्, प्रयागाष्टकम्, यमुनाष्टकम्, लक्ष्मीनृसिंहस्तोत्रम्* और *वेदसारशिवस्तोत्रम्* की रचना की होगी। काशीवास में *काशीपञ्चकम्, अन्नपूर्णाष्टकम्, मणिकर्णिकाष्टकम्* और *कालभैरवाष्टकम्* लिखे गये होंगे। *मनीषापञ्चकम्* काशी में चाण्डालरूपी शिव को प्रसन्न करने के लिये बनाया स्तोत्र हो सकता है। *आनन्दलहरी* गोकर्ण में मृत बालक को जीवनदान के लिये की गई स्तुति बताई जाती है। *सौन्दर्यलहरी*, कहते हैं, साक्षात् भगवान् शिव की रचना है, जो शंकराचार्य को एक दीवार पर लिखी मिली।

लेकिन ऐसी धारणायें तो जनश्रुतियाँ हैं। हो सकता है कुछ स्तोत्रों का सन्दर्भ ढूँढने के लिये, या उनकी कुछ विशेषताएँ बताने के लिये, ये बातें गढ़ी गई हों। उदाहरण के लिये, *सौन्दर्यलहरी* के पहले ४१ पद दूसरे ५९ पदों से स्पष्टतया भिन्न दिखाई देते हैं। पहले ४१ पदों को *आनन्दलहरी* और अगले ५९ पदों को *सौन्दर्यलहरी* नाम से भी सूचित किया जाता है। इस भिन्नता का कारण बताने वाली एक जनश्रुति है। जब शंकराचार्य काशीवास कर रहे थे तो वे कुछ दिनों के लिये अदृश्य होकर कैलास पहुँच गये। वहाँ एक दीवार पर उन्हें एक स्तोत्र– *सौन्दर्यलहरी*– लिखा हुआ मिला। जैसे ही वे इसे पढ़ने लगे, शिव के पुत्र गणेश ने उस स्तोत्र को नीचे से मिटाना शुरू कर दिया। आचार्य शंकर केवल पहले ४१ पद ही

पढ़ सके। अगले ५९ पद उन्होंने स्वयं रचे, और १०० पदों का पूरा स्तोत्र बनाया।

ऐसी ही जनश्रुति *कनकधारास्तोत्रम्* के बारे में प्रचलित है। एक निर्धन ब्राह्मणी से एक आँवले की भिक्षा प्राप्त कर ब्रह्मचारी शंकर ने अभिभूत होकर उस ब्राह्मणी के लिये लक्ष्मी की स्तुति सुनाई, और इसके फलस्वरूप, उसके घर में स्वर्ण-वर्षा हुई। इसी प्रकार, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, *आनन्दलहरी* की रचना कौशाम्बी अथवा गोकर्ण में एक मृत बालक को पुनर्जीवित करने के लिये की गई।

इन जनश्रुतियों का क्या आधार है यह तो नहीं कहा जा सकता, लेकिन इतना अवश्य है कि इनसे श्रद्धा को कुछ बल मिलता है। *कनकधारास्तोत्रम्* ऋण-मुक्ति और धन-प्राप्ति के लिये सिद्धस्तोत्र माना जाता है, और श्रद्धालु भक्त यह कल्पना कर सकते हैं कि इसके पाठ से वे भी धनवान् हो सकेंगे। *आनन्दलहरी* के पाठ से मरा हुआ बालक जीवित हो गया– यह सुनकर श्रद्धा बढ़ती है, और स्तोत्र का पाठ करने की प्रेरणा होती है।

कारण कुछ भी हो, शंकराचार्य के स्तोत्र बड़े प्रभावशाली और लोकप्रिय रहे हैं। दक्षिण भारत में इनका बड़ा प्रचार है। जो लोग संस्कृत नहीं जानते वे भी इनका पाठ करते हैं। *भज गोविन्दम्, हरिं ईडे, आनन्दलहरी, शिवानन्दलहरी, कृष्णाष्टकम्, गोविन्दाष्टकम्* आदि बड़े लोकप्रिय स्तोत्र हैं। इनकी सुललित कोमलकान्त पदावली हृदयस्पर्शी है।

आचार्य शंकर अद्वैतवादी थे, किन्तु वे जानते थे कि ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने से पहले, जनसाधारण के लिये, देवार्चन द्वारा चित्तशुद्धि की आवश्यकता है। और देवपूजा किसी को आधार बनाकर ही की जा सकती है, और इस आधार को कुछ भी नाम दिया जा सकता है। उदाहरण के लिये, शक्तिपूजा भारतवर्ष के अलग-अलग प्रदेशों में अलग-अलग नामों से की जाती है। हिमालय में उसका उमा नाम है, कश्मीर में अम्बा, वाराणसी में विशालाक्षी, महाराष्ट्र में भवानी, और कलकत्ता में वही काली है। कन्याकुमारी में वही शक्ति बाला के रूप में पूजित होती है, मदुराई में मीनाक्षी, मन्त्रिणी अथवा श्यामला। जम्बुकेश्वरम् में वही शक्ति

अखिलानन्देश्वरी अथवा दण्डिनी, और काञ्चीपुरम् में कामाक्षी अथवा महात्रिपुरसुन्दरी कहलाती है। मैसूर में वही चामुण्डेश्वरी है तो शृंगेरी में उसे ही शारदा बताते हैं। नवरात्र में दुर्गा-लक्ष्मी-सरस्वती की संयुक्त पूजा होती है। नाम कुछ भी प्रसिद्ध हो, वह महामाया, परब्रह्ममहिषी है। *सौंदर्यलहरी* में कहा गया है, ''परब्रह्ममहिषी! वेदवेत्ता आपको ब्रह्मा की पत्नी वाक्देवता बताते हैं, विष्णु-प्रिया लक्ष्मी बताते हैं, शिव की अर्धाङ्गिनी पार्वती बताते हैं, किन्तु आप तो तुरीयरूप महामाया हैं, जो इस संसार-चक्र को चला रही हैं।''

इसी प्रकार, भगवान् शिव दक्षिणामूर्ति, शिव, रुद्र, पशुपति आदि अनेक रूपों में पूजित हैं। इसी प्रकार विष्णु और कृष्ण के अनेक रूप हैं। आचार्य शंकर ने इस विविधता को स्वीकार किया, और निर्गुणब्रह्म के अनेक सगुण रूपों की स्तुति करने के लिये अति सुन्दर गीतिकाओं की रचना की।

किन्तु अभी तक यह निश्चित नहीं हो सका है कि कितने स्तोत्र स्वयं आचार्य की रचनाएँ हैं, और कितने स्तोत्रों के साथ उनका नाम जोड़ दिया गया है। इस संचय में पॉल हैकर, बैलवाल्कर, ऐच.आर. भागवत, अन्टारकर, गोपीनाथ कविराज आदि विद्वानों की सम्मति का आदर करते हुए भी कुछ अधिक स्तोत्र सम्मिलित किये गये हैं। शैलीमापन (Stylometrics), सिद्धान्त-साम्य, शब्द-संचयन, अर्थ-एकरूपता, शैली-साम्य, और समसामयिक उद्धरणों के आधार पर जैसा शोध अपेक्षित है वह सम्भव नहीं हो सका। किन्तु कुछ स्वीकृत स्तोत्रों को मापदण्ड मानकर दूसरे स्तोत्रों के मिलान द्वारा कुछ निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रयास किया गया है। जैसे, *दक्षिणामूर्त्यष्टकम्* आचार्य-रचित मानकर इसका मिलान *शांकरग्रन्थावलिः* में सम्मिलित *दक्षिणामूर्तिवर्णमालास्तोत्रम्* से करने पर ज्ञात होता है कि दूसरा स्तोत्र सम्भवतया आचार्यरचित नहीं है। इसी प्रकार *त्रिपुरसुन्दर्यष्टकम्* यदि आचार्य रचित है तो *श्रीशाङ्करग्रन्थावलिः* में सम्मिलित दूसरे दो *त्रिपुरसुन्दरी-स्तोत्र* किन्हीं और शंकराचार्य के हो सकते हैं। इनका आचार्य-रचित होना संदिग्ध है।

स्तोत्रों के मूल पाठ में भी मतभेद मिलते हैं। इस संचय में *शाङ्करग्रन्थावलिः* (१० खण्ड) को आधार माना गया है, किन्तु कुछ स्थानों पर कुछ दूसरे स्रोतों से मिलान कर पाठशोधन करने का भी साहस किया गया है।

जहाँ तक पुस्तकालयों और प्रकाशकों की सूचियों से ज्ञात हो सका है, हिन्दी में अभी तक इतने स्तोत्रों का, एक साथ अन्वय-शब्दार्थ-अनुवाद-व्याख्या सहित, कोई संचयन उपलब्ध नहीं है। यही कारण हो सकता है कि आचार्य शंकर के स्तोत्र हिन्दी भाषा-क्षेत्र में जितने बहुविदित होने चाहियें उतने नहीं हैं।

यहाँ उनके ३६ स्तोत्रों का सञ्चय किया गया है। *सौन्दर्यलहरी* जैसे बड़े स्तोत्र, जिनके स्वतंत्र संस्करण उपलब्ध हैं, सम्मिलित नहीं किये गये हैं। जो लोग थोड़ी-बहुत संस्कृत जानते हैं या बिल्कुल नहीं जानते, और मूल स्तोत्रों का अर्थ समझना चाहते हैं, उनके लिए शब्दार्थ और हिन्दी अनुवाद कुछ उपयोगी हो सकेगा।

अनुवाद और व्याख्या सब स्तोत्रों में एक-सी नहीं है। जो स्तोत्र सरल हैं, उनका केवल अनुवाद ही दिया गया है। *श्रीदक्षिणामूर्त्यष्टकम्* जैसे स्तोत्रों की व्याख्या कुछ विस्तार में है। *भज गोविन्दम्* जैसे कुछ स्तोत्रों का पद्यानुवाद किया गया है, और व्याख्या भी कुछ विस्तार से है। यह स्तोत्र इतनी सुललित सरल भाषा में है कि इसके तात्पर्य को समझने में भूल हो सकती है। व्याख्या का आकार आवश्यकता के अनुसार है।

यथाधीतं यथाश्रुतम्, 'समुझि परी कछु मति अनुसारा', यहाँ प्रस्तुत है। कहाँ आचार्य शंकर की सिद्ध वाणी और कहाँ उसे सरल भाषा में समझाने का यह प्रयास? किन्तु,

अयः स्पर्शे लग्नं सपदि लभते हेमपदवीं
यथा रथ्यापाथः शुचि भवति गङ्गौघमिलितम्।

सी-७२, सरोजिनीमार्ग,
सी-स्कीम, जयपुर

कल्याणलाल शर्मा

❊ अनुक्रमणिका ❊

श्री गणेशाय नमः

श्रीगणेशपञ्चरत्नम्

(१)

मुदा करात्तमोदकं सदा विमुक्तिदायकं
कलाधरावतंसकं विलासिलोकरक्षणम्।
अनायकैकनायकं विनाशितेभदैत्यकं
नताशुभाशुनाशकं नमामि तं विनायकम्॥

मुदा (प्रसन्नतापूर्वक) *कर-आत्त* (हाथ में ले रखा है) *मोदकं* (लड्डू को) *सदा विमुक्तिदायकं* (जो सदैव मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं) *कलाधर-अवतंसकं* (जिन्होंने चन्द्रमा का शिरोभूषण धारण किया हुआ है) *विलासिलोकरक्षणम्* (जो मनोरञ्जन में संसार की रक्षा करते हैं उनको) *अनायक-एक-नायकं* (जो अनाथों के एकमात्र नाथ हैं उनको) *विनाशित-इभ-दैत्यकं* (उनको जिन्होंने गजासुर का संहार किया) *नत-अशुभ-आशु-नाशकं* (उनको जो भक्तों के अशुभों का शीघ्र नाश कर देते हैं) *नमामि तं विनायकम्* (उन विघ्न-विनाशक विनायक को मैं प्रणाम करता हूँ।

जिन्होंने प्रसन्नता से हाथ में मोदक ले रखा है, जो सदैव मुक्तिदाता है, चन्द्रमा जिनका शिरोभूषण है, जो संसार की रक्षा में मुदित हैं, जो अनाथों के एकामत्र स्वामी हैं, जिन्होंने गजासुर का नाश किया, और जो अपने भक्तों की विपत्तियों को शीघ्र ही नष्ट कर देते हैं, उन विघ्नविनाशक श्रीगणेश को मैं नमन करता हूँ।

इस प्रारंभिक पद में विघ्नविनाशक भगवान् श्रीगणेश के स्वरूप और उनके प्रसाद का वर्णन है। मोदकप्रिय गणेश विनायक चन्द्रमा का मुकुट धारण किये हुए हैं। यह उनके स्वरूप की शोभा का संक्षिप्त वर्णन है।

प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्व विघ्नोपशान्तये । मोदक मुदिता का और कलाधर-अवतंस शीतल प्रकाश का प्रतीक है। वे मुक्तिदाता हैं। विद्या और विवेक के प्रकाश द्वारा अज्ञान के अंधकार से मुक्ति दिलाने वाले हैं। लोकरक्षण उनका विलास है। अनाथों के नाथ भगवान् विनायक अपने भक्तों के अशुभों का उसी प्रकार नाश कर देते हैं जैसे उन्होंने गजासुर का वध किया था।

(२)

नतेतरातिभीकरं नवोदितार्कभास्वरं
नमत्सुरारिनिर्जरं नताधिकापदुद्धरम्
सुरेश्वरं निधीश्वरं गजेश्वरं गणेश्वरं
महेश्वरं तमाश्रये परात्परं निरन्तरम् ।।

नत-इतर-अति-भीकरं (अभक्तों – नास्तिकों – के लिए अत्यन्त भयावह को) *नवोदित-अर्क-भास्वरं* (उगते हुए रवि के समान प्रकाशवान् को) *नमत्-सुर-अरि-निर्जरं* (जिनकी सुर और असुर वन्दना करते हैं उनको) *निर्जर* (देव) *सुर-अरि* (देवों के शत्रु, असुर) *नत-अधिक-आपद्-उद्धरम्* (जो अपने भक्तों का समस्त आपत्तियों से उद्धार करने वाले हैं उनको) *सुर-ईश्वरं निधि-ईश्वरं गज-ईश्वरं-गण-ईश्वरं महा-ईश्वरं परात्-परं* (जो देवाधिपति हैं, समस्त निधियों के स्वामी हैं, गजनायक हैं, गणों के अधिपति हैं, और महेश हैं उनको) *तं परात्परं* (उन परम परमेश्वर को) *निरन्तरं आश्रये* (निरन्तर आश्रय लेता हूँ)।

मैं उन परम परमेश्वर का निरन्तर आश्रय ले रहा हूँ जो नास्तिकों के लिए अत्यन्त भयावह हैं, नवोदित रवि के समान प्रकाशवान् हैं, सुर और असुर जिनकी वन्दना करते हैं, और जो अपने भक्तों का समस्त आपदाओं से उद्धार करते हैं। वे भगवान् गणेश देवों के स्वामी, निधिनिधान, गजेश्वर, गणेश्वर, परम परमेश्वर हैं।

इस पद में परात्पर परमेश्वर श्रीगणेश के तेजस्वी ऐश्वर्य का वर्णन है। पिछले पद में 'करात्तमोदकं' और 'कलाधरावतंसकं' द्वारा उनके स्वरूप के

माधुर्य का वर्णन किया गया। यहाँ नवोदित सूर्य के समान उनके तेजस्वी ऐश्वर्य का वर्णन है। उनके ऐश्वर्य के दो रूप हैं— वे,एक ओर, 'नतेतरातिभीकरं' हैं, और, दूसरी ओर, 'नताधिकापदुद्धरम्' हैं। सुर-असुर सब उनकी वन्दना करते हैं। क्योंकि वे सुरेश्वर, निधीश्वर, गणेश्वर और परात्पर महेश्वर हैं। शङ्कराचार्य के अन्य स्तोत्र 'गणेशभुजङ्गम्' में श्रीगणेश की स्तुति है—

यमेकाक्षरं निर्मलं निर्विकल्पं
गुणातीतमानन्दमाकारशून्यम्।
परं पारमोंकारमाम्नायगर्भं
वदन्ति प्रगल्भं पुराणं तमीडे॥
चिदानन्दसान्द्राय शान्ताय तुभ्यं
नमो विश्वकर्त्रे च हर्त्रे च तुभ्यम्।
नमोऽनन्तलीलाय कैवल्यभासे
नमो विश्वबीज प्रसीदेशसूनो॥

यह परब्रह्म परमात्मा का स्वरूप है।

(३)

समस्तलोकशंकरं निरस्तदैत्यकुञ्जरं
दरेतरोदरं वरं वरेभवक्त्रमक्षरम्।
कृपाकरं क्षमाकरं मुदाकरं यशस्करं।
नमस्करं नमस्कृतां नमस्करोमि भास्वरम्॥

समस्तलोकशंकरं (उनको जो सारे संसार के लिये शुभकारी हैं) *निरस्तदैत्य कुञ्जरं* (गजासुर दैत्य – अथवा दैत्यों के समूह – को परास्त करनेवाले को) *दर-इतर-उदरं* (जिनका उदर छोटा नहीं है, लम्बोदर हैं उनको) *वर-इभ-वक्त्रम्* (श्रेष्ठ गजानन को) *अक्षरम्* (जो सनातन, विकाररहित अच्युत हैं उनको) *नमस्कृतां कृपाकरं क्षमाकरं मुदाकरं यशस्करं नमस्करं* (जो नमन करनेवालों के लिये कृपालु, क्षमाशील, आनन्ददायक, यशदाता, और विवेक

प्रदान करनेवाले हैं उनको) *भास्वरं नमस्करोमि* (प्रकाशमान देव को नमन करता हूँ)।

मैं उन तेजस्वी देव को नमस्कार करता हूँ जो समस्त संसार के लिये शुभकर्ता हैं, जो दानवी शक्तियों को परास्त करने वाले हैं, जो लम्बोदर हैं, वरदाता गजानन हैं, अक्षर (अच्युत, निर्विकार) हैं, और कृपालु, क्षमाशील, आनन्ददाता, यशदाता और अपने भक्तों को विवेक-बुद्धि प्रदान करनेवाले हैं।

(४)

अकिञ्चनार्तिमार्जनं चिरन्तनोक्तिभाजनं
पुरारिपूर्वनन्दनं सुरारिगर्वचर्वणम्।
प्रपञ्चनाशभीषणं धनञ्जयादिभूषणं
कपोलदानवारणं भजे पुराणवारणम्॥

अकिञ्चन-आर्तिमार्जनं (अकिञ्चन जनों के दारुण दुःखों को मिटानेवाले को) *चिरन्तन-उक्ति-भाजनं* (सनातन उक्तियों (वेदों) के विषय को, जिनके विषय में सनातन वेदवाक्य हैं उनको) *पुर-अरि-पूर्वनन्दनं* (भगवान् शिव के ज्येष्ठ पुत्र के लिये) *सुर-अरि-गर्व-चर्वणम्* (देवताओं के शत्रुओं का गर्व चूर करने वाले को) *प्रपञ्च* (दृश्यमान जगत् जो माया और नानात्व का प्रदर्शनमात्र है) *नाशभीषणं* (नाश करने में भीषण को) *धनञ्जय-आदि-भूषणं* ('धनंजय' अर्जुन और अग्नि का विशेषण है। 'धनंजय' एक प्राणशक्ति का भी नाम है। धनंजय के आदिभूषण अथवा धनंजय है आदिभूषण जिनका) *कपोल-दान-वारणं* (जिनके कपोलों पर मद टपक रहा है उन गजानन को) *पुराणवारणं भजे* (आदि गजानन की शरण लेता हूँ, उनकी आराधना करता हूँ)

मैं उन आदि गजानन की शरण लेता हूँ जिनके कपोलों पर मद टपक रहा है, जो दीन-दुखियों की विपत्तियों को मिटाने वाले हैं, वेदवाक्यों में जिनका वर्णन है, जो भगवान् शिव के प्रथम पुत्र हैं, जो देवों के शत्रु दानवों के गर्व को चूर करने में हर्षित होते हैं, जो मायामय मिथ्या जगत का नाश करने में अत्यन्त भीषण हैं, और धनंजय के आदिभूषण हैं।

(५)

नितान्तकान्तदन्तकान्तिमन्तकान्तकात्मजम्
अचिन्त्यरूपमन्तहीनमन्तरायकृन्तनम्।
हृदन्तरे निरन्तरं वसन्तमेव योगिनां
तमेकदन्तमेव तं विचिन्तयामि संततम्॥

नितान्त (अत्यंत) *कान्त* (सुन्दर, मनोहर) *दन्त-कान्तिं* (एकदन्त श्रीगणेश जो अपने एक दन्त की आभा से अत्यंत मनोहर हैं उनको) *अन्तक-अन्तक-आत्मजम्* (अन्तक (यम) का अन्त करनेवाले भगवान् शिव के पुत्र को) *अचिन्त्यरूपं-अन्तहीनं-अन्तराय-कृन्तनम्* (जिनका रूप चिन्तन से परे हैं उनको, जो अनन्त हैं उनको, विघ्नों-अन्तरायों – को काटने वाले को) *योगिनां* (योगियों के) *हृद्-अन्तरे* (हृदय के भीतर) *निरन्तरं वसन्तं* (सदा निवास करनेवाले को) *तं-एकदन्तं-एव* (उन एकदन्त को ही) *तं* (उनको) *विचिन्तयामि संततम्* (सदा सावधानी से चिन्तन करता हूँ)।

मैं उन एकदन्त गजानन का सदा एकनिष्ठ ध्यान करता हूँ जो अपने एकदन्त की कान्ति से अत्यंत मनोहारी हैं, जो यम का नाश करनेवाले भगवान् शिव के पुत्र हैं, जिनका रूप अचिन्त्य है, जो अनन्त हैं, और जो विघ्नविनाशक हैं। वे केवल योगियों के हृदय के भीतर सदा निवास करते हैं।

(६)

महागणेशपञ्चरत्नमादरेण योऽन्वहं
प्रजल्पति प्रभातके हृदि स्मरन्गणेश्वरम्
अरोगतामदोषतां सुसाहितीं सुपुत्रतां
समाहितायुरष्टभूतिमभ्युपैति सोऽचिरात्॥

यः-अनु-अहं (जो दिनरात, निरन्तर) *महागणेशपञ्चरत्नं* (इस 'गणेश पञ्चरत्नम्' स्तोत्र को) *आदरेण प्रभातके प्रजल्पति* (श्रद्धापूर्वक प्रातःकाल जपता है) *हृदि स्मरन्-गणेश्वरं* (हृदय में गणाधीश का ध्यान करते हुए) *अरोगतां-अदोषतां* (आरोग्य और निर्दोषता को) *सुसाहितीं* (श्रेष्ठ साहित्यिक

उपलब्धि को) *सुपुत्रतां* (अच्छे पुत्रों को) *समाहित-आयुः* (बड़ी आयु) *अष्टभूतिं* (आठ विभूतियों को) *सः-अचिरात्* (वह शीघ्र ही) *अभि-उपैति* (भलीभाँति प्राप्त कर लेता है)

जो पुरुष, हृदय में श्री गणेश का स्मरण करते हुए, श्रद्धापूर्वक इस 'श्रीगणेशपञ्चरत्नम्' स्तोत्र का निरन्तर प्रातःकाल में भलीभाँति जप करता है, उसे शीघ्र ही, आरोग्य, निर्दोषत्व, सत्साहित्य में उपलब्धि, सुपुत्रलाभ, लम्बी आयु, और आठों विभूतियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

फलश्रुति का यह पद आदि शङ्कराचार्यरचित प्रतीत नहीं होता। आचार्य अपने स्तोत्रों में ऐसी फलश्रुति की घोषणा बहुधा नहीं करते।

इस पद की शैली–वाक्यविन्यास और पदावली – स्पष्टतया शिथिल है।

– इति –

प्रातःस्मरणम्

(१)

प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्त्वं
सच्चित्सुखं परमहंसगतिं तुरीयम्।
यत्स्वप्नजागरसुषुप्तिमवैति नित्यं
तद्ब्रह्म निष्कलमहं न च भूतसङ्घः॥

प्रातः हृदि संस्फुरद् आत्मतत्त्वं स्मरामि (मैं प्रातःकाल हृदय में स्फुरित हो रहे आत्मतत्त्व का स्मरण करता हूँ।) *सत् चित् सुखं* (जो सत्, चित् और आनन्दस्वरूप है) *परमहंसगतिं तुरीयम्* (जो परमहंसों की– परम विवेकी ब्रह्मवेत्ताओं की चतुर्थ– जागरण, स्वप्न, सुषुप्ति से आगे– अवस्था है) *यत् स्वप्न-जागर-सुषुप्तिं नित्यं अवैति* (जो जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं का सदा साक्षी है) *अहं तद् ब्रह्म निष्कलं* (मैं वही शुद्ध ब्रह्म हूँ) *न च भूतसङ्घः* (यह पञ्चभूतों से बनी हुई देह मैं नहीं हूँ)

मैं प्रातःकाल अपने हृदय में स्फुरित होने वाले आत्मतत्त्व का स्मरण करता हूँ। यह आत्मा सच्चिदानन्द (सत्, चित्, आनन्दमय) है, और विवेकी ब्रह्मवेत्ताओं– परमहंसों– की अन्तिम गति है, और चतुर्थ (तुरीय) अवस्था रूप है। यह आत्मा जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं का सदा साक्षी है। जो शुद्ध ब्रह्म है, वही मैं हूँ– पञ्च महाभूतों का संचय यह देह मैं नहीं हूँ।

(२)

प्रातर्भजामि मनसो वचसामगम्यं
वाचो विभान्ति निखिला यदनुग्रहेण।
यन्नेतिनेतिवचनैर्निगमा अवोचं-
स्तं देवदेवमजमच्युतमाहुरग्र्यम्॥

मनसो वचसां अगम्यं (जो मन और वाणी की पहुँच से बाहर है) *निखिला वाचः यद् अनुग्रहेण विभान्ति* (जिसकी कृपा से चारों प्रकार की वाणी प्रकट होती है) *यं 'नेति नेति' वचनैः निगमाः अवोचं* (जिसका वेद 'न इति', 'न इति'– 'यह नहीं', 'यह नहीं' कह कर निरूपण करते हैं) *स्तं देवदेवं अजं अच्युतं अग्रम् आहुः* (उसे देवाधिदेव, अज, अच्युत, आदि बताते हैं) *प्रातः भजामि* (मैं प्रातःकाल भजन करता हूँ)

मैं प्रातःकाल उस देवाधिदेव का भजन करता हूँ जो मन और वाणी से परे हैं, जिसके अनुग्रह से समस्त वाणियाँ प्रकट होती हैं, जिसका निरूपण वेद 'न इति, न इति' कह कर करते हैं और जो देवाधिदेव, अजन्मा, अच्युत और आदिपुरुष कहलाता है।

(३)

प्रातर्नमामि तमसः परमर्कवर्णं
पूर्णं सनातनपदं पुरुषोत्तमाख्यम्।
यस्मिन्निदं जगदशेषमशेषमूर्तौ
रज्ज्वां भुजङ्गम इव प्रतिभासितं वै।।

प्रातः स्मरामि तमसः परं अर्कवर्णं (मैं प्रातःकाल उठकर अन्धकार से परे, सूर्य के समान दिव्य तेजोमय को प्रणाम करता हूँ) *पूर्णं सनातनपदं पुरुषोत्तम आख्यम्* (उसे पूर्ण सनातन पुरुषोत्तम नाम से जाना जाता है) *यस्मिन्* (जिसमें) *अशेषमूर्तौ अशेष जगत्* (जिस सर्वस्वरूप में यह सारा जगत्) *रज्ज्वां भुजङ्गम इव वै प्रतिभासितम्* (उसी प्रकार दिखाई देता है जैसे रस्सी में साँप)

मैं प्रातःकाल उठकर उस सनातन पद को नमन करता हूँ, जो अन्धकार से परे है, सूर्य के समान दिव्य तेजोमय है, जिसे 'पूर्ण पुरुषोत्तम' कहते हैं और जिसके अनन्त स्वरूप के भीतर यह सारा जगत् वैसे ही दिखाई पड़ता है जैसे कि रस्सी में साँप का भ्रम।

– इति –

गुर्वष्टकम्

ध्यानम्

जन्मानेकशतैः सदादरयुजा भक्त्या समाराधितो
भक्तैर्वैदिकलक्षणेन विधिना सन्तुष्ट ईशः स्वयम्।
साक्षाच्छ्रीगुरुरूपमेत्य कृपया दृग्गोचरः सन् प्रभुः
तत्त्वं साधु विबोध्य तारयति तान् संसारदुःखार्णवात्।।

ईशः स्वयं (स्वयं ईश्वर) *जन्म-अनेक-शतैः* (अनगिनती सैकड़ों पूर्वजन्मों में) *भक्तैः* (भक्तों द्वारा) *वैदिकलक्षणेन* (वैदिक विधानों के अनुसार) *सद् आदर युजा भक्त्या* (सच्ची श्रद्धापूर्वक भक्ति से) *विधिना समाराधितः सन्तुष्टः* (विधिपूर्वक की गई आराधना से सन्तुष्ट) *साक्षात् श्री गुरुरूपम् एत्य* (साक्षात् श्रीगुरु का स्वरूप लेकर) *कृपया दृग् गोचरः सन् प्रभुः* (स्वयं ईश्वर कृपापूर्वक दृष्टिगोचर होते हैं) *तत्त्वं साधु विबोध्य* (सार तत्त्व को भली भाँति समझा कर) *तान् संसार दुःखार्णवात् तारयति* (संसार के दुःखों के सागर से पार लगाते हैं)

स्वयं परमेश्वर, भक्तों की श्रद्धायुक्त वैदिक विधाओं के अनुसार अनगिनत पूर्वजन्मों में की गई आराधना से संतुष्ट होकर, साक्षात् गुरु स्वरूप धारण कर दृष्टिगोचर होते हैं, और भलीभाँति तत्त्वज्ञान देकर, संसार के दुःखों के सागर से पार लगाते हैं।

(१)

शरीरं सुरूपं तथा वा कलत्रं
यशश्चारु चित्रं धनं मेरुतुल्यम्।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरङ्घ्रिपद्मे
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्।।

शरीरं सुरूपं (शरीर सुन्दर हो) *तथा वा कलत्रं* (और पत्नी भी सुन्दर हो) *यशः चारु चित्रं* (विचित्र धवल यश हो) *धनं मेरुतुल्यं* (और मेरुपर्वत-सा बड़ा धन-संग्रह हो) *चेत् मनः गुरोः अङ्घ्रिपद्मे न च लग्नं* (यदि मन गुरु के चरणकमल में नहीं लगा हो तो) *ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्* (तो उससे क्या? उससे क्या? उससे क्या? उससे क्या?)

शरीर सौष्ठव-सम्पन्न सुन्दर हो, और पत्नी भी वैसी रूपवती हो, अनेक प्रकार का प्रभावशाली यश हो, और मेरुपर्वत के बराबर धन-संग्रह हो किन्तु यदि गुरु के चरणकमल में मन नहीं लगा तो इससे क्या? इससे क्या? इससे क्या? इससे क्या?

(२)

कलत्रं धनं पुत्रपौत्रादि सर्वं
गृहं बान्धवाः सर्वमेतद्धि जातम्।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरङ्घ्रिपद्मे
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥

कलत्रं (पत्नी) *धनं पुत्र-पौत्र-आदि सर्वं* (धन, पुत्र-पौत्र आदि सब कुछ) *गृहं बान्धवाः एतद् हि सर्वं जातम्* (घर, बन्धु-बान्धव— यह सब कुछ रहे)

पत्नी, पुत्र-पौत्र आदि, घर, बन्धु-बान्धव यह सब कुछ हो, किन्तु यदि गुरु के चरणकमल में मन नहीं लगा तो इन सबसे क्या? इन सबसे क्या? इन सबसे क्या?

(३)

षडङ्गादिवेदो मुखे शास्त्रविद्या
कवित्वादि गद्यं सुपद्यं करोति।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरङ्घ्रिपद्मे
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥

षड् अङ्गादि वेदः (छः अङ्गों सहित वेदों का ज्ञान हो) *शास्त्रविद्या मुखे* (और ओठों पर सारी शास्त्रविद्या हो) *कवित्वादि गद्यं सुपद्यं करोति* (कवित्व शक्ति हो और सुन्दर गद्य-पद्य लिख सकता हो)

किसी के मुख में षडङ्गवेदों का ज्ञान और समस्त शास्त्र-विद्या हो, कवित्वप्रतिभासम्पन्न सुन्दर गद्य-पद्य बना सकता हो, किन्तु यदि गुरुचरण में मन नहीं लगा तो इससे क्या? इन सबसे क्या?

(४)

विदेशेषु मान्यः स्वदेशेषु धन्यः
सदाचारवृत्तेषु मत्तो न चाऽन्यः।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरङ्घ्रिपद्मे
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्।।

विदेशेषु मान्यः (मैं विदेशों में सम्माननीय हूँ) *स्वदेशेषु धन्यः* (अपने देश में बड़ा भाग्यवान्, धन्य हूँ) *सदाचारवृत्तेषु* (सदाचार की वृत्तियों में) *मत्तः न च अन्यः* (मेरा जैसा दूसरा नहीं है– ऐसा अभिमान हो)

यदि किसी को अभिमान हो कि मेरी विदेशों में ख्याति है और अपने देश में मुझे धन्य, भाग्यवान् समझा जाता है और सदाचार में कोई दूसरा मेरे समान नहीं है— यदि गुरुचरण में मन नहीं लगा तो इस सब से क्या?

(५)

क्षमामण्डले भूपभूपालवृन्दैः
सदा सेवितं यस्य पादारविन्दम्।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरङ्घ्रिपद्मे
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्।।

क्षमामण्डले (पृथ्वी मण्डल में) *यस्य पादारविन्दं* (जिसके चरण-कमल) *सदा सेवितं भूपभूपालवृन्दैः* (सदा राजा-महाराजाओं द्वारा सेवित्त हों)

सारी पृथ्वी के राजा-महाराजा किसी के चरण कमलों की सेवा करते हों, किन्तु यदि गुरुचरण में मन नहीं लगा तो इस सब से क्या?

(६)

यशो मे गतं दिक्षु दानप्रतापा-
ज्जगद्वस्तु सर्वं करे यत्प्रसादात्।

मनश्चेन्न लग्नं गुरोरङ्घ्रिपद्मे
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥

दानप्रतापात् (मेरी उदारता, दानशीलता और प्रताप के कारण) *मे यशः दिक्षु गतं* (मेरा यश चारों दिशाओं में फैल रहा है) *यत्प्रसादात्* (जिसके फलस्वरूप) *सर्वं जगत् वस्तु* (संसार की सारी वस्तुएँ) *करे* (मेरे हाथ में है।)

''मेरी दानशीलता और प्रताप के कारण मेरा यश चारों दिशाओं में फैल रहा है। इसी के फलस्वरूप संसार की सारी वस्तुएँ मेरे हाथ में हैं।'' कोई ऐसी कल्पना करता रहे, किन्तु यदि गुरुचरण में मन नहीं लगा तो इस सबसे क्या? इससे क्या?

(७)

न भोगे न योगे न वा वाजिराजौ
न कान्तामुखे नैव वित्तेषु चित्तम्।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरङ्घ्रिपद्मे
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥

न भोगे न योगे (न भोग में न योग में) *न वा वाजिराजौ* (न घोड़ों की पंक्ति में) *न कान्तामुखे* (न पतिव्रता पत्नी के सुन्दर मुख में) *न एव वित्तेषु चित्तम्* (और न धन-धान्य में मन है)

चित्त न भोग में है, न योग में, न घोड़ों की पंक्ति में, न पतिव्रता पत्नी के सुन्दर मुख में, अथवा धन-धान्य में लगता है। (ऐसी निस्पृह अवस्था में भी) यदि गुरुचरण में मन नहीं लगा तो यह सब व्यर्थ है।

(८)

अरण्ये न वा स्वस्य गेहे न कार्ये
न देहे मनो वर्तते मे त्वनर्घ्ये।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरङ्घ्रिपद्मे
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥

अरण्ये न वा स्वस्य गेहे (न जंगल में न अपने घर में) *न कार्ये* (न किसी

करने योग्य कार्य में, पुरुषार्थ में) *न देहे* (न शरीर में) *न तु अनर्घ्ये* (न किसी अमूल्य वस्तु की प्राप्ति में) *मनः वर्तते* (मन लगता है)

मेरा मन न वन में है, न घर में, न पुरुषार्थ में, न अमूल्य वस्तुओं को प्राप्त करने में। ऐसी सब वस्तुओं में मन लगने या नहीं लगने, सांसारिक उपलब्धियों को प्राप्त करने या न करने से क्या होता है? यदि गुरुचरणों में मन नहीं लगा तो यह सब व्यर्थ है।

(९)

गुरोरष्टकं यः पठेत्पुण्यदेही
यतिर्भूपतिर्ब्रह्मचारी च गेही।
लभेद्वाञ्छितार्थं पदं ब्रह्मसंज्ञं
गुरोरुक्तवाक्यं मनो यस्य लग्नम्॥

यदि कोई पुण्यवान् इस गुरु-अष्टक का पाठ करे और गुरु के वाक्यों में मन लगाये तो वह यति हो अथवा भूपति, गृहस्थी अथवा ब्रह्मचारी — कोई भी हो — उसे वाञ्छित फल और ब्रह्मपद प्राप्त होता है।

– इति –

श्रीदक्षिणामूर्त्यष्टकम्

परिचय

आदि शंकराचार्यरचित *श्री दक्षिणामूर्त्यष्टकम्* शार्दूलविक्रीडित छन्द में दस पद्यों का लघु स्तोत्र है। किन्तु पदलालित्य और अर्थगौरव में यह आचार्य के लगभग ६५ स्तोत्रों में अद्वितीय है। इसमें गुरुमूर्ति दक्षिणामूर्ति की केवल वन्दना ही नहीं, अद्वैतवेदान्त पर बड़ा सारगर्भित प्रवचन है।

इस स्तोत्र पर आचार्य शंकर के शिष्य सुरेश्वराचार्य (मण्डनमिश्र) का "मानसोल्लास" नामक वार्तिक मिलता है, और स्वयंप्रकाशयति की "तत्त्वसुधा" व्याख्या भी उपलब्ध है। इनके आधार पर स्वामी चिन्मयानन्द और टी.ऐम्.पी महादेवन की अंग्रेजी टीकाएँ भी हैं। भारत की अनेक भाषाओं में इस स्तोत्र के अनुवाद किये गये हैं और व्याख्या की गई हैं।

यह स्तोत्र अद्वैतवेदान्त का बड़े संक्षेप में विवेचन करता है, और दूसरे मतावलम्बियों के तर्कों की कल्पना कर उनका निराकरण करता है। यह सरलबुद्धि छात्रों के लिये नहीं, ब्रह्मनिष्ठ वृद्ध ऋषियों के श्रवण, मनन, ध्यान और संकीर्तन के लिये है। फलश्रुतिरूप अंतिम दसवें श्लोक में आश्वासन दिया गया है :

सर्वात्मत्वमिति स्फुटीकृतमिदं यस्मादमुष्मिन् स्तवे
तेनास्य श्रवणात्तदर्थमननाद्ध्यानाच्च संकीर्तनात्।
सर्वात्मत्वमहाविभूतिसहितं स्यादीश्वरत्वं स्वतः
सिध्येत्तत्पुनरष्टधा परिणतं चैश्वर्यमव्याहतम्।।

जो प्रस्थानत्रयी (उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और गीता) में अनेक बार, अनेक प्रकार से, परिभाषित किया गया है वह यहाँ सूत्ररूप से– शब्दों का अतिक्रमण करने वाले शब्दों से, मौन भाषा में, चिन्मुद्रा के प्रतीक से–

प्रकट किया गया है। *'सर्वात्मत्वमिति स्फुटीकृतमिदं'' "सर्वं खल्विदं ब्रह्म"*। और इस ज्ञानोपार्जन की उपलब्धि है– *''सत्यं ज्ञानमनन्तत्वं लक्षणं परमेश्वरम्''।*

इस स्तोत्र का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि, सोपान-से-सोपान की भाँति, तर्कों की शृंखला आगे बढ़ती जाती है। प्रत्येक पद की पहली तीन पंक्तियों में सिद्धान्त-स्थापना की गई है, और अंतिम पंक्ति में गुरुवन्दना द्वारा उसे हृदयस्थ किया गया है। ज्ञान और उपासना का सार्थक सम्मिश्रण है।

ध्यान के आरंभिक श्लोकों में पृष्ठभूमि का चित्रण है। आदिगुरु मंगलमूर्ति शिव कैलास पर्वत पर दक्षिणाभिमुख वटवृक्ष के समीप आसीन हैं। उनके चारों ओर जिज्ञासु ब्रह्मनिष्ठ अतिवृद्ध ऋषिगण हैं। मौन ही व्याख्यान है– चिन्मुद्रा बता रही है, *''जीवो ब्रह्मैव नापरः''*

स्तोत्र के दसों श्लोकों में चिन्तन का एक क्रम दिखाई देता है। प्रथम श्लोक में *''विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतं''* द्वारा स्पष्ट किया गया है कि दृश्य जगत् का द्वैत भ्रामक है, वह एक ही सत्ता का प्रतिबिम्ब है। *''ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या''*।

मय्येव सकलं जातं मयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।
मयि सर्वं लयं याति तद् ब्रह्माद्वयमस्म्यहम्॥

(कैवल्योपनिषद्, १९)

इस स्थापना के उपरान्त, अगले दो श्लोकों में बताया गया है कि नित्य विद्यमान अव्यय सत् पर नामरूपात्मक जगत् कैसे अध्यारोपित होता है।

इससे आगे तीसरे और चौथे श्लोकों में स्पष्ट किया गया है कि अध्यारोपित नामरूपात्मक जगत् की भ्रामक उपस्थिति कैसे हटाई जा सकती है।

पाँचवे श्लोक में मायाशक्ति के विलास से भ्रमित और मायाव्यामोह में फँसे बड़बोले मूर्खों के उद्धार की चर्चा है।

छठे श्लोक में जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति के अनुभव के आधार पर यह बताया गया है कि किस प्रकार सत्ता के मूल में समस्त विश्व में व्याप्त चेतना की ही सत्ता है।

समस्तानि च तत्त्वानि समुद्रे सिन्धवो यथा।
कश्शोकस्तत्र को मोह एकत्वमनुपश्यतः॥

(मानसोल्लास ६, २६)

सातवें श्लोक में उस परम सत्ता का वर्णन है जिस पर आश्रित होकर इस दृश्यमान जगत् का मायाजाल फैला हुआ है। आदिगुरु श्री दक्षिणामूर्ति अपनी भद्रमुद्रा से अपने आश्रित भक्तों के लिये *''स्वात्मानं प्रकटीकरोति''*।

आठवें श्लोक में स्पष्ट किया गया है कि यद्यपि ब्रह्म के अतिरिक्त कहीं कुछ भी नहीं है, किन्तु माया की उपाधि से जीव और जगत् के भेद उत्पन्न होते हैं, और जीव इस जगत् को इसी प्रकार देखता है जैसे कि सोते समय स्वप्नसंसार दिखाई पड़ता है। गुरुमूर्ति श्री दक्षिणामूर्ति इस भ्रम को दूर करने वाले हैं।

नवें श्लोक में उपसंहार करते हुए कहा गया है कि जो ''मूर्त्यष्टकम्'' जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि, आकाश, सूर्य, चन्द्र और जीवरूप में दिखाई पड़ रहा है वह मनीषियों के लिये सर्वव्यापक ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, *''नान्यत् किंचन विद्यते विमृशतां यस्मात्परस्माद्विभोः''*

दसवें श्लोक में फलश्रुति है। ब्रह्मविद्या के जिज्ञासु जो मनीषी इस स्तोत्र का श्रवण, मनन, ध्यान और संकीर्तन करेंगे उन्हें अद्वैतवेदान्त के परमज्ञान और अनन्त ऐश्वर्य की उपलब्धि होगी।

ध्यानम्

मौनव्याख्याप्रकटितपरब्रह्मतत्त्वं युवानं
वर्षिष्ठान्तेवसदृषिगणैरावृतं ब्रह्मनिष्ठैः।
आचार्येन्द्रं करकलितचिन्मुद्रमानन्दमूर्तिं
स्वात्मारामं मुदितवदनं दक्षिणामूर्तिमीडे॥

(स्वयंप्रकाशयति का मङ्गलाचरण)

मौनव्याख्याप्रकटितपरब्रह्मतत्त्वं (शब्दरहित मौन व्याख्यान द्वारा परब्रह्म का तत्त्व प्रकट करने वाले को) *युवानं* (चिरयुवा को) *वर्षिष्ठ-अन्तेवसद्* (अत्यंत वृद्ध जो अध्ययन के लिये एकत्र रह रहे हैं उनको) *ब्रह्मनिष्ठैः* (ब्रह्मज्ञान में निष्ठावान्) *ऋषिगणैः आवृतं* (ऋषिगणों से घिरे हुए को) *करकलितचिन्मुद्रं* (हाथ में चित् मुद्रा धारण किये हुए को) *स्वात्मारामं मुदितवदनं आचार्येन्द्रं* (आत्मतृप्त प्रसन्नवदन परमाचार्य को) *दक्षिणामूर्तिं ईडे* (श्रीदक्षिणामूर्ति, गुरुस्वरूप भगवान् की स्तुति करता हूँ।)

मैं मौन व्याख्यान द्वारा परब्रह्मतत्त्व को प्रकाशित करने वाले, चिरयुवा, अध्ययन के लिये एकत्र अत्यन्त वृद्ध ब्रह्मनिष्ठ ऋषियों से घिरे हुए, हाथ में चित् मुद्रा (ज्ञानमुद्रा) धारण किये हुए, आत्माराम, आनन्दमूर्ति, मुदितमुख, परम आचार्यस्वरूप दक्षिणामूर्ति भगवान् शिव की आराधना करता हूँ।

कैलास पर्वत पर, दक्षिणदिशा की ओर मुख किये हुए, विशाल शाखाओं से सम्पन्न वटवृक्ष के नीचे, ध्यानमुद्रा में बैठे हुए चिरयुवा योगीश्वर का यहाँ ध्यान किया गया है। ये योगीश्वर ब्रह्मज्ञान का उपदेश सुनने के लिए उत्सुक अत्यन्त वृद्ध ऋषिगणों से घिरे हैं। उनके करकमल में ज्ञानोपदेश की मुद्रा (तर्जनी और अँगूठा मिला कर गोल चक्र द्वारा *जीवो ब्रह्मैव नापरः* की प्रतीक) है। परमआचार्य अपनी शान्त मुद्रा द्वारा ही परब्रह्म का उपदेश दे रहे हैं। उनका उपदेश मौन व्याख्यान है।

स्वामी चिन्मयानन्द ने इस स्तोत्र को अपनी टीका में बताया है कि हिमालय में तपस्यारत ऋषि-मुनि, एक अलिखित परम्परा के अनुसार, दक्षिण की ओर मुख कर ही ध्यान करते हैं। शिष्य लोग उत्तर दिशा की ओर बैठकर उपदेश सुनते हैं। अत्यन्त वृद्ध ऋषिगण द्वारा संकेत है कि यह उपदेश ब्रह्मज्ञान में तल्लीन प्रज्ञावान् लोगों के लिये है।

आचार्य शंकर ने अद्वैत परब्रह्मतत्त्व की शिक्षा के लिये इसी आदर्श मौन व्याख्यान का सङ्केत अपने शारीरक भाष्य में किया है। वहाँ आचार्य ने बतलाया है कि प्राचीन काल में वाष्कलि ऋषि ब्रह्मोपदेश के लिये अपने गुरु बाध्व के पास गये। जब उन्होंने गुरु से ब्रह्मजिज्ञासा प्रकट की तो गुरु बाध्व प्रश्न सुनकर भी मौन धारण कर बैठे रहे। वाष्कलि ने तीन बार प्रश्न किया और तीनों ही बार गुरु ने अपना मौन भङ्ग नहीं किया। तीनों बार एक ही अशब्द उत्तर था– सम्पूर्ण मौन। एक बार फिर पूछने पर गुरु ने बताया, "मैं तो हर बार तुम्हारे प्रश्न का अपने व्यवहार से –मौन से– उत्तर देता आ रहा हूँ। तुमने मेरा मौन व्याख्यान समझा ही नहीं। वाणी से तो केवल यही कहा जा सकता है, **'उपशान्तोऽयमात्मा'** यह आत्मा शान्तस्वरूप है। ब्रह्मतत्त्व का उपदेश देने के लिये शब्दों का माध्यम अपर्याप्त है। इसका उपदेश तो शब्दों के पार, अशब्द मौन से ही दिया जा सकता है।

यन्मौनव्याख्यया मौनपटलं क्षणमात्रतः।
महामौनिपदं याति स हि मे परमा गतिः॥

तदव्यक्तमाह हि (वह ब्रह्म अव्यक्त है, इन्द्रियों से परे होने के कारण, इन्द्रियों से जानने योग्य नहीं है, श्रुति ने यही कहा है)

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा
नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्व-
स्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः॥

(मु. ३.३.१.८)

(उस परब्रह्म को मनुष्य इन आँखों से नहीं देख सकता; वाणी की पकड़ में भी वह नहीं आ सकता। तपश्चर्या कर्मों के द्वारा भी उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। उसे तो निस्पृह होकर विशुद्ध अन्तःकरण के द्वारा निरन्तर एक मात्र उन्हीं का ध्यान करते-करते ज्ञान की निर्मलता से ही देखा सकता है।)

वटविटपसमीपे भूमिभागे निषण्णं
सकलमुनिजनानां ज्ञानदातारमारात्।
त्रिभुवनगुरुमीशं दक्षिणामूर्तिदेवं
जननमरणदुःखच्छेददक्षं नमामि॥

चित्रं वटतरोर्मूले वृद्धाः शिष्या गुरुर्युवा।
गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यास्तु च्छिन्नसंशयाः॥
(दक्षिणामूर्ति उपनिषद्)

वटविटपसमीपे (बोधिद्रुम वटवृक्ष के निकट) *भूमिभागे निषण्णं* (भूमिभाग पर आसीन) *आरात्* (निकट से, अथवा दूर से) *सकलमुनिजनानां* (सब मुनिवृन्दों के लिये) *ज्ञानदातारं* (परमज्ञान के प्रदाता को) *त्रिभुवनगुरुम्* (त्रिलोकी के गुरु को) *ईशं* (ईश्वर, शिव को) *जननमरणदुःखच्छेददक्षं नमामि* (जनम-मरण की पीड़ा नाश करने में समर्थ की वन्दना करता हूँ)

चित्रं (कितनी अद्भुत बात है!) *वटतरोः मूले* (वटवृक्ष के नीचे) *शिष्या वृद्धाः* (शिष्य तो वृद्ध हैं) *गुरुः युवा* (किन्तु गुरु युवा हैं) *गुरोः तु मौनं व्याख्यानं* (और आचार्य का मौन ही उनका व्याख्यान है) *शिष्याः तु छिन्नसंशयाः* (और सचमुच शिष्यगण संशयविहीन हैं)

तीनों लोकों के गुरु दक्षिणामूर्ति की मैं वन्दना करता हूँ। वे वटवृक्ष के समीप भूमिभाग पर आसीन हैं। उनके निकट बैठे हुए समस्त साधु-सन्तों के लिये परमज्ञानदाता हैं। वे देवाधिदेव जन्म-मरण के सन्ताप को दूर करने में प्रवीण हैं।

कितने आश्चर्य की बात है! वटवृक्ष की छाया में बैठे शिष्यगण तो वृद्ध हैं, किन्तु आचार्य युवा हैं। आचार्य का मौन ही उनका व्याख्यान है और उस मौन से शिष्यों की समस्त शंकाओं का समाधान हो गया है।

ॐ नमः प्रणवार्थाय शुद्धज्ञानैकमूर्तये।
निर्मलाय प्रशान्ताय दक्षिणामूर्तये नमः॥
निधये सर्वविद्यानां भिषजे भवरोगिणाम्।
गुरवे सर्वलोकानां दक्षिणामूर्तये नमः॥
ब्रह्मादिदेववन्द्याय सर्वलोकाश्रयाय ते।
दक्षिणामूर्तिरूपाय शंकराय नमो नमः॥

ओ३म् प्रणवार्थाय (ओंकार स्वरूप के लिये) *शुद्धज्ञानमूर्तये* (विशुद्ध ज्ञान स्वरूप के लिये) *निर्मलाय प्रशान्ताय* (जो निर्मल और प्रशान्त हैं उनके लिये)

सर्वविद्यानां निधये (समस्त विद्याओं के निधान के लिये) *भवरोगिणाम् भिषजे* (संसार के समस्त रोगों के चिकित्सक के लिये) *सर्वलोकानां गुरवे* (समस्त लोकों के आचार्य के लिये) *दक्षिणामूर्तये नमः* (दक्षिणामूर्ति के लिये नमस्कार है)

ब्रह्मादिदेववन्द्याय (ब्रह्मादि देवता जिनकी वन्दना करते हैं उनके लिये) *सर्वलोकाश्रयाय* (समस्त विश्व के आश्रय के लिये) *दक्षिणामूर्तिरूपाय* (दक्षिणामूर्ति स्वरूप के लिये) *ते शंकराय नमो नमः* (उन शुभकारी शंकर के लिये बारबार नमस्कार)

ओ३म् स्वरूप मूर्तिमान शुद्ध अद्वैतब्रह्म के ज्ञाता, निर्मल और प्रशान्त दक्षिणामूर्ति के लिये नमस्कार।

सर्वविद्यानिधान, भवसागर के समस्त रोगों के चिकित्सक, तीनों लोकों के परमाचार्य, दक्षिणामूर्ति को नमस्कार।

जो ब्रह्मा आदि समस्त देवताओं के वन्दनीय हैं, समस्त विश्व के आश्रय हैं, उन दक्षिणामूर्ति स्वरूप शंकर के लिए बारम्बार नमस्कार है।

ऊपर लिखे श्लोक स्तोत्रसंग्रहों (जैसे निर्णयसागर प्रेस) में शंकराचार्य रचित बताये जाते हैं। वास्तव में ये श्लोक ध्यान के लिये दूसरों ने बनाये हैं। *श्रीदक्षिणामूर्त्यष्टकम्* तो केवल आठ श्लोकों में ही पूरा हो जाता है। नवाँ श्लोक उपसंहार और दसवाँ फलश्रुति समझना चाहिये।

शांकरग्रन्थावलिः (समता बुक्स) में नाम *श्रीदक्षिणामूर्तिस्तोत्रम्* नहीं, *श्री दक्षिणामूर्त्यष्टकम्* है। अष्टक आठ श्लोकों का होता है। सम्भव है, अष्टक को स्तोत्र बनाने के लिये दो अन्तिम श्लोक जोड़ दिये हों, और नाम *दक्षिणामूर्त्यष्टकम्* ही रह गया हो।

स्तोत्रम्

(१)

विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतं
पश्यन्नात्मनि मायया बहिरिवोद्भूतं यथा निद्रया।
यः साक्षात्कुरुते प्रबोधसमये स्वात्मानमेवाद्वयं
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये।।

निज अन्तः गतं (अपने भीतर) विश्वं (दृश्यमान ब्रह्माण्ड को) दर्पण-दृश्यमान-नगरी-तुल्यं (दर्पण में दिखाई देने वाली नगरी के समान) मायया (माया के द्वारा) आत्मनि पश्यन् (अपने भीतर देखते हुए) वहिः इव उद्भूतं (बाहर प्रकटित सा) यथा निद्रया (जैसे नींद से) प्रबोधसमये (जागने के समय) यः साक्षात् कुरुते (जो साक्षात् करता है) तस्मै श्री गुरुमूर्तये श्री दक्षिणामूर्तये इदं नमः (उन गुरुस्वरूप श्री दक्षिणामूर्ति के लिये यह नमस्कार।)

जो अपने हृदय में स्थित समस्त नाम-रूपात्मक दृश्यमान विश्व को, दर्पण में दिखाई पड़ने वाली नगरी की भाँति, माया के आवरण के कारण, बाहर प्रकट हुए की भाँति देखते हैं, किन्तु स्वप्न के बाद निद्राभंग से प्रबोध के समय अपने अद्वितीय आत्मा का साक्षात्कार कराते हैं, उन श्री गुरुस्वरूप श्री दक्षिणामूर्ति को मेरा यह नमस्कार।

दस श्लोकों के इस स्तोत्र में अद्वैत वेदान्त का सार संग्रह किया गया है। जो सिद्धान्त उपनिषदों के महावाक्यों *(अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, सत्यं ज्ञानमन्तं ब्रह्म, ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः)* में सूत्ररूप से स्थापित किये गये हैं उनकी इस स्तोत्र में बड़े सारगर्भित शब्दों में व्याख्या की गई है।

पहले श्लोक में *तत्त्वमसि* महावाक्य के 'त्वं' पद की व्याख्या की गई है, और दूसरे श्लोक में 'तत्' पद का लाक्षणिक अर्थ बताया गया है। तीसरे श्लोक में 'तत्' और 'त्वम्' पदों के लाक्षणिक अर्थ का एकत्व 'असि' पद से व्यक्त किया गया है। तीसरे श्लोक में बताया गया है कि 'सत्' (सत्ता) और 'स्फुरण' (चेतना) दोनों परमात्मा की अभिव्यक्ति हैं। इस प्रकार, श्लोक-से-श्लोक के सोपानों द्वारा विवेचन आगे बढ़ता है।

सुरेश्वराचार्य ने अपने *मानसोल्लास* वार्तिक में, इस श्लोक की टीका में कहा है–

एक बड़ा प्रश्न है : यह नाना नाम-रूपात्मक विश्व कहाँ स्थित है, और वह कौन-सा प्रकाश है जिससे यह आभासित होता है?

अस्ति प्रकाशत इति व्यवहारः प्रवर्तते।
तच्चास्तित्वं प्रकाशत्वं कस्मिन्नर्थे प्रतिष्ठितम्?
किं तेषु तेषु वाऽर्थेषु किं वा सर्वात्मनीश्वरे?
ईश्वरत्वं च जीवत्वं सर्वात्मत्वं च कीदृशम्?

इन प्रश्नों का उत्तर वार्तिककार ने इस प्रकार दिया है :

अन्तरस्मिन्निमे लोका अन्तर्विश्वमिदं जगत्।
बहिर्वन्माययाऽऽभाति दर्पणे स्वशरीरवत्॥
स्वप्ने स्वान्तर्गतं विश्वं यथा पृथगिवेक्ष्यते।
तथैव जाग्रत्कालेऽपि प्रपञ्चोऽयं विविच्यताम्॥

हम जो कुछ भी देखते हैं वह हमारे भीतर ही होता है। भीतर ही सारा नाना नाम-रूपात्मक विश्व है। बाहर तो यह माया से उसी भाँति दिखाई देता है जैसे अपना शरीर दर्पण में।

स्वप्न में अपने भीतर स्थित जिस विश्व को हम बाहर देखते हैं, वैसे ही जाग्रत् अवस्था में, जो अपने भीतर है, वह बाहर दिखाई देता है।)

स्वप्ने प्रकाशो भावानां स्वप्रकाशान्न हीतरः।
जाग्रत्यपि तथैवेति निश्चिन्वन्ति विपश्चितः॥

निद्रया दर्शितानर्थान्न पश्यति यथोत्थितः।
सम्यग्ज्ञानोदयादूर्ध्वं तथा विश्वं न पश्यति॥
अनादिमायया सुप्तो यदा जीवः प्रबुध्यते।
अजन्मनिद्रमस्वप्नमद्वैतं बुध्यते तदा॥

(स्वप्न में जो कुछ दिखाई देता है वह अपने प्रकाश में दिखाई देता है। कोई दूसरा प्रकाश वहाँ नहीं होता। बुद्धिमान् जानते हैं कि जाग्रत् अवस्था में भी ऐसा ही होता है।

जैसे निद्राभङ्ग होने पर मनुष्य स्वप्न में देखे हुए संसार को नहीं देखता, वैसे ही संबोधि होने पर, वह विश्व को नहीं देखता।

जब जीव अनादि माया की निद्रा से जाग जाता है तो वह अजन्मा, निद्रारहित, स्वप्नरहित अद्वैत का साक्षात्कार करता है)

अब चौथे पद में, आचार्य गुरु के प्रसाद की व्याख्या करते हैं। सुरेश्वराचार्य के शब्दों में,

श्रुत्याऽऽचार्यप्रसादेन योगाभ्यासवशेन च।
ईश्वरानुग्रहेणापि स्वात्मबोधो यदा भवेत्॥
भुक्तं यथाऽन्नं कुक्षिस्थं स्वात्मत्वेनैव पश्यति।
पूर्णाहन्ताकवलितं विश्वं योगीश्वरस्तथा॥

(जब वेदवाक्यों से, गुरु का व्याख्यान सुनकर उनकी कृपा से, योग के अभ्यास से, और ईश्वर के अनुग्रह से आत्मबोध हो जाता है, तो, जैसे भोजन किया हुआ अन्न शरीर मान लिया जाता है, वैसे ही योगी विश्व को आत्मस्वरूप समझ लेता है। यह विश्व उस परमात्मा में ही तो लीन है, जिसका वह स्वयं एक अंश है।)

(२)

बीजस्यान्तरिवाङ्कुरो जगदिदं प्राङ्निर्विकल्पं शनै-
र्मायाकल्पितदेशकालकलनावैचित्र्यचित्रीकृतम्।
मायावीव विजृम्भयत्यपि महायोगीव यः स्वेच्छया।
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये॥

यः (जो) *मायावी इव* (मायावी के समान) *अपि महायोगी इव* (और बड़े योगी के समान) *स्व इच्छया* (अपनी इच्छानुसार) *विजृम्भयति* (प्रकट करता है) *इदं जगत्* (इस विश्व को) *प्राङ्* (पहले) *बीजस्य अन्त इव* (बीज के भीतर वृक्ष के अङ्कुर जैसा) *निर्विकल्पं* (अप्रकट को) *मायाकल्पित* (माया द्वारा निर्मित, भ्रामक) *देश-कलना-वैचित्र्यचित्रीकृतं* (देश और काल के खेल की विचित्रता से चित्रित किया गया है)

जिन्होंने मायावी तथा महायोगी की भांति, अपनी इच्छा के अनुरूप, निर्विकल्परूप से स्थित इस जगत् को, बीज के भीतर छिपे पेड़ के अङ्कुर की भाँति, मायाद्वारा कल्पित देश, काल और धारणा की विचित्रतासे चित्रित किया है, उन गुरुस्वरूप श्री दक्षिणामूर्ति को मेरा यह नमस्कार।

इस श्लोक में विश्व के आदि कारण के बारे में विचार किया गया है। विश्व की सृष्टि किसने, कब, कैसे और किससे की? इस प्रश्न का उत्तर अलग-अलग मतावलम्बियों ने अलग-अलग तरह से दिया है। द्वैतवादी भक्त इस सृष्टि को ईश्वर की लीला मानकर संतोष कर लेते हैं। यदृच्छावाद का कहना है कि किसी कारण को ढूँढने की क्या आवश्यकता है? सृष्टि एक घटना थी जो, किसी तरह, घट गई। स्वभाववाद कोई कारण तो स्वीकार करता है, किन्तु, उसके दृष्टिकोण से, स्वभाव ही आदिकारण रहा होगा। चारवाक् मत माननेवाले जल-थल-पावक-समीर के संयोग को जगत् का कारण मानते हैं। न्याय-वैशेषिक ईश्वर द्वारा प्रेरित पदार्थों के परमाणुओं को जगत् का कारण मानते हैं। कुछ वेदान्ती सोचते हैं कि ईश्वर ने प्रकृति का सहारा लेकर जगत् का निर्माण किया होगा। दूसरे वेदान्ती मानते हैं कि केवल ईश्वर ही जगत् का उपादान और निमित्त है, और यह विश्व ईश्वर का एक अंश, परिणाम है।

अद्वैत वेदान्त ऐसे समाधानों को स्वीकार नहीं करता। उपनिषदों में जगत् के उत्पन्न होने की स्पष्ट घोषणा की गई हो :

यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः।
तस्मादेतत् ब्रह्म नाम रूपमन्नं च जायते॥

(मु. १.१.९)

अर्थात् जो सर्वज्ञ और सर्ववित् परमात्मा है, और जिसका तप ज्ञानमय है, उसी से यह समस्त नानानामरूपात्मक जगत् उत्पन्न हुआ है।

यहाँ एक प्रश्न उठता है : निर्विकार ब्रह्म स्वयं विकारी जगत् कैसे बन सकता है? फिर *यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते* (तै. ३.३.३१) कैसे मानें?

इस श्लोक में आचार्य ने विवर्तवाद और अध्यास सिद्धान्त का सहारा लेकर इस शंका का समाधान किया है। जब किसी वस्तु का यथार्थ ज्ञान नहीं होता तो, अज्ञान की दशा में, उसे कुछ और समझ लिया जाता है। जब यथार्थ रूप ज्ञात होता है तो, ज्ञान से अज्ञान की निवृत्ति होने पर, समस्त भ्रांतियाँ मिट जाती हैं। हमें जब तक सत्य का अनुभव नहीं होता तब तक नामरूपात्मक जगत् का, नाना प्रकार की समस्याओं का, दुःखों और अभावों का अनुभव होता रहता है। परम सत्य के अनुभव होने पर, परम ज्ञान के प्रकाश में, यह जगत् अनन्त चेतना ही दिखाई देगा। किन्तु अद्वैत वेदान्त यह भी स्वीकार करता है कि जगत् की सापेक्ष सत्ता है, उसका व्यावहारिक अस्तित्व है। किन्तु परमार्थ की दृष्टि से जगत् मिथ्या है। *सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।*

सुरेश्वराचार्य ने इस श्लोक की व्याख्या में विरोधी मत-मतान्तरों का खण्डन करने के बाद बताया है–

इच्छाज्ञानक्रियारूपमायया ते विजृम्भिताः।
इच्छाज्ञानक्रियापूर्वा यस्मात्सर्वाः प्रवृत्तयः॥
सर्वेऽपि जन्तवस्तस्मादीश्वरा इति निश्चिताः।
बीजाद्वृक्षस्तरोर्बीजं पारम्पर्येण जायते॥
इति शङ्कानिवृत्त्यर्थं योगिदृष्टान्तकीर्तनम्।
विश्वामित्रादयः पूर्वे परिपक्वसमाधयः॥
उपादानोपकरणप्रयोजनविवर्जिताः।
स्वेच्छया ससृजुस्सर्गं सर्वभोगोपबृंहितम्॥
ईश्वरोऽनन्तशक्तित्वात्स्वतन्त्रोऽन्यानपेक्षकः।
स्वेच्छामात्रेण सकलं सृजत्यवति हन्ति च॥

जिन तत्त्वों से जगत् उत्पन्न होता है वे ईश्वर की माया के द्वारा, इच्छा-ज्ञान-क्रिया- के रूप में प्रकट होते हैं। क्योंकि जो कुछ भी घटित होता है उसके पूर्व में इच्छा-ज्ञान-क्रिया रहती हैं, इसलिये सारे जीव निश्चित ही ईश्वररूप हैं।

बीज से वृक्ष उत्पन्न होता है, और उस वृक्ष से दूसरे बीज उत्पन्न होते हैं– इस प्रकार जगत् की प्रक्रिया चलती रहती है। इस तर्क का उत्तर देने के लिये आचार्य ने महायोगी का उदाहरण दिया है। प्रसिद्ध है कि विश्वामित्र ने, बिना किसी उपादान के, बिना किसी अपने लाभ के, केवल इच्छाशक्ति से नयी सृष्टि रच ली।

सर्वशक्तिमान् ईश्वर, बिना किसी उपादान के, अपनी इच्छा मात्र से जगत् की सृष्टि करता है, उसका पालन करता है, और उसे, अन्त में, अपने-आप में लीन कर लेता है।

श्रुतिश्च सोऽकामयतेतीच्छया सृष्टिमीशितुः।
तस्मादात्मन आकाशस्सम्भूत इति चाब्रवीत्॥
तस्मान्मायाविलासोऽयं जगत्कर्तृत्वमीशितुः।
बन्धमोक्षोपदेशादिव्यवहारोऽपि मायया॥

वेद वचन है *'सोऽकामयतेतीच्छया सृष्टिमीशितुः'* उस (परमात्मा) ने इच्छा की, और इच्छा मात्र से, आकाश की उत्पत्ति हुई। परमात्मा ही सृष्टि का निमित्त और उपादान कारण है। उसने अपनी माया से जो सृष्टि की वह न तो 'सत्' कही जा सकती है, और न ही 'असत्'।

इस प्रकार ईश्वर-निर्मित यह नानानामरूपात्मक जगत् माया का खेल है। हमारे सारे अनुभव– यहाँ तक कि बन्धन और मोक्ष के उपदेश आदि का व्यवहार भी– माया का खेल है।

(३)

यस्यैव स्फुरणं सदात्मकमसत्कल्पार्थकं भासते
साक्षात् तत्त्वमसीति वेदवचसा यो बोधयत्याश्रितान्।

यत्साक्षात्करणाद्भवेन्न पुनरावृत्तिर्भवाम्भोनिधौ
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये।।

यस्य सदात्मकं स्फुरणं असत् कल्पार्थकं भासते (जिसका सदात्मक स्फुरण ही असत् जैसा मालूम होता है) *यः आश्रितान् 'साक्षात् तत्त्वमसि' वेदवचसा बोधयति* (जो अपने आश्रितों को 'साक्षात् तत्त्वमसि'– तुम साक्षात् वही ब्रह्म हो– इस वेद-वाक्यद्वारा ज्ञान प्रदान करता है) *यत्साक्षात्करणात्* (जिसका साक्षात्कार करने से) *भव अम्भः निधौ* (भवसागर में) *पुनः आवृत्तिः न भवेत्* (दुबारा नहीं आना पड़ता)

जिनका सदात्मक-सत्स्वरूप-स्फुरण ही असत्-सा दिखाई देता है, जो अपने आश्रित शिष्यों को साक्षात् तत्त्वमसि (तू साक्षात् वही ब्रह्म है) इस वेदवाक्य से ज्ञान प्रदान करते हैं, और जिनका साक्षात्कार करने से भवसागर में पुनरागमन नहीं होता, उन श्रीगुरुस्वरूप श्रीदक्षिणामूर्ति को मेरा नमस्कार है।

पिछले दो श्लोकों में जीवात्मा और परमात्मा की सत्ता का विवेचन किया गया। पहले, मङ्गलाचरण के श्लोक में, 'तत्त्वमसि' महावाक्य के 'त्वम्' पद की व्याख्या की गई; दूसरे श्लोक में "तत्" पद को समझाया। अब, इस तीसरे श्लोक में, 'तत्' और 'त्वम्' का एकत्व बताया जा रहा है।

'सदात्मकं' और 'असत्कल्पार्थकं' *(असत् तुल्यः, स्वतः सत्यरहितः)* का एकत्व समझना कठिन है। जीवात्मा और परमात्मा तो बिल्कुल भिन्न दिखाई देते हैं, जीव और ब्रह्म तो अलग-अलग हैं, फिर *जीवो ब्रह्मैव नापरः* का क्या अर्थ है? कोई कह सकता है "जगत् सत्य है, ब्रह्म मिथ्या है"। ब्रह्म की सत्ता कहाँ है?

ऐसी शंकाओं का समाधान इस तीसरे श्लोक में किया गया है। "जिसकी सदात्मक चेतना (स्फुरणं) असदात्मक (स्वतः सत्यरहित) दिखाई देती है"– इस आभास का निराकरण, इस भ्रम का निवारण "तत्त्वमसि' वेदवाक्य से किया गया है। सुरेश्वराचार्य इसे समझाते हुए कहते हैं–

असत्कल्पेषु भावेषु जडेषु क्षणनाशिषु।
अस्तित्वं च प्रकाशत्वं नित्यात्संक्रामतीश्वरात्॥
आत्मसत्तैव सत्तैषां भावानां न ततोऽधिका।
तथैव स्फुरणं चैषां नात्मस्फुरणतोऽधिकम्॥

(जड़, क्षणभङ्गुर, असत्कल्प भावों में अस्तित्व और प्रकाशत्व नित्य ईश्वर से प्राप्त होकर उनमें मिल जाते हें। इनकी सत्ता आत्मा की सत्ता में ही है। इसी भाँति जिस प्रकाश से वे प्रकाशित होते हैं, वह भी आत्मा का ही प्रकाश है।)

स्वगतेनैव कालिम्ना दर्पणं मलिनं यथा।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः॥
घटाकाशो महाकाशो घटोपाधिकृतो यथा।
देहोपाधिकृतो भेदो जीवात्मपरमात्मनोः॥

(जैसे अपने ऊपर लगी कालिमा से दर्पण मलिन हो जाता है, वैसे ही अज्ञान से ज्ञान ढक जाता है, और प्राणी भ्रमित हो जाता है। अविद्या के आवरण के कारण आत्मा की वास्तविक स्थिति नहीं दिखाई देती। घट की उपाधि से घटाकाश और महाकाश में अन्तर दिखाई देता है। जीवात्मा और परमात्मा का अन्तर भी देह की उपाधि के कारण है)

जीवात्मना प्रविष्टोऽसावीश्वरश्श्रूयते यतः।
देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहङ्कारसंहतौ॥
आत्मसङ्कलनादज्ञैरात्मत्वं प्रतिपाद्यते
वह्निधीः काष्ठलोहादौ वह्निसङ्कलनादिव॥

(श्रुति में कहा गया है कि स्वयं ईश्वर ने विश्व में जीव के रूप में प्रवेश किया। इसी कारण, 'तत्त्वमसि' का अर्थ है कि आत्मा (जिसे देह की उपाधि के साथ 'जीव' कहा जाता है) वास्तव में वह ब्रह्म ही है।

जब आत्मा देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण और अहंकार के समुदाय में मिल जाता है तो अज्ञानी मनुष्य इस संकलन को ही आत्मा समझने

लगते हैं। यह ऐसा ही है जैसे लकड़ी और लोहे में सङ्कलित अग्नि को लकड़ी या लोहा मान लिया जाय।

जीवः प्रकाशाभिन्नत्वात्सर्वात्मेत्यभिधीयते।
एवं प्रकाशरूपत्वपरिज्ञाने दृढीकृते।।
पुनरावृत्तिरहितं कैवल्यं पदमश्नुते।
सकृत्प्रसक्तमात्रोऽपि सर्वात्मत्वे यदृच्छया।।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते।
सर्वात्मभावना यस्य परिपक्वा महात्मनः।।
संसारतारकस्साक्षात्स एव परमेश्वरः।

(प्रकाश से अभिन्न होने के कारण जीव को 'सर्वात्मन्' बताया गया है। जब प्रकाशरूपत्व का पूर्णज्ञान परिपक्व हो जाता है तो कैवल्य की प्राप्ति होती है, और पुनरागमन नहीं होता। अगर कोई एक बार भी संयोग से, सर्वात्मत्व का अनुभव कर ले तो वह सब पापों से मुक्त होकर शिवलोक में सम्मानित होता है। जिस महात्मा की सर्वात्मभावना परिपक्व हो गई है, वह साक्षात् संसारसागर से पार लगाने वाला परमेश्वर है।)

(४)

नानाच्छिद्रघटोदरस्थितमहादीपप्रभाभास्वरं
ज्ञानं यस्य तु चक्षुरादिकरणद्वारा बहिः स्पन्दते।
जानामीति तमेव भान्तमनुभात्येतत् समस्तं जगत्
तस्मै श्री गुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये।।

नानाछिद्र-घट-उदर-स्थित-महादीप (अनगिनत छिद्रों वाले घट के भीतर रखे हुए बड़े दीपक की) *प्रभाभास्वरं* (चमकीली प्रभा) *यस्य ज्ञानं तु* (जिसका ज्ञान) *चक्षुः आदि करण द्वारा* (नेत्र आदि इन्द्रियों द्वारा) *बहिः स्पन्दते* (बाहर चमकता है) *'जानामि' इति* (मैं जानता हूँ) *तम् एव भान्तम्* (उसी के प्रकाश से) *अनुभाति एतत् समस्तं जगत्* (यह समस्त जगत् प्रतिबिम्बित होता है)

अनेक छिद्रोंवाले घट के भीतर स्थित विशाल दीपक की उज्ज्वल प्रभा

के समान जिनका ज्ञान (चेतना) नेत्र आदि इन्द्रियों के माध्यम से बाहर प्रकाशित होता है तथा (जैसा कि मैं जानता हूँ) उसी के प्रकाशित होने पर यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित होता है उन श्रीगुरुस्वरूप श्रीदक्षिणामूर्ति को मेरा नमन।

कुछ लोगों का तर्क हो सकता है कि पिछले श्लोकों में ब्रह्म और जीव के एकत्व की जो बात कही गई वह प्रमाण-विरुद्ध है। प्रत्यक्ष और शास्त्र-प्रमाणों से यह एकत्व सिद्ध होता नहीं दिखाई देता। अगर घड़े में रखा हुआ दीपक चमकता है तो उसमें रुई, तेल और अग्नि के सम्मिश्रण से उत्पन्न प्रकाश होता है, उस प्रकाश के लिये ईश्वर की आवश्यकता कहाँ है? घड़ा स्वतः प्रकाशित है, ईश्वर द्वारा प्रकाशित नहीं है। इस तर्क का खण्डन इस श्लोक में किया गया है।

घटस्थित दीपक की चमक छिद्रों द्वारा बाहर निकलकर दृश्यमान जगत् को प्रकाशित करती है। आत्मा का प्रकाश इन्द्रियों द्वारा निकल कर बाह्य वस्तुओं को प्रतिभासित करता है। "मैं प्रकाश को देखता हूँ" से अगर "मैं देखता हूँ" हटा लिया जाय तो 'प्रकाश' कहाँ होगा? जब आत्म-चैतन्य अन्तःकरण में प्रतिबिम्बित होता है तो वह मन की वृत्ति के साथ इन्द्रिय-द्वारों से बाहर निकल कर बाह्य वस्तुओं तक पहुँचता है, और उन्हें प्रकाशित करता है, तभी हमें वस्तु का ज्ञान होता है। ज्ञान का प्रकाश स्थूल शरीर के अनेक छिद्रों (आँखें, नाक, कान, मुँह, जिह्वा, त्वचा तथा अनेक स्पन्दन केन्द्र) से होकर बाहर निकलता है और जगत् की वस्तुओं को प्रकाशित करता है। प्रकाश वस्तुओं में नहीं, उन्हें प्रकाशित करने वाले ज्ञान में है।

बुद्धि से निकली हुई चेतना का प्रकाश जब नेत्रों से होकर बाहर आता है तो दर्शन-शक्ति बनती है, कान में होकर आने पर ध्वनि-बोध होता है, जिसे श्रवण-शक्ति कहते हैं। इस प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय की चेतना किसी विशेष विषय को ही प्रकाशित करती है, और सभी इन्द्रियाँ बुद्धि से आई चेतना से प्रकाशित होकर कार्य करती हैं, और बुद्धि को चेतना आत्मा से प्राप्त होती है। किन्तु 'चेतना आत्मा से प्राप्त होती है' यह कहना भी

ठीक नहीं है, क्योंकि आत्मा निष्क्रिय, निरवयव है। प्रकाशित करने का काम आत्मा पर अध्यारोपित है। आत्मा कार्य करता-सा प्रतीत होता है। *आत्म-सत्ता-प्रकाशाभ्यामेव जगतो हि सत्ताप्रकाशः*।

जगत् की वस्तुओं में अपनी कोई चेतना नहीं है। उनको प्रकाशित करने वाला (कहना पड़ता है) आत्मा है। *तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति* (मु. २.२.१०)

सुरेश्वराचार्य के शब्दों में–

इत्थं जगत्समाविश्य भासमाने महेश्वरे।
सूर्यादयोऽपि भासन्ते किमुतान्ये घटादयः॥
तस्मात्सत्ता स्फुरत्ता च भावानामीश्वराश्रयात्।
सत्यं ज्ञानमनन्तं च श्रुत्या ब्रह्मोपदिश्यते॥

जब महेश्वर जगत् में प्रवेश करता है और अपने प्रकाश को प्रकट करता है तो सूर्य आदि प्रकाशित होते हैं, घट इत्यादि की तो बात ही क्या?

सारी वस्तुओं को सत्ता और स्फुरत्ता (चेतना) ईश्वर की सत्ता और स्फुरत्ता से प्राप्त होती है। इसीलिए श्रुति-वचन है : *सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म*।

(५)

देहं प्राणमपीन्द्रियाण्यपि चलां बुद्धिं च शून्यं विदुः
स्त्रीबालान्धजडोपमास्त्वहमिति भ्रान्ता भृशं वादिनः।
मायाशक्तिविलासकल्पितमहाव्यामोहसंहारिणे
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये॥

देहं (देह को) *प्राणं अपि* (प्राण को भी) *इन्द्रियाणि अपि* (इन्द्रियों को भी) *चलां बुद्धिं च शून्यं विदुः* (और चञ्चल बुद्धि को भी शून्य मानने वाले) *स्त्री-बाल-अन्ध-जड-उपमाः तु* (स्त्री, बालक, अंधे और जड की भाँति) *अहं इति भ्रान्ता भृशं वादिनः* (इस प्रकार भ्रमित लोग केवल 'अहं' (मैं)

को ही मानते हैं। *मायाशक्तिविलासकल्पितव्यामोह*– (ऐसे लोग मायाशक्ति के विलास से कल्पित महामोह में हैं) *संहारिणे* (उस महामोह का संहार करने वाले)

भ्रमित हुए बहुवादी-शून्यवादी (बौद्ध आदि) देह, प्राण, इन्द्रियों को तथा चञ्चल बुद्धि को शून्य मानते हैं। ऐसे लोग स्त्री, बालक, अंध और जड़ की भाँति भ्रमित, बुद्धिहीन हैं। इनकी दृष्टि में 'अहं' ही सब कुछ है। माया-शक्ति के विलास से कल्पित ऐसे महामोह का संहार करने वाले उन श्रीगुरुस्वरूप श्रीदक्षिणामूर्ति को यह मेरा प्रणाम।

इस श्लोक में विभिन्न मत-मतान्तरों में फैली भ्रान्त धारणाओं की चर्चा के बाद बताया गया है कि ऐसी भ्रान्तियाँ माया-शक्ति के विलास से कल्पित है। इन मत-मतान्तरों के महामोह का संहार श्रीगुरुस्वरूप श्रीदक्षिणामूर्ति कर सकते हैं।

आचार्य शङ्कर के समय में बौद्ध, जैन, चार्वाक आदि अनेक भ्रान्तियाँ फैला रहे थे। आचार्य ने अपनी दिग्विजय यात्रा में शास्त्रार्थ द्वारा उनके महामोह को भङ्ग किया था। उपनिषदों के काल में भी, ऐसा लगता है, तरह-तरह के तर्क-वितर्क चल रहे थे। *मुण्डक उपनिषद्* में ऐसे भ्रमित लोगों की चर्चा है :

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयंधीराः पण्डितं मन्यमानाः।
जंघन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः।

अविद्यायां बहुधा वर्तमाना
वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः।
यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात्
तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते॥

तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक्
प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय।
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं
प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्॥

मिथ्या ज्ञान के गर्व में अन्धे, अपने को बडा विद्वान् समझने वाले और व्यर्थ तर्क-वितर्क करने वाले लोगों को, अगर वे ब्रह्मनिष्ठ महात्मा की शरण में शिष्य रूप से आयें, तो उनको तत्त्वविवेचनपूर्वक नित्य अविनाशी परब्रह्म पुरुषोत्तम का ज्ञान प्रदान करना चाहिये। श्रीदक्षिणामूर्ति जैसे गुरु ऐसा ज्ञान प्रदान करने में समर्थ हैं।

सुरेश्वराचार्य इस श्लोक की व्याख्या का उपसंहार करते हुए कहते हैं–

देहादिष्वहमित्येवं भ्रमस्संसारहेतुकः।
अन्तः प्रविष्टश्शास्तेति मोक्षायोपादिशच्छ्रुतिः।
एवमेषा महामाया वादिनामपि मोहिनी॥
यस्मात्साक्षात्कृते सद्यो लीयते च सदाशिवे।
देहेन्द्रियासुहीनाय मानदूरस्वरूपिणे॥
ज्ञानानन्दस्वरूपाय दक्षिणामूर्तये नमः।

देह आदि में अहंभाव अविद्या से उत्पन्न होता है, और यही संसार (आवागमन के चक्र) का कारण है। "शास्ता ने अन्तस्तल में प्रवेश किया" श्रुतिका यह उपदेश मोक्ष के लिये है।

महामाया वाद-विवाद करने वालों को भ्रमित करती है, किन्तु सदाशिव का साक्षात्कार होते ही तिरोहित हो जाती है।

जो देह, इन्द्रिय, प्राण से रहित हैं, जो ज्ञानातीत हैं, ज्ञान-आनन्दस्वरूप हैं, उन दक्षिणामूर्ति के लिये नमस्कार।

(६)

राहुग्रस्तदिवाकरेन्दुसदृशो मायासमाच्छादनात्
सन्मात्रः करणोपसंहरणतो योऽभूत् सुषुप्तः पुमान्।
प्रागस्वाप्समिति प्रबोधसमये यः प्रत्यभिज्ञायते
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये॥

सुषुप्तः यः पुमान् (सोया हुआ जो पुरुष, जो आत्मा) *राहुग्रस्त* (राहु से ग्रसित) *दिवाकर-इन्दु-सदृशः* (सूर्य और चन्द्रमा के समान)

मायासमाच्छादनात् (माया के समाच्छादन, आवरण, के कारण) *करण-उपसंहरतः* (इन्द्रियों के क्रियाहीन हो जाने पर) *सत्-मात्रः* (केवल सत्तामात्र रह गया) *यः* (और जो) *प्रबोधसमये* (जागने पर) *प्राक् अस्वाप्सम् इति* (''मैं पहले सोया'' इस प्रकार) *प्रत्यभिज्ञायते* (पुनः स्मरण करता है)

जब इन्द्रियों के सारे व्यापार बंद हो जाते हैं, और पुरुष (आत्मा) सुषुप्तावस्था में, राहु ग्रसित सूर्य-चन्द्र की भाँति, माया से आच्छादित सत्ता मात्र रह जाता है, किन्तु जागने पर स्मरण करता है कि ''मैं सोया था'', उस आत्मस्वरूप श्रीदक्षिणामूर्ति को मेरा प्रणाम।

इस श्लोक में बौद्धों के शून्यवाद जैसे सिद्धान्त का खण्डन किया गया है। जाग्रत् और स्वप्नावस्था से आगे सुषुप्ति में इन्द्रियों और मन के व्यापार अवरुद्ध हो जाते हैं। मनुष्य निष्चेष्ट हो जाता है, वह कुछ भी अनुभव नहीं करता। यह शून्य दशा ही, शून्यवादियों के अनुसार, वास्तविकता है।

शून्यवादी पूछता है–

स्वप्ने विश्वं यथाऽन्तस्स्थं जाग्रत्यपि तथेति चेत्।
सुषुप्तौ कस्य किं भाति कस्स्थायी तत्र चेतनः॥

(स्वप्न में, और जाग्रत् अवस्था में जगत् की प्रतीति रहती है। क्या सुषुप्तावस्था में भी कुछ प्रतीति होती है, कुछ चेतना बची रहती है?)

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए इस श्लोक की व्याख्या में सुरेश्वराचार्य कहते हैं :

सुषुप्तिसमयेप्यात्मा सत्यज्ञानसुखात्मकः।
सुखमस्वाप्समित्येवं प्रत्यभिज्ञायते यतः॥
प्रत्यभिज्ञायत इति प्रयोगः कर्मकर्तरि।
आत्मा स्वयम्प्रकाशकत्वाज्जानात्यात्मानमात्मना॥
सुषुप्तौ मायया मूढः जडोऽन्ध इति लक्ष्यते।
अप्रकाशितया भाति स्वप्रकाशतयापि च॥
निरंशो निर्विकारश्च निराभासो निरञ्जनः।
पुरुषः केवलः पूर्णः प्रोच्यते परमेश्वरः॥

वाचो यत्र निवर्तन्ते मनो यत्र विलीयते।
एकीभवन्ति यत्रैव भूतानि भुवनानि च॥
समस्तानि च तत्त्वानि समुद्रे सिन्धवो यथा।
कश्शोकस्तत्र को मोह एकत्वमनुपश्यतः॥

(सुषुप्ति अवस्था में भी सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा अपने स्वरूप को ''मैं सुख से सोया'' जैसे ज्ञान से पहचानता है।

आत्मा स्वयं प्रकाश है, और अपने-आप को अपने-आप से जानता है।

सुषुप्तावस्था में आत्मा माया से ढक जाता है, और निश्चेतन तथा निष्क्रिय प्रतीत होता है। उस अवस्था में, क्योंकि उसके प्रकाशित होने के लिये इन्द्रियों का आधार नहीं रहता, इसलिये अप्रकाशित रहता है, और क्योंकि उसमें अपना प्रकाश है, इसलिये वह स्वप्रकाशित है। आत्मा को तो परमेश्वर कहा गया है। वह अंशरहित, निर्विकार, निराभास, निरञ्जन, सर्वव्यापी और उपाधिरहित है।

जहाँ से वाणी लौट आती है; मन भी जहाँ विलीन हो जाता है; जहाँ सब प्राणी और स्थान एक हो जाते हैं; और समुद्र में विलीन नदियों की भाँति, समस्त तत्त्व भी एकत्व प्राप्त कर लेते हैं। जिसने इस एकत्व को पहचान लिया उसके लिये शोक और मोह कैसा?)

(७)

बाल्यादिष्वपि जाग्रदादिषु तथा सर्वास्ववस्थास्वपि
व्यावृत्तास्वनुवर्तमानमहमित्यन्तः स्फुरन्तं सदा।
स्वात्मानं प्रकटीकरोति भजतां यो मुद्रया भद्रया
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये॥

बाल्यादिषु अपि (बचपन, यौवन, वृद्धावस्था आदि में) *जाग्रत् आदिषु* (जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति आदि में) *व्यावृत्तासु सर्वासु अवस्थासु अपि* (समस्त बदलती हुई अवस्थाओं में) *अहं इति अन्तः स्फुरन्तं सदा अनुवर्तमानं*

("मैं" रूप में सदा भीतर चैतन्य रूप से वर्तमान रहता है) *यः* (जो) *भजतां* (भक्तों के लिये) *भद्रया मुद्रया* (भद्रा ज्ञानमुद्रा द्वारा) *स्वात्मानं प्रकटीकरोति* (अपने को प्रकट करते हैं)

जो भद्रा ज्ञानमुद्रा (चिन्मुद्रा, व्याख्यानमुद्रा, तर्कमुद्रा) द्वारा अपने शिष्यों को अपने सच्चे स्वरूप (स्व-आत्मानं) को प्रकट करते हैं, और जो आत्मस्वरूप बाल्यावस्था, जाग्रत् अवस्था आदि सब बदलती हुई दशाओं में 'अहं' भाव से शाश्वत चैतन्य रहता है, उन गुरुस्वरूप श्रीदक्षिणामूर्ति को मेरा प्रणाम।

पिछले श्लोक में 'प्रत्यभिज्ञा' द्वारा आत्मज्ञान प्राप्ति की चर्चा की गई। विपक्षी पूछ सकता है कि प्रत्यभिज्ञा वास्तव में है क्या? इसका क्या प्रयोजन है? प्रत्यभिज्ञा को प्रत्यक्ष के समान प्रमाण तो नहीं माना जा सकता। इस श्लोक में ऐसी शंकाओं का समाधान है।

सुरेश्वराचार्य के शब्दों में

मायानुषङ्गसञ्जातकिञ्जिज्ज्ञत्वाद्यपोहनात्।
सर्वज्ञत्वादिविज्ञानं प्रत्यभिज्ञानमात्मनः॥

(आत्मा का प्रत्यभिज्ञान, सीमित ज्ञान के आभास को हटाने के बाद, "मैं सर्वज्ञ हूँ" इस बोध से होता है। ज्ञान तो माया के आवरण से सीमित दिखाई देता है।)

असत्कल्पमिदं विश्वं आत्मन्यारोप्यते भ्रमात्।
स्वयं प्रकाशं सद्रूपं भ्रान्तिबाधविवर्जितम्॥
प्रत्यभिज्ञायते वस्तु प्राग्वन्मोहे व्यपोहिते।
देहाद्युपाधौ निर्धूते स्यादात्मैव महेश्वरः॥
स्मृतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमित्यादीन्यपराण्यपि।
प्रमाणान्याप्तवागाह प्रत्यभिज्ञा प्रसिद्धये॥

(भ्रम के कारण इस असत्कल्प– सत्ताहीन-विश्व के अस्तित्व की आत्मा में कल्पना कर ली जाती है, मिथ्याजगत् को आत्मा में अध्यारोपित कर लिया जाता है। जब भ्रम हट जाता है तो स्वयंप्रकाश,

सत् रूप, भ्रान्तिबाधाविवर्जित सत्ता प्रकट हो जाती है। जब शरीर आदि की उपाधियाँ हट जाती हैं तो आत्मा के रूप में महेश्वर–परमेश्वर– ही रह जाता है। श्रुति में कहा गया है– "स्मृति, प्रत्यक्ष, ऐतिह्य– साम्प्रदायिक शिक्षा– और अनुमान, ये सब ब्रह्म और आत्मा के एकत्व का प्रतिपादन करते हैं।"

(८)

विश्वं पश्यति कार्यकारणतया स्वस्वामिसम्बन्धतः
शिष्याचार्यतया तथैव पितृपुत्राद्यात्मना भेदतः।
स्वप्ने जाग्रति वा य एष पुरुषो मायापरिभ्रामित–
स्तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये॥

मायापरिभ्रामित (जिनकी माया द्वारा दिग्भ्रान्त) *यः एष पुरुषः* (यह पुरुष) *स्वप्ने जाग्रति वा* (स्वप्न में अथवा जाग्रत् अवस्था में) *विश्वं* (विश्व को) *कार्य-कारणतया* (कार्य-कारण के भेद से) *स्व-स्वामि-सम्बन्धतः* (स्वयं और अपने स्वामी के भेद से) *शिष्य आचार्यतया* (शिष्य और आचार्य के भेद के रूप से) *पिता-पुत्र-आदि-आत्मना भेदतः* (और पिता-पुत्र आदि के भेद से) *पश्यति* (देखता है)

जिनकी माया द्वारा भ्रमित पुरुष, स्वप्न अथवा जाग्रत् अवस्था में, विश्व को कार्य-कारण, स्वामी-सेवक, शिष्य-आचार्य तथा पिता-पुत्र के भेद से देखता है, उन श्रीगुरुस्वरूप श्रीदक्षिणमूर्ति को मेरा यह प्रणाम।

पिछले श्लोक में बताया गया कि नानानामरूपात्मक जगत्, जीव, और ईश्वर केवल ब्रह्म ही हैं। यदि ऐसा मान लिया जाय तो (शिष्य पूछ सकता है) गुरु और शिष्य, बन्धन और मोक्ष आदि के लिये अवकाश कहाँ रहा? प्रश्न महत्त्वपूर्ण है, और आचार्य इस श्लोक में इसका, माया के निरूपण द्वारा, उत्तर दे रहे हैं।

उपनिषदों में जिसे परमेश्वर कहा गया है वही परब्रह्म परमात्मा जब शरीरों की उपाधि धारण कर व्यवहार करता है, तो उसे 'पुरुष' (आत्मा) कहते हैं। यद्यपि ब्रह्म के अतिरिक्त कहीं कुछ भी नहीं है– *नेह नानास्ति*

किञ्च– किन्तु माया की उपाधि से जगत् के भेद उत्पन्न होते हैं, और जीव इस जगत् को स्वप्न की भांति देखता है। शुद्ध चेतना में जो अनिर्वचनीय शक्ति नामरूपात्मक जगत् की रचना करती है उसे 'माया' कहते हैं। मायानिर्मित जगत् के आभास में द्वैत दिखाई देने लगता है। यह द्वैत नित्य सत् पर अध्यारोपित है। द्वैत का खेल मन का विक्षेप है। पारमार्थिक दृष्टि से सत् तो केवल स्वयं प्रकाशस्वरूप चेतना है।

जिस प्रकार निद्रा-भंग होते ही स्वप्नद्रष्टा और स्वप्नजगत् दोनों ही विलीन हो जाते हैं, उसी प्रकार ब्रह्मज्ञान के प्रकाश में जागने पर व्यावहारिक द्वैत लुप्त हो जाता है।

सुरेश्वराचार्य ने इस श्लोक की अपनी व्याख्या में माया का निरूपण करते हुए बताया है :

युक्तिहीनप्रकाशस्य संज्ञा मायेति कथ्यते।
नासती दृश्यमाना सा बाध्यमाना न वा सती॥
सर्वोऽपि व्यवहारोऽयं मायायाः परिजृम्भणम्।
सुषुप्तिसदृशी माया स्वप्रबोधेन बाध्यते॥

यथा प्राणिकृतैरर्कः कर्मभिर्नैव बध्यते।
तथा मनःकृतैरात्मा साक्षित्वान्नैव बध्यते॥
धूमाभ्रधूलीनीहारैरस्पृष्टोऽपि दिवाकरः।
यथा छन्न इवाभाति तथैवात्माऽपि मायया॥
योगाभ्यासवशाद्येन मनो निर्विषयं कृतम्।
निवृत्तस्स पुमांन्सद्यो जीवन्मुक्तो भविष्यति॥
द्वा सुपर्णौ च सयुजावभवन्मायया शिवः।
अजामेकां जुषन्नेको नानेवासीदिति श्रुतिः॥

(माया ऐसा प्रकाश है जो किसी युक्ति से नहीं बताई जा सकती। इसे असत् नहीं कह सकते क्योंकि यह दिखाई देती है। यह सत् भी नहीं है क्योंकि नष्ट की जा सकती है।

हमारा सारा अनुभव माया का खेल है। जैसे जागने पर सुषुप्ति अवस्था

समाप्त हो जाती है, वैसे ही आत्मज्ञान होने पर माया तिरोहित हो जाती है।

जिस प्रकार प्राणियों द्वारा पृथ्वी पर किये गये कर्मों से सूर्य प्रभावित नहीं होता, वैसे ही आत्मा, जो केवल द्रष्टा है, भोक्ता नहीं, मन द्वारा किये हुए कार्यों से प्रभावित नहीं होता।

जैसे सूर्य धूलकण, बादल, कुहरे आदि से अछूता रहते हुए भी उनसे ढका हुआ-सा लगता है, उसी भाँति आत्मा माया से ढका दिखाई देता है।

जिस मनुष्य ने योगाभ्यास से अपने मन को इन्द्रियों के विषयों से निर्लिप्त कर लिया है, वह इस जगत् से शीघ्र ही निवृत होकर जीवनमुक्त हो जाता है।

श्रुति में कहा गया है कि शिव, माया के सम्पर्क से, साथ-साथ रहने वाले दो पक्षियों जैसा हो गया। इन दोनों में एक पक्षी अजन्मा प्रकृति से चिपक गया, और उसके बहुत-से रूप हो गये।)

(६)

भूरम्भांस्यनलोऽनिलोऽम्बरमहर्नाथो हिमांशुः पुमा-
नित्याभाति चराचरात्मकमिदं यस्यैव मूर्त्यष्टकम्।
नान्यत् किञ्चन विद्यते विमृशतां यस्मात्परस्माद्विभोः
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये॥

यस्य एव (जिसकी ही) *भूः* (पृथ्वी) *अम्भांसि* (जल) *अनलः* (अग्नि) *अनिलः* (वायु) *अम्बरं* (आकाश) *अहर्नाथः* (सूर्य) *हिमांशुः* (चन्द्रमा) *पुमान्* (जीव) *मूर्ति-अष्टकम्* (ये आठों मूत्तियाँ) *इदं चर-अचर-आत्मकं आभाति* (यह समस्त चराचरात्मक जगत् आभासित हो रहा है) *यस्मात् परस्मात् विभोः* (और जिस परम कारण परात्पर विभु से) *विमृशतां* (विचारवानों के लिये) *अन्यत् किञ्चन न विद्यते* (दूसरा कुछ भी नहीं है)

जिनकी पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, जीव

(पुरुष)– ये आठ मूर्तियाँ ही इस चराचर जगत् के रूप में आभासित हो रही हैं, और विचारशील मनुष्यों के लिये, जिन परात्पर विभु के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है, उन श्रीगुरुस्वरूप श्रीदक्षिणामूर्ति को यह मेरा प्रणाम।

पिछले आठ श्लोकों में ब्रह्म, जीव, जगत् और माया का विवेचन करने के उपरान्त इस श्लोक में ईश्वर भक्ति द्वारा माया पर विजय प्राप्त करने की विधि बताई गई है। पहले आठ श्लोक 'प्रकरण' थे। इन दो श्लोकों में भक्ति के निरूपण से 'स्तोत्र' बन गया।

सुरेश्वराचार्य अपने वार्तिक में इस श्लोक की व्याख्या करते हुए कहते हैं :

अमेयासु मनः क्षिप्रमारोढुं नार्हतीत्यतः।
मूर्त्यष्टकमयीं ब्रूते गुरुस्सर्वात्मभावनात्॥
गुरुप्रसादाल्लभते योगमष्टाङ्गलक्षणम्।
शिवप्रसादाल्लभते योगसिद्धिं च शाश्वतीम्॥
साच्चिदानन्दरूपाय विन्दुनादान्तरात्मने।
आदिमध्यान्तशून्याय गुरूणां गुरवे नमः॥

(मन अचिन्त्य विषय तक शीघ्रता से नहीं पहुँच सकता, इसलिये गुरु सर्वात्मन् की आराधना अष्टमूर्तियों (पृथ्वी, जल, वायु आदि) के रूप में करने की बात कहते हैं।

गुरु की कृपा से भक्त अष्टांग योग की सीढ़ियों पर आगे बढ़ता है। शिव की कृपा से उसे योग में सिद्धि प्राप्त होती है, जिससे वह आत्मा में परमात्मा का साक्षात्कार करने में समर्थ होता है।

जो सत्-चित्-आनन्द हैं; जो बिन्दु और नाद में निवास करते हैं; जो आदि, मध्य और अन्त से रहित हैं, उन परम गुरु– गुरूणां गुरवे नमः।)

(१०)

सर्वात्मत्वमितिस्फुटीकृतमिदं यस्मादमुष्मिन् स्तवे
तेनास्य श्रवणात्तदर्थमननाद्ध्यानाच्च सङ्कीर्तनात्।

सर्वात्मत्वमहाविभूतिसहितं स्यादीश्वरत्वं स्वतः
सिध्येत् तत्पुनरष्टधा परिणतं चैश्वर्यमव्याहतम्।।

अमुष्मिन् स्तवे (इस स्तोत्र में) *इदं सर्वात्मत्वं इति* (यह सब आत्मा है) *सर्वं खल्विदं ब्रह्म स्फुटीकृतं* (प्रकट किया गया है) *यस्मात्* (इसलिये) *तेन अस्य* (इस कारण इसके) *श्रवणात्* (सुनने से) *तदर्थ-मननात्* (इसके अर्थ का मनन करने से) *ध्यानात् च संकीर्तनात्* (इसका ध्यान करने से और इसका संकीर्तन करने से) *सर्व-आत्मत्व-महाविभूति-सहितं* (महाविभूतियों सहित सर्वात्मभाव) *ईश्वरत्वं स्वतः स्यात्* (अपने आप ईश्वरत्व प्राप्त होगा) *तत् पुनः* (और फिर इसके उपरान्त) *अष्टधा परिणतं अव्याहतम् ऐश्वर्यं सिध्येत्* (अणिमा आदि आठ सिद्धियों वाला अखण्ड ऐश्वर्य प्राप्त होगा)

इस स्तोत्र में सर्वात्मत्व (यह सब आत्मा-ब्रह्म है) प्रतिपादित किया गया है। इसलिए, इसके श्रवण से, इसके भावार्थ का मनन करने से, इसका ध्यान करने से, और संकीर्तन करने से, सर्वात्मभावयुक्त ईश्वरत्व की प्राप्ति होती है, और अणिमा आदि अष्ट सिद्धियों से युक्त अखण्ड ऐश्वर्य मिलता है।

इस अन्तिम श्लोक में फलश्रुति, इस स्तोत्र के पठन-पाठन, मनन-कीर्तन से होने वाले लाभ की चर्चा है। वेदान्त का फल सर्वात्मत्व (अर्थात् सोऽहं सर्वात्मा, आत्मा ही सब कुछ) है। इस स्तोत्र में इसी सिद्धान्त की विवेचना की गई है।

इस स्तोत्र को समझने के लिये श्रवण, मनन, निदिध्यासन और संकीर्तन का मार्ग बताया गया है। इसका मन लगाकर अध्ययन करना चाहिये, और इसमें दिये गये उपदेश पर मनन करना चाहिये।

इसके फलस्वरूप अखण्ड ऐश्वर्य और अष्टसिद्धियों की प्राप्ति तो होती ही है, किन्तु उनसे भी ऊँचा लाभ तो ईश्वरत्व की प्राप्ति है। और ईश्वरत्व का अर्थ है *सत्यं ज्ञानमनन्तं लक्षणं परमेश्वरत्वम्*।

सुरेश्वराचार्य इस स्तोत्र की फलश्रुति के रूप में कहते हैं :

सर्वात्मभावनावन्तं सेवन्ते सर्वसिद्धयः।
तस्मादात्मनि साम्राज्यं कुर्यान्नियतमानसः॥
यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥
प्रकाशात्मिकया शक्त्या प्रकाशकानां प्रभाकरः।
प्रकाशयति यो विश्वं प्रकाशोऽयं प्रकाशताम्॥

जिसका सर्वात्मभाव है, जो आत्मा को सब में अनुभव करता है, उसके पास सारी सिद्धियाँ तो आ ही जाती हैं। इसलिये एकाग्र चित्त से आत्मा में ही अपना साम्राज्य स्थापित करना चाहिये।

जिसकी परमदेव में पूर्ण भक्ति है, और वैसी ही भक्ति गुरुदेव में है, उस महात्मा के लिये इस उपदेश का अर्थ प्रकाशित होगा। जो स्वयं प्रकाश सब प्रकाशों को प्रकाशित करता है, और समस्त विश्व को प्रकाशित करता है, वह प्रकाश प्रकाशित होता रहे।

– इति –

परापूजा

(१)

अखण्डे सच्चिदानन्दे निर्विकल्पैकरूपिणि।
स्थितेऽद्वितीयभावेऽस्मिन्कथं पूजा विधीयते॥

अस्मिन् (इस) *अखण्डे सत्-चित्-आनन्दे निर्विकल्प-एक-रूपिणि* (अखण्ड, सच्चिदानन्द, निर्विकल्परूप) *अद्वितीयभावे स्थिते* (अद्वितीय भाव स्थिर हो जाने पर) *पूजा कथं विधीयते* (पूजा किस विधि से संभव है?)

इस अखण्ड, सच्चिदानन्द, निर्विकल्प (अविच्छिन्न) रूप अद्वितीयभाव के स्थिर हो जाने पर पूजा-उपासना किस विधि से संभव है?

(२)

पूर्णस्यावाहनं कुत्र सर्वाधारस्य चासनम्।
स्वच्छस्य पाद्यमर्घ्यं च शुद्धस्याचमनं कुतः॥

पूर्णस्य कुत्र आवाहनं (जो पूर्ण, सर्वव्यापी है उसका आवाहन कहाँ हो सकता है?) *सर्व-आधारस्य च आसनं* (जो समस्त विश्व का आधार है उसका आसन कहाँ हो?) *स्वच्छस्य पाद्यम्-अर्घ्यं कुतः* (जो निर्मल है उसके लिये पाद्य और अर्घ्य कैसे दें?) *शुद्धस्य च आचमनं कुतः* (और जो सदा शुद्ध है उसे आचमन की क्या आवश्यकता है?)

जो सर्वव्यापी पूर्ण है, उसका आवाहन कहाँ हो सकता है? जो समस्त विश्व का आधार है, उसका आसन कहाँ हो? जो निर्मल है, उसके लिए पाद्य और अर्घ्य कैसे दें? और जो सदा-सर्वदा शुद्ध है, उसे क्या आचमन?

(३)

निर्मलस्य कुतः स्नानं वस्त्रं विश्वोदरस्य च।
अगोत्रस्य त्ववर्णस्य कुतस्तस्योपवीतकम्॥

निर्मलस्य कुतः स्नानं (जो नित्य शुद्ध है उसके लिये स्नान किसलिये?) *विश्व-उदरस्य कुतः वस्त्रं च* (समस्त विश्व जिसके उदर में समाया हुआ है उसको वस्त्र कहाँ पहनायें?) *अगोत्रस्य अवर्णस्य तु* (जिसका न कोई गोत्र है, और न कोई वर्ण) *तस्य उपवीतकम् कुतः* (उसके लिये यज्ञोपवीत कैसा?)

जो नित्य शुद्ध है, उसके लिये स्नान क्यों? समस्त विश्व जिसके उदर में समाया हुआ है, उसके लिये वस्त्र कैसे संभव है? जिसका न कोई गोत्र है और न कोई वर्ण, उसके लिये यज्ञोपवीत कैसा हो?

(४)

निर्लेपस्य कुतो गन्धः पुष्पं निर्वासनस्य च॥
निर्विशेषस्य का भूषा कोऽलंकारो निराकृतेः॥

निर्लेपस्य कुतः गन्धः (जो निर्लेप– किसी भी प्रकार के लेप से रहित है उसे चन्दन कैसे चढ़ाया जाय?) *पुष्पं निर्वासनस्य च* (जो वासना रहित है, उसके लिये पुष्प क्यों?) *निर्विशेषस्य का भूषा* (जो विशेषण रहित है उसे कैसी शोभा की आवश्यकता है?) *निराकृतेः कः अलङ्कारः* (जिसकी कोई आकृति नहीं है, जो निराकार है, उसका क्या आभूषण हो सकता है?)

जो निर्लिप्त है, जिस पर कुछ भी नहीं चिपक सकता, उस पर चन्दन का लेप कैसे संभव है। जो वासनारहित है, उसके लिये पुष्प क्यों? जो निर्विशेष विशेषणरहित है उसकी शोभा के लिये क्या हो सकता है? निराकार का अलंकार कैसा हो?

(५)

निरञ्जनस्य किं धूपैर्दीपैर्वा सर्वसाक्षिणः।
निजानन्दतृप्तस्य नैवेद्यं किं भवेदिह॥

निरञ्जनस्य किं धूपैः (निरञ्जन को धूप से क्या?) *सर्वसाक्षिणः दीपैः वा*

(अथवा जो सबका साक्षी है उसे कैसा दीप दिखाया जाय?) *निज-आनन्द-तृप्तस्य इह किं नैवेद्यं भवेत्* (जो निज आनन्दरूपी अमृत से तृप्त है, आत्मतृप्त है, उसे नैवेद्य क्या समर्पण करें?)

निरञ्जन के लिये धूप कैसी? सर्वसाक्षी को कैसा दीपक? निज-आनन्द तृप्त को यहाँ हमारे पास क्या नैवेद्य हो सकता है?

(६)

विश्वानन्दपितुस्तस्य किं ताम्बूलं प्रकल्प्यते।
स्वयंप्रकाशचिद्रूपो योऽसावर्कादिभासकः॥

विश्व-आनन्द-पितुः (समस्त विश्व के आनन्द के आदिस्त्रोत के लिये) *किं ताम्बूलं प्रकल्प्यते* (कौन-सा ताम्बूल समर्पण किया जाय?) *स्वयंप्रकाश* (जो स्वयं अपने प्रकाश से प्रकाशित है) *चित्‌रूपः* (ज्ञानस्वरूप है) *यः असौ अर्क-आदि-भासकः* (जिससे सूर्य आदि प्रकाशित होते हैं।)

जो स्वयंप्रकाश, सूर्य आदि को प्रकाशित करने वाला, और समस्त विश्व का आनन्द प्रदाता है, उसे कैसा ताम्बूल समर्पण करें?

(७)

प्रदक्षिणा ह्यनन्तस्य ह्यद्वयस्य कुतो नतिः।
वेदवाक्यैरवेद्यस्य कुतः स्तोत्रं विधीयते॥

अनन्तस्य हि कुतः प्रदक्षिणा (जो अनन्त है उसकी प्रदक्षिणा कैसे की जाय?) *अद्वयस्य हि कुतः नतिः* (जो एक, अद्वितीय, है उसके लिये नमस्कार कैसे करें?)

जो अनन्त है उसकी प्रदक्षिणा कैसे करें? जो अद्वय, अद्वितीय है उसे नमस्कार कैसे संभव है? जो वेदवाक्यों से भी नहीं जाना जा सकता, उसकी किस विधि से स्तुति करें?

(८)

स्वयंप्रकाशमानस्य कुतो नीराजनं विभोः।
अन्तर्बहिश्च पूर्णस्य कथमुद्वासनं भवेत्॥

विभोः स्वयंप्रकाशमानस्य (जो सर्वव्यापक, स्वयं अपने प्रकाश से प्रकाशमान है, उसके लिये) *नीराजनं कुतः* (उसकी आरती कैसे की जाय?) *अन्तः बहिः च* (और जो भीतर बाहर सब जगह व्याप्त है) *पूर्णस्य* (सब प्रकार से परिपूर्ण है) *कथं उद्वासनं भवेत्* (उसका उत्थापन, विसर्जन कैसे किया जाय?)

जो सर्वव्यापी, अपने स्वयं के प्रकाश से प्रकाशमान है, उसकी कैसी आरती? जो बाहर-भीतर सर्वव्यापी है, स्वयं-पूर्ण है, उसका विसर्जन कैसे हो?

(९)

एवमेव परापूजा सर्वावस्थासु सर्वदा।
एकबुद्ध्या तु देवेशे विधेया ब्रह्मवित्तमैः॥

ब्रह्मवित्तमैः (ब्रह्मवेत्ताओं द्वारा) *एकबुद्ध्या* (अविचल एक बुद्धि से) *सर्व-अवस्थासु* (सब अवस्थाओं में) *सर्वदा* (सदा, सब कालों में) *देवेशे परापूजा विधेया* (देवाधिदेव भगवान की पूजा करनी चाहिये)

जो ब्रह्मवेत्ता है, जिन्हें सच्चा ब्रह्मज्ञान है, उन्हें सब अवस्थाओं में, सदा, अविचल बुद्धि से देवाधिदेव भगवान् की परापूजा इसी भाँति करनी चाहिये।

(अभी तक शंकाएँ की गईं, दुविधाएँ बताई गईं। अखण्ड, सच्चिदानन्द, पूर्ण, सर्वाधार, विश्वोदर, निर्लेप, निर्विशेष, निरञ्जन, आत्मतृप्त, अनन्त, अद्वितीय, वेदवाक्यों से भी अवेद्य की पूजा कैसे हो? अगले श्लोक में विधि बतायी गई है।)

(१०)

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विविधोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः॥
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्॥

शम्भो! (हे शुभकर्ता शिव!) *त्वं आत्मा* (मेरी आत्मा आप हो) *गिरिजा मतिः* (बुद्धि पार्वती हैं) *प्राणाः सहचराः* (मेरे प्राण और इन्द्रियां आपके गण हैं) *शरीरं गृहं* (मेरा शरीर आपका मंदिर है) *विविध-उपभोगरचना* (विविध भोग सामग्री) *ते पूजा* (आपकी पूजा है) *निद्रा समाधिस्थितिः* (जब मैं सोता हूँ, वही समाधि है) *पदयोः सञ्चारः प्रदक्षिणाविधि* (मेरे पैरों का इधर-उधर चलना आपकी प्रदक्षिणा है) *सर्वागिरः स्तोत्राणि* (मेरी समस्त वाणी आपकी स्तुति है) *यत् यत् कर्म करोमि* (मैं जो कुछ भी कर्म करता हूँ) *तत् तत् अखिलं तव आराधनम्* (वही-वही सब आपकी आराधना है।)

हे शम्भो! मेरी आत्मा आप हैं। मेरी बुद्धि माता पार्वती है। मेरे प्राण–मेरी समस्त इन्द्रियाँ–आपके गण हैं। मेरा शरीर आपका मंदिर है। मेरे पास जो भी भोग सामग्री है, वही आपकी पूजा के लिये उपचार है। निद्रा को समाधि मान लें, और मेरा चलना-फिरना आपकी प्रदक्षिणा है। मैं जो भी बोलता हूँ– मेरी समस्त वाणी आपकी स्तुति है। मैं जो कुछ भी, जैसा कुछ भी करता हूँ, उसे ही आराधनास्वरूप स्वीकार कीजिये।

सगुण-साकार ईश्वर के उपासक षोडशोपचार से पूजा-आराधना करते हैं। आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, गन्ध, पुष्प, आभूषण, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, प्रदक्षिणा, स्तुति, नीराजन और विसर्जन– यह पूजा-विधि है। किन्तु अद्वैत ब्रह्मवेत्ता को शङ्का होती है– अखण्ड, सच्चिदानन्द, निर्विकल्प, अद्वितीयभाव में स्थित होने पर यह पूजा कैसे संभव है?

तो वह पूजा से आगे-परापूजा– की विधि का आविष्कार करता है। यह शरीर ही मंदिर है, आत्मा शिव और बुद्धि पार्वती हैं, इन्द्रियाँ, मान लें, गण हैं। जो कुछ भी भोग सामग्री है, वही पूजा के लिये उपचार है। संक्षेप में कहें तो जो कुछ भी, जैसा कुछ भी, कर्म किया जाय वही आराधना है। यह आत्मसमर्पण की विधि परापूजा है।

– इति –

निर्गुणमानसपूजा

(१)

रत्नैः कल्पितमासनं हिमजलैः स्नानं च दिव्याम्बरं
नानारत्नविभूषितं मृगमदामोदाङ्कितं चन्दनम्।
जातीचम्पकबिल्वपत्ररचितं पुष्पं च धूपं तथा
दीपं देव दयानिधे पशुपते हृत्कल्पितं गृह्यताम्॥

देव दयानिधे पशुपते (हे देव! दयानिधे! पशुपते) *रत्नैः कल्पितं आसनं* (रत्नों से निर्मित सिंहासन) *हिमजलैः स्नानं* (शीतल जल से स्नान) *नानारत्नविभूषितं दिव्य-अम्बरं* (अनेक प्रकार के रत्नों से जड़े हुए दिव्य वस्त्र) *मृगमद*-(कस्तूरी) *आमोद-अङ्कितं चन्दनम्* (सुगंध समन्वित चन्दन) *जाती-चम्पक-बिल्व-पत्ररचितं* (और जुही, चम्पा, विल्वपत्र से सजायी) *पुष्पं च* (पुष्पाञ्जलि) *धूपं तथा दीपं* (धूप और दीप) *हृत्कल्पितं* (हृदय से कल्पित, मानसिक) *गृह्यताम्* (पूजोपहार ग्रहण कीजिये)

हे देव! दयानिधे पशुपते! यह रत्ननिर्मित सिंहासन, हिमजल से स्नान, अनेक रत्नों से अलङ्कृत दिव्य वस्त्र, कस्तूरी की सुगंध से सुवासित चन्दन, जुही, चम्पा, बिल्वपत्र से सजायी पुष्पाञ्जलि, धूप और दीप – ये हृदय से कल्पित पञ्चोपचार गृहण करने की कृपा कीजिये।

(२)

सौवर्णे नवरत्नखण्डरचिते पात्रे घृतं पायसं
भक्ष्यं पञ्चविधं पयोदधियुतं रम्भाफलं पानकम्।
शाकानामयुतं जलं रुचिकरं कर्पूरखण्डोज्ज्वलं
ताम्बूलं मनसा मया विरचितं भक्त्या प्रभो स्वीकुरु।

नवरत्नखण्डरचिते सौवर्णे (नवरत्नों से जड़े सुवर्ण पात्र में) *पयः दधियुतं घृतं पायसं भक्ष्यं* (गंगाजल और दही सहित घीयुक्त खीर का पञ्चामृत व्यञ्जन आपके नैवेद्य के लिये) *रम्भाफलं पानकं* (कदली फल और मधुर पेय) *शाकानां अयुतं* (अनेकों शाक) *कर्पूरखण्ड-उज्ज्वलं* (कपूर से सुवासित) *ताम्बूलं* (पान) *भक्त्या मया मनसा विरचितं* (ये सब मैंने मन से भक्तिपूर्वक सजाये हैं) *प्रभो स्वीकुरु* (हे प्रभो! इन्हें स्वीकार कीजिये)

मैंने नवरत्न जटित सुवर्णपात्र में घृतयुक्त खीर, दूध और दही सहित पाँच प्रकार के व्यञ्जन आपके नैवेद्य के लिये, कदलीफल और मधुरपेय, अनेक शाकाहार, कपूर से सुवासित शीतल गङ्गाजल, और ताम्बूल – हृत्कल्पित ये सब भक्तिपूर्वक सजाये हैं। इन्हें स्वीकार कीजिये।

(३)

छत्रं चामरयोर्युगं व्यजनकं चादर्शकं निर्मलं
वीणाभेरिमृदङ्गकाहलकला गीतं च नृत्यं तथा।
साष्टाङ्गं प्रणतिः स्तुतिर्बहुविधा ह्येतत्समस्तं मया
सङ्कल्पेन समर्पितं तव विभो पूजां गृहाण प्रभो॥

छत्रं चामरयोः युगं (छत्र और चँवरयुगल) *व्यजनकं* (पंखा) *निर्मलं च आदर्शकं* (और स्वच्छ दर्पण) *वीणा भेरि मृदङ्गकाहलकलाः* (वीणा, भेरि, मृदङ्ग, दुन्दुभि आदि वाजे) *गीतं च नृत्यं तथा* (गीत और नृत्य) *साष्टाङ्ग प्रणतिः* (साष्टांग प्रणाम) *बहुविधा स्तुतिः* (नानाविधि स्तुति) *हि एतत् समस्तं मया* (यह सभी मेरे द्वारा) *सङ्कल्पेन तव समर्पितं* (संकल्प से ही आपके लिये समर्पित है) *प्रभो पूजां गृहाण* (प्रभो! मेरी यह पूजा स्वीकार कीजिये)

विभो! मैंने छत्र, चँवरयुगल, पंखा, स्वच्छ दर्पण, बीणा-भेरी-मृदङ्ग-दुन्दुभी आदि वाद्य यंत्र, गीत और नृत्य, साष्टाङ्ग प्रणाम, और बहुविधि स्तुति – ये सब मन के सङ्कल्प से ही समर्पित किये हैं। प्रभो! आप यह पूजा स्वीकार करने की कृपा कीजिये।

(४)

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः।
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्।

शम्भो (शम्भो) *आत्मा त्वं* (मेरी आत्मा आप हैं) *गिरिजा मतिः* (पार्वती मेरी बुद्धि हैं) *सहचरा प्राणाः* (आपके गण मेरे प्राण हैं) *शरीरं गृहं* (मेरा शरीर आपका मंदिर है) *विषय-उपभोग-रचना ते पूजा* (विषयों के उपभोग की प्रक्रिया आपकी पूजा है) *निद्रा समाधिस्थितिः* (जब मैं सोता हूँ तब वह समाधि अवस्था है) *पदयोः सञ्चारः प्रदक्षिणा विधिः* (मेरा पैरों से चलना आपकी परिक्रमा है) *सर्वा गिरः स्तोत्राणि* (मैं जो कुछ भी बोलता हूँ वही आपकी स्तुति है) *यत् यत् कर्म करोमि* (मैं जो जो कर्म करता हूँ) *तत् तत् अखिलं* (वह वह सब) *तव आराधनम्* (आपकी आराधना है)

शम्भो! मेरी आत्मा आप हैं; मेरी बुद्धि माता पार्वती है; मेरे प्राण-मेरी सारी इन्द्रियाँ आपके गण हैं; मेरा शरीर ही आपका मन्दिर है; मैं जो कुछ भी विषयभोग करता हूँ वह आपकी ही पूजा है; निद्रा मेरी समाधि है; पैरों से चलना-फिरना परिक्रमा है; और जो कुछ मैं बोलता हूँ वह आपकी स्तुति ही है। मैं जो कुछ भी करता हूँ वही आपकी आराधना है।

(५)

करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा
श्रवणनयनजं वा मानसं वाऽपराधम्।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत्क्षमस्व
जय जय करुणाब्धे! श्रीमहादेव! शम्भो!॥

करचरण-कृतं (हाथ अथवा पैरों से मैंने जो कुछ किया) *वाक् कायजं वा* (वाणी अथवा शरीर अथवा कर्म से जो हुआ हो) *श्रवण-नयनजं* (जो

कानों अथवा नेत्रों से हुआ हो) *मानसं वा अपराधम्* (और जो मन से भी अपराध किया हो) *विहितं अविहितं वा* (जाने-अनजाने में) *एतत् सर्वं* (इस सब प्रकार के अपराध को) *करुणाब्धे क्षमस्व* (हे करुणा सागर इसे क्षमा करें) *जय जय श्री महादेव शम्भो* (महादेव शम्भो! आपकी जय, जय हो।)

हे प्रभो! जो भी अपराध मैंने हाथ अथवा पैर से किये हों; जो मेरी वाणी, शरीर, कर्म, श्रवण, नेत्र से हुए हों; मन से जो अपराध किये हों– उन सभी जाने-अनजाने में किये गये अपराधों को, हे करुणासागर! क्षमा कीजिये। श्री महादेव शम्भो! आपकी जय हो, आपकी जय हो।

– इति –

शिवभुजङ्गम्

(१)

गलद्दानगण्डं मिलद्भृङ्गषण्डं
चलच्चारुशुण्डं जगत्त्राणशौण्डम्।
लसद्दन्तकाण्डं विपद्भङ्गचण्डं
शिवप्रेमपिण्डं भजे वक्त्रतुण्डम्॥

गलद्-दान-गण्डं (उनको जिनके गण्डस्थल-कनपटी-पर गजमद टपक रहा है; दान = मद) *मिलद्-भृङ्ग-षण्डं* (जिनके चारों ओर भौंरे मंडरा रहे हैं उनको) *चलत्-चारु-शुण्डं* (जिनकी सुन्दर सूँड हिल रही है उनको) *जगत्-त्राण-शौण्डम्* (उनको जो संसार की रक्षा करने में कुशल हैं) शौण्डम् का अर्थ अभिमानी भी होता है। यहाँ 'कुशल', 'दक्ष' अर्थ लेना चाहिये) *लसद्-दन्त-काण्डं* (जिनका दन्तभाग शोभायमान है उनको) *विपद्भङ्ग-चण्डं* (जो विपत्तियों का नाश करने में बड़े उग्र हैं उनको) *शिवप्रेमपिण्डं* (जो शिवजी के प्रेम के मूर्तरूप हैं उनको) *वक्त्रतुण्डं भजे* (टेढ़ी सूँडवाले गजानन को भजता हूँ)

मैं वक्रतुण्ड गजानन को (स्तोत्र के आरंभ में) नमन करता हूँ। उन गजानन के गण्डस्थल से गजमद टपक रहा है, जिसके चारों ओर भौंरे मँडरा रहे हैं। उनकी सुन्दर सूँड चलायमान हो रही है। संसार की रक्षा में वे कुशल हैं। एकदन्त गजानन के दाँत का अगला भाग शोभायमान है। विपत्तियों को नष्ट करने में वे बड़े उग्र हैं। वे भगवान् शिव के प्रेम के मूर्तरूप हैं।

शिवस्तुति के आरंभ में, मङ्गलाचरण के रूप में, गजानन श्री गणेश का स्मरण किया गया है। ऐसा मङ्गलाचरण आचार्य के अन्य स्तोत्रों में बहुधा नहीं मिलता।

'भुजङ्गप्रयात' (''भुजङ्गप्रयात चतुर्भिर्यकारैः'') बड़ा प्रचलित छन्द है। 'गणेशभुजङ्गम्', 'सुब्रह्मण्यभुजङ्गम्', 'भवानीभुजङ्गम्', 'श्रीविष्णुभुजङ्गम्' 'श्रीरामभुजङ्गम्' भी आदि शङ्कराचार्य द्वारा रचित बताये जाते हैं। *शाङ्करग्रन्थावलिः* में इन्हें सम्मिलित किया है। किन्तु इनकी शब्दयोजना आदि शंकराचार्य के अन्य स्तोत्रों से नहीं मिलती, इसलिये आधुनिक विद्वान् इनको आचार्य की रचना स्वीकार करने में हिचकते हैं।

(२)

अनाद्यन्तमाद्यं परं तत्त्वमर्थं
चिदाकारमेकं तुरीयं त्वमेयम्।
हरिब्रह्ममृग्यं परब्रह्मरूपं
मनोवागतीतं महः शैवमीडे॥

अनादि-अन्तं-आद्यं (जो अनादि हैं और अनन्त हैं, आदि-अन्त रहित हैं, और आदि कारण हैं) *परं तत्त्वं-अर्थं* (वैदिक महावाक्यों के जो परम तत्त्व और परम अर्थ हैं) *चित्-आकारं एकं* (जो एकमात्र, चिदाकार हैं) *तुरीयं* (तीनों गुणों–सतोगुण, तमोगुण, रजोगुण से परे हैं) *हरिब्रह्ममृग्यं* (जिनका अन्वेषण विष्णु और ब्रह्मा भी करते हैं) *परब्रह्मरूपं* (जो परब्रह्म हैं) *मनः-वाक्-अतीतं* (जो मन और वाणी की पहुँच से आगे हैं) *तु अमेयम्* (अज्ञेय) *शैवं महः ईडे* (भगवान् शिव के प्रकाश की स्तुति करता हूँ)

जो आदि-अन्त रहित आदिकारण हैं, वेदों के महावाक्यों के परम तत्त्वस्वरूप और अर्थस्वरूप हैं, जो अद्वैत चिदाकार हैं, तीनों गुणों से आगे 'तुरीय' हैं, जिन परब्रह्म स्वरूप का ब्रह्मा और विष्णु भी अन्वेषण करते हैं, जो मन और वाणी की पहुँच से बाहर हैं, और जो अज्ञेय अर्थात् सीमा रहित है, उन भगवान् शिव के तेज-ज्योतिर्लिङ्ग की मैं स्तुति करता हूँ।

(३)

स्वशक्त्यादिशक्त्यन्तसिंहासनस्थं
मनोहारिसर्वाङ्गरत्नोरुभूषम्।
जटाहीन्दुगङ्गास्थिशम्याकमौलिं
पराशक्तिमित्रं नुमः पञ्चवक्त्रम्॥

स्वशक्ति-आदिशक्ति-अन्त-सिंहासनस्थं (उनको जो अपनी शक्ति, आदि शक्ति के सिंहासन पर विराजमान हैं) *मनोहारि-सर्वाङ्ग-रत्न-उरु-भूषम्* (उनको जिनके शरीर के समस्त अङ्ग मूल्यवान आभूषणों से सुसज्जित हैं। उरु = मूल्यवान्) *जटा-अहि-इन्दु-गङ्गा-अस्थि-शमी-अर्क-मौलिं* (जटाएँ, सर्प, चन्द्रमा, गङ्गा, अस्थि, शमी (खेजडे की पत्तियाँ) और मन्दारपुष्प जिनके मुकुट को सुशोभित कर रही हैं। जहाँ 'श्वेतार्क' पाठ है वहाँ सफेद आँक के फूल अर्थ होगा। 'अर्क' का अर्थ प्रकाश, सूर्य, मन्दार है) *पराशक्तिमित्रं* (पराशक्ति के सहयोगी अथवा पराशक्ति है मित्र जिनकी) *पञ्चवक्त्रं नुमः* (पाँच मुखवाले भगवान् शिव के लिये नमन करते है)

जो अपनी शक्ति, आदिशक्ति के सिंहासन के ऊपर विराजमान हैं, जो मूल्यवान् आभूषणों से सर्वाङ्गसुन्दर हैं, जटा, सर्प, चन्द्रमा, गङ्गा, अस्थि, और मन्दारपुष्पों से जिनका मुकुट शोभित है, जो पराशक्ति के सहयोगी हैं, उन पञ्चमुखी भगवान् शिव को नमस्कार।

(४)

शिवेशानतत्पूरुषाघोरवामा-
दिभिः ब्रह्मभिर्हृन्मुखैः षड्भिरङ्गैः।
अनौपम्य षट्त्रिंशतं तत्त्वविद्या-
मतीतं परं त्वां कथं वेत्ति को वा॥

अनौपम्य (अप्रमेय, अनुपमेय प्रभो!) *शिव-ईशान-तत्पुरुष-अघोर-वाम-आदिभिः* (शिव, ईशान, तत्पुरुष, अघोर-वामदेव आदि नामों से) *षड्भिः-अङ्गैः-हृन्मुखैः-ब्रह्मभिः* (छः अंगों वाले संकोच भरे वेदों से। ब्रह्मभिः = वेदवाक्य;, हृन्मुखैः = लज्जित मुखवाले) *षट्त्रिंशतं* (छत्तीस) *तत्वविद्यां अतीतं* (शैवों की छत्तीस तत्त्वविद्याओं से परे) *परं को वा त्वां वेत्ति* (परात्पर को कोई भी कैसे जान सकता है?)

हे अनुपमेय स्वामी! शिव, ईशान, तत्पूरुष अघोर वामदेव आदि नामों से छः अङ्गो वाले वेदवाक्य आपका वर्णन करने में सङ्कोच करते हैं। शैवों की छत्तीस तत्त्वविद्याएँ भी आप तक नहीं पहुँच सकतीं। आप परात्पर को कोई कैसे जान सकता है?

(५)

प्रवालप्रवाहप्रभाशोणमर्धं
मरुत्वन्मणिश्रीमहःश्याममर्धम्।
गुणस्यूतमेतद्वपुः शैवमन्तः
स्मरामि स्मरापत्तिसंपत्तिहेतुम्॥

शैवं (शिवजी का) *अर्धं प्रवालप्रवाह-प्रभा-शोणं* (शरीर का आधा वाँया भाग मूँगे की आभा की भाँति गहरे लाल रंग का है उसको) *मरुत्वन्मणि-श्रीमहः श्यामं-अर्धम्* (आधा दाँया भाग नीलम की कान्ति के समान है उसको) *गुणस्यूतं एतद् वपुः* (यह शरीर जो सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण के ताने-वाने से बुना हुआ है) *स्मर-आपत्ति-संपत्ति-हेतुम्* (कामदेव का दहन करने वाले और फिर उसको पुनर्जीवन देने वाले को) *अन्तः स्मरामि* (अन्तःकरण से स्मरण करता हूँ)

मैं अर्धनारीश्वर भगवान् शिव का अन्तःकरण से स्मरण करता हूँ। उनका वाँया आधा अङ्ग प्रवाल (मूँगा) की लालिमा के समान प्रभायुक्त है। दाँया आधा अङ्ग नीलम जैसा कान्तिमान् है। उन्होंने कामदेव का दहन कर, उसे पुनर्जीवित कर दिया। यह शरीर तो सतोगुण-रजोगुण-तमोगुण के ताने-वाने से बुना हुआ है।

(६)

स्वसेवासमायातदेवासुरेन्द्रा-
नमन्मौलिमन्दारमालाभिषक्तम्।
नमस्यामि शंभो पदाम्भोरुहं ते
भवाम्बोधिपोतं भवानीविभाव्यम्॥

स्वसेवा-समयात-देव-असुर-इन्द्रा– (अपनी सेवा में एकत्र सुर-असुरों के स्वामी) *नमन्-मौलि-मन्दार-माला-अभिषक्तम्* (नमन करनेवालों के मुकुटों पर लगी मन्दार पुष्पों की मालाओं से जिनका अभिषेक हो रहा है उनको) *भवाम्भोधिपोतं* (भवसागर में पार लगाने वाले जहाज के समान)

भवानीविभाव्यं (माता भवानी द्वारा ज्ञेय को) *शंभो ते पद-अम्भोरुहं* (आपके चरणकमल को) *नमस्यामि* (नमन करता हूँ।)

हे भवसागर से, जहाज की भाँति, पार लगाने वाले शिवशम्भो! मैं आपके चरण-कमल को नमन करता हूँ। आपके चारों ओर एकत्र हुए सुरेन्द्र और असुरेन्द्रों के शिरों पर बँधी हुई मन्दारपुष्पों की मालाओं से इन चरणकमलों का अभिषेक हो रहा है। आपको तो केवल माता भवानी ही जान सकती है।

(७)

जगन्नाथ मन्नाथ गौरीसनाथ
प्रपन्नानुकम्पिन्विपन्नार्तिहारिन्।
महःस्तोममूर्ते समस्तैकबन्धो
नमस्ते नमस्ते पुनस्ते नमोऽस्तु।

जगत्-नाथ (हे संसार के स्वामी!) *मन्-नाथ* (मेरे स्वामी!) *गौरीसनाथ* (हे उमानाथ!) *प्रपन्न-अनुकम्पिन्* (शरणागतों पर अनुकम्पा-कृपा-करने वाले प्रभो!) *विपन्न-आर्ति-हारिन्* (आपद-ग्रस्त दीनदुखियों के दुःखों को दूर करने वाले!) *महःस्तोममूर्ते* (हे सामवेद-ऋचाओं के विग्रहस्वरूप!) *समस्त-एक-बन्धो* (समस्त प्राणियों के एकमात्र हितैषी बन्धो!)

हे मेरे स्वामी! हे समस्त जगत के स्वामी! हे उमानाथ! हे दीन-दुखियों के संकट हटाने वाले! हे शरणागत-वत्सल! हे सामवेद की ऋचाओं के मूर्तस्वरूप! समस्त संसार के एकमात्र हितैषी! आपको नमन! आपको नमस्कार! आपको बार-बार प्रणाम!

(८)

विरूपाक्ष विश्वेश विश्वादिदेव
त्रयीमूल शंभो शिव त्र्यम्बक त्वम्।
प्रसीद स्मर त्राहि पश्यावमुक्त्यै
क्षमां प्राप्नुहि त्र्यक्ष मां रक्ष मोदात्॥

विरूपाक्ष (हे त्रिनेत्र!) *विश्व-ईश* (हे विश्वपते!) *विश्व-आदिदेव* (समस्त संसार के आदि देव!) *त्रयीमूल* (तीन वेदों के आदिस्त्रोत!) *त्र्यम्बक* (त्रिलोचन!) *स्मर-त्राहि* (कामदेव को क्षमा करने वाले!) *पश्यावमुक्त्यै* (मुक्ति के लिये कृपालु दृष्टिपात कीजिये) *क्षमां प्राप्नुहि* (मेरे अपराधों को क्षमा कीजिये) *त्र्यक्ष त्वं मोदात् मां रक्ष* (हे त्रिलोचन आप मेरी ओर कृपादृष्टि डालिये।)

हे त्रिलोचन विरूपाक्ष! हे विश्वेश्वर! हे संसार के आदिदेव! वेदों के आदिस्त्रोत! हे शिवशंकर! हे त्र्यम्बक! मैं आपकी शरण में आया हूँ, आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ, मेरे अपराधों को क्षमा कीजिये, और मेरी ओर अपनी कृपादृष्टि डालिये।

(९)

महादेव देवेश देवादिदेव
स्मरारे पुरारे यमारे हरेति।
ब्रुवाणः स्मरिष्यामि भक्त्या भवन्तं
ततो मे दयाशील देव प्रसीद॥

महादेव (हे देवाधिदेव!) *देवेश* (हे सुरेश!) *देव-आदिदेव* (हे देवों के आदिदेव!) *स्मर-अरे* (हे कामारे!) *पुरारे* (हे त्रिपुरारी) *यमारे* (हे यम के शत्रु!) *हर इति* (हे दुःखों का हरण करने वाले!) *भक्त्या भवन्तं ब्रुवाणः स्मारिष्यामि* (आपके इन नामों का जप करते हुए आपका स्मरण करता हूँ) *ततः* (इसलिये) *दयाशीलदेव* (हे कृपालु प्रभु!) *मे प्रसीद* (मुझ पर प्रसन्न होइये)

हे दयालु स्वामी! मैं आपके 'महादेव', 'देवेश', 'देवादिदेव' 'स्मरारि', 'त्रिपुरारि', 'यमनिरोधक', 'दुःखहर्ता' आदि नामों का जप करते हुए भक्तिपूर्वक आपका स्मरण करता रहता हूँ। आप तो परम दयालु हैं। मुझ पर कृपा कीजिये, प्रसन्न होइये।

(१०)

त्वदन्यः शरण्यः प्रपन्नस्य नेति
प्रसीद स्मरन्नेव हन्यास्तु दैन्यम्।

न चेत्ते भवद्भक्तवात्सल्यहानि-
स्ततो मे दयालो सदा संनिधेहि॥

त्वत्-अन्यः (आपके अतिरिक्त) *प्रपन्नस्य शरण्यः न इति* (शरणागत को शरण देने वाला नहीं है) *प्रसीद* (प्रसन्न होइये) *स्मरन् एव हन्याः तु दैन्यम्* (और स्मरण से मेरी दीनता का नाश हो) *न चेत्* (अगर ऐसा नहीं हो तो) *भवद्-भक्त-वात्सल्य-हानिः* (तो ऐसा लगेगा कि आपकी भक्त-वत्सलता में कमी है) *ततः* (इसलिये) *दयालो* (हे दयाशील!) *मे सदा संनिधेहि* (मेरे लिये सदा कृपा का वरद हस्त आगे बढ़ाइये।)

हे दयालु भगवान् शिव! शरणागत को शरण देनेवाला आपके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है। इसलिये प्रसन्न होइये। आपके स्मरणमात्र से दीनता दूर हो जाती है। यदि ऐसा नहीं होता हो तो आपकी भक्त-वत्सलता की हानि होगी। इसलिये मुझे सदा अपने आश्रय में रखिये।

(११)

अयं दानकालस्त्वहं दानपात्रं
भवानेव दाता त्वदन्यं न याचे।
भवद्भक्तिमेव स्थिरां देहि मह्यं
कृपाशील शंभो कृतार्थोऽस्मि तस्मात्॥

कृपाशील शंभो (कृपालुस्वामिन् शिवशंभो!) *अयं दानकालः* (यह देने का उचित समय है) *तु अहं दानपात्रं* (और सचमुच मैं दानपात्र हूँ, आपके द्वारा दान देने योग्य हूँ) *भवान् एव दाता* (और आप जैसे दान देनेवाले हैं) *त्वत् अन्यं न याचे* (आपको छोड़कर किसी दूसरे से नहीं याचना करूँगा) *मह्यं* (मेरे लिये) *स्थिरां भवद्-भक्तिं एव देहि* (आपकी अविचल भक्ति देने की कृपा कीजिये) *तस्मात् कृतार्थः अस्मि* (इसी से मैं कृतार्थ हूँ)

हे कृपाशील! शिवशंभो! दान देने का यह उचित समय है, मैं योग्य दानपात्र हूँ, और आप जैसा दान देने वाला है। मैं किसी दूसरे से भीख नहीं माँगता। मुझे तो आप अपनी निश्चल भक्ति ही प्रदान कीजिये। मैं इसीलिये कृतार्थ हूँ।

(१२)

पशुं वेत्सि चेन्मां तमेवाधिरूढः
कलङ्कीति वा मूर्ध्नि धत्से तमेव।
द्विजिह्वः पुनः सोऽपि ते कण्ठभूषा
त्वदङ्गीकृताः शर्व सर्वेऽपि धन्याः॥

चेत् मां पशुं वेत्सि (यदि आप मुझे पशु मानते हो) *तं एव अधिरूढः* (तो यह कह दूँ! – आप तो बैल पर सवार हैं) *वा कलङ्की इति* (यदि मैं कलङ्की हूँ) *मूर्ध्नि धत्से तं एव* (तो कह दूँ – आपने कलङ्की चन्द्रमा को तो शिर पर धारण कर रखा है) *द्विजिह्वः पुनः सः अपि ते कण्ठभूषा* (यदि मैं दो जीभ वाला हूँ तो दो जीभ वाला सर्प भी तो आपका आभूषण है) *शर्व* (हे शिवशंकर!) *त्वत् अङ्गीकृताः सर्वे अपि धन्याः* (आपने जिस-जिस को अङ्गीकार कर लिया वे सब धन्य हो गये)

हे स्वामी शिवशंकर! यदि आप मुझे पशु समझते हों तो (कह दूँ) आप भी तो बैल पर सवारी करते हैं। यदि मैं कलङ्की हूँ तो ऐसा क्या है? कलङ्की चन्द्रमा को तो आपने अपने मस्तक पर धारण कर रखा है। मैं दो जीभ वाला, दोमुहाँ हूँ तो दो जीभ वाले सर्प भी तो आपके आभूषण हैं। आपने जिस किसी को भी अङ्गीकार कर लिया वे सब धन्य हो गये।

(१३)

न शक्नोमि कर्तुं परद्रोहलेशं
कथं प्रीयसे त्वं न जाने गिरीश।
तथाहि प्रसन्नोऽसि कस्यापि कान्ता-
सुतद्रोहिणो वा पितृद्रोहिणो वा॥

गिरीश (हे कैलासपति!) *तथा हि* (सचमुच) *कान्ता-सुत-द्रोहिणः वा पितृ द्रोहिणः वा* (पत्नी और पुत्र से विश्वासघात करनेवाले के लिये तथा पिता के विरुद्ध विद्रोह करनेवाले के लिये) *कस्य अपि प्रसन्नः असि* (किसी पर भी आप प्रसन्न हैं) *न शक्नोमि परद्रोहलेशं कर्तुं* (मैं तो बिल्कुल परद्रोह,

दूसरों के साथ विश्वासघात, या उनके विरुद्ध विद्रोह – नहीं कर सकता हूँ) *कथं प्रीयसे त्वं न जाने* (फिर आपको कैसे प्रसन्न करूँ यह नहीं जानता)

कैलाशपते, (ऐसी अनेक कथाएँ कही जाती हैं जिनमें) आपने पत्नी और पुत्र के साथ विश्वासघात करने वालों या पिता के विरुद्ध विद्रोह करने वालों को भी क्षमा कर दिया और उन पर प्रसन्न हो गये। मैंने तो ऐसा कोई काम नहीं किया। मैं तो दूसरों के साथ बिल्कुल ही विश्वासघात अथव विद्रोह नहीं कर सकता। अब, आप ही बताइये, आपको कैसे प्रसन्न करूँ।

(१४)

स्तुतिं ध्यानमर्चां यथावद्विधातुं
भजन्नप्यजानन्महेशावलम्बे।
त्रसन्तं सुतं त्रातुमग्रे मृकण्डो-
र्यमप्राणनिर्वापणं त्वत्पदाब्जम्॥

यथा वत् विधातुं (विधिपूर्वक करने के लिये) *स्तुति ध्यानं अर्चां भजन्-अपि-अजानन्* (स्तुति, ध्यान, अर्चना, भजन भी नहीं जानता) *महेश-अवलम्बे* (हे सहारा देने वाले महेश्वर!) *अग्रे* (प्राचीन काल में) *त्रसन्तं यमप्राणनिर्वापणं मृकण्डोः सुतं* (जब डरे हुए मार्कण्डेय ने अपने प्राणों को यम के लिये समर्पण कर दिया) *त्वत्-पद-अब्जं-त्रातुं* (आपके चरणारविन्द ने उसकी रक्षा की)

हे शरणदायक कैलासपति! मैं स्तुति, ध्यान, अर्चा, भजन यथाविधि करना नहीं जानता। किन्तु, सुनते हैं, प्राचीनकाल में आपके चरणकमलों ने यम के वशीभूत मार्कण्डेय को, अपने प्राण आपकी सेवा में अर्पण कर देने पर, शरण दी थी।

(१५)

शिरोदृष्टिहृद्रोगशूलप्रमेह-
ज्वरार्शोजरायक्ष्महिक्काविषार्तान्।

त्वमाद्यो भिषग्भेषजं भस्म शंभो
त्वमुल्लाघयास्मान्वपुर्लाघवाय॥

शंभो (हे शिवशम्भु!) *त्वं आद्यः भिषग्* (आप आद्य वैद्य हैं) *भेषजं भस्म* (और आपकी भस्म परम औषध है) *अस्मान् वपुः लाघवाय त्वं उल्लाघय* (हमारे शरीर के स्वास्थ्य के लिये आप इनका उल्लङ्घन कीजिये, इन्हें हटाइये) *शिरो-दृष्टि-हृद्रोग-* (शिर, दृष्टि और हृदय के रोगों को) *ज्वर-अर्शः* (ज्वर और बवासीर) *जरा-यक्ष्म-हिक्का-विष-आर्तान्* (बुढ़ापा तपेदिक, हिचकी, विष से दुखी लोगों को)

शंभो (भगवान् शंभो!) आप शिर दृष्टि-हृदयरोग, दर्द, प्रमेह, ज्वर, बवासीर, तपेदिक, हिचकी, विष आदि से दुखी लोगों के लिये आदि वैद्य हैं। आपकी भस्म परम औषध हैं। हमारे शरीर के स्वास्थ्य के लिये इन रोगों का उल्लंघन कीजिये, इन्हें हटाइये।

(१६)

दरिद्रोऽस्म्यभद्रोऽस्मि भग्नोऽस्मि दूये
विषण्णोऽस्मि सन्नोऽस्मि खिन्नोऽस्मि चाहम्।
भवान्प्राणिनामन्तरात्मासि शम्भो
ममाधिं न वेत्सि प्रभो रक्ष मां त्वम्॥

दरिद्रः अस्मि (मैं दरिद्र हूँ) *अभद्रः अस्मि* (मैं अभद्र हूँ) *भग्नः अस्मि दूये* (मै टूटा हुआ और दुःखी हूँ) *विषण्णः अस्मि* (मैं हताश उदास हूँ) *सन्नः अस्मि* (मैं दुर्बल उदास दुःखी हूँ) *खिन्नः अस्मि* (मैं खिन्न हूँ) *भवान्* (आप) *प्राणिनाम्* (प्राणियों के) *अन्तरात्मा असि* (अन्तरात्मा हैं) *शम्भो* (हे शिवशंकर!) *मम आधिं न वेत्सि* (मेरे मनस्ताप को क्या आप नहीं जानते!) *प्रभो त्वं मां रक्ष* (हे प्रभो! आप मेरी रक्षा कीजिये।)

मैं (भले ही) दरिद्री हूँ, अभद्र हूँ, भग्न हूँ, दुःख पा रहा हूँ, उदास और हताश हूँ, खिन्न हूँ। क्या आप मेरे मनस्ताप-आधि-व्याधि- नहीं जानते! आप तो समस्त प्राणियों के अन्तरात्मा हैं। हे प्रभो! मेरी रक्षा कीजिये, इस संतापों से मुझे बचाइये।

(१७)

त्वदक्ष्णोः कटाक्षः पतेत्त्र्यक्ष यत्र
क्षणं क्ष्मा च लक्ष्मीः स्वयं तं वृणाते।
किरीटस्फुरच्चामरच्छत्रमाला-
कलाचीगजक्षौमभूषाविशेषैः॥

त्र्यक्ष (हे त्रिलोचन!) *त्वत् अक्ष्णोः* (आपके नेत्रों की) *कटाक्षः* (कृपा दृष्टि) *यत्र पतेत्* (जहाँ पड़ती हैं) *क्षणं* (उसी समय तत्क्षण) *क्ष्मा* (पृथ्वी, भूदेवी) *च लक्ष्मीः* (और लक्ष्मी, श्रीदेवी) *किरीट-स्फुरन्-चामर-छत्र-माला-कलाची-गज-क्षौम-भूषाविशेषैः* (मुकुट, ढुलती हुई चँवरी, छत्र, मालाओं, हाथियों और रेशमी वस्त्रों और विशेष प्रकार के आभूषणों द्वारा) *स्वयं तं वृणाते* (उसका स्वयं वरण करती हैं।)

हे त्रिलोचन! जिस पर आपकी कृपादृष्टि पड़ती है, उसे उसी क्षण भूदेवी और श्रीदेवी किरीट-चामर-छत्र-माला-हाथी-रेशमी वस्त्र-आदि विशेष राजकीय आभूषणों से वरण कर लेती हैं।

(१८)

भवान्यै भवायापि मात्रे च पित्रे
मृडान्यै मृडायाप्यघघ्न्यै मखघ्ने।
शिवाङ्ग्यै शिवाङ्गाय कुर्मः शिवायै
शिवायाम्बिकायै नमस्त्र्यम्बकाय॥

मात्रे च पित्रे (माता और पिता) *भवान्यै* (भवानी के लिये) *भवाय अपि* (और शिव के लिये) *अघघ्न्यै मृडान्यै मखघ्ने मृडाय अपि* (पापों का नाश करने वाली मृडानी-पार्वती-के लिये और दक्ष का यज्ञ विध्वंस करने वाले मृड (शिव) के लिये) *शिवायै शिवाङ्ग्यै* (शिव की अर्धाङ्गिनी शिवा के लिये) *शिवा-अङ्गाय* (अर्धनारीश्वर शिव के लिये, जिनके बाँये आधे भाग में शिवा (पार्वती) हैं) *शिवाय-अम्बिकायै त्र्यम्बकाय नमः कुर्मः* (माता पार्वती और त्र्यम्बक शिव को नमस्कार)

माता भवानी और पिता भव के लिये, पापघ्नी मृडानी और यज्ञ-

विध्वंसक मृड के लिये, अर्धनारीश्वर शिव और शिव की अर्धाङ्गिनी शिवा के लिये, माता पार्वती और त्र्यम्बक शिव के लिये प्रणाम।

(१९)

भवद्गौरवं मल्लघुत्वं विदित्वा
प्रभो रक्ष कारुण्यदृष्ट्यानुगं माम्।
शिवात्मानुभावस्तुतावक्षमोऽहं
स्वशक्त्या कृतं मेऽपराधं क्षमस्व॥

भवद्गौरवं (आपकी महत्ता) *मत्-लघुत्वं* (और मेरी लघुता) *विदित्वा* (जान कर) *प्रभो* (प्रभो, भगवान् शिव!) *कारुण्य-दृष्टि-अनुगं मां रक्ष* (आपकी करुणामयी दृष्टि के अनुगामी मुझको शरण दीजिये, मेरी रक्षा कीजिये) *शिव* (हे शिवशंकर!) *अहं आत्मानुभावस्तुतौ अक्षमः* (मैं अपने अनुभव से आपकी स्तुति करने में अक्षम हूँ) *स्वशक्त्या* (अपनी शक्ति से) *कृतं* (किये गये) *मे अपराधं क्षमस्व* (मेरे अपराध को क्षमा कीजिये)

प्रभो! अपनी महत्ता और मेरी लघुता को ध्यान में रखकर, आपकी करुणामयी कृपादृष्टि के अनुगामी मुझे शरण दीजिये, मेरी रक्षा कीजिये। हे शिवशंकर! आत्मानुभव से मैं आपकी स्तुति करने के लिये अक्षम हूँ। मैंने अपनी शक्ति, सामर्थ्य के अनुसार इस स्तुति में जो अपराध किया है उसे आप क्षमा करें।

यह पद यदि स्तोत्र के अन्त में रहता तो इसकी उपयोगिता शायद अधिक हो सकती थी।

(२०)

यदा कर्णरन्ध्रं व्रजेत्कालवाह-
द्विषत्कण्ठघण्टाघणात्कारनादः।
वृषाधीशमारुह्य देवौपवाह्यं
तदा वत्स मा भीरिति प्रीणय त्वम्॥

यदा (जिस समय) *कालवाह-द्विषत्-कण्ठघण्टा-घणात्कारनादः* (काल के वाहन-यमराज के भैंसे का भयावह घोषणा करने वाला घण्टानाद) *कर्णरन्ध्रं*

व्रजेत् (मृत्यु के समय मेरे कानों में पहुँचे) *देवौपवाह्यं वृषाधीशं आरुह्य* (देवों के लिये उपयुक्त वृषाधीश – वृषभ नन्दी – पर सवार होकर) *तदा वत्स मा भी : इति त्वं प्रीणय* (उस समय आप ''वत्स, मत डर'' यह कहकर मुझे सान्त्वना दें)

जिस समय यमराज के भैंसे के भयावह घंटे की भीषण ध्वनि मेरे कानों में पहुँचे, उस समय देवोपम नन्दी वृषभ पर सवार होकर आप मुझे सान्त्वना देते हुए कहें, ''वत्स, डर मत''।

यह चालीस पदों का स्तोत्र है। बीचों बीच उन्नीसवें पद में, ऐसा लगा, स्तोत्र का उपसंहार हो गया। स्तुति करने की अक्षमता की क्षमा माँग ली। इस पद में, एकाएक, भगवान् शिव के गुणगान के स्थान पर – या यों कहें – गुणगान के उपरान्त, मरणासन्न व्यक्ति की आर्त पुकार आरंभ हो गई। अगले पन्द्रह पदों में ऐसा ही आर्तनाद है। अगले छत्तीसवें पद से *शिवोऽहं शिवोऽहं शिवोऽहम्* का अद्वैतवादी आत्मविश्वास आरंभ होता है। इस प्रकार, इस स्तोत्र को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। पहले उन्नीस पदों में भगवान् शिव का गुणगान। अगले सोलह पदों में मरणासन्न व्यक्ति की आर्त चीत्कार (कहते हैं, यह स्तोत्र आचार्य शंकर ने अपनी माता के अन्त समय मोक्ष के लिये सुनाया था) अंतिम पाँच पदों में केवलाद्वैत की घोषणा से सान्त्वनापूर्ण उपसंहार किया गया है।

(२१)

यदा दारुणाभाषणा भीषणा मे
भविष्यन्त्युपान्ते कृतान्तस्य दूताः।
तदा मन्मनस्त्वत्पदाम्भोरुहस्थं
कथं निश्चलं स्यान्नमस्तेऽस्तु शंभो।

यदा दारुण-आभाषणाः (जब भयानक दारुण घोष करने वाले) *कृतान्तस्य भीषणाः दूताः* (यमराज के भयावह दूत) *मे उपान्ते भविष्यन्ति* (मेरे निकट आ रहे हैं) *तदा* (ऐसे बुरे समय में) *मन्मनः* (मेरा मन) *त्वत् पद-अम्भोरुहस्थं* (आपके चरणकमलों में स्थिर) *कथं निश्चलं स्यात्* (किस प्रकार

निश्चल रह सकता है?) *शभो नमस्ते अस्तु* (हे शम्भो आपके लिये मेरा नमस्कार)

जब यमराज के दारुणघोष करने वाले भीषण दूत मेरे निकट आ रहे हों तो, हे शंभो, आपके चरणकमलों में स्थापित मेरा मन निश्चल कैसे रह सकता है? प्रभो, आपके लिये मेरा नमस्कार।

(२२)

यदा दुर्निवारव्यथोऽहं शयानो
लुठन्निःश्वसन्निःसृताव्यक्तवाणिः।
तदा जह्नुकन्याजलालंकृतं ते
जटामण्डलं मन्मनोमन्दिरं स्यात्॥

यदा (जब मरणासन्न अवस्था में) *दुर्निवार-व्यथः अहं* (मैं दुर्निवार कष्ट में व्यथित हो रहा होऊँ) *निःसृत-अव्यक्तवाणिः* (कण्ठावरोध के कारण मुझे बोला नहीं जा रहा हो) *लुठन्निःश्वसन्* (और असह्य वेदना में गहरे श्वास लेता हुआ लोट-पोट हो रहा होऊँ) *तदा* (उस अंतिम समय में) *जह्नुकन्याजल*–(जह्नु ऋषि की पुत्री गङ्गा के जल से) *अलङ्कृतं ते जटामण्डलं* (शोभायमान आपका जटाजूट) *मत्-मन्दिरं स्यात्* (मेरे मन का मन्दिर हो, मेरे मनमन्दिर में गङ्गाजल से अभिषिक्त आपके जटाजूट का स्मरण रहे)

अन्त समय में असह्य दुनिर्वार पीड़ा से जब व्यथित मैं लम्बी-लम्बी साँस लेता हुआ लोट-पोट हो रहा होऊँ, और मेरी अव्यक्त वाणी लड़खड़ा रही हो, उस मरणासन्न अवस्था में गङ्गाजल से अभिषिक्त आपके जटाजूट का मेरे मन-मन्दिर में स्मरण रहे।

इन पद्यों में मरणासन्न दयनीय दशा का वर्णन है।

(२३)

यदा पुत्रमित्रादयो मत्सकाशे
रुदन्त्यस्य हा कीदृशीयं दशेति।
तदा देवेदेवेश गौरीश शंभो
नमस्ते शिवायेत्यजस्रं ब्रवाणि॥

यदा (जब अंतिम समय की दयनीय अवस्था में) *पुत्र-मित्र-आदयः* (पुत्र, मित्र आदि मेरे परिजन) *मत्-सकाशे* (मेरे निकट) *रुदन्ति* (रो रहे हों) *हा अस्य इयं कीदृशी दशा इति* (''हाय, इसकी यह कैसी दुर्दशा हो गई।'') *तदा* (उस समय) *देवदेवेश गौरीश शंभो* (हे उमापति देवाधिदेव भगवान् शिव) *नमस्ते शिवाय इति अजस्रं* ब्रवाणि (''नमः शिवाय'' इस महामन्त्र का लगातार जप करता रहूँ।)

हे देवाधिदेव उमापते शंभो! जब मेरे अन्तसमय में पुत्र, मित्र आदि कुटुम्बी और परिजन (मेरी दुर्दशा और असह्य वेदना को देख-देखकर) रोते हुए कह रहे हों, ''हाय! इसकी यह कैसी दुर्दशा हो गई।'', उस समय मैं ''नमः शिवाय'' इस महामन्त्र का लगातार जप करता रहूँ।

(२४)

यदा पश्यतां मामसौ वेत्ति नास्मा-
नयं श्वास एवेति वाचो भवेयुः।
तदा भूतिभूषं भुजङ्गावनद्धं
पुरारे भवन्तं स्फुटं भावयेयम्।।

यदा मां पश्यतां (जब मुझे देख-देख कर) *असौ अस्मान् न वेत्ति* (इस समय अपने ही हम लोगों को यह नहीं पहचान रहा है) *अयं श्वास एव इति वाचः भवेयुः* (केवल श्वास की ही ध्वनि शेष रह जाय) *तदा* (उस दुर्दशा में) *भूतिभूषं* (भस्म से विभूषित) *भुजङ्गावनद्धं* (और सर्पों को लपेटे हुए) *पुरारे* (हे त्रिपुरारि!) *भवन्तं* (केवल आपका ही) *स्फुटं भावयेयम्,* (केवल आपका ही, चिन्तन करता रहूँ।)

मरणासन्न मेरे अन्तसमय में जब मेरे चारों ओर एकत्र परिजन कह रहे हों, ''हाय, यह तो हमें पहचानता तक नहीं। इसका बोलना बन्द हो गया है, और केवल श्वास चलने की ही ध्वनि निकल रही है'', उस दुर्दशा में, हे विभूतिभूषण! हे भुजङ्गालंकृत! मेरे मन में आपके इस स्वरूप की भावना बनी रहे।

(२५)

यदा यातनादेहसंदेहवाही
भवेदात्मदेहे न मोहो महान्मे।
तदा काशशीतांशुसंकाशमीश
स्मरारे वपुस्ते नमस्ते स्मराणि॥

यदा (अन्त समय में) *यातनादेहसंदेहवाही भवेत्* (मेरा यातनाशरीर संदेहवाहक हो) *आत्मदेहे न महान् मे मोहः* (और अपनी इस देह में मेरा मोह न रहे) *तदा* (उस अवस्था में) *काश-शीतांशुसंकाशं* (काश के पुष्प और शरद ऋतु के उज्ज्वल चन्द्रमा की कान्ति के समान) *स्मरारे ईश* (कामरिपो स्वामिन्!) *ते नमः ते वपुः स्मराणि* (आपको नमस्कार, आपके दिव्य विग्रह का स्मरण करूँ।)

मृत्यु उपरान्त मेरी यातनादेह जब (इस जन्म में किये हुए दुष्कर्मों के फलस्वरूप) पीड़ा भोग रही हो, और मेरा इस शरीर में, मरने के बाद अंधा मोह न रहे, उस दुर्दशा में, हे कामरिपो महेश! मैं आपके शरच्चन्द्र की कान्ति के समान उज्ज्वल विग्रह का स्मरण करते हुए नमस्कार करता रहूँ।

पञ्चभूतों से बनी यह देह जब नष्ट हो जाती है तो यातनादेह, मृत्यु के उपरान्त इस जन्म में किये हुए दुष्कर्मों का फल भोगती है।

(२६)

यदापारमच्छायमस्थानमद्भि-
र्जनैर्वा विहीनं गमिष्यामि मार्गम्।
तदा तं निरुन्धन्कृतान्तस्य मार्गं
महादेव मह्यं मनोज्ञं प्रयच्छ॥

यदा (मरने के बाद) *अपारं* (जिसका कोई ओर-छोर नहीं दिखाई देता) *अच्छायं अस्थानं* (रेगिस्तान जैसे छायाविहीन) *अद्भिः जनैः वा विहीनं* (निर्जल और निर्जन) *मार्गं गमिष्यामि* (नरक के मार्ग में जाते समय) *तदा* (उस यातना में) *कृतान्तस्य* (यमराज के) *मार्गं निरुन्धन्* (मार्ग को रोकते

हुए) *महादेव* (हे महेश्वर!) *मह्यं मनोज्ञं प्रयच्छ* (मेरे लिये जो प्रिय हो उसे प्रदान करिये)

जब मैं, मरने के बाद, अपार, छाया विहीन निर्जल, निर्जन नरक के मार्ग में जा रहा होऊँ, तो, उस दुर्दशा में, हे महादेव! यमलोक की ओर जाने वाले मार्ग को अवरुद्ध कर, मेरे लिये जो हितकारी और प्रिय हो उसे प्रदान करने की कृपा कीजिये।

(२७)

यदा रौरवादि स्मरन्नेव भीत्या
व्रजाम्यत्र मोहं महादेव घोरम्।
तदा मामहो नाथ कस्तारयिष्य-
त्यनाथं पराधीनमर्धेन्दुमौले॥

यदा (जब) *भीत्या* (डरते हुए, भयभीत होकर) *रौरव-आदि स्मरन् एव* (रौरव आदि नरकों का स्मरण करते हुए) *व्रजामि* (उनकी ओर जा रहा हूँ) *महादेव अत्र घोरं मोहं* (हे महादेव यह बड़ा घोर मोह है) *तदा* (उस समय) *मां अनाथं पराधीनं अहो नाथ अर्धेन्दुमौले कः तारयिष्यति* (मुझ अनाथ और पराधीन को, हे अर्धचन्द्रमौले! हे नाथ! कौन पार लगायेगा?)

जब मैं रौरव आदि नरकों की यातनाओं के स्मरण से भयभीत उनकी ओर जाऊँगा, हे महादेव! यहाँ, इस जीवन में, यह बड़ा घोर मोह है। उस समय, हे नाथ! चन्द्रमौले! मुझ अनाथ और पराधीन को कौन पार लगायेगा? मुझे रौरव आदि नरकों की यातनाओं से कौन बचायेगा?

(२८)

यदाऽश्वेतपत्रायतालङ्घ्यशक्तेः
कृतान्ताद्भयं भक्तवात्सल्यभावात्।
तदा पाहि मां पार्वतीवल्लभान्यं
न पश्यामि पातारमेतादृशं मे॥

यदा (जिस समय) *अश्वेत-पत्र-आयत-अलङ्घ्यशक्तेः कृतान्ताद्भयं* (बड़े काले पंखवाले तथा अलङ्घनीय भाले से युक्त यमराज से भय उत्पन्न हो)

भक्तवात्सल्यभावात् (अपने भक्तों पर वात्सल्य भाव से) *तदा मां पाहि* (उस समय मुझे बचाइये, मेरी रक्षा कीजिये) *पार्वतीवल्लभ* (हे उमाकान्त!) *अन्यं एतादृशं मे पातारं न पश्यामि* (मुझे, आपके अतिरिक्त, ऐसा कोई अन्य रक्षा करने वाला दिखाई नहीं देता)

जिस समय यमराज के काले पंख से युक्त और अमोघ भाले से मुझे भय हो, तब अपनी भक्तवत्सलतावश, हे उमाकान्त, मेरी रक्षा कीजिये। आपके समान, ऐसा कोई रक्षा करने वाला मुझे दिखाई नहीं देता।

(२९)

इदानीमिदानीं मृतिर्मे भवित्री-
त्यहो सन्ततं चिन्तया पीडितोऽस्मि।
कथं नाम मा भून्मृतौ भीतिरेषा
नमस्ते गतीनां गते नीलकण्ठ॥

इदानीं इदानीं मृतिः मे भवित्रीत्यहो (हाय, मेरी मृत्यु अब होने वाली है, अब होने वाली है) *सन्ततं चिन्तया पीडितः अस्मि* (इस चिन्ता से सदा भयभीत रहता हूँ) *मृतौ एषा भीतिः कथं नाम मा भूत्* (मृत्यु के समय सदा डराने वाला यह भय कैसे नहीं हो, (मृत्यु के भय से मुझे कैसे मुक्ति मिले?) *गतीनां गते नीलकण्ठ* (प्रत्येक मनुष्य की अन्तिम गते, हे नीलकण्ठ) *नमस्ते* (आपके लिये मेरा नमस्कार!)

"मैं अब मरने वाला हूँ, अब मरने वाला हूँ" मृत्यु की चिन्ता का यह डर मुझे सदा पीडित करता रहता है। मरने के इस डर से कैसे छुटकारा मिले? हे भगवान् नीलकण्ठ शिव! आप तो सब मनुष्यों की अन्तिम गति हैं, आपको नमस्कार!

(३०)

अमर्यादमेवाहमाबालवृद्धं
हरन्तं कृतान्तं समीक्ष्यास्मि भीतः।
मृतौ तावकाङ्घ्र्यब्जदिव्यप्रसादा-
द्भवानीपते निर्भयोऽहं भवानि॥

अहं-आवाल बृद्धं (मैं बालकों से लेकर वृद्धों तक) *अमर्यादं-एव-हरन्तं कृतान्तं समीक्ष्य भीतः अस्मि* (विना किसी मर्यादा प्राणहरण करते हुए यमराज को देख-देखकर मैं भयभीत हो रहा हूँ) *मृतौ* (मरने के समय) *भवानीपते! (हे पार्वतीश) तावक-अङ्घ्रि-अब्ज-दिव्य-प्रसादात्* (आपके चरणकमलों के दिव्य प्रसाद से) *अहं निर्भयः* भवानि (मैं निर्भय होऊँ।)

मैं भयभीत होकर, यमराज को बालकों से लेकर बृद्धों तक, सभी को, बिना किसी मर्यादा और भेदभाव के, ले जाते हुए भलीभाँति देख कर भयभीत हूँ। (यमराज के फन्दे से कौन बचता है?) किन्तु, हे भवानी, पते! आपके चरणकमलों की दिव्य कृपा से, मृत्यु के समय, मैं निर्भय होऊँ।

(३१)

जराजन्मगर्भाधिवासादिदुःखा-
न्यसह्यानि जह्यां जगन्नाथ देव।
भवन्तं विना मे गतिर्नैव शंभो
दयालो न जागर्ति किं वा दया ते॥

जगन्नाथ देव (हे जगत्पते प्रभो!) *जरा-जन्म-गर्भ-अधिवास-आदि-असह्यानि दुःखानि जह्यां* (बुढ़ापा, जन्म, माँ की कोख में पड़े रहना – इन असह्य दुःखों से मुझे छुटकारा मिले) *शंभो* (हे शिवशंभु! आपके बिना मेरी कोई गति नहीं है) *दयालो* (हे दयासागर!) *किं वा ते दया न जागर्ति* (क्या आपकी दया, मेरे दुःख की इस घड़ी में, क्रियाशील नहीं है?)

हे जगन्नाथ प्रभो! बुढ़ापा, जन्म, गर्भ में पड़े रहना आदि असह्य दुःखों से मुझे छुटकारा मिलना चाहिये। हे शंभो! आपके बिना मेरा उद्धार करने वाला कोई और दूसरा नहीं है, दयालो! क्या आपकी दया, मेरे दुःख के इस समय में, सक्रिय नहीं है?

(३२)

शिवायेति शब्दो नमःपूर्व एष
स्मरन्मुक्तिकृन्मृत्युहा तत्त्ववाची।
महेशान मा गान्मनस्तो वचस्तः
सदा मह्यमेतत्प्रदानं प्रयच्छ॥

नमः पूर्व शिवाय इति एष शब्दः ('नमः शिवाय' यह मन्त्र) *स्मरन्* (स्मरण करने पर) *मुक्तिकृत्* (मुक्तिदाता) *मृत्युहा* (और मृत्युहर्ता) *तत्त्ववाची* (परम ज्ञान को प्रकट करने वाला है) *महेशान* (हे ईशानदेव!) *मा गान् मनस्तः वचस्तः* (यह महामन्त्र मेरे मन अथवा वाणी से ओझल न हो) *सदा मह्यं एतत् प्रदानं प्रयच्छ* (आपकी मेरे लिये यह कृपा सदा बनी रहे, आप मुझे यह दान सदा देते रहें)

नमः पूर्वक शिवाय – 'नमः शिवाय' महामन्त्र मुक्तिदाता और मृत्युहर्त्ता है। इस महामन्त्र से तत्त्वबोध भी हो सकता है। हे महेशान! मेरा मन और मेरी वाणी इस महामन्त्र से कभी वंचित न हों, यह महामन्त्र मेरे मन और मेरी बाणी में सदा रहे। ऐसा वरदान मुझे आप दें। आप मुझे यह प्रसाद देने की कृपा करें।

(३३)

त्वमप्यम्ब मां पश्य शीतांशुमौलि-
प्रिये भेषजं त्वं भवव्याधिशान्तौ।
बहुक्लेशभाजं पदाम्भोजपोते
भवाब्धौ निमग्नं नयस्वाद्य पारम्॥

शीत-अंशु-मौलि-प्रिये (हे इन्दुशेखर प्रिये!) *अम्ब त्वं अपि मां पश्य* (आप भी मेरी ओर कृपादृष्टि कीजिये) *भव-व्याधिशान्तौ* (संसार की आधि-व्याधि शान्त करने के लिये) *त्वं भेषजं* (आप परम औषध हैं) *भव-अब्धौ निमग्नं* (इस संसार-सागर में डूबते हुए) *बहुक्लेशभाजं* (अनेक क्लेशों को भुगतने वाले) *पद-अम्भोज-पोते* (चरणकमल रूपी जहाज में) *अद्य पारं नयस्व* (अव पार लगाइये)

शिवप्रिया माता पार्वती आप भी मेरी ओर कृपादृष्टि कीजिये। भवसागर के संतापों को शान्त करने के लिये आप परम औषध के समान हैं। इस भवसागर में पड़ा हुआ मैं बड़े क्लेश भोग रहा हूँ। अपनी चरण कमल रूपी नौका से अब मुझे इस भवसागर से पार कीजिये।

(३४)

अनुद्यल्ललाटाक्षिवह्निप्ररोहै-
रवामस्फुरच्चारुवामोरुशोभैः।
अनङ्गभ्रमद्भोगिभूषाविशेषै-
रचन्द्रार्धचूडैरलं दैवतैर्नः॥

अलं दैवतैः नः (हमें ऐसे देवताओं से कुछ नहीं लेना-देना, ऐसे देवों से बहुत हो चुका) *अनुद्यन्-ललाट-अक्षि-वह्नि-प्ररोहैः* (जिनके ललाट पर तीसरे नेत्र से अग्नि-स्फुलिंग नहीं निकल रहे हों) *अवामस्फुरन्-चारु-वामा-उरु-शोभैः* (जिनके वाँये भाग पर अत्यंत शोभायमान अर्धाङ्गिनी की आभा से रोमांच नहीं हो रहा हो) *अनङ्ग-भ्रमद्-भोगि-भूषा-विशेषैः* (चंचल सर्पों के आभूषणों से जिनके अंग शोभायमान न हों) *अचन्द्रार्धचूडैः* (और जिनके मस्तक पर अर्धचन्द्र का मुकुट न हो।

ऐसे देवताओं को वस रहने दें, हमें उनसे कुछ लेना-देना नहीं, जिनके ललाट पर तीसरे नेत्र से आग की चिनगारियाँ नहीं निकल रही हों, जिनका बाँया भाग अतिसुन्दर अर्धाङ्गिनी की आभा से रोमाञ्चित न हो रहा हो, जिनके अंगों पर चञ्चल सर्पों के विशिष्ट आभूषण न हों, और जिनके मस्तक पर अर्धचन्द्र का मुकुट न हो।

इस पद में भगवान् शिव के रूप का वर्णन करते हुए यह बताया गया है कि दूसरे जिन देवताओं का स्वरूप ऐसा न हो, उनसे हमें कुछ लेना-देना नहीं है।

(३५)

अकण्ठेकलङ्कादनङ्गेभुजङ्गा-
दपाणौकपालादभालेऽनलाक्षात्।
अमौलौशशाङ्कादवामेकलत्रा-
दहं देवमन्यं न मन्ये न मन्ये॥

अकण्ठेकलङ्कात् (जिनके कण्ठ पर हलाहल विष की नीलिमा नहीं होने के कारण जो नीलग्रीव न हो ऐसे) *अनङ्गेभुजङ्गात्* (अंगों पर सर्पों के न होने

के कारण, जिनके अंगों पर सर्प न हों ऐसे) *अ-पाणौ-कपालात्* (जिनके हाथ में खोपड़ी का खप्पड़ न हो) *अभाले अनल-अक्षात्* (ललाट में अग्निमय तीसरी आँख नहीं होने के कारण) *अ-मौलौ शशाङ्कात्* (मुकुटरूप अर्धचन्द्र न होने के कारण) *अ-वामे-कलत्रात्* (बाँयें भाग में अर्द्धाङ्गिनी न होने के कारण) *अहं अन्यं देवं न मन्ये न मन्ये* (मैं किसी और देव को नहीं मानता, नहीं मानता)

जो नीलग्रीव नहीं है, जिसके शरीर पर सर्प नहीं हैं, जिसके हाथ में खोपड़ी नहीं है, जिसके ललाट पर अग्नि उगलती तीसरी आँख नहीं है, जिसका अर्धचन्द्र का मुकुट नहीं है, जिसके वाँयें भाग में अर्धाङ्गिनी नहीं है – ऐसे किसी देवता को मैं नहीं मानता, नहीं मानता।

इस पद में, और पिछले पद में, निषेध द्वारा अनन्य भक्ति का वर्णन है।

(३६)

महादेव शंभो गिरीश त्रिशूलिं-
स्त्वयीदं समस्तं विभातीति यस्मात्
शिवादन्यथा दैवतं नाभिजाने
शिवोऽहं शिवोऽहं शिवोऽहं शिवोऽहम्॥

महादेव शंभो गिरीश त्रिशूलिन् (हे महादेव! हे शंभो! हे कैलासपते! हे त्रिशूलधारिन्!) *त्वयि इदं समस्तं* (सारा विश्वप्रपञ्च आप में ही है) *यस्मात् विभाति इति* (और जिससे यह सब प्रकाशित हो रहा है) *शिवात्-अन्यथा* (शिव के अतिरिक्त) *दैवतं न-अभिजाने* (किसी देवता को मैं नहीं जानता) *शिवः अहं शिवः अहं शिवः अहम्* (मैं तो केवल शिव ही हूँ, केवल शिव)

हे महादेव! हे शंभो! हे कैलासपते! हे त्रिशूलिन्! यह समस्त विश्व प्रपञ्च आप में ही स्थित है। जिससे यह समस्त विश्व प्रकाशित हो रहा है, उस के अतिरिक्त, मैं किसी और देव को नहीं जानता। मैं तो शिव हूँ, शिव हूँ, केवल शिव हूँ।

(३७)

यतोऽजायतेदं प्रपञ्चं विचित्रं
स्थितिं याति यस्मिन्यदेकान्तमन्ते।
स कर्मादिहीनः स्वयंज्योतिरात्मा
शिवोऽहं शिवोऽहं शिवोऽहं शिवोऽहम्।

यतः अजायत इदं विचित्रं प्रपञ्चं (जिससे यह सारा अद्भुत विश्वप्रपञ्च उत्पन्न हुआ है) *स्थितिं* (जो इसका पालन करने वाला है, जिसमें यह स्थित है) *यस्मिन्-यत्-एकान्तं-अन्ते याति* (जिसमें यह सारा विश्व प्रपंच अंतकाल में विलीन हो जाता है) *स कर्मादिहीनः* (वह कर्म आदि के दोषों से अलिप्त है) *स्वयंज्योतिः आत्मा* (स्वयं प्रकाशित होने वाला आत्मा है) *शिवोऽहं शिवोऽहं शिवोऽहम्* (मैं वही शिव हूँ, वही शिव)

जिससे यह सारा विश्वप्रपञ्च उत्पन्न हुआ है, जिसमें यह स्थित है, और, अन्तसमय, जिसमें यह विलीन हो जाता है, और जो कर्म आदि से अलिप्त है, मैं वही शिव हूँ।

(३८)

किरीटे निशेशो ललाटे हुताशो
भुजे भोगिराजो गले कालिमा च
तनौ कामिनी यस्य तत्तुल्यदेवं
न जाने न जाने न जाने न जाने॥

किरीटे निशा-ईशः (जिसके मुकुट में राकेश निशानाथ है) *ललाटे हुताशः* (ललाट पर तीसरे नेत्र में अग्नि है) *भुजे भोगिराजः* (भुजा में सर्पराज है) *गले कालिमा* (जो विष की कालिमा से नीलकण्ठ है) *यस्य तनौ कामिनी* (जिसके वामाङ्ग में प्रियतमा पार्वती हैं) *तत्-तुल्य-देवं न जाने* (उनके समान किसी दूसरे देवता को मैं नहीं जानता)

जिसके मुकुट में निशानाथ राकेश (चन्द्रमा) है, ललाट पर तीसरे नेत्र में अग्नि है, हाथों पर सर्पराज हैं, गले में विष की कालिमा है, और जिसके वामाङ्ग में अर्धाङ्गिनी पार्वती हैं, उनके समान किसी दूसरे देव को मैं नहीं जानता, नहीं जानता।

(३९)

अनेन स्तवेनादरादम्बिकेशं
परां भक्तिमासाद्य यं ये नमन्ति
मृतौ निर्भयास्ते जनास्तं भजन्ते
हृदम्भोजमध्ये सदासीनमीशम्॥

अनेन स्तवेन (इस स्तोत्र द्वारा) *आदरात् अम्बिका-ईशं* (सादर भवानीश शिव को) *परां भक्तिं आसाद्य* (परम भक्तिपूर्वक) *ये जनाः तं नमन्ति* (जो नमन करते हुए उनका भजन करते हैं) *ये हृद्-अम्भोज-मध्ये सदा-आसीनं ईशं भजन्ते ते मृतौ निर्भयाः* (जा अपने हृदय-कमल में सदा आसीन ईश्वर को भजते हैं, वे मृत्यु के समय निर्भय रहते हैं)

जो लोग, इस स्तोत्र से भक्तिपूर्वक भवानीपति भगवान् शिव को नमस्कार करते हैं, और अपने हृदय-कमल में सदा आसीन प्रभु का भजन करते हैं, वे मरते समय निर्भय रहते हैं।

(४०)

भुजङ्गप्रियाकल्प शंभो मयैवं
भुजङ्गप्रयातेन वृत्तेन क्लृप्तम्।
नरः स्तोत्रमेतत्पठित्वोरुभक्त्या
सुपुत्रायुरारोग्यमैश्वर्यमेति॥

भुजङ्ग-प्रिय-आकल्प शंभो (सर्पों के आभूषणों से सुशोभित भगवान् शंभो!) *मया एवं भुजङ्गप्रयातेन वृत्तेन क्लृप्तम्* (मेरे द्वारा भुजङ्गप्रयात वृत्त में यह स्तोत्र रचा गया है) *नरः एतत् स्तोत्रं उरु भक्त्या पठित्वा* (इस स्तोत्र को बड़े भक्तिभाव से पढ़कर कोई पुरुष) *सुपुत्र-आयुः-आरोग्य-ऐश्वर्यं एति* (अच्छे पुत्र, लम्बी आयु, आरोग्य और ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं)

हे भुजङ्गभूषण भुजङ्गप्रिय शंभो! मैंने इस स्तोत्र की भुजङ्गप्रयात वृत्त में रचना की है। जो मनुष्य इस स्तोत्र का बड़े भक्तिभाव से पाठ करेगा उसे अच्छे पुत्रों, लम्बी आयु, आरोग्य और ऐश्वर्य की प्राप्ति होगी।

– इति –

शिवाष्टकम्

(१)

तस्मै नमः परमकारणकारणाय
दीप्तोज्ज्वलज्ज्वलितपिङ्गललोचनाय।
नागेन्द्रहारकृतकुण्डलभूषणाय
ब्रह्मेन्द्रविष्णुवरदाय नमः शिवाय॥

तस्मै नमः (उसको नमन) *परमकारणकारणाय* (कारण के भी परम कारण के लिये) *दीप्त-उज्ज्वल-ज्वलित-पिङ्गल-लोचनाय* (अत्यंत उज्ज्वल देदीप्यमान पीताभ नेत्रों वाले के लिये) *नागेन्द्रहारकृतकुण्डलभूषणाय* (सर्पराजों के हार और कुण्डल आदि से सुशोभित के लिये) *ब्रह्मा-इन्द्र-विष्णु-वरदाय* (ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र को वरदान देने वाले के लिये) *नमः शिवाय* (शिव जी के लिये मेरा प्रणाम)

जो शिव कारण के भी परम कारण हैं उन्हें मेरा नमस्कार। जो अत्यन्त देदीप्यमान उज्ज्वल पीताभ नेत्रों वाले हैं, जिन्होंने सर्पराजों के हार और कुण्डल धारण किये हैं, जो ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र को भी वरदान देने वाले हैं, उन श्रीशंकर को मेरा प्रणाम।

(२)

श्रीमत्प्रसन्नशशिपन्नगभूषणाय
शैलेन्द्रजावदनचुम्बितलोचनाय।
कैलासमन्दरमहेन्द्रनिकेतनाय
लोकत्रयार्तिहरणाय नमः शिवाय॥

श्रीमत् (शोभायुक्त) *प्रसन्न* (निर्मल) *शशि* (चन्द्रमा) *पन्नग* (सर्प) *भूषणाय* (जिनके आभूषण हैं उनके लिये) *शैलेन्द्रजा*-(पर्वतराज हिमालय की पुत्री,

पार्वती) *वदन*-(मुख) *चुम्बित-लोचनाय* (जिनके नेत्रों का चुम्बन किया जाता है उनके लिये) *कैलास-मन्दर-महेन्द्र-निकेतनाय* (कैलास, मन्दराचल और महेन्द्र पर्वत पर निवास करने वाले के लिये) *लोकत्रय-आर्ति-हरणाय* (तीनों लोकों का दुःख निवारण करने वाले के लिये) *शिवाय नमः* (भगवान् शिव के लिये मेरा प्रणाम)

निर्मल शोभायुक्त चन्द्रकला और सर्पों से जो अलंकृत हैं, पर्वतराज हिमालय की पुत्री पार्वती अपने मुख से जिनके नेत्रों का चुम्बन करती हैं, जो कैलास, मन्दराचल और महेन्द्र पर्वतों पर निवास करते हैं, और जो तीनों लोकों के दुःखों को दूर करने वाले हैं, उन भगवान् शिव को मेरा नमस्कार।

(३)

पद्मावदातमणिकुण्डलगोवृषाय
कृष्णागरुप्रचुरचन्दनचर्चिताय।
भस्मानुषक्तविकचोत्पलमल्लिकाय
नीलाब्जकण्ठसदृशाय नमः शिवाय।।

अवदात (उज्ज्वल) *पद्ममणि* (पद्ममणि) *कुण्डल* (कुण्डलों की) *गो* (किरणें) *वृषाय* (वर्षा करने वाले के लिये) *कृष्ण-अगरु-प्रचुरचन्दन चर्चिताय* (श्यामवर्ण अगरु और बहुत-से चन्दन से चर्चित के लिये) *भस्म-अनुषक्त*-(भस्म से युक्त) *विकच*-(खिले हुए) *उत्पल-मल्लिकाय* (नीलकमल और चमेली से सुशोभित के लिये) *नील-अब्ज-कण्ठ-सदृशाय* (नीले कमल के समान ग्रीवा वाले के लिये) *शिवाय नमः* (भगवान् शिव के लिये नमस्कार)

जो भगवान् शिव उज्ज्वल पद्मरागमणि के कुण्डलों से निर्मल किरणों की वर्षा करने वाले हैं, श्यामवर्ण अगरु और प्रचुर चन्दन का लेप किये हुए हैं, भस्म लगाये हुए, प्रफुल्लित चमेली और कमलों से सुशोभित हैं, जिनका नीलकमल के समान कण्ठ है, उनके लिये मेरा प्रणाम।

(४)

लम्बत्सपिङ्गलजटामुकुटोत्कटाय
दंष्ट्राकरालविकटोत्कटभैरवाय।

व्याघ्राजिनाम्बरधराय मनोहराय
त्रैलोक्यनाथनमिताय नमः शिवाय॥

लम्वत्–(लटकती हुई) *सपिङ्गल*–(पीताभ) *जटा-मुकुट-उत्कटाय*-(जटाओं के मुकुट से उन्नत) *दंष्ट्राकराल* (तीष्ण दाढ़) *विकट-उत्कट-भैरवाय* (अति विकट और भयानक के लिये) *व्याघ्र-अजिन*–(व्याघ्र चर्म) *अम्वरधराय* (वस्त्र धारण किये हुए के लिये) *मनोहराय* (अत्यंत सुन्दर के लिये) *त्रैलोक्यनाथनमिताय* (तीनों लोकों के अधिपति जिनके चरणों में झुकते हैं) *शिवाय नमः* (उन भगवान् शिव को प्रणाम)

लटकती हुई पीताभ जटाओं के मुकुट धारण करने से जो प्रशस्त दिखाई पड़ते हैं, तीक्ष्ण दाढ़ों के कारण जो अत्यंत भयानक और विकट प्रतीत होते हैं, जिन्होंने व्याघ्रचर्म का आवरण धारण किया हुआ है, जो अति कमनीय हैं, जिनके चरणों में तीनों लोकों के अधीश्वर शिर झुकाते हैं, उन भगवान् शिव के चरणों में मेरा नमस्कार।

(५)

दक्षप्रजापतिमहामखनाशनाय
क्षिप्रं महात्रिपुरदानवघातनाय।
ब्रह्मोर्जितोर्ध्वगकरोटिनिकृन्तनाय
योगाय योगनमिताय नमः शिवाय॥

दक्षप्रजापति-महामख– (दक्ष प्रजापति के महायज्ञ को) *नाशनाय* (विध्वंस करने वाले के लिये) *क्षिप्रं* (शीघ्र) *महा-त्रिपुर-दानव-नाशनाय* (भयंकर त्रिपुरासुर का वध करने वाले के लिये) *ब्रह्मा-ऊर्जित-ऊर्ध्वग-करोटि*-(दर्पयुक्त ब्रह्मा के ऊर्ध्वमुख पाँचवे शिर को) *निकृन्तनाय* (काटने वाले के लिये) *योगाय योगनमिताय* (योगस्वरूप और योगियों द्वारा आदृत) *शिवाय नमः* (भगवान् शिव को नमस्कार)

जिन्होंने दक्ष प्रजापति के महायज्ञ को (आमंत्रित नहीं किये जाने पर) ध्वस्त कर दिया, महान् त्रिपुरासुर को शीघ्र ही मार डाला, घमण्डी ब्रह्मा के ऊर्ध्वमुख को अलग कर दिया, जो योगस्वरूप और योगियों द्वारा पूजनीय हैं, उन भगवान् शिव को मेरा नमस्कार।

(६)

संसारसृष्टिघटनापरिवर्तनाय
रक्षःपिशाचगणसिद्धसमाकुलाय।
सिद्धोरगग्रहगणेन्द्रनिषेविताय
शार्दूलचर्मवसनाय नमः शिवाय॥

संसारसृष्टि-घटना-परिवर्तनाय (जो कल्पान्त में जगत् की रचना का परिवर्तन करने वाले हैं उनके लिये) *रक्षः*-(राक्षसों) *पिशाचगण* (पिशाचों) *सिद्धसमाकुलाय* (उनके लिये जो राक्षस, पिशाच और सिद्धों से घिरे रहते हैं) *सिद्ध-उरग-ग्रहगण-इन्द्र-निषेविताय* (सिद्ध, सर्प, ग्रहगण तथा इन्द्र आदि से सेवित हैं) *शार्दूलचर्मवसनाय* (जो व्याघ्रचर्म धारण किये हुए हैं उनके लिये) *नमः शिवाय* (शिव को नमस्कार)

मेरा उन भगवान् शिव को नमस्कार है जो कल्पान्त में जगत् की रचना में परिवर्तन करते हैं; राक्षस, पिशाच, और सिद्धगण जिन्हें घेरे रहते हैं; सिद्ध, सर्प, ग्रहगण और इन्द्रादि देवता जिनकी सेवा करते हैं; और जो व्याघ्रचर्म धारण किये हुए हैं।

(७)

भस्माङ्गरागकृतरूपमनोहराय
सौम्यावदातवनमाश्रितमाश्रिताय।
गौरीकटाक्षनयनार्धनिरीक्षणाय
गोक्षीरधारधवलाय नमः शिवाय॥

भस्म-अङ्गराग (भस्म के अङ्गराग से) *कृतरूप-मनोहराय* (अपने रूप को मनोहर बनाने वाले के लिये) *सौम्य-अवदातवनं आश्रित आश्रिताय* (उनके लिये जो सौम्य और अति सुन्दर बनों में निवास करने वाले ऋषि-मुनियों के आश्रय हैं) *गौरीकटाक्ष-नयन-अर्ध-निरीक्षणाय* (उनके लिये जो पार्वतीजी के कटाक्ष की ओर तिरछी चितवन से देख रहे हैं) *गोक्षीरधारधवलाय* (उनके लिये जो गाय के दूध की धारा के समान धवल हैं)

भस्म के अंगराग से अपनी सुन्दरता को मनोहर बनाने वाले, अति शान्त और सुन्दर बनों में निवास करने वाले ऋषि-मुनियों के आश्रय, श्री

पार्वतीजी के कटाक्ष को अपनी तिरछी चितवन से निहारते हुए, गो-दुग्ध की धारा के समान धवल भगवान् शिव को मेरा नमस्कार।

(८)

आदित्यसोमवरुणानिलसेविताय
यज्ञाग्निहोत्रवरधूमनिकेतनाय।
ऋक्सामवेदमुनिभिः स्तुतिसंयुताय
गोपाय गोपनमिताय नमः शिवाय॥

आदित्य-(सूर्य) *सोम*-(चन्द्रमा) *वरुण*-(वरुण) *अनिल*-(वायु से) *सेवितय* (पूजित) *यज्ञ-अग्निहोत्र-वरधूम-निकेतनाय* (यज्ञ और अग्निहोत्र के पवित्र धुँआ में जिनका निवास है उनके लिये) *ऋक्-सामवेद*-(ऋग्वेद और सामवेद द्वारा) *मुनिभिः* (मुनियों द्वारा) *स्तुतिसंयुताय* (स्तुति से युक्त हैं) *गोपाय* (गौओं का पालन करने वाले) *गोपनमिताय* (नन्दीश्वर द्वारा पूजित) *नमः शिवाय* (शिव को नमस्कार)

जिन भगवान् शिव की सूर्य, चन्द्र, वायु, वरुण आदि पूजा करते हैं, जो यज्ञ और अग्निहोत्र के पवित्र धुँआ में निवास करते हैं; ऋग्वेद और सामवेद तथा मुनिजन जिनकी स्तुति करते हैं; और जो गोरक्षक हैं तथा नन्दीश्वर द्वारा पूजित हैं उनको मेरा नमस्कार।

(९)

शिवाष्टकमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसंनिधौ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते॥

यः (जो मनुष्य) *इदं पुण्यं शिवाष्टकं* (इस आठ श्लोकों वाले पवित्र शिवाष्टक को) *शिव-सन्निधौ पठेत्* (महादेव जी के समीप पढ़ता है) *शिवलोकं अवाप्नोति* (वह शिव लोक को प्राप्त करता है) *शिवेन सह मोदते* (और भगवान् शिव के सानिध्य में आनंदित रहता है)।

जो मनुष्य इस आठ श्लोकों वाले पवित्र शिवाष्टक को महादेव जी के समीप पढ़ता है, वह शिव लोक प्राप्त करता है और भगवान् शिव के सांनिध्य में आनंदित रहता है।

– इति –

वेदसारशिवस्तोत्रम्

पशूनां पतिं पापनाशं परेशं
गजेन्द्रस्य कृतिं वसानं वरेण्यम्।
जटाजूटमध्ये स्फुरद्गाङ्गवारिं
महादेवमेकं स्मरामि स्मरारिम्॥

पशूनां पतिं (समस्त प्राणियों के रक्षक को) *पापनाशं* (पापों को नाश करने वाले को) *पर-ईशं* (परमेश्वर को) *गजेन्द्रस्य* (गजराज की) *कृतिं* (चर्म को) *वसानं* (धारण करने वाले को) *वरेण्यं* (श्रेष्ठ को) *जटाजूटमध्ये* (जिनकी जटाओं के बीच में) *स्फुरद्गाङ्गवारिं* (गङ्गाजी का जल तरङ्गित हो रहा है उनको) *एकं स्मर-अरिं महादेवं* (कामदेव को पराजित करने वाले एकमात्र महादेव को) *स्मरामि* (मैं स्मरण करता हूँ)।

जो समस्त प्राणियों के रक्षक हैं, पापों को नष्ट करने वाले हैं, परमेश्वर हैं, गजराज के चर्म से अपने शरीर को ढके हुए हैं, परमपूज्य हैं, जिनकी जटाओं में गङ्गाजी की लहरे खेल रही हैं, मैं उन कामरिपु भगवान् महादेव का स्मरण करता हूँ।

(२)

महेशं सुरेशं सुरारातिनाशं
विभुं विश्वनाथं विभूत्यङ्गभूषम्।
विरूपाक्षमिन्द्वर्कवह्नित्रिनेत्रं
सदानन्दमीडे प्रभुं पञ्चवक्त्रम्॥

महा-ईशं (महादेव को) *सुर-ईशं* (देवताओं के स्वामी को) *सुर-अराति-नाशं* (देवताओं के शत्रुओं को नष्ट करने वाले को) *विभुं* (सर्वव्यापी को) *विश्वनाथं* (समस्त विश्व के अधिपति को) *विभूति-अङ्गभूषम्* (भस्म से

अपने शरीर को अलंकृत करने वाले को) *विरूपाक्षं* (विरूप नेत्रों वाले को) *इन्दु-अर्क-वह्नि-त्रिनेत्रं* (चन्द्र, सूर्य और अग्नि तीनों जिनके नेत्र हैं उनको) *सदा आनन्दं* (नित्यानन्द स्वरूप को) *पञ्चवक्त्रम्* (पञ्चमुखी को) *प्रभुं ईडे* (भगवान् शिव की स्तुति करता हूँ)

देवताओं के स्वामी, देवों के शत्रुओं का ध्वंस करने वाले, सर्वव्यापक, विश्वनाथ, भस्म-विभूषित, सूर्य-चन्द्र-अग्नि जिनके तीन नेत्र हैं उन विरूपनयन पञ्चमुखी महेश्वर, नित्यानन्दस्वरूप, भगवान् शिव की मैं स्तुति करता हूँ।

(३)

गिरीशं गणेशं गले नीलवर्णं
गवेन्द्राधिरूढं गणातीतरूपम्।
भवं भास्वरं भस्मना भूषिताङ्गं
भवानीकलत्रं भजे पञ्चवक्त्रम्॥

गिरीशं (कैलाशपति को) *गणेशं* (गणनाथ को) *गले नीलवर्णं* (नीलकण्ठ को) *गवेन्द्र-अधिरूढं* (वृषभ पर सवार को) *गणातीतरूपम्* (अगणित रूप वाले को) *भवं* (जगत् के आदिकारण को) *भास्वरं* (प्रकाशस्वरूप को) *भस्मना भूषिताङ्गं* (भस्म से अलंकृत शरीरवाले को) *भवानीकलत्रं* (भवानी जिनकी अर्धाङ्गिनी हैं उनको) *पञ्चवक्त्रम् भजे* (पञ्चमुख महादेव को मैं भजता हूँ।)

कैलासपति, गणनायक, नीलकण्ठ, वृषभारूढ, अनगिनत रूप वाले, संसार के आदिकारण, तेजःस्वरूप, शरीर पर भस्म लगाये हुए, उमापति पञ्चमुख महादेव को मैं भजता हूँ।

(४)

शिवाकान्त शम्भो शशाङ्कार्धमौले
महेशान शूलिन् जटाजूटधारिन्।
त्वमेको जगद्व्यापको विश्वरूपः
प्रसीद प्रसीद प्रभो पूर्णरूप॥

शिवाकान्त शम्भो-(हे पार्वतीवल्लभ शम्भो!) *शशाङ्कार्धमौले* (हे अर्धचन्द्रमौले!) *महाईशान* (हे महेश्वर!) *शूलिन्* (हे त्रिशूलपाणे!) *जटाजूटधारिन्* (हे जटाजूटधारिन्!) *विश्वरूपः* (विश्वस्वरूप!) *त्वं एकः जगद् व्यापकः* (एकमात्र आप ही समस्त संसार में व्याप्त हैं) *पूर्णरूप प्रभो* (हे पूर्ण परमेश्वर!) *प्रसीद प्रसीद* (प्रसन्न होइये, कृपा कीजिये)।

हे भवानीवल्लभ महादेव! हे चन्द्रार्धमौलि! हे महेश्वर! हे त्रिशूल पाणि! हे जटाजूटधारी! हे विश्वरूप! केवल आप ही इस समस्त संसार में व्याप्त हैं। हे पूर्ण परमेश्वर! प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये।

(५)

परात्मानमेकं जगद्बीजमाद्यं
निरीहं निराकारमोङ्कारवेद्यम्।
यतो जायते पाल्यते येन विश्वं
तमीशं भजे लीयते यत्र विश्वम्॥

परात्मानं एकं (एक अद्वितीय परमात्मा को) *जगत्-बीजं आद्यं* (जगत् की उत्पत्ति के आदिकारण को) *निरीहं* (इच्छारहित को) *निराकारं ओंकारवेद्यम्* (निराकार को ओंकार द्वारा ज्ञातव्य को) *यतो येन जायते पाल्यते लीयते विश्वं* (जिनसे जगत् की उत्पत्ति होती है, और जो इसे पालते हैं, और अन्त में लीन कर लेते हैं, उनको) *तं ईशं भजे* (उन प्रभु को मैं भजता हूँ।)

जो एकमात्र परमात्मा हैं, जगत् की उत्पत्ति के एकमात्र कारण हैं, इच्छारहित हैं, निराकार हैं, ओंकार द्वारा ज्ञातव्य हैं, जिनसे जगत् की उत्पत्ति होती है, जो जगत् का पालन करते हैं, और अन्त में जो इसे अपने में लीन कर लेते हैं, उन सर्वाधार प्रभु की मैं वन्दना करता हूँ।

(६)

न भूमिर्न चापो न वह्निर्न वायु-
र्न चाकाशमास्ते न तन्द्रा न निद्रा।
न चोष्णं न शीतं न देशो न वेषो
न यस्यास्ति मूर्तिस्त्रिमूर्तिं तमीडे॥

न भूमिः न च आपः (जो न पृथ्वी और जो न जल हैं) *न वह्निः न वायुः* (जो न अग्नि है न वायु हैं) *न च आकाशं आस्ते* (और न आकाश हैं) *न तन्द्रा न निद्रा* (जो न तन्द्रा हैं न निद्रा हैं) *न च उष्णः न शीतं* (जो न उष्ण हैं न शीतल हैं) *न देशः न वेषः* (न उनका कोई देश है, न वेष है) *न यस्य मूर्तिः अस्ति* (न उनकी कोई मूर्ति है) *तं त्रिमूर्तिं ईडे* (मैं उन त्रिमूर्त्ति भगवान् शिव की स्तुति करता हूँ)

जो न पृथ्वी हैं, न जल हैं; जो न अग्नि हैं न वायु हैं; जो आकाश भी नहीं हैं। जो पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश – कुछ भी नहीं हैं, जो न तन्द्रा हैं न निद्रा हैं; जो न उष्ण हैं न शीतल हैं; न उनका कोई देश है, न उनका कोई वेष है; जिनकी कोई स्थूल मूर्ति नहीं है, उन त्रिमूर्ति भगवान् शिव की मैं स्तुति करता हूँ।

(७)

अजं शाश्वतं कारणं कारणानां
शिवं केवलं भासकं भासकानाम्।
तुरीयं तमः पारमाद्यन्तहीनं
प्रपद्ये परं पावनं द्वैतहीनम्॥

अजं (अजन्मा को) *शाश्वतं* (नित्य को) *कारणानां कारणं* (कारणों के कारण को) *शिवं* (कल्याणस्वरूप को) *केवलं* (एक मात्र को) *भासकानां भासकं* (प्रकाशकों के भी प्रकाशक को) *तुरीयं* (जो जाग्रत्, स्वप्न, सुसुप्ति– तीनों अवस्थाओं से परे हैं उनको) *तमः-पारं* (अज्ञानरूपी अंधकार से परे हैं उनको) *आदि-अन्त-हीनं* (उनको जो अनादि और अनन्त हैं) *परं पावनं द्वैतहीनं प्रपद्ये* (परम-पावन अद्वैतस्वरूप को प्रणाम करता हूँ)

अजन्मा, नित्य, कारणों के कारण, मङ्गलस्वरूप, अद्वितीय, प्रकाशकों के भी प्रकाशक, जाग्रत्-स्वप्न सुसुप्ति से भी विलक्षण चौथी तुरीय अवस्था में स्थित, अज्ञानरूपी अंधकार से परे, आदि-अन्त रहित, परम पावन अद्वैतस्वरूप को मैं प्रणाम करता हूँ।

(८)

नमस्ते नमस्ते विभो विश्वमूर्ते
नमस्ते नमस्ते चिदानन्दमूर्ते।

नमस्ते नमस्ते तपोयोगगम्य
नमस्ते नमस्ते श्रुतिज्ञानगम्य॥

विभो विश्वमूर्ते (हे सर्वव्यापिन् विश्वमूर्त्ते) *चिदानन्दमूर्ते* (हे ज्ञान-आनन्दस्वरूप!) *तपः योगगम्य* (हे तपस्या और योग से प्राप्तव्य!) *श्रुतिज्ञानगम्य* (हे वेदवेद्य भगवन्!) *नमस्ते नमस्ते* (आपको बारंबार नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है)

हे विश्वव्यापिन् विश्वमूर्त्ते! आपको नमस्कार, नमस्कार। हे चिदानन्दस्वरूप आपको नमस्कार, नमस्कार। हे तप और योग से प्राप्तव्य आपको नमस्कार, नमस्कार। हे वेदवेद्य आपको बारम्बार नमस्कार!

(९)

प्रभो शूलपाणे विभो विश्वनाथ
महादेव शम्भो महेश त्रिनेत्र।
शिवाकान्त शान्त स्मरारे पुरारे
त्वदन्यो वरेण्यो न मान्यो न गण्यः॥

प्रभो शूलपाणे विभो विश्वनाथ (त्रिशूलपाणे! हे विश्वव्यापिन्! हे विश्वनाथ!) *त्रिनेत्र महेश महादेव शम्भो* (हे त्रिनेत्र! हे महेश्वर! हे महादेव! मङ्गलकारिन्!) *शिवाकान्त शान्त स्मर-अरे पुर-अरे* (हे पार्वतीवल्लभ! हे प्रशान्त! हे कामरिपु! हे त्रिपुरारि!) *त्वत्-अन्यः* (आपके अतिरिक्त) *न वरेण्यः न मान्यः न गण्यः* (न कोई श्रेष्ठ है, न माननीय है, न गणनीय है)

हे प्रभो! त्रिशूलपाणे! विश्वव्यापिन्! हे विश्वनाथ! हे महादेव शम्भो! हे त्रिनेत्र महेश्वर! हे गिरिजावल्लभ! हे प्रशान्त! कामजयिन्! हे त्रिपुरविनाशक! आपके अतिरिक्त, आप जैसा, न कोई पूज्यतम है, न माननीय है, और न गणनीय है।

(१०)

शम्भो महेश करुणामय शूलपाणे
गौरीपते पशुपते पशुपाशनाशिन्।

काशीपते करुणया जगदेतदेक-
स्त्त्वं हंसि पासि विदधासि महेश्वरोऽसि॥

करुणामय-शम्भो महेश शूलपाणे (हे दयामय शंभो! त्रिशूलधर! महेश्वर!) *गौरीपते पशुपते पशुपाशनाशिन्* (हे गौरीपते! हे पशुपते! हे पशुबन्धन मोचन!) *काशीपते* (हे काशीनाथ!) *एतद् जगत् एकः त्वं करुणया* (इस समस्त जगत् को केवल आप ही करुणावश) *विदधासि पासि हंसि* (उत्पन्न करते हैं, पालन करते हैं, और अंत में इसका संहार करते हो) *महेश्वरः असि* (आप परमेश्वर हैं)

हे करुणामय! हे शम्भो! हे महेश! हे त्रिशूलधर! हे उमापते! हे पशुपते! हे प्राणिबन्धमोचन! हे काशीनाथ! केवल आप ही करुणावश इस जगत् को उत्पन्न करते हो, आप ही इसका पालन करते हो, और आप ही अन्त में इसे अपने में लीन कर लेते हो। आप ही एकमात्र परमेश्वर हो।

(११)

त्वत्तो जगद्भवति देव भव स्मरारे
त्वय्येव तिष्ठति जगन्मृड विश्वनाथ!
त्वय्येव गच्छति लयं जगदेतदीश
लिङ्गात्मकं हर चराचरविश्वरूपिन्॥

देव भव स्मर-अरे (हे देवाधिदेव! हे आदिकारण! हे कन्दर्पदलन!) *त्वत्तः लिङ्गात्मकं जगत्-भवति* (यह लिङ्गात्मक जगत् आपसे ही उत्पन्न होता है) *त्वयि एव तिष्ठति* (आप में ही स्थित रहता है) *मृड विश्वनाथ* (हे विश्वनाथ शिव!) *चराचरविश्वरूपिन् ईश* (हे चराचरजगत्रूप प्रभो!) *एतद् जगत् त्वयि एव लयं गच्छति* (आप में ही अन्त में लय हो जाता है)

हे देव! हे भव! हे कन्दर्पभंजन! यह लिङ्गात्मक जगत् आपसे ही उत्पन्न होता है। आपमें ही इसकी सत्ता (स्थिति) है। हे विश्वनाथ! हे समस्त चराचर जगत् के स्वामिन्! हे शिव! अंत में यह जगत् आपमें ही लीन हो जाता है।

— इति —

श्री शिवपञ्चाक्षरस्तोत्रम्

(१)

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय
भस्माङ्गरागाय महेश्वराय।
नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय
तस्मै 'न'काराय नमः शिवाय।

नागेन्द्रहाराय (कण्ठ में सर्पों का हार पहने हुए के लिये) *त्रिलोचनाय* (सूर्य, चन्द्र, अग्नि रूप तीन नेत्रों वाले के लिये) *भस्म-अङ्गरागाय* (भस्म ही जिनका अङ्गराग है उनके लिये) *नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय महेश्वराय* (जो नित्य, शुद्ध अविनाशी दिगम्बर महादेव हैं उनके लिये) *तस्मै 'न' काराय नमः शिवाय* (उन 'न'कार स्वरूप भगवान् शिव को नमस्कार।)

जिनके गले में सर्पों का हार है, जिनके तीन नेत्र हैं, भस्म ही अङ्गराग की भाँति जिनकी शोभा बढ़ा रहा है, उन शुद्ध, अविनाशी दिगम्बर महेश्वर 'न'कारस्वरूप भगवान् शिव को नमस्कार।

(२)

मन्दाकिनीसलिलचन्दनचर्चिताय
नन्दीश्वरप्रमथनाथमहेश्वराय।
मन्दारमुख्यबहुपुष्पसुपूजिताय
तस्मै 'म'काराय नमः शिवाय॥

मन्दाकिनी-सलिल-(गङ्गाजल) *चन्दनचर्चिताय* (चन्दन से जिनकी अर्चना हुई है उनको) *मन्दारमुख्यबहुपुष्पसुपूजिताय* (श्वेतार्क, धतूरे आदि अनेक पुष्पों से जिनकी विधिपूर्वक पूजा होती है उन्हें) *नन्दीश्वर-प्रमथनाथ-महेश्वराय*

(नन्दी के अधिपति प्रमथगणों के स्वामी महादेव के लिये) *तस्मै 'म'काराय नमः शिवाय* (उन 'म'कार स्वरूप भगवान् शिव को नमस्कार)

गङ्गाजल और चन्दन से जिनका अनुलेपन होता है, नन्दी के अधिपति प्रमथगणों के जो स्वामी हैं, श्वेतार्क, धतूरे आदि अनेक पुष्पों से जिनकी विधिपूर्वक पूजा होती है, उन 'म'कार स्वरूप महेश्वर शिव को नमस्कार।

(३)

शिवाय गौरीवदनाब्जवृन्द-
सूर्याय दक्षाध्वरनाशकाय।
श्रीनीलकण्ठाय वृषध्वजाय
तस्मै 'शि' काराय नमः शिवाय॥

शिवाय (जो कल्याणस्वरूप हैं उनको) *गौरीवदन-अब्जवृन्द-सूर्याय* (जो पार्वती जी के मुखकमल को विकसित करने के लिये सूर्यस्वरूप हैं उनको) *दक्ष-अध्वर-नाशकाय* (दक्ष के यज्ञ को ध्वस्त करनेवाले के लिये) *श्रीनीलकण्ठाय वृषभध्वजाय* (जिनकी ध्वजा में बैल का चिह्न है, और शोभायुक्त नीलग्रीव हैं उनके लिये) *तस्मै 'शि' काराय नमः शिवाय* (उन 'शि'कार स्वरूप शिव को नमस्कार)

मङ्गलस्वरूप, पार्वतीजी के मुखकमल को प्रफुल्लित करने के लिये सूर्य के समान, दक्ष प्रजापति के यज्ञ के ध्वंसकर्ता, वृषभध्वज शोभाशाली नीलकण्ठ 'शि' कार स्वरूप शिव को नमस्कार।

(४)

वसिष्ठ-कुम्भोद्भवगौतमार्य-
मुनीन्द्रदेवार्चितशेखराय।
चन्द्रार्कवैश्वानरलोचनाय
तस्मै 'व' काराय नमः शिवाय॥

वसिष्ठ-कुम्भोद्भवगौतम-आर्य-मुनि-इन्द्रदेव-अर्चित-शेखराय (वसिष्ठ, अगस्त्य और गौतम आदि श्रेष्ठ मुनि तथा इन्द्र आदि देवताओं द्वारा जिनका मस्तक पूजित है उनको) *चन्द्र-अर्क-वैश्वानर-लोचनाय* (चन्द्र, सूर्य और

अग्नि जिनके तीन नेत्र हैं) *तस्मै 'व' काराय नमः शिवाय* (उन 'व'कार स्वरूप शिव को नमस्कार।)

वसिष्ठ, अगस्त्य, गौतम आदि मुनिश्रेष्ठ और इन्द्र आदि देवता जिनके मस्तक का पूजन करते हैं, उन 'व' कार स्वरूप भगवान् शिव को नमस्कार।

(५)

यक्षस्वरूपाय जटाधराय
पिनाकहस्ताय सनातनाय।
दिव्याय देवाय दिगम्बराय
तस्मै 'य' काराय नमः शिवाय॥

यक्षस्वरूपाय (यक्षरूप धारण करने वाले को) *जटाधराय* (जटाधारी को) *पिनाक-हस्ताय* (पिनाकपाणि के लिये) *सनातनाय* (जो सनातन (शाश्वत) पुरुष है) *दिव्याय देवाय दिगम्बराय* (उन दिगम्बर दिव्य महादेव के लिये) *तस्मै 'य' काराय नमः शिवाय* (उन 'य' कारस्वरूप भगवान् शिव के लिये नमस्कार)

जिन्होंने कभी यक्षरूप धारण किया, जो जटाधारी हैं, पिनाकपाणि हैं, सनातन पुरुष हैं, उन दिव्य दिगम्बर देव 'य' कारस्वरूप शिव को नमस्कार।

– इति –

श्रीकालभैरवाष्टकम्

(१)

देवराजसेव्यमानपावनाङ्घ्रिपङ्कजं
व्यालयज्ञसूत्रमिन्दुशेखरं कृपाकरम्।
नारदादियोगिवृन्दवन्दितं दिगम्बरं
काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे॥

देवराज-सेव्यमान-(देवराज इन्द्र द्वारा सेवित) *पावन-अङ्घ्रि-पङ्कजं* (जिनके पवित्र चरण कमलों को) *व्यालयज्ञसूत्रं* (जिन्होंने सर्पों का यज्ञोपवीत धारण किया हुआ है) *इन्दुशेखरं* (जिनका चन्द्रमा शिरोभूषण है) *कृपा-आकरम्* (कृपा निधि को) *नारद-आदि-योगिवृन्दवन्दितं* (नारद आदि योगियों के समूह जिनकी वन्दना करते हैं) *दिगम्बरं* (दिशायें ही जिनका परिधान हैं, जो निर्वस्त्र हैं उनको) *काशिकापुर-अधिनाथ* (काशी नगरी के स्वामी) *कालभैरवं भजे* (कालभैरव की आराधना करता हूँ)

मैं काशी नगरी के स्वामी कालभैरव की आराधना करता हूँ। उनके पवित्र चरणकमलों की देवराज इन्द्र सेवा करते हैं। वे कृपानिधि हैं, और उन्होंने सर्पों का यज्ञोपवीत धारण किया है, और चन्द्रमा उनका शिरोभूषण है। वे निर्वस्त्र (दिगम्बर) योगीश्वर हैं और नारद आदि योगियों का समूह उनकी वन्दना करता है।

(२)

भानुकोटिभास्वरं भवाब्धितारकं परं
नीलकण्ठमीप्सितार्थदायकं त्रिलोचनम्।
कालकालमम्बुजाक्षमक्षशूलमक्षरं
काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे॥

भानुकोटिभास्वरं (करोड़ों सूर्यों के समान दीप्तिमान-को) *भव-अब्धि-तारकं* (संसार-सागर से तारने वाले को) *परं* (सर्वश्रेष्ठ, अनन्त को) *नीलकण्ठं* (नीले कण्ठवाले को) *ईप्सित-अर्थ-दायकं* (मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करने वाले को) *त्रिलोचनं* (तीन नेत्रों वाले को) *कालकालं* (काल के भी महाकाल को) *अम्बुज-अक्षं* (कमल के समान नेत्र वाले को) *अक्षशूलं अक्षरं* (अक्षमाला-रुद्राक्ष- और त्रिशूलधारी अविनाशी को)

मैं काशिराज कालभैरव की आराधना करता हूँ। वे करोड़ों सूर्यों के समान दीप्तिमान् हैं और संसार-सागर से तारने वाले परमेश्वर हैं। वे त्रिलोचन नीलग्रीव अभीष्ट फलदाता हैं और काल के भी महाकाल हैं। उनके कमल के समान नेत्र हैं, और उन्होंने अक्षमाला और त्रिशूल धारण किया हुआ है।

संसार की उपमा लहरों के थपेड़ों और मगरमच्छों से क्षुब्ध महासागर अथवा घने जंगल से बहुधा दी जाती है। भगवान् शिव इस भवसागर से पार लगाने वाले हैं।

भगवान् शिव ने समुद्रमंथन से निकले हुए कालकूट विष को, देव-दानवों की रक्षा के लिये पी लिया। उनके उदर में भी सृष्टि थी इसलिये उसे अपने कण्ठ में ही रोक लिया। कण्ठ में विष की नीलिमा से वे नीलकण्ठ कहलाये।

भगवान् शिव की तीसरी आँख ज्ञानचक्षु है। शिवशंकर काल के महाकाल-मृत्युञ्जय हैं, क्योंकि वे उस परमज्ञान को देते हैं जिससे मृत्यु का भय नहीं रहता। 'अक्ष' का एक अर्थ सर्प भी है। वे रुद्राक्ष अथवा सर्पों की माला धारण करते हैं।

(३)

शूलटङ्कपाशदण्डपाणिमादिकारणं
श्यामकायमादिदेवमक्षरं निरामयम्।
भीमविक्रमं प्रभुं विचित्रताण्डवप्रियं
काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे॥

शूल-टङ्क-पाश-दण्ड-पाणिं (जिन्होंने अपने हाथों में शूल, कुठार, पाश और

दण्ड धारण किया हुआ है उनको) *आदिकारणं* (विश्व के आदिकारण को) *श्यामकायं* (जिनके शरीर की कान्ति श्यामवर्ण की है उनको) *आदिदेवं* (जो आदिदेव हैं उनको) *अक्षरं निरामयं* (अविनाशी और त्रिविध तापों से रहित को) *भीमविक्रमं* (महान् पराक्रमी को) *विचित्रताण्डवप्रियं प्रभुं* (अद्भुत ताण्डवनृत्यप्रिय सर्वसमर्थ को)

मैं काशीनाथ कालभैरव की आराधना करता हूँ। उनके हाथों में शूल, कुठार, पाश और दण्ड है। वे आदिदेव, अविनाशी और आदिकारण हैं। त्रिविध तापों से ऊपर वे महान् पराक्रमी हैं। वे सर्वसमर्थ हैं और विचित्र ताण्डवनृत्य उन्हें प्रिय है।

यहाँ भगवान् शिव को, जो 'कर्पूरगौर' और 'रजतगिरिनिभं', 'पूर्णेन्दुकोटिप्रभम्' प्रसिद्ध हैं, 'श्यामकायं' कालभैरव के रूप में बताया गया है।

(४)

भुक्तिमुक्तिदायकं प्रशस्तचारुविग्रहं
भक्तवत्सलं स्थिरं समस्तलोकविग्रहम्।
निक्वणन्मनोज्ञहेमकिङ्किणीलसत्कटिं
काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे॥

भुक्तिमुक्तिदायकं (समस्त भोगों और मुक्ति प्रदान करनेवाले को) *प्रशस्तचारुविग्रहं* (जिनका शरीर सुन्दर और प्रशंसनीय है उनको) *भक्तवत्सलं* (जो भक्तों के प्रिय हितकर्ता हैं उनको) *स्थिरं समस्तलोकविग्रहम्* (सारा संसार ही जिनका स्थिर शरीर है) *निक्वणन्मनोज्ञ*-(रुनझुन करती हुई सुन्दर) *हेमकिङ्किणीलसत्कटिं* (जिनकी कमर में सोने की करधनी सुशोभित हो रही है)

मैं भुक्तिमुक्तिदायक, सुन्दर प्रशंसनीय अंगों वाले, भक्तप्रिय, समस्त संसार के स्थिर विग्रह, कटिप्रदेश में सोने की रुनझुन करती सुन्दर करधनी पहने हुए, काशीनगरी के अधीश्वर कालभैरव की आराधना करता हूँ।

(५)

धर्मसेतुपालकं त्वधर्ममार्गनाशकं
कर्मपाशमोचकं सुशर्मदायकं विभुम्।

स्वर्णवर्णकेशपाशशोभिताङ्गनिर्मलं

काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे॥

धर्मसेतुपालकं (जो संसार-सागर को पार करने के लिये धर्मस्वरूप सेतु के पालक हैं उनको) *तु अधर्ममार्गनाशकं* (और अधर्म के मार्ग का नाश करने वाले हैं उनको) *कर्मपाशमोचकं* (और जो कर्मफल के पाश से मुक्त करने वाले हैं उनको) *सुशर्मदायकं* (शुभ आनन्द देने वाले को) *विभुम्* (सर्वव्यापक को) *स्वर्णवर्णकेशपाश*-(स्वर्ण के समान केशपाश वाले) *शोभित-अङ्ग-मण्डलं* (शोभित अङ्गों वाले को)

मैं धर्म-सेतु-पालक एवं अधर्म मार्गनाशक और कर्मपाश से मुक्त करने वाले काशी के अधिपति कालभैरव की आराधना करता हूँ। वे शुभ आनन्ददायक हैं, और सर्वव्यापी हैं। उनके अङ्ग स्वर्ण वर्ण वाले केशपाश से सुशोभित हैं।

'धर्म-सेतु' का अर्थ है कि धर्म के पुल से संसार-सागर पार किया जा सकता है। भगवान् शिव इस धर्म-सेतु के रक्षक हैं।

'कर्मपाश' कर्मफल, कर्मपरिणाम, कर्मविपाक है। हम जो अच्छा-बुरा कर्म करते हैं, उसका फल हमें भोगना पड़ता है।

'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाऽशुभम्'। भगवान् शिव ज्ञान द्वारा कर्मविपाक का नाश कर मुक्ति प्रदान करते हैं।

ध्यान देने की बात है कि श्लोक ३ में 'श्यामकाय' बताने के बाद यहाँ सोने की करधनी और स्वर्णवर्ण केशपाश सुशोभित बताया गया है।

(६)

रत्नपादुकाप्रभाभिरामपादयुग्मकं

नित्यमद्वितीयमिष्टदैवतं निरञ्जनम्।

मृत्युदर्पनाशनं करालदंष्ट्रभूषणम्

काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे।

रत्नपादुका-प्रभा-अभिराम-पाद-युग्मकं (जिनके चरणयुगल रत्नजड़ित खड़ाऊँ की कान्ति से सुशोभित हैं, उनको) *नित्यं अद्वितीयं निरञ्जनं इष्टदैवतं* (जो

अविनाशी, अद्वितीय, निर्मल इष्टदेव हैं उनको) *मृत्युदर्पनाशनं* (जो मृत्यु का गर्व चूर करने वाले हैं उनको) *करालदंष्ट्रभूषणं* (और कराल दाढ़ों से सुशोभित हैं)

मैं कराल दाढ़ों से सुशोभित काशीपुरी के अधिनाथ कालभैरव की उपासना करता हूँ। उनके चरणयुगल रत्नों की पादुकाओं की कान्ति से सुशोभित हैं। वे अविनाशी, अद्वितीय, निरञ्जन इष्टदेव हैं। वे यमराज-मृत्यु का गर्व चूर करने वाले और कराल दाढ़ों से सुशोभित हैं।

(७)

अट्टहासभिन्नपद्मजाण्डकोशसन्ततिं
दृष्टिपातनष्टपापजालमुग्रशासनम्।
अष्टसिद्धिदायकं कपालमालिकन्धरं
काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे॥

अट्टहासभिन्न-(जिनके अट्टहास से विदीर्ण हो जाते हैं) *पद्मज-अण्ड-कोश-सन्ततिं* (ब्रह्माण्डों के समूहों के युग) *दृष्टिपात-नष्टपाप-जालं* (जिनकी कृपा दृष्टि मात्र से पापों का समूह नष्ट हो जाता है उनको) *उग्रशासनम्* (जिनका शासन कठोर है उनको) *अष्टसिद्धिदायकं* (आठों सिद्धियों के दाता को) *कपाल-मालि-कन्धरं* (जिन्होंने कन्धे पर नरमुण्डों की माला धारण कर रखी है उनको)

मैं उस कपाली कालभैरव की आराधना करता हूँ। जिनके अट्टहास से ब्रह्माण्डों के समूह विदीर्ण हो जाते हैं, और जिनका कठोर शासन है। जो आठों प्रकार की– अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व सिद्धि प्रदान करने वाले हैं।

(८)

भूतसङ्घनायकं विशालकीर्तिदायकं
काशिवासिलोकपुण्यपापशोधकं विभुम्।
नीतिमार्गकोविदं पुरातनं जगत्पतिं
काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे॥

भूतसङ्घनायकं (जो समस्त प्राणियों के नायक हैं उनको) *विशालकीर्तिदायकं* (भक्तों को अपार कीर्ति देने वाले को) *काशिवासिलोक*-(काशी में वास करने वाले सभी लोगों के) *पाप-पुण्य-शोधकं* (पाप और पुण्यों का शोधन करनेवाले को) *विभुं* (सर्वव्यापक को) *नीतिमार्गकोविदं* (नीतिमार्ग के ज्ञाता को) *पुरातनं जगत्पत्तिं* (पुराण पुरुष जगन्नाथ को)

जो समस्त प्राणियों के स्वामी हैं, भक्तों को अतुल कीर्ति प्रदान करने वाले हैं, काशीवासियों के पाप-पुण्यों का शोधन करने वाले हैं, जो सर्वव्यापी, पुरातन पुरुष नीतिमार्ग के ज्ञाता और सारे संसार के स्वामी हैं, उन काशी नगरी के अधीश्वर कालभैरव की मैं उपासना करता हूँ।

(९)

कालभैरवाष्टकं पठन्ति ये मनोहरं
ज्ञानमुक्तिसाधकं विचित्रपुण्यवर्धनम्।
शोकमोहदैन्यलोभकोपतापनाशनं
ते प्रयान्ति कालभैरवाङ्घ्रिसंनिधिं ध्रुवम्॥

ज्ञानमुक्तिसाधकं (ज्ञान द्वारा मुक्ति के साधन को) *विचित्रपुण्यवर्धनं* (भक्तों के लिये अद्भुत पुण्य बढ़ाने वाले को) *शोक-मोह-दैन्य-लोभ-कोप-ताप-नाशनं* (शोक, मोह, दीनता, लोभ, क्रोध तथा ताप को नष्ट करने वाले को) *मनोहरं कालभैरवाष्टकं ये पठन्ति* (इस मनोहर कालभैरवाष्टक को पढ़ते हैं) *ते ध्रुवं कालभैरवाङ्घ्रिसंनिधिं* (वे निश्चय ही कालभैरव के चरणों में आश्रय को) *प्रयान्ति* (प्राप्त कर लेते हैं।)

जो लोग ज्ञान और मुक्ति प्राप्त करने के साधनरूप भक्तों के पुण्य की वृद्धि करने वाले, शोक-मोह-दैन्य-लोभ-क्रोध-ताप को नष्ट करने वाले इस मनोहर 'कालभैरवाष्टक' का पाठ करते हैं, वे निश्चय ही कालभैरव के चरणों का आश्रय प्राप्त करते हैं।

– इति –

शिवानन्दलहरी

(१)

कलाभ्यां चूडालंकृतशशिकलाभ्यां निजतपः-
फलाभ्यां भक्तेषु प्रकटितफलाभ्यां भवतु मे।
शिवाभ्यामस्तोकत्रिभुवनशिवाभ्यां हृदि पुन-
र्भवाभ्यामानन्दस्फुरदनुभवाभ्यां नतिरियम्॥

मे इयं नतिः (मेरी यह वन्दना) *शिवाभ्यां* (शिव-शिवा के लिये) *भवतु* (समर्पित हो) (उन दोनों) *कलाभ्यां* (कलाओं के स्रोत के लिये) *चूडा-अलंकृत-शशिकलाभ्यां* (चन्द्रकला से जिनकी शिखा सुशोभित है उनके लिये) *निजतपः फलाभ्यां* (उन दोनों के लिये जिन्होंने तपस्या द्वारा एक-दूसरे को प्राप्त किया है) *भक्तेषु प्रकटितफलाभ्यां* (उन दोनों के लिये जो भक्तों को फल प्रदान करते हैं) *अस्तोक-त्रिभुवनशिवाभ्यां* (उन दोनों शिव-शिवा को जो सम्पूर्ण तीनों लोकों के लिए माङ्गलिक हैं) *हृदि पुनः भवाभ्यां* (उन दोनों को जो ध्यान की ऊँचाईयों में बार-बार हृदय में प्रकट होते हैं) *आनन्द-स्फुरत्-अनुभवाभ्यां* (उनको जिनके ध्यान के अनुभव से आनन्द की प्राप्ति होती है।)

(संस्कृत में कर्ता के साथ कई विशेषण एक-साथ लगे रहते हैं, और दोनों की विभक्तियाँ मिलती हैं। हिन्दी में शब्दशः अनुवाद में वाक्य लम्बा हो जाता है। इसलिये, समझने में सुविधा के लिये, मुख्य वाक्य आरंभ में देकर विशेषणों की लड़ी को पीछे दिया गया है। अन्वय हिन्दी शब्दार्थ के अनुकूल है।)

मैं पार्वती-परमेश्वर दोनों को नमन करता हूँ। शिव-शिवा, अर्धनारीश्वर, प्रकृति-पुरुष (माया-ब्रह्म) के समान, संयुक्त हैं। सारी कलाएँ उन्हीं से प्रकट होती हैं। उनके केश शशिकला से अलङ्कृत हैं। अपने-अपने तप के

फलस्वरूप दोनों ने एक-दूसरे को प्राप्त किया है। वे भक्तों को कृपा-प्रसाद प्रदान करते हैं। तीनो लोकों के लिये वे सम्पूर्णरूप से माङ्गलिक हैं। ध्यान की उन्नति के साथ-साथ वे हृदय में बार-बार प्रकट होते हैं। उनके अनुभव के फलस्वरूप आनन्द की स्फूर्ति होती है।

मङ्गलाचरण के इस आरंभिक पद्य में आचार्य शिव-शिवा (पार्वती परमेश्वर) को नमन कर रहे हैं। कालिदास के **रघुवंश** का प्रारंभिक श्लोक भी, लगभग इसी भाँति, शिव-शिवा के सम्पृक्त स्वरूप की वन्दना करता है।

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥

इसी का अनुकरण करते हुए तुलसीदास रामायण के आरम्भ में वन्दना करते हैं। :

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्॥

(२)

गलन्ती शंभो त्वच्चरितसरितः किल्विषरजो
दलन्ती धीकुल्यासरणिषु पतन्ती विजयताम्।
दिशन्ती संसारभ्रमणपरितापोपशमनं
वसन्ती मच्चेतोहृदभुवि शिवानन्दलहरी॥

शम्भो (हे मङ्गलप्रद प्रभो!) *त्वत्* (आपके) *चरित-सरितः* (चरित्रों रूपी नदी की) *शिवानन्दलहरी* (शुभ आनन्द की लहर) *विजयताम्* (की सदा जय हो) *गलन्ती* (यह शुभ आनन्दलहरी वह कर आ रही है; ''गलन्ती'' का एक अर्थ छेदों वाला मटका भी है जिसमें से बूँद-बूँद पानी रिसता रहता है। शिवानन्दलहरी भगवान् शिवशंकर के चरित्रों रूपी कथासरिता से निकलती है) *किल्विषरजः दलन्ती* (यह आनन्दलहरी पापों की रज को हटाती है) *धी-कुल्या-सरणिषु* (चित्तवृत्तियों के मार्ग में) *पतन्ती* (प्रविष्ट होती है) *संसार-भ्रमण-परिताप*-(जीवन-मरण के संताप को) *उपशमनं दिशन्ती* (शान्त

करती है) *मत्-चेतः-हृदभुवि* (मेरे हृदयरूपी भूमि में) *वसन्ती* (प्रवेश करती है)।

हे प्रभो शिवशंकर! आपकी लीला-कथा रूपी सरिता से निकली शुभ आनन्द की उत्ताल तरंगों की जय हो। आपके चरित्रों की कथा-सरिता पापों की संचित धूल को दूर करती है। यह सरिता चित्तवृत्तियों के मार्ग से प्रविष्ट होकर मेरे हृदय रूपी सरोवर में पहुँचती है, और संसार में आवागमन रूपी मनस्ताप को शीतल करती है।

इस सुन्दर पद्य में शिवानन्द लहरी– जिसके आधार पर स्तोत्र का नाम दिया गया है– का सांग रूपक द्वारा वर्णन किया गया है। भगवान् शंकर की लीलाओं-चरित्रों की सरिता, चित्त की वृत्तियों में होकर हृदय-सरोवर में प्रवेश करती है। यह केवल संचित पापों की रज को ही नहीं साफ करती, बल्कि दिव्य आनन्द की तरंगें भी उत्पन्न करती है। जो मनुष्य भगवान् शिव की लीलाओं को हृदयङ्गम करता है, उसके पाप धुल जाते हैं, और मनस्तापों का शमन होता है। इतना ही नहीं, उसको दिव्य आनन्द की अनुभूति होती है।

(३)

त्रयीवेद्यं हृद्यं त्रिपुरहरमाद्यं त्रिनयनं
जटाभारोदारं चलदुरगहारं मृगधरम्।
महादेवं देवं मयि सदयभावं पशुपतिं
चिदालम्बं साम्बं शिवमतिविडम्बं हृदि भजे॥

महादेवं शिवं हृदि भजे (महादेव शिव का हृदय में ध्यान करता हूँ) *त्रयीवेद्यं* (उनको जो वेदत्रयी द्वारा जाने जा सकते हैं) *हृद्यं* (उनको जो हृदयदीप हैं) *त्रिपुरहरं* (उनको जो त्रिपुरहन्ता हैं) *त्रिनयनं* (उनको जिनके सूर्य, चन्द्र और अग्निरूपी तीन नेत्र हैं) *जटाभार-उदारं* (उनको जो जटाजूट से अलङ्कृत हैं) *चलत्-उरग-हारं* (उनको जिन्होंने चञ्चल सर्पों के आभूषण धारण किये हुए हैं) *मृगधरं* (उनको जिन्होंने हरिण हाथ में ले रखा है) *देवं* (देदीप्यमान प्रभु को) *मयि सदयभावं* (उनको जिनका मेरे लिये दयाभाव है) *पशुपतिं* (उनको जो प्राणियों के स्वामी हैं) *चित्-आलम्बं* (उनको जो चित्स्वरूप

हैं) *स-अम्बं* (उनको जो माता पार्वती के सदा साथ रहते हैं) *अतिविडम्बं* (उनको जो माया के अनेक रूप धारण करते हैं)।

जो वेदत्रयी (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद) द्वारा जाने जा सकते हैं, हृदय को दिव्य बनाते हैं, त्रिपुरारि (आत्मा को आच्छादित करने वाले कारण, सूक्ष्म और स्थूल शरीरों को हटाने वाले) हैं, जिनके सूर्य, चन्द्र और अग्नि तीन नेत्र हैं, जो जटाजूट से अलंकृत हैं, चञ्चल सर्पों से सुशोभित हैं, जिन्होंने भागते हुए हरिण को हाथ में पकड़ रखा है, जो देवदेव महादेव हैं, मुझ पर दयाभाव रखने वाले पशुपति हैं, चित्स्वरूप हैं और जो माया के अनेक रूप धारण करते हैं, उन भगवान् शिव का मैं हृदय में चिन्तन करता हूँ।

इस पद्य में ध्यान करने के लिये भगवान् शिव के स्वरूप का वर्णन है। उनके विषय में तीन वेदों से ही ज्ञान प्राप्त हो सकता है। भगवान् शिव त्रिपुरारि (तीन पुरों के शत्रु) कहलाते हैं क्योंकि उन्होंने तारकासुर के तीन बेटों (तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली) के गगनविहारी तीन पुरों को नष्ट किया था। एक बार परिहास में पार्वती ने उनकी दोनों आँखें मूँद लीं, तो उन्होंने अपनी तीसरी आँख प्रकट कर ली और वे त्रिनयन कहलाये। शिव के शरीर पर सर्पों के आभूषण और हाथ में दौड़ते हुए हरिण के बारे में कथा है कि दारुकावन में एक बार ऋषियों ने शिव को परास्त करने के लिये एक यज्ञ किया जिसमें से सर्प और मृग प्रकट हुए। भगवान् शिव ने उन्हें वश में कर आभूषण रूप में धारण किया।

(४)

सहस्रं वर्तन्ते जगति विबुधाः क्षुद्रफलदा
न मन्ये स्वप्ने वा तदनुसरणं तत्कृतफलम्।
हरिब्रह्मादीनामपि निकटभाजामसुलभं
चिरं याचे शंभो शिव तव पदाम्भोजभजनम्॥

जगति (संसार में) *क्षुद्रफलदाः* (अल्प फल देने वाले) *विबुधाः* (देवता लोग) *सहस्रं वर्तन्ते* (हजारों मिल सकते हैं) *तत् अनुसरणं* (उनकी सेवा) *तत्-कृत-फलम्* (उनकी कृपा का प्रसाद) *वा स्वप्ने न मन्ये* (स्वप्न में भी

स्वीकार नहीं करता हूँ) *शंभो शिव* (हे शिवशम्भो!) *निकट-भाजां* (आपके अत्यंत प्रिय) *हरि-ब्रह्मा-आदीनां अपि असुलभं* (ब्रह्मा और विष्णु आदि देवताओं के लिये भी दुर्लभ) *तव-पद-अम्भोज-भजनं* (आपके चरणकमलों के भजन को) *चिरं याचे* (सदा-सदा के लिये माँगता हूँ।)

हे शिव शम्भो! संसार में अल्प फलदाता हजारों देवता हैं। मैं स्वप्न में भी न तो उनको मान्यता दूँगा, न उनकी सेवा करूँगा, और न उनकी कृपा के लाभ को स्वीकार करूँगा। आपके चरण-कमलों का भजन ही, जो आपके अत्यंत प्रिय ब्रह्मा-विष्णु आदि के लिये दुर्लभ है, वही मेरा सर्वस्व है। मैं तो सदा उसी की याचना करता रहूँगा।

इस पद्य में देवताओं के भी परमपूज्य परमेश्वर शिव के चरण-कमलों में अनन्य भक्ति का वर्णन है। यामुनाचार्य ने अपने इष्टदेव श्रीमन्नारायण के चरण कमलों में अपनी अनन्य भक्ति को स्तोत्ररत्नम् (२७) में लगभग ऐसे ही शब्दों में व्यक्त किया है :

तवामृतस्यन्दिनि पादपङ्कजे
निवेशितात्मा कथमन्यदिच्छति।
स्थितेऽरविन्दे मकरन्दनिर्भरे
मधुव्रतो नेक्षुरसं हि वीक्षते॥

(५)

स्मृतौ शास्त्रे वैद्ये शकुनकवितागानफणितौ
पुराणे मन्त्रे वा स्तुतिनटनहास्येष्वचतुरः।
कथं राज्ञां प्रीतिर्भवति मयि कोऽहं पशुपते
पशुं मां सर्वज्ञ प्रथितकृपया पालय विभो॥

स्मृतौ (नीतिशास्त्र सम्बन्धी स्मृतियों में) *शास्त्रे* (शास्त्रों में) *वैद्ये* (चिकित्सा सम्बन्धी आयुर्वेद में) *शकुन*-(नक्षत्रज्ञान के आधार पर शकुन-विचार आदि की निपुणता में) *कविता-गान-फणितौ* (काव्यकला, गान, और संगीत में) *पुराणे* (प्राचीन कथाओं में) *मन्त्रे वा* (अथवा मन्त्रविद्या में) *स्तुति-नटन-हास्येषु* (स्वामियों की प्रशंसा करने में, उनके सामने नृत्य करने में, और

प्रहसनों में) *अचतुरः* (मैं प्रवीण नहीं हूँ) *कः अहं* (मैं ऐसा कौन महत्त्वपूर्ण पुरुष हूँ) *कथं* (किस प्रकार?) *मयि* (मुझमें) *राज्ञां* (राजाओं की) *प्रीतिः* (प्रेम, कृपा) *भवति* (हो सकती है) *सर्वज्ञ!* (हे सब कुछ जानने वाले!) *पशुपते!* (हे प्राणियों के स्वामी!) *विभो!* (हे सर्वव्यापी!) *मां पशुं* (मुझ असहाय प्राणी को) *प्रथितकृपया पालय* (सर्वविदित महान कृपा से रक्षा कीजिये)।

मैं न स्मृतियों का ज्ञाता हूँ, न शास्त्रों, वैद्यक, शकुन-विचार, काव्य, छन्दशास्त्र, गान, प्राचीन कथाओं अथवा मन्त्रविज्ञान में निपुण हूँ। मैं राजाओं को कैसे प्रसन्न कर सकता हूँ? मुझमे कौनसी विशेषता है? हे भगवन् पशुपते! हे सर्वज्ञ! हे सर्वव्यापी प्रभो! मुझ पशुकी, माया में बँधे प्राणी की, अपनी सर्वविदित उदार कृपा से रक्षा कीजिये।

(६)

घटो वा मृत्पिडोऽप्यणुरपि च धूमोऽग्निरचलः
पटो वा तन्तुर्वा परिहरति किं घोरशमनम्।
वृथा कण्ठक्षोभं वहसि तरसा तर्कवचसा
पदाम्भोजं शंभोर्भज परमसौख्यं व्रज सुधीः॥

घटः (घड़ा) *मृत्पिण्डः वा* (मिट्टी का ढेला) *अणुः अपि* (छोटा सा कण) *धूमः* (धुआँ) *अग्निः* (आग) *अचलः* (पहाड़) *पटः* (कपड़ा) *वा तन्तुः वा* (अथवा धागा) *किं* (क्या?) *घोरशमनं* (भयानक मृत्यु के देवता यम को) *परिहरति* (हटा सकते हैं) *तरसा तर्कवचसा* (तीखी तर्कयुक्त वचनावली से) *वृथा कण्ठक्षोभं वहसि* (व्यर्थ में कण्ठपीड़ा का बोझ ढोते हो) *व्रज सुधीः* (हे बुद्धिमान् दौड़कर) *परमसौख्यं शम्भोः पद-अम्भोजं भज* (परम सुखदायी भगवान् शिव के चरणकमलों का आश्रय ले)

(तार्किक लोग शास्त्रार्थ करते रहते हैं) घड़ा या मिट्टी का ढेला? छोटा-सा कण अथवा पहाड़? धुँआ अथवा अग्नि? कपड़ा अथवा धागा? क्या ऐसा व्यर्थ वाद-विवाद भयानक यम को दूर रख सकेगा? ऐसे तीखे तर्कों से व्यर्थ ही अपने गले को दुःखा रहा है। अगर तू बुद्धिमान् है तो दौड़कर परमसुखदायी भगवान् शिव के चरण-कमलों का आश्रय ले।

इस पद्य में शास्त्र ज्ञान में उलझे विद्वानों के विद्या-व्यसन की व्यर्थता बताई गई है। ब्रह्म-जीव की चर्चा में मिट्टी-घड़ा, धुँआ-अग्नि आदि के उदाहरण देकर बहुधा वाद-विवाद किया जाता है। क्या यह सब शास्त्रार्थ मृत्यु को दूर रख सकेगा? क्या मृत्यु का भयंकर देवता तीखे तर्कों से प्रभावित होगा?

भज गोविन्दं भज गोविन्दं
गोविन्दं भज मूढ़मते।
सम्प्राप्ते सन्निहिते मरणे
नहि नहि रक्षति डुकृञ् करणे॥

(७)

मनस्ते पादाब्जे निवसतु वचः स्तोत्रफणितौ
करौ चाभ्यर्चायां श्रुतिरपि कथाकर्णनविधौ।
तव ध्याने बुद्धिर्नयनयुगलं मूर्तिविभवे
परग्रन्थान्कैर्वा परमशिव जाने परमतः॥

मनः ते पाद-अब्जे निवसतु (मेरा मन आपके चरण कमलों में आश्रित रहे) *वचः स्तोत्रफणितौ* (मेरी वाणी आपकी स्तुति करने में लगी रहे) *करौ च अभ्यर्चायां* (मेरे दोनों हाथ आपकी अर्चना करते रहें) *श्रुतिः अपि कथा कर्णन-विधौ* (कान आपके गुणानुवाद सुनते रहें) *बुद्धिः तव ध्याने* (बुद्धि आपके ध्यान में मग्न रहे) *नयनयुगलं मूर्तिविभवे* (मेरे दोनों नेत्र आपकी मूर्त्ति के वैभव को निहारते रहें) *परम शिव* (हे परमेश्वर शिवशम्भो!) *परं अतः* (इनके अतिरिक्त) *परग्रन्थान्* (दूसरे ग्रन्थों को) *कैः वा जाने* (किनके द्वारा भली भाँति समझूँ?)

हे परम शिव! मेरा मन सदा आपके चरण कमलों में लगा रहे। मेरी वाणी सदा आपकी स्तुति और कीर्तन करती रहे। मेरे दोनों हाथ आपकी अर्चना करते रहे। मेरे कान आपकी कथाएँ सुनते रहें। मेरी बुद्धि आपका मनन करती रहे। और मेरे दोनों नेत्र आपकी मूर्ति के दर्शन करते हुए उसका वैभव निहारते रहें। जब मेरी सारी इन्द्रियाँ और अवयव आपकी भक्ति में

इस भाँति संलग्न हों तो मैं इन इन्द्रियों के अतिरिक्त, दूसरे किस साधन से अन्य ग्रन्थों को जान पाऊँगा?

नवधा भक्ति में मन, बुद्धि, आँख, कान, जिह्वा, हाथ-पैर सब प्रभुसेवा में सच्ची निष्ठा से लगे रहते हैं। प्रभु की अनन्य भक्ति के अतिरिक्त अवकाश ही नहीं बचता। आचार्य इस पद्य में ऐसी ही निष्ठायुक्त समस्त इन्द्रियों को प्रभु-सेवा में समर्पण की चर्चा कर रहे हैं। राजा कुलशेखर ने *मुकुन्दमाला* में ऐसी ही सर्वाङ्गीण भक्ति का वर्णन इन पदों में किया है :

बद्धेनाञ्जलिना नतेन शिरसा गात्रैः सरोमोद्गमैः
कण्ठेन स्वरगद्गदेन नयनेनोद्गीर्णवाष्पाम्बुना।
नित्यं त्वच्चरणारविन्दयुगलध्यानामृतस्वादिनाम्
अस्माकं सरसीरुहाक्ष सततं सम्पद्यतां जीवितम्॥ (१६)

जिह्वे कीर्तय केशवं मुररिपुं चेतो भज श्रीधरं
पाणिद्वन्द्व समर्चयाच्युतकथाः श्रोत्रद्वय त्वं शृणु।
कृष्णं लोकय लोचनद्वय हरेर्गच्छाङ्घ्रियुग्मालयं
जिघ्र घ्राण मुकुन्दपादतुलसीं मूर्धन्नमाधोक्षजम्॥ (२१)

चेतश्चिन्तय कीर्तयस्व रसने नम्रीभव त्वं शिरो
हस्तावञ्जलिसंपुटं रचयतं वन्दस्व दीर्घं वपुः।
आत्मन् संश्रय पुण्डरीकनयनं नागाचलेन्द्रस्थितं
धन्यं पुण्यतमं तदेव परमं दैवं हि संसिद्धये॥ (३५)

(८)

यथा बुद्धिः शुक्तौ रजतमिति काचाश्मनि मणि-
र्जले पैष्टे क्षीरं भवति मृगतृष्णासु सलिलम्।
तथा देवभ्रान्त्या भजति भवदन्यं जडजनो
महादेवेशं त्वां मनसि च न मत्वा पशुपते॥

यथा (जैसे) *शुक्तौ रजतं इति* (सीप में चाँदी का भ्रम) *काच-अश्मनि मणिः* (काँच के टुकड़े में मणि का भ्रम) *पैष्टे जले क्षीरं* (आटे मिले हुए जल में दूध का भ्रम) *मृगतृष्णासु सलिलम्* (चमकती रेत में पानी का भ्रम)

बुद्धिः भवति (भ्रमित बुद्धि होती है) *तथा* (उसी प्रकार) *देव पशुपते* (हे भगवान् पशुपते!) *त्वां महादेवेशं* (आप महादेव को) *मनसि न मत्वा* (मन में नहीं मान कर) *जडजनः* (बुद्धिहीन मनुष्य) *भ्रान्त्या* (भ्रम से, भ्रांति से) *भवत्-अन्यं भजति* (आपके अतिरिक्त दूसरे देवताओं की सेवा करता है।)

जैसे सीपी को चाँदी समझकर बुद्धि भ्रमित हो जाती है, काँच के टुकड़े में मणि का भ्रम हो जाता है, आटे मिले हुए पानी को दूध समझने की भूल हो जाती है, चमकती रेत में पानी का आभास हो जाता है, उसी भांति, हे देव पशुपते! भ्रान्ति में जड़मति मनुष्य, देवाधिदेव आपको मन में नहीं मानकर, आपके अतिरिक्त दूसरे देवताओं की सेवा करने लगते हैं।

कुलशेखर *मुकुन्दमाला* में कहते हैं —

आश्चर्यमेतद्धि मनुष्यलोके
सुधां परित्यज्य विषं पिबन्ति।
नामानि नारायणगोचराणि
त्यक्त्वान्यवाचः कुहकाः पठन्ति॥ (३९)

(६)

गभीरे कासारे विशति विजने घोरविपिने
विशाले शैले च भ्रमति कुसुमार्थं जडमतिः।
समर्प्यैकं चेतःसरसिजमुमानाथ भवते
सुखेनावस्थातुं जन इह न जानाति किमहो॥

जडमतिः (बुद्धिहीन मनुष्य) *कुसुम-अर्थं* (पूजा के पुष्पों के लिये) *गभीरे कासारे* (गहरे तालाब में) *विशति* (प्रविष्ट होता है) *विजने घोरविपिने* (निर्जन घोर जंगल में) *विशाले शैले च भ्रमति* (और बड़े ऊँचे पहाड़ पर घूमता है) *उमानाथ किम् अहो* (हे उमा के स्वामी शिवशंकर! कैसे आश्चर्य की बात है!) *एकं चेतः सरसिजं भवते समर्प्य* (अपने अकेले हृदय-कमल को आपके लिये समर्पित कर) *सुखेन अवस्थातुं जन इह न जानाति* (मनुष्य सुख से रहना नहीं जानता है।)।

कैसी अजीब बात है कि बुद्धिहीन मनुष्य पूजा के लिये पुष्प एकत्रित

करने के लिये गहरे तालाबों में घुसते हैं, निर्जन घोर जंगलों और बड़े-बड़े ऊँचे पहाड़ों में घूमते हैं। (ये जड़मति नहीं जानते कि बाहर संचित किये हुए पुष्प तो हृदय-कमल के प्रतीक हैं। वास्तविक महत्त्व तो मानसी पूजा की है) हे उमानाथ! ऐसे लोग नहीं जानते कि केवल एक अपने हृदय-कमल को आपके लिये अर्पित कर ये सुखपूर्वक रह सकते हैं।

आचार्य शङ्कर ने परापूजा व शिवमानसपूजा में सच्चे हृदय से की गई पूजा-अर्चना का महत्त्व बताया है। परापूजा के आरम्भ में शङ्का है :

अखण्डे सच्चिदानन्दे निर्विकल्पैकरूपिणि।
स्थितेऽद्वितीयभावेऽस्मिन्कथं पूजा विधीयते॥

और अन्त में, समाधान है :

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं।
पूजा ते विविधोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः॥
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो।
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्॥

(१०)

नरत्वं देवत्वं नगवनमृगत्वं मशकता
पशुत्वं कीटत्वं भवतु विहगत्वादिजननम्।
सदा त्वत्पादाब्जस्मरणपरमानन्दलहरी-
विहारासक्तं चेद् हृदयमिह किं तेन वपुषा॥

नरत्वं (नरयोनि में जन्म) *देवत्वं* (देवयोनि में जन्म) *नगवनमृगत्वं* (पहाड़ों और जंगलों के पशुओं की योनि में जन्म) *मशकता* (मच्छर— जैसे कीड़े-मकोड़ों में जन्म) *पशुत्वं कीटत्वं विहगत्व-आदि-जननम्* (पशुयोनि, कीटयोनि, पक्षियोनि आदि में जन्म) *भवतु* (हो) *किं तेन वपुषा* (इन नीच योनियों में जन्मे शरीर से क्या यदि) *सदा* (सब स्थितियों में) *त्वत्* (आपके) *पाद-अब्ज-*(चरणकमल) *स्मरण-परम-आनन्दलहरी-विहार-आसक्तं* (स्मरण के परमानन्द की तरङ्गों में विहार करने में आसक्त हो) *इह हृदयं* (यहाँ हृदय) *चेद्* (हो)।

मैं मनुष्य योनि में जन्म लूँ अथवा देवयोनि में, पहाड़ों और जंगलों में पशुत्व रूप में पैदा होऊँ अथवा मच्छर– जैसे कीट-पतंगों में जन्म लूँ, मेरा जन्म पशुयोनि, कीटयोनि अथवा विहगयोनि आदि किसी भी योनि में हो। यदि आपके चरणकमलों के स्मरण के परम आनन्द की तरंगों का मैं सुख भोग रहा होऊँ तो इन देहों का क्या महत्व?

कुलशेखर की **मुकुन्दमाला** में प्रार्थना है :

मुकुन्द मूर्ध्ना प्रणिपत्य याचे
भवन्तमेकान्तमियन्तमर्थम्।
अविस्मृतिस्त्वच्चरणारविन्दे
भवे-भवे मेऽस्तु भवत्प्रसादात्॥

(११)

वटुर्वा गेही वा यतिरपि जटी वा तदितरो
नरो वा यः कश्चिद्भवतु भव किं तेन भवति।
यदीयं हृत्पद्मं यदि भवदधीनं पशुपते
तदीयस्त्वं शंभो भवसि भवभारं च वहसि॥

वटुः वा गेही वा (ब्रह्मचारी हो अथवा गृहस्थ) *यतिः अपि जटी वा* (वानप्रस्थ में यति हो अथवा सन्यासी) *तत् इतरः नरः वा* (इनसे अलग कोई और अवस्था में मनुष्य हो) *यः कश्चित् भवतु* (जो कोई भी हो– इसका क्या महत्त्व है?) *भव किं तेन भवति* (हे भव! इससे क्या होता है?) *पशुपते* (हे प्राणियों के स्वामी!) *यदीयं हृत् पद्मं यदि भवत् अधीनं* (जिसका हृदयकमल यदि आपकी शरण में है तो) *शंभो* (हे शुभकारी प्रभो!) *तदीयः त्वं भवसि* (आप उसके हो जाते हैं) *भवभारं च वहसि* (और उसके सांसारिक भार को आप वहन करते हैं।)

हे भव! (भगवान् शिव!) मनुष्य विद्याध्ययन करने वाला ब्रह्मचारी हो, गृहस्थ हो, वानप्रस्थी यति हो, सन्यासी हो, अथवा इनसे भी अलग कोई और हो-कोई भी हो, इससे क्या होता है? यदि, हे पशुपति! जिसका हृदय-कमल आपके अधीन हो तो आप उसके हो जाते हैं, और उसका सांसारिक भार स्वयं वहन करते हैं।

सच्चे भक्त के लिये वर्ण, आश्रम आदि की सीमाओं का कोई महत्त्व नहीं हैं। *नारद भक्तिसूत्र* (७२) में कहा है, "*नास्ति तेषु जाति-विद्या-रूप-कुल-धन-क्रियादिभेदः*" —भक्तो में जाति, विद्या, रूप, कुल, धन, क्रिया आदि के भेद नहीं होते। अष्टावक्र की प्रसिद्ध कथा है। जनक ने ब्रह्मज्ञान की चर्चा के लिये पंडितों को बुलाया, लेकिन अष्टावक्र (आठ जगह से टेढ़ा-मेढ़ा कुरूप शरीर) को नहीं बुलाया। जब बिना बुलाये अष्टावक्र पंडितों की सभा में पहुँचे तो पंडित नाक-भों सिकोड़ने लगे। उन्हें देखकर अष्टावक्र ने हँसते हुए कहा, "जनक, तुमने जिन्हें ब्रह्मज्ञानी पंडित समझ कर एकत्र किया है, ये तो सब चमार–चमड़े के पारखी हैं। ये मुझ सीधे-सच्चे को नहीं देखते, मेरे टेढ़े-मेढ़े शरीर को ही देख रहे हैं।" *यतस्त्वदीयाः* भक्त तो सब भगवान् के हैं, उनमें कौन ऊँचा, कौन नीचा? जाति, विद्या आदि से क्या फर्क पड़ता है। और जो भक्त भगवान् के हैं, भगवान् ने जिनका सांसारिक भार ढ़ोने का जिम्मा ले लिया है उनके लिये *गीता* (पृ. २२) का आश्वासन है।

अनन्याँश्चिन्तयन्तो मां ये जना पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(१२)

गुहायां गेहे वा वहिरपि वने वाऽद्रिशिखरे
जले वा वह्नौ वा वसतु वसतेः किं वद फलम्।
सदा यस्यैवान्तःकरणमपि शंभो तव पदे
स्थितं चेद्योगोऽसौ स च परमयोगी स च सुखी॥

गुहायां (कंदरा में) *गेहे वा* (अथवा घर में) *वहिः अपि* (अथवा घर के बाहर) *वने* (वन में) *वा अद्रिशिखरे* (अथवा पहाड़ की चोटी पर) *जले* (जलाशय में) *वा वह्नौ* (अथवा अग्नि में) *वसतु* (वास करे) *वद वसतेः किं फलम्* (कहिये, रहने का क्या महत्त्व है?) *शंभो* (हे भगवान् शिवशंकर!) *यस्य एव अन्तःकरणम् अपि* (जिस किसी का भी हृदय, (अन्तःकरण) *तव पदे स्थितं चेत्* (यदि आपके चरणकमलों में स्थित हो

तो) *असौ योगः स च परमयोगी स च सुखी* (वही योग है, और ऐसा भक्त ही परमयोगी है, और सुखी है)।

कोई भले ही घर में रहे, चाहे बाहर रहे, वनों में रहे चाहे पर्वतों की चोटियों पर, पानी में रहे चाहे अग्नि में– कहीं भी निवास करे। बताइये निवास-स्थान का क्या महत्व है। हे शिवशंकर! यदि किसी का अन्तःकरण सदा आपके चरणों में स्थित है, जो आपका अनन्य भक्त है, तो वही योग है, वह भक्त ही परमयोगी और परमसुखी है।

पिछले पद्य में बताया कि मनुष्य किसी भी अवस्था में, आश्रम में हो शिव-भक्ति के लिए यह महत्त्व की बात नहीं है। महत्त्व की बात तो यह है कि उसका हृदय प्रभुचरणों में समर्पित है। इस पद्य में स्थान - निवासस्थान – के संदर्भ में बताया गया है कि कौन कहाँ रहता है इसका कोई अर्थ नहीं है। मुख्य बात तो भगवान् शिव के चरणों में दृढ़ भक्ति की है। शिव का अनन्य भक्त परमयोगी है, परमसुखी है।

(१३)

असारे संसारे निजभजनदूरे जडधिया

भ्रमन्तं मामन्धं परमकृपया पातुमुचितम्।

मदन्यः को दीनस्तव कृपणरक्षातिनिपुण-

स्त्वदन्यः को वा मे त्रिजगति शरण्यः पशुपते॥

असारे संसारे (व्यर्थ के आवागमन के चक्कर में) *निजभजन दूरे* (प्रभु की सेवा से दूर) *जडधिया भ्रमन्तं* (जड़ता के कारण खोखले सांसारिक प्रलोभनों में चक्कर लगाते हुए को) *माम् अन्धं* (मुझ विवेकशून्य को) *परम कृपया* (आपकी महती वत्सलता के कारण) *पातुम् उचितम्* (बचाना उचित ही है) *पशुपते* (हे प्राणनाथ!) *मद् अन्यः को दीनः तव* (आपके लिए मुझसे दूसरा ऐसा कौन दीन-दुःखी होगा) *कृपण-रक्षा-अति-निपुणः* (ओर आप तो दीन-दुःखियों के दुःख दूर करने में अत्यन्त निपुण हैं।) *त्वद् अन्यः को वा* (और आपके अतिरिक्त और कौन) *त्रिजगति मे शरण्यः* (त्रिभुवन में मेरा आश्रय है)।

अपनी जड़ता के कारण संसार में आने-जाने के व्यर्थ चक्कर में पड़ा हुआ, और आपके भजन से दूर मुझ विवेकहीन अंधे पर आप भक्तवत्सल की कृपा उचित ही है। मुझ जैसा दीन-मलीन और आप जैसा दीन-दुखियों की रक्षा करने में निपुण, हे पशुपते! और कहाँ मिलेगा?

यामुनाचार्य के *स्तोत्ररत्नम्* का एक पद्य मिलाइये:

निमज्जतोऽनन्त! भवार्णवान्तः
चिराय मे कूलमिवासि लब्धः।
त्वयापि लब्धं भगवन्निदानी-
मनुत्तमं पात्रमिदं दयायाः॥

(हे अनन्त! भवसागर में भटक-भटक कर, अब तेरे चरणों के तट पर आया हूँ। और, हे प्रभो! आपके चरणों में भी एक अद्वितीय दया का पात्र आया है।)

(१४)

प्रभुस्त्वं दीनानां खलु परमबन्धुः पशुपते!
प्रमुख्योऽहं तेषामपि किमुत बन्धुत्वमनयोः।
त्वयैव क्षन्तव्याः शिव मदपराधाश्च सकलाः
प्रयत्नात्कर्तव्यं मदवनमियं बन्धुसरणिः॥

पशुपते! (हे प्राणियों के स्वामी!) *प्रभुः* (ईश्वर) *त्वं दीनानां खलु परमबन्धुः* (आप दीनों के परम हितकारी हैं) *तेषांअपि* (और उनमें भी मैं) *अहं प्रमुख्यः* (मैं अग्रगण्य हूँ) *किं उत अनयोः बन्धुत्वं* (सचमुच यह कैसा सम्बन्ध है!) *शिव* (हे भगवन् शिव!) *त्वया एव क्षन्तव्याः* (आपके द्वारा क्षमा करने योग्य हैं) *सकलाः मत्-अपराधाः* (मेरे सारे अपराध) *प्रयत्नात् कर्तव्यं इयं मत् अवनम्* (अगर कुछ प्रयत्न करना पड़े तब भी मेरी रक्षा करना कर्तव्य है) *इयं बन्धुसरणि*-(बान्धवों में- सम्बन्धियों में यही रीति है)।

प्रभो! आप दीनों के परम हितकारी बन्धु हैं। पशुपते! दीन-दुखियों में मैं अग्रगण्य हूँ। यह बन्धुत्व का कैसा संयोग है! इसलिए, हे शिव! मेरे समस्त अपराध आप द्वारा क्षमा करने योग्य हैं। यदि कुछ कठिनाई भी

हो, कुछ प्रयत्न भी करना पड़े, तो भी मेरी रक्षा का भार आप पर है। बन्धुओं में सम्बन्धों की यही रीति प्रचलित है।

(*आलवन्दार स्तोत्र* में यामुनाचार्य का निवेदन है —)

निमज्जतोऽनन्त! भवार्णवान्त-
श्चिराय मे कूलमिवासि लब्धः।
त्वयापि लब्धं भगवन्निदानी-
मनुत्तमं पात्रमिदं दयायाः॥
अभूतपूर्वं मम भावि किं वा
सर्वं सहे मे सहजं हि दुःखम्।
किन्तु त्वदग्रे शरणागतानां
पराभवो नाथ! न तेऽनुरूपः॥

(१५)

उपेक्षा नो चेत्किं न हरसि भवद्ध्यानविमुखां
दुराशाभूयिष्ठां विधिलिपिमशक्तो यदि भवान्।
शिरस्तद्वैधात्रं ननु खलु सुवृत्तं पशुपते
कथं वा निर्यत्नं करनखमुखेनैव लुलितम्॥

उपेक्षा नः चेत् (यदि मेरी ओर उपेक्षा नहीं है तो) *किं न हरसि* (क्यों नहीं मिटाते) *भवद्-ध्यान-विमुखां* (आपके ध्यान से विमुख) *दुराशाभूयिष्ठां* (अत्यंत बुरी कामनाओं से ग्रसित) *विधिलिपिम्* (विधि के भाग्य निर्धारित करने वाले लेख को) *यदि भवान् अशक्तः* (अगर आप ऐसा नहीं कर सकते तो) *पशुपते* (हे प्रभो शिवशंकर!) *तद् वैधात्रं ननु खलु शिरः* (विधाता ब्रह्मा का वह पाँचवा सिर) *सुवृत्तं* (यह प्रसिद्ध कथा है) *कथं वा* (कैसे) *निर्यत्नं* (बिना किसी प्रयत्न, बड़ी सरलता से)। *करनखमुखेन एव लुलितम्* (हाथ के नाखूनों से ही नोंच कर अलग कर दिया)।

प्रभो पशुपते! ऐसा लगता है कि आप मेरी ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो आप मेरी उस भाग्य-लिपि को क्यों नहीं मिटाते जिसमें आपके ध्यान से विमुख होना, और बुरी-बुरी कामनाएँ करना

लिखा है। आप यह नहीं कर सकते यह तो संभव नहीं है। यह सर्वविदित है कि आपने सहजभाव से, बिना किसी प्रयत्न किये, ब्रह्मा का वह पाँचवाँ मस्तक हाथ के नाखूनों की नोंक से नोंच कर अलग कर दिया था।

इस पद्य में भक्त की उलाहनाभरी याचना है। वह प्रभु से अपनी दुर्बलता का परिहार करने की प्रार्थना कर रहा है। वह भगवान् की ओर उन्मुख होना चाहता है, और बुरी वासनाओं को त्यागना चाहता है। लेकिन ऐसा नहीं हो पाता। शायद उसके भाग्य में यही लिखा है कि वह बुरी वासनाओं में फँसा रहकर भगवान् से विमुख रहे। वह याचना कर रहा है कि प्रभो! इस भाग्य-लिपि को मिटाइये। लेकिन ऐसा लगता है, आप मेरी ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं। यदि ऐसा नहीं है तो आप मेरी भाग्य-रेखाओं को क्यों नहीं मिटाते?

यहाँ एक पौराणिक आख्यान की ओर संकेत है। **वाराहपुराण** में कथा है कि आरंभ में ब्रह्मा के पाँच शिर थे। ब्रह्मा ने रुद्र की सृष्टि की और 'कपाली' सम्बोधन का प्रयोग किया। रुद्र ने इस अपमान भरे सम्बोधन से क्रुद्ध होकर अपने अंगूठे के नख से ब्रह्मा का पाँचवाँ सिर अलग कर दिया।

(१६)

विरिञ्चिर्दीर्घायुर्भवतु भवता तत्परशिर–
श्चतुष्कं संरक्ष्यं स खलु भुवि दैन्यं लिखितवान्।
विचारः को वा मां विशदकृपया पाति शिव ते
कटाक्षव्यापारः स्वयमपि च दीनावनपरः॥

विरिञ्चिः दीर्घ-आयुः भवतु (विधाता दीर्घायु हों) *तत्-पर-शिरः-चतुष्कं भवता संरक्ष्यं* (उनके बचे हुए चार शिर आप द्वारा रक्षा करने योग्य हैं) *स खलु भुवि दैन्यं लिखितवान्* (ब्रह्मा ने सचमुच इस संसार में दुःख-ही-दुःख लिखे हैं) *विचारः कः* (लेकिन इसकी क्या चिन्ता है) *शिव* (हे भगवन् शिव!) *ते दीन-अवनपरः* (आपका दीनों की रक्षा में तत्पर) *कटाक्ष-व्यापारः विशद्-कृपया स्वयं अपि पाति* (आपका महान् करुणा-कटाक्ष अपने-आप रक्षा करता है।)।

भाग्य-विधाता ब्रह्मा चिरायु हों, उनके बचे हुए चार शिर रक्षा करने योग्य हैं। उन्होंने तो इस संसार में दुःख-ही-दुःख लोगों के भाग्य में लिखे हैं। लेकिन चिन्ता की कोई बात नहीं। हे शिवशम्भो! आप का कृपा-कटाक्ष तो अपने-आप ही दीन-दुःखियों की रक्षा में तत्पर रहता है।

ब्रह्मा लोगों के भाग्य में कितने ही दुःख लिख ले, जब भगवान् शिव जैसे भक्त-वत्सल हैं तो भाग्य की रेखाओं की क्या चिन्ता?

(१७)

फलाद्वा पुण्यानां मयि करुणया वा त्वयि विभो
प्रसन्नेऽपि स्वामिन् भवदमलपादाब्जयुगलम्।
कथं पश्येयं मां स्थगयति नमःसंभ्रमजुषां
निलिम्पानां श्रेणिर्निजकनकमाणिक्यमुकुटैः॥

विभो (हे सर्वव्यापी परमेश्वर!) *पुण्यानां फलाद् वा* (मेरे पुण्यों के फलस्वरूप अथवा) *मयि करुणया वा* (आपकी मेरे ऊपर कृपा के कारण) *त्वयि प्रसन्ने अपि* (आपके प्रसन्न होने पर भी) *स्वामिन्* (हे स्वामी!) *भवद्* (आपके) *अमल-पादाब्जयुगलम्* (निर्मल चरणकमल युगल को) *कथं पश्येयं* (कैसे देख सकूँ?) *नमः-संभ्रमजुषां* (आपकी वन्दना में लगे हुए) *निलिम्पानां* (देवताओं की) *श्रेणिः* (पंक्ति) *निजकनकमाणिक्यमुकुटैः* (अपने सोने और लाल मणियों के मुकुटों से) *मां स्थगयति* (मुझे रोकती है)।

हे सर्वव्यापी परमेश्वर! मेरे पुण्यों के फलस्वरूप अथवा मेरे ऊपर आपकी कृपा के कारण, आपके प्रसन्न होने पर भी, आपके दिव्य चरण कमलों को मैं कैसे देखूँ? स्वामी! आपकी वन्दना में पंक्तिवद्ध देवताओं के सोने और लालमणियों से जड़े मुकुटों की चकाचौंध मुझे आपके चरण कमलों का दर्शन करने से रोकती हैं।

भगवान् शिव देव-देव महादेव हैं। उनके चरण-कमलों की देवगण वन्दना करते हैं। उनके राजमुकुटों का वैभव दीन भक्तों को दर्शन करने से रोकता है। इस व्यवधान को सामने देखकर असहाय विनयशील भक्त भगवान् शिव से गुहार कर रहा है कि आपकी कृपा होने पर भी मैं आपके चरण-कमलों के दर्शन नहीं कर पा रहा हूँ।

(१८)

त्वमेको लोकानां परमफलदो दिव्यपदवीं
वहन्तस्त्वन्मूलां पुनरपि भजन्ते हरिमुखाः।
कियद्वा दाक्षिण्यं तव शिव मदाशा च कियती
कदा वा मद्रक्षां वहसि करुणापूरितदृशा॥

त्वम् एकः लोकानां परमफलदः (केवल आप ही सब लोगों के लिये परमफल-मुक्ति-प्रदान करने वाले हैं) *हरिमुखाः* (विष्णु आदि देवगण) *त्वत्-मूलां* (आपसे प्राप्त की हुई) *दिव्यपदवीं वहन्तः* (दिव्य पदवी पर रहते हुए) *पुनः अपि भजन्ते* (और अधिक ऊँची पदवी के लिए फिर प्रार्थना करते हैं) *शिव* (हे भगवान् शिव!) *कियद् वा तव दाक्षिण्यं* (आपकी कितनी बड़ी कृपालुता!) *कियती च मद्-आशा* (और कितनी बड़ी मेरी अभिलाषा) *कदा वा* (कब, किस समय) *करुणापूरितदृशा* (करुणापूर्ण कृपाकटाक्ष से) *मद् रक्षां वहसि* (मेरी रक्षा की जिम्मेदारी कब लोगे?)

हे परमेश्वर शिव! लोगों के लिये परमफल (मुक्ति) केवल आप ही प्रदान करते हैं। विष्णु आदि देवगण, आपसे दिव्य पदवी प्राप्त कर, और अधिक ऊँची पदवी के लिये, फिर प्रार्थना करते हैं। आपकी कितनी बड़ी दयालुता है, और मेरी कितनी बड़ी अभिलाषा! अपनी करुणाभरी दृष्टि से मेरी ओर कब आपका कृपाकटाक्ष होगा, और मेरी रक्षा का भार आप कब स्वीकार करेंगे?

(१९)

दुराशाभूयिष्ठे दुरधिपगृहद्वारघटके
दुरन्ते संसारे दुरितनिलये दुःखजनके।
मदायासं किं न व्यपनयसि कस्योपकृतये
वदेयं प्रीतिश्चेत्तव शिव कृतार्थाः खलु वयम्॥

दुराशाभूयिष्ठे (ऐसी बुरी इच्छाओं से भरा जो पूरी न हो सकें) *दुरधिप-* (बुरे स्वामियों के) *गृहद्वार-घटके* (घरों के दरवाजों की चौखटों पर नाक रगड़ने का स्थान)। *दुरन्ते* (अन्तहीन अथवा दुःखान्त) *दुरितनिलये* (बुराइयों

के घर में) *दुःखजनके* (दुःख उत्पन्न करने वाले में) *संसारे* (इस आवागमन रूप संसार में) *कस्य उपकृतये* (किसका उपकार करने के लिये) *मत्-आयासं न व्यपनयति* (मेरे कष्ट को दूर नहीं करते) *शिव* (हे शिवशंकर!) *वद* (बताइये) *इयं* (क्या यह) *तव* (आपकी) *प्रीतिः चेत्* (इच्छा है, क्या यह आपको रुचिकर है।) *वयम् खलु कृतार्थाः* (यदि ऐसा है तो हम कृतार्थ हैं, आपकी इच्छा को स्वीकार करते हैं।)

हे शिवशंकर! यह संसार दुर्वासनाओं से भरा है। यहाँ दुर्जन स्वामियों के द्वार पर माथा टेकना पड़ता है। इसका कोई अन्त नहीं है (अथवा इसका दुःख में अन्त होता है)। यह आपदाओं का घर है, और दुःख उत्पन्न करने वाला है। ऐसी अवस्था में आप मेरा दुःख, किसे उपकृत करने के लिये, दूर नहीं कर रहे हैं? बताइये यदि मेरी यही स्थिति आपको अच्छी लगती है तो, हे शिव! मैं इसमें भी कृतार्थ हूँ, आपकी इच्छा मुझे स्वीकार्य है।

(२०)

सदा मोहाटव्यां चरति युवतीनां कुचगिरौ
नटत्याशाशाखास्वटति झटिति स्वैरमभितः।
कपालिन् भिक्षो मे हृदयकपिमत्यन्तचपलं
दृढं भक्त्या बद्ध्वा शिव भवदधीनं कुरु विभो॥

शिव विभो (हे सर्वव्यापी परमेश्वर शिव!) *कपालिन् भिक्षो* (हे खप्पड़धारी भिक्षु!) *मे* (मेरे) *अत्यन्तचपलं हृदयकपिम्* (अत्यंत चंचल हृदयरूपी बन्दर को) *भक्त्या दृढं बद्ध्वा* (अपनी भक्ति से कसकर बाँधकर) *भवद्-अधीनं कुरु* (अपने अधीन कर लीजिये) *सदा-मोह-अटव्यां चरति* (यह मेरा मन सदा मोहरूपी जंगल में भटकता रहता है) *युवतीनां कुचगिरौ नटति* (कल्पना में युवतियों के कुच रूपी पर्वतों पर नाचता रहता है) *आशाशाखासु झटिति स्वैरम् अभितः अटति* (आशारूपी शाखाओं में जल्दी-जल्दी इधर-उधर उच्छृंखल होकर कूदता-फाँदता रहता है)।

खप्पड़धारिन् भिक्षो! मेरा यह मन बंदर के समान बड़ा चंचल है। बंदर की भाँति यह मोहरूपी जंगल में घूमता रहता है। काल्पनिक युवतियों के

कुच-शिखरों पर नाचता रहता है, और मनमाने उच्छृंखल भाव से आशारूपी शाखाओं में इधर-उधर कूदता-फाँदता रहता है। हे सर्वव्यापिन् शिव! मेरे इस हृदयरूपी चंचल बन्दर को अपनी भक्ति से पक्का बाँधकर अपने वश में कर लीजिये।

'कपाल' का अर्थ खोपड़ी अथवा टूटा ठीकरा है। 'कपालिन्' खोपड़ीधारी अथवा खप्पड़धारी दोनों हो सकता हैं। चञ्चल मन की उपमा चंचल बन्दर से दी जाती है। यहाँ बन्दर की विविध क्रीड़ाओं और मन की चंचल वृत्तियों में समानता बतायी गई है। जैसे भीख माँगने वाला मदारी बन्दर को बाँध कर अपने वश में कर लेता है वैसे ही कपाली भिक्षु, शिव मन को अपनी भक्ति से बाँध सकते हैं।

(२१)

धृतिस्तम्भाधारां दृढगुणनिबद्धां सगमनां
विचित्रां पद्माढ्यां प्रतिदिवससन्मार्गघटिताम्।
स्मरारे मच्चेतःस्फुटपटकुटीं प्राप्य विशदां
जय स्वामिन् शक्त्या सह शिवगणैः सेवित विभो।

स्मरारे (हे कामदेव को पराजित, दहन करने वाले!) *शिवगणैः सेवित विभो* (शिवगणों से सेवित सर्वव्यापी प्रभो!) *स्वामिन्* (हे स्वामी!) *शक्त्या सह* (पार्वती के साथ) *यत् चेतः*-(मेरी चित्तरूपी) *स्फुट-पट-कुटीं* (निर्मल कपड़े की कुटिया, तम्बू को) *प्राप्य* (उसमें प्रवेश कर) *जय* (बुराई रूपी शत्रुओं पर विजयी हों) *धृतिस्तम्भाधारां* (इस पटकुटी में धैर्य रूपी केन्द्रीय स्तम्भ जिस पर यह टिकी है) *दृढगुणनिबद्धां* (यह सद्गुणों से भली प्रकार मर्यादित, बँधी हुइ है) *सगमनां* (यह गतिशील है) *विचित्रां* (बड़ी रंग-बिरंगी है) *पद्माढ्यां* (कमलों से सुशोभित है।) *प्रतिदिवस*-(प्रतिदिन) *सन्मार्गघटिताम्* (भगवान् के ध्यान में स्थिर है) *विशदां* (जो अत्यंत उज्ज्वल है)।

हे मन्मथ दहन करने वाले यतिराज! शिवगणों से सेवित हे सर्वव्यापी परमेश्वर! हे स्वामी! भवानी सहित मेरी चित्तरूपी निर्मल पटकुटी में आकर विराजिये। इस पटकुटी में धैर्य का केन्द्रीय दृढ़ स्तम्भ है, जिस पर यह

टिकी है। सद्गुणों रूपी रस्सियों से कसकर बंधी है। यह स्थिर नहीं, चलती-फिरती है। विविध चित्त-वृत्तियों के कारण बड़ी रंग-बिरंगी है। यह शक्ति-स्रोत अष्ट कमलों से सुशोभित हैं यह प्रतिदिन दिव्य ध्यान के मार्ग पर आगे बढ़ रही है। इसमें प्रवेश कर आप मनोविकारों पर विजयी हों।

पिछले पद्य में मन की चञ्चलता का वर्णन किया। इस पद्य में हृदय मंदिर का वर्णन है। भगवान् शिव ने कामदेव पर विजय प्राप्त की है। यहाँ भक्त प्रार्थना कर रहा है कि आप मेरी हृदय-कुटी में प्रवेश कर मनोविकारों का दहन कीजिये।

(२२)

प्रलोभाद्यैरर्थाहरणपरतन्त्रो धनिगृहे
प्रवेशोद्युक्तः सन्भ्रमति बहुधा तस्करपते।
इमं चेतश्चोरं कथमिह सहे शंकर विभो
तवाधीनं कृत्वा मयि निरपराधे कुरु कृपाम्॥

तस्करपते (हे चोरों के सरदार!) *प्रलोभ-आद्यैः* (जो लोभ तृष्णा आदि से) *अर्थ-आहरण-परतन्त्रः* (धन प्राप्त करने में परवस) *धनिगृहे प्रवेश-उद्युक्तः* (धनिकों के घर में चोरी से घुसने के लिये उत्सुक होकर) *वहुधा भ्रमति* (इधर-उधर चोरी-छिपे घूमता है) *इमं चेतः-चोरं* (इस चित्तरूपी चोर को) *शंकर विभो* (हे सर्वव्यापिन् भगवन् शंकर!) *कथं इह सहे* (इसे कैसे सहन करूँ!) *तव अधीनं कृत्वा* (इसे अपने वश में कर) *मयि निरपराधे कृपाम् कुरु* (मुझ वेवस निरपराधी पर कृपा कीजिये।)

हे चोरों के सरदार विश्वव्यापी भगवान् शंकर! मेरा चित्तरूपी यह चोर लोभ-मोह आदि के वशीभूत होकर धनिकों के घरों में चोरी-छिपे प्रविष्ट होने के लिए उत्सुक इधर-उधर घूमता रहता है। इस चोर को कैसे सहन करूँ? आप इसे अपने वश में कर मुझ वेवस निरपराधी पर कृपा कीजिये।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, मत्सरता आदि मन में छिपे मनोविकारों की उपमा घर में घुसे चोरों से दी जाती है। और चोरों को वश में करने के लिये चोरों के सरदार से ही प्रार्थना करनी चाहिये।

अविद्या की शक्तियाँ – मनोविकार – चोर हैं, जो आत्मा पर अज्ञानरूपी अंधकार का पर्दा डाल देते हैं। अविद्या माया का एक रूप है, और मायावी को चोरों का सरदार बताया गया है। वेद में रुद्र-शिव को *तस्काराणां पतये नमः* कहकर नमन किया गया है।

कुलशेखर कृत मुकुन्दमाला (३७) का एक पद्य देखिये —

अन्धस्य मे हतविवेकमहाधनस्य
चौरैः प्रभो वलिभिरिन्द्रयनामधेयैः।
मोहान्धकूपकुहरे विनिपातितस्य
देवेश देहि कृपणस्य करावलम्बम्॥

रूपगोस्वामी स्तवमाला में कहते हैं :—

मनसिजफणिजुष्टे लब्धपातोऽस्मि दुष्टे
तिमिर-गहन-रूपे हन्त संसारकूपे।
अजित निखिलरक्षाहेतु उद्धारदक्षां
उपनय मम हस्ते भक्ति-रज्जं नमस्ते॥

मा सञ्चर मनः पान्थ तत्रास्ते स्मरतस्करः भर्तृहरिः १.८६

(२३)

करोमि त्वत्पूजां सपदि सुखदो मे भव विभो
विधित्वं विष्णुत्वं दिशसि खलु तस्याः फलमिति।
पुनश्च त्वां द्रष्टुं दिवि भुवि वहन् पक्षिमृगता-
मदृष्ट्वा तत्खेदं कथमिह सहे शंकर विभो।

विभो (हे सर्वव्यापी शिव!) *त्वत् पूजां करोमि* (मैं आपकी पूजा करता हूँ) *मे सपदि सुखदः भव* (शीघ्र ही मेरे लिये परम आनन्द प्रदान कीजिये) *विधित्वं विष्णुत्वं दिशसि* (यदि आप ब्रह्मा अथवा विष्णु का पद देते हैं तो) *खलु तस्याः फलं इति* (तो केवल उसका यही फल होगा) *त्वां पुनः च द्रष्टुं* (आपको फिर देखने के लिये, आपकी महत्ता का पता लगाने के लिये) *दिवि भुवि* (ऊपर आकाश में और नीचे पृथ्वी के भीतर) *पक्षिमृगतां वहन्* (हंस और वाराह रूप धारण कर) *अदृष्ट्वा* (और आपके पूर्ण स्वरूप

को नहीं देखने पर) *शंकर विभो* (हे सर्वव्यापिन् शंकर!) *तत्खेदं कथं इह सहे* (देख नहीं पाने के खेद को कैसे सहन करूँगा?)

हे सर्वव्यापिन् प्रभो! मैं आपकी पूजा-अर्चना कर रहा हूँ। मुझे शीघ्रातिशीघ्र आपके चरणों की सेवा का परमसुख प्रदान कीजिये। यदि आप मुझे ब्रह्मा अथवा विष्णु की पदवी प्रदान करेंगे तो उससे क्या होगा? मुझे आपकी महत्ता ढूंढने के लिए आकाश में ऊँचा उड़नेवाले हंस अथवा भीतर पृथ्वी खोद कर प्रयास करने वाले वराह का रूप धारण करना पड़ेगा। तब भी मैं आपकी महत्ता के ओर-छोर को नहीं ढूँढ पाऊँगा। इस असमर्थता को मैं कैसे सहन करूँगा?

पौराणिक कथा है कि एक बार ब्रह्मा और विष्णु में स्पर्धा हुई कि कौन बड़ा है। उनके सामने एक ज्योतिर्लिङ्ग प्रकट हुआ और यह तय हुआ कि दोनों में जो भी ओर-छोर ढूँढ लेगा, वह विजयी होगा। ब्रह्मा हंस के रूप में ऊँचे उड़े और विष्णु वराह रूप पृथ्वी खोदते रहे। दोनों ही लिङ्ग का ओर-छोर नहीं ढूँढ सके।

शिवमहिम्नः स्तोत्रम् में पुष्पदन्त ने भी इस आख्यान की ओर संकेत किया है।

तवैश्वर्यं यत्नाद् यदुपरि विरिञ्चो हरिरधः
परिच्छेत्तुं यातावनलमनलस्कन्धवपुषः।
ततो भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिश यत्
स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति॥ (४)

(२४)

कदा वा कैलासे कनकमणिसौधे सह गणै-
र्वसन् शंभोरग्रे स्फुटघटितमूर्धाञ्जलिपुटः।
विभो साम्ब स्वामिन् परमशिव पाहीति निगद-
न्विधातॄणां कल्पान् क्षणमिव विनेष्यामि सुखतः॥

शंभो (हे परमशिव!) *कदा वा* (मैं कब) *कैलासे कनकमणिसौधे* (कैलास पर्वत पर सोने और मणियों के महल में) *सह गणैः वसन्* (गणों के साथ

विराजे हुए) *अग्रे* (आपके सामने) *स्फुटघटितमूर्धाञ्जलिपुटः* (शिर के ऊपर देदीप्यमान हाथों की अञ्जलि बाँध कर) *विभो स्वामिन् परमशिव पाहि इति* (सर्वव्यापी प्रभो! हे स्वामी! हे परमशिव! मेरी रक्षा कीजिये") *निगदन्* (कीर्तन करते हुए) *विधातृणां कल्पान् क्षणमिव सुखतः विनेष्यामि* (ब्रह्मा के कल्पों को सुखपूर्वक बिता दूँगा।)

कैलाश पर्वत पर सोने और मणियों से निर्मित महल में, जगन्माता पार्वती और आपके गणों के साथ बिराजे हुए आपके सामने "हे विभो! हे स्वामी! हे परशिव! मेरी रक्षा कीजिये" शिर पर अञ्जलि बाँधे यह कहते हुए ब्रह्मा के कल्पों को क्षण के समान व्यतीत कर लूँगा।

ब्रह्मा के कल्प को मानवीय वर्षों में गिनना कठिन है। "सदा-सर्वदा समयातीत स्थिति में" अर्थ समझा जा सकता है। ब्रह्मा का एक कल्प देवों के हजार वर्षों के बराबर समझना चाहिये। देवों के हजार वर्ष मनुष्यों के ४३२० लाख वर्षों के बराबर होंगे। अब कल्पना की जा सकती है कि यह कितना लम्बा समय होगा। अगर ब्रह्मा के कल्पों की बात करें तो यह समयातीत ही समझना चाहिये।

(२५)

स्तवैर्ब्रह्मादीनां जयजयवचोभिर्नियमिनां
गणानां केलीभिर्मदकलमहोक्षस्य ककुदि।
स्थितं नीलग्रीवं त्रिनयनमुमाश्लिष्टवपुषं
कदा त्वां पश्येयं करधृतमृगं खण्डपरशुम्॥

कदा वा त्वां पश्येयं (मैं कब आपके दर्शन करूँगा) *नीलग्रीवं* (नीलकण्ठ) *त्रिनयनं* (तीन नेत्र वाले) *करधृतमृगं* (जिन्होंने हाथ में दौड़ते हुए हरिण को पकड़ रखा है) *खण्डपरशुम्* (खण्डित परशु ले रखा है) *उमा-आश्लिष्ट-वपुषं।* (जिनकी देह भगवती उमा द्वारा आलिङ्गित है) *मदकलमहोक्षस्य ककुदि स्थितं* (जो वलिष्ठ मदमत्त नन्दी बैल के कंधे के उभार पर विराजमान हैं) *गणानां केलीभिः* (गणों के आमोद-प्रमोद नृत्य आदि से) *नियमिनां* (यतियों की) *जयजय-वचोभिः* (जयजयकारों से) *ब्रह्मादीनां स्तवैः* (ब्रह्मा आदि देवताओं की स्तुतियों से घिरे हुए हैं)।

प्रभो! मैं कब आपके दर्शन कर सकूँगा? आपके उस रूप के दर्शन जिसमें आप एक हाथ में दौड़ते हुए हरिण और दूसरे हाथ में तीक्ष्ण फरसा लिये हुए हैं, आपका नीलकण्ठ और तीन नेत्र सुशोभित हैं, आप नन्दी वैल की पीठ के उभार पर विराजमान हैं, भगवती उमा आपकी अर्धनारीश्वर देह को आलिङ्गित किये हुए हैं, नन्दी, चण्डी, भृङ्गी आदि प्रमथगण नाचते-गाते आमोद-प्रमोद कर रहे हैं, तपस्वी 'जयजय' कर रहे हैं, और ब्रह्मा आदि देवगण आपकी स्तुति कर रहे हैं।

(२६)

कदा वा त्वां दृष्ट्वा गिरिश तव भव्यांघ्रियुगलं
गृहीत्वा हस्ताभ्यां शिरसि नयने वक्षसि वहन्।
समाश्लिष्याघ्राय स्फुटजलजगन्धान्परिमला-
नलभ्यां ब्रह्माद्यैर्मुदमनुभविष्यामि हृदये॥

गिरिश (हे कैलाशपते!) *कदा वा त्वां दृष्ट्वा* (कब आपके दर्शन कर) *तव भव्यं अङ्घ्रियुगलं हस्ताभ्यां गृहीत्वा* (आपके दिव्य चरणयुगल को हाथ में लेकर) *शिरसि नयने वक्षसि वहन्* (शिर, नेत्र, और हृदय पर लगा कर) *समाश्लिष्य* (उनका आलिङ्गन कर) *स्फुट-जलज-गन्धान् परिमलान् आघ्राय* (खिले हुए कमल के पुष्पों की सुगंध को सूँघकर) *ब्रह्माद्यैः* (ब्रह्मा आदि देवगणों के लिये) *अलभ्यां* (दुर्लभ) *हृदये मुदं अनुभविष्यामि* (हृदय में आनंद का अनुभव करूँगा।)

कैलाशपते शम्भो! क्या कभी ऐसा हो सकेगा कि मैं आपके दर्शन पाकर, आपके चरणयुगल को हाथों से पकड़ कर, उन्हें अपने शिर, आँखों और हृदय से लगाकर, उनका आलिङ्गन कर, खिले कमल की सुगंध के समान सुगंध को सूँघकर, ब्रह्मा आदि देवगणों के लिये भी दुर्लभ आनन्द का हृदय में अनुभव कर सकूँगा।

(२७)

करस्थे हेमाद्रौ गिरिश निकटस्थे धनपतौ
गृहस्थे स्वर्भूजामरसुरभिचिन्तामणिगणे।

शिरःस्थे शीतांशौ चरणयुगलस्थेऽखिलशुभे
कमर्थं दास्येऽहं भवतु भवदर्थं मम मनः॥

करस्थे (हाथ में, निकट रहने पर) *हेमाद्रौ* (सुमेरु पर रहते हुए) *निकटस्थे धनपतौ* (कुवेर के पास रहते हुए) *गृहस्थे* (घर में) *स्वर्भूजामरसुरभिचिन्तामणिगणे* (स्वर्ग का कल्पवृक्ष, कामधेनु और चिन्तामणि के ढेर होते हुए) *शिरस्थे शीतांशौ* (शिर पर शीतल अमृतवर्षी चन्द्रमा होते हुए) *चरणयुगलस्थे अखिल-शुभे* (चरणों में समस्त मंगलों के रहते हुए) *अहं कं अर्थं दास्ये* (मैं क्या अर्पण करूँ?) *गिरिश* (हे कैलाशपति!) *मम मनः भवत् अर्थं भवतु* (मेरा मन ही आपको अर्पण हो।)

जब स्वर्णगिरि सुमेरु भगवान् शिव के निकट हो, धनपति कुवेर पास हों, घर में स्वर्ग का कल्पवृक्ष, कामधेनु गाय और चिन्तामणि का समूह हो, शिर पर अमृत वर्षा करनेवाला शीतल चन्द्रमा हो, और चरणों में सारे मङ्गल हों– ऐसे ऐश्वर्य-सम्पन्न आपको, हे कैलाशपते! मैं क्या अर्पण कर सकता हूँ? मेरा मन ही आपको अर्पण है।

जब शिवशंभु समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी हैं तो भक्त के पास ऐसा क्या है जो उनको भेंट में दिया जा सके? भक्त का मन ही केवल वह वस्तु है जिसे वह अर्पण कर सकता है। भक्त की अभिलाषा है कि उसका मन कैलासपति शिव को समर्पित रहे।

इसीलिये मानसपूजा का बड़ा महत्त्व है। आचार्य शंकर का *'शिवमानसपूजा'* प्रसिद्ध स्तोत्र है।

(२८)

सारूप्यं तव पूजने शिव महादेवेति संकीर्तने
सामीप्यं शिवभक्तिधुर्यजनतासांगत्यसंभाषणे।
सालोक्यं च चराचरात्मकतनूध्याने भवानीपते
सायुज्यं मम सिद्धमत्र भवति स्वामिन्कृतार्थोऽस्म्यहम्॥

भवानीपते (हे उमापति!) *तव पूजने सारूप्यं* (आपके पूजन में 'सारूप्य' मुक्ति) *सामीप्यं शिवमहादेव इति संकीर्तने* ('शिव' 'महादेव' आदि नामों

के संकीर्तन में 'सामीप्य' मुक्ति) *शिवभक्तिधुर्यजनता-सांगत्य-संभाषणे* (शिवभक्ति में अग्रणी भक्तों की संगति संभाषण करने में 'सालोक्य' मुक्ति) *चराचरात्मकतनूध्याने सायुज्यं* (जड़-चेतन, चर-अचर रूप आपके शरीर के ध्यान में 'सायुज्य' मुक्ति) *मम सिद्धं अत्र भवति* (मेरे लिये इसी जीवन में सिद्ध हो गईं) *स्वामिन् अहं कृतार्थः अस्मि* (हे स्वामी में धन्य कृतार्थ हूँ।)

हे शिवशम्भो! आपके पूजन से मुझे **सारूप्य मुक्ति,** "शिव, शिव, महादेव" आदि नामों के संकीर्तन से **सामीप्य मुक्ति,** शिवभक्तों के सत्संग और उनके साथ संभाषण से **सालोक्य मुक्ति,** और चराचरात्मक आपके शरीर का ध्यान करने से **सायुज्य मुक्ति,** यही, इसी जीवन में, सिद्ध हो जायेगी। उमापते स्वामिन्! मैं धन्य, कृतार्थ हूँ।

ईश्वर अथवा सगुण ब्रह्म के अनुभव में चार स्तर बताये गये हैं। पहला **सालोक्य,** इष्टदेव के साथ निवास; **सामीप्य,** इष्टदेव के साथ निकटता; **सारूप्य,** इष्टदेव जैसा रूप; और **सायुज्य,** इष्टदेव के साथ एकात्मता। इन स्तरों पर पहुँचने के लिये शैवमत में चार क्रियायें निर्धारित की गई हैं: चर्या; क्रिया, योग और ज्ञान। **चर्या** में शिवमंदिर का प्रक्षालन आदि आते हैं। **क्रिया** में अर्चना-पूजा आदि हैं। **योग** में ध्यान और **ज्ञान** में प्रज्ञा द्वारा संबोध प्राप्त करना होता है।

(२९)

त्वत्पादाम्बुजमर्चयामि परमं त्वां चिन्तयाम्यन्वहं
त्वामीशं शरणं व्रजामि वचसा त्वामेव याचे विभो।
वीक्षां मे दिश चाक्षुषीं सकरुणां दिव्यैश्चिरं प्रार्थितां
शंभो लोकगुरो मदीयमनसः सौख्योपदेशं कुरु॥

विभो (सर्वव्यापिन् !) *त्वत्-पाद-अम्बुजं अर्चयामि* (मैं आपके चरण कमलों की अर्चना करता हूँ।) *त्वां परमं अनु अहं चिन्तयामि* (आप परमशिव का प्रतिदिन चिन्तन करता हूँ) *त्वां ईशं शरणं व्रजामि* (आप परमेश्वर की शरण में जा रहा हूँ) *त्वां एव वचसा याचे* (और आपकी ही वाणी से प्रार्थना–याचना करता हूँ) *मे* (मेरे लिये) *दिव्यैः चिरं प्रार्थितां*

(जिस के लिये चिरकाल से देवता प्रार्थना कर रहे हैं) *सकरुणां चाक्षुषीं वीक्षां दिश* (आपकी करुणामयी कृपादृष्टि मुझ पर कीजिये) *लोकगुरो शंभो* (हे लोकगुरु शम्भो!) *मदीयमनसः* (मेरे चित्त के लिये) *सौख्य-उपदेशं कुरु* (सुखकारी उपदेश देने की कृपा करें।)

एस, बालकृष्णन् ने *शिवानन्दलहरी* की अपनी टीका में जगदुरु काञ्ची परमाचार्य का मत उद्धृत करते हुए बताया है कि इस पद्य में आचार्य शंकर अपने बारे में कह रहे हैं। आचार्य शंकर भगवान् शिव के अवतार प्रसिद्ध हैं। 'शंभु' का अर्थ है क्रियारहित कल्याणकारी, और 'शंकर' का अर्थ है शक्ति-युक्त क्रियाशील कल्याणकारी। यह क्रियाशीलता अवतार में प्रकट होती है। आचार्य शंकर के जगदुरुरूप में यह कल्याणकारी अवतार प्रकट हुआ है।

(३०)

वस्त्रोद्धूतविधौ सहस्रकरता पुष्पार्चने विष्णुता
गन्धे गन्धवहात्मतान्नपचने बर्हिर्मुखाध्यक्षता
पात्रे काञ्चनगर्भतास्ति मयि चेद् बालेन्दुचूडामणे
शुश्रूषां करवाणि ते पशुपते स्वामिन् त्रिलोकीगुरो॥

वाल-इन्दु-चूडामणे (हे बालचन्द्रशेखर!) *मयि चेद् अस्ति* (यदि मेरे पास होती) *वस्त्रोद्धूत-विधौ* (अंगवस्त्र धारण कराने की विधि के लिये) *सहस्र-करता* (सहस्र रश्मि सूर्य की जैसी क्षमता) *पुष्पार्चने विष्णुता* (पुष्प-अर्पण करने के लिये विष्णु जैसी सर्वव्यापकता) *गन्धे गन्धवहात्मता* (शरीर पर चन्दन लेप करने के लिये वायु जैसी वाहकता) *अन्नपचने बर्हिमुखाध्यक्षता* (आपके लिये नैवेद्य पकाने के लिये अग्नि का जैसा सामर्थ्य) *पात्रे काञ्चनगर्भता* (पात्रों के निर्माण के लिये हिरण्यगर्भ पर स्वामित्व) *स्वामिन् पशुपते त्रिलोकीगुरो* (तो हे त्रिलोकीगुरु पशुपते स्वामी!) *ते सुश्रूषां करवाणि* (तो आपकी सेवा कर सकता)।

हे चन्द्रमौलि! यदि मेरे पास सहस्ररश्मि सूर्य की क्षमता हो तो मैं आपके परिधान फैला सकूँ, यदि विष्णु जैसी सर्वव्यापकता हो तो पुष्पार्चन कर सकूँ, यदि वायु जैसी सर्व-वाहकता हो तो नीराजन कर सकूँ, यदि

अग्नि के जैसा सामर्थ्य हो तो नैवेद्य पका सकूँ, यदि हिरण्यगर्भ पर स्वामित्व हो तो आपके पात्र बना सकूँ। हे त्रिलोकीगुरो, पशुपतिनाथ स्वामिन्! आपकी सुश्रूषा के लिये जो क्षमता चाहिये वह मेरे पास नहीं है। निस्सीम की सेवा के लिये सीमित साधनों से क्या होता है? आपकी सेवा के लिये तो सूर्य, विष्णु, वायु, अग्नि आदि देवगण ही समर्थ हो सकते हैं।

(३०)

नालं वा परमोपकारकमिदं त्वेकं पशूनां पते!
पश्यन्कुक्षिगतांश्चराचरगणान्बाह्यस्थितान्रक्षितुम्।
सर्वामर्त्यपलायनौषधमतिज्वालाकरं भीकरं
निक्षिप्तं गरलं गले न गिलितं नोद्गीर्णमेव त्वया॥

(पशुपते!) *न अलं वा तु एकं इदं परम-उपकारं* (क्या यह अनन्य परम उपकार नहीं है कि) *कुक्षिगतान्* (पेट में स्थित) *चराचरगणान् पश्यन्* (जड़-चेतन, चराचर गणों को देखते हुये) *बाह्य स्थितान् रक्षितुम्* (और बाहर स्थित जीवों की रक्षा के लिये) *सर्व-अमर्त्य-पलायनं* (सर्व देवताओं को भगाने वाले) *अतिज्वालाकरं भीकरं औषधं* (अत्यंत ज्वालामय और भयावह औषध) *गले निक्षिप्तं गरलं* (गले में रखे हुए कालकूट विष को) *न गिलितं न उद्गीर्णं एव त्वया* (न आपने निगला न उसका वमन किया।)

पशुपते! क्या यह आपका अद्वितीय परम उपकार पर्याप्त नहीं है कि जिस कालकूट विष के समुद्र से निकलते ही देवता भाग खड़े हुए थे, उसे आपने, अपने पेट में स्थित जड़-चेतन गण को देखते हुये, और बाहर के प्राणियों की रक्षा के लिये न निगला न उगला। वह बड़ा तप्त और भयावह विष था।

इस पद्य में भगवान् शिव की महान् उदारता का उदाहरण है। रुद्र रूप में शिव विनाशकारी प्रसिद्ध है। किन्तु उनके शिवशंकर रूप में वे परम-हितैषी और उदार हैं। जब देवताओं और दानवों ने समुद्र मंथन किया तो चौदह रत्नों से पहले भयंकर कालकूट विष उत्पन्न हुआ। उसे देखते ही देव-दानव सब भागने लगे। उनकी रक्षा करने के लिये भगवान् शिव ने उसे कण्ठस्थ कर लिया। अगर वे निगल जाते तो उनके उदरस्थ जीवन

नष्ट हो जाता। अगर उगलते तो बाहर की सृष्टि भस्म हो जाती। तभी से उनके नीलकण्ठ, नीलग्रीव नाम प्रसिद्ध हो गये।

(३२)

ज्वालोग्रः सकलामरातिभयदः क्ष्वेलः कथं वा त्वया
दृष्टः किं च करे धृतः करतले किं पक्वजम्बूफलम्।
जिह्वायां निहितश्च सिद्धगुटिका वा कण्ठदेशे भृतः
किं ते नीलमणिर्विभूषणमयं शंभो महात्मन्वद॥

शंभो महात्मन् वद (हे महादेव शम्भो! बताइये) *ज्वाला-उग्रः* (आग की लपटों सा उग्र) *सकल-अमर-अति-भयदः* (समस्त देवताओं के लिये अत्यन्त भयकारी) *क्ष्वेलः* (लपलपाती अग्नि ज्वालाओं जैसा हलाहल) *कथं वा त्वया दृष्टः* (आपने ऐसे तपतपाते हुए को कैसे देखा?) *किं च करे धृतः करतले* (ऐसे तप्त को कैसे हाथ में लेकर हथेली पर रखा) *किं पक्वजम्बूफलम्* (क्या यह कोई पका हुआ जामुन था?) *चिह्वायां निहितः च सिद्ध घुटिका वा* (अपने तो जिह्वा पर इस प्रकार रख लिया मानो कोई सिद्ध औषध की गोली हो) *कण्ठदेशे भृतः किं ते अयं नीलमणि-विभूषणं* (आपने इसे गले में धारण कर लिया मानो नीलमणि का कोई आभूषण हो)।

भगवान् शिव के परम प्रसिद्ध अद्‌भुत विषपान की कथा से प्रभावित भक्त आश्चर्यचकित हैं। उन्होंने ऐसे भयंकर हलाहल को कैसे देखा होगा, कैसे हाथ में लेकर हथेली पर रखकर जिह्वा से गले में उतारा होगा? किन्तु ऐसे गले में रखकर तो भगवान् शिवशंकर नीलग्रीव, या यों कहें, श्रीग्रीव हो गये। यह विष उनके लिये नीलमणि विभूषण बन गया।

(३३)

नालं वा सकृदेव देव भवतः सेवा नतिर्वा नुतिः
पूजा वा स्मरणं कथाश्रवणमप्यालोकनं मादृशाम्।
स्वामिन्नस्थिरदेवतानुसरणायासेन किं लभ्यते
का वा मुक्तिरितः कुतो भवति चेत्किं प्रार्थनीयं तदा॥

देव (हे स्वामिन्) *न अलं वा मादृशाम्* (क्या मेरे जैसों के लिये पर्याप्त नहीं है) *सकृत्-एव भवतः सेवा नतिः वा नुतिः* (केवल एक बार ही आपकी सेवा, आपके लिये प्रणाम अथवा आपके सम्मुख नृत्य) *पूजा वा स्मरणं कथा-श्रवणं अपि-आलोकनं* (आपकी पूजा, आपका स्मरण, आपकी कथा सुनना अथवा आपके दर्शन) *स्वामिन्* (हे स्वामिन्!) ***अस्थिर-देवता अनुसरण-आयासेन*** (अल्पकालीन देवताओं के अनुसरण करने के प्रयास से) *किं लभ्यते* (क्या प्राप्त होता है?) *का वा मुक्तिः इतः* (इस भक्ति के अतिरिक्त मुक्ति और क्या है?) *कुतः भवति* (कहाँ मिलती है?) *चेत् किं प्रार्थनीयं तदा* (यदि ऐसा है तो प्रार्थनीय क्या वचता है?)

स्वामिन् देवदेव! क्या मेरे जैसे आपके भक्तों के लिये यह पर्याप्त नहीं है कि वे, केवल एकबार, आपकी सेवा, आपके सम्मुख नमन, नृत्य कर लें, आपकी पूजा कर लें, आपका नाम-स्मरण कर लें, आपकी कथा सुन लें, अथवा आपके दर्शन कर लें। अल्पकालीन देवताओं की सेवा करने से, उनके अनुसरण का प्रयास करने से क्या मिलेगा? इस भक्ति के अतिरिक्त मुक्ति और क्या है, और किस चीज के लिये प्रार्थना की जाय?

शरीर की भिन्न-भिन्न इन्द्रियों से श्रवण, कीर्तन आदि नवधा भक्ति बताई गई है। **भागवत** में कीर्तन, स्मरण, ईक्षण (दर्शन) वन्दन, श्रवण, अर्चन, जप, पारायण (कथा-पाठ), मंदिर-यात्रा, उत्सव, और सेवा – ग्यारह भक्ति के मार्ग गिनाये गये हैं।

स्कन्दपुराण ब्रह्मोत्तर खण्ड अ. ४ में लिखा है —

सा जिह्वा या शिवं स्तौति तन्मनो ध्यायते शिवम्।
तौ कर्णौ तत्कथालोलौ तौ हस्तौ तस्य पूजकौ॥
ते नेत्रे पश्यतः पूजां तच्छिरः प्रणतं शिवे।
तौ पादौ यौ शिवक्षेत्रं भक्त्या पर्यटतः सदा॥
यस्येन्द्रियाणि सर्वाणि वर्तन्ते शिवकर्मसु।
स निस्तरति संसारं भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति॥

(वही जिह्वा सफल है, जो भगवान् शिव की स्तुति करती है। शिव के ध्यान में लगा हुआ ही मन सार्थक है। वे ही कान धन्य हैं जो भगवान्

शिव की लीलाओं की कथा सुनने के लिए उत्सुक रहते हैं। वे ही दोनों हाथ उपयोगी हैं जो शिवजी की पूजा में लगे रहते हैं। नेत्रों की धन्यता उनकी पूजा के दर्शन करने में है। भगवान् शिव के सामने झुकने वाला ही मस्तक धन्य है। वे पैर धन्य हैं जो शिवक्षेत्रों में भ्रमण करते हैं। जिसकी सब इन्द्रियाँ शिवसेवा में लगी रहती है उसे भुक्ति और मुक्ति दोनों प्राप्त हो जाती है।)

(३४)

किं ब्रूमस्तव साहसं पशुपते कस्यास्ति शंभो भव-
द्धैर्यं चेदृशमात्मनः स्थितिरियं चान्यैः कथं लभ्यते।
भ्रश्यद्देवगणं त्रसन्मुनिगणं नश्यत्प्रपञ्चं लयं
पश्यन्निर्भय एक एव विहरत्यानन्दसान्द्रो भवान्।

पशुपते (हे पशुपति!) *तब साहसं किं ब्रूमः* (आपके साहस का वर्णन कैसे करें?) *शंभो* (हे शंभो!) *कस्य अस्ति ईदृशं भवद् धैर्यं* (आपका जैसा धैर्य किसमें है?) *च इयं आत्मनः स्थितिः* (ऐसी आत्मस्थिति) *च अन्यैः कथं लभ्यते* (किसी दूसरे के द्वारा कैसे प्राप्त की जा सकती है?) *भ्रश्यद्देवगण त्रसत् मुनिगणं नश्यत्प्रपञ्चं लयं पश्यन्* (जब देवगण स्थानच्युत होने लगते हैं, मुनिजन डरने लगते हैं, और यह सारा जगत्प्रपंच प्रलय के समय नष्ट होने लगता है इन सबको देखते हुये) *एक एव भवान् निर्भय आनन्द-सान्द्रः विहरति* (केवल आप ही निर्भय उस प्रलयकाल में आनन्दमग्न रहते हैं।)

हे प्राणियों के स्वामिन्! आपके जैसे साहस और धैर्य का वर्णन कैसे करें? ऐसी आत्मनिष्ठ स्थिति दूसरे लोग कैसे प्राप्त कर सकते हैं? महाप्रलय के समय जब देवगण स्थानच्युत होने लगते हैं, मुनिगण भयभीत हो जाते हैं, और यह सारा जगत्प्रपञ्च नष्ट होने लगता है, तो केवल आप ही अकेले निर्भय होकर उसे आनन्दमग्न देखते रहते हैं।

(३५)

योगक्षेमधुरंधरस्य सकलश्रेयःप्रदोद्योगिनो
दृष्टादृष्टमतोपदेशकृतिनो बाह्यान्तरव्यापिनः।

सर्वज्ञस्य दयाकरस्य भवतः किं वेदितव्यं मया
शंभो त्वं परमान्तरङ्ग इति मे चित्ते स्मराम्यन्वहम्॥

योगक्षेमधुरंधरस्य (योग– जो नहीं मिला है उसे प्राप्त करना – और क्षेम जो है उसकी रक्षा करना – दोनों का भार वहन करने वाला) *सकलश्रेयः प्रद उद्योगिनः* (समस्त हितकारी वस्तुएँ देने के लिये सदा तत्पर का) *दृष्ट-अदृष्ट-मत-उपदेश-कृतिनः* (भूतकाल में देखे गये और भविष्य में होने वाले अभिप्रायों के बारे में उपदेश देने वाले का) *बाह्य-अन्तर-व्यापिनः* (बाहर और भीतर व्याप्त का) *सर्वज्ञस्य दयाकरस्य* (सब कुछ जानने वाले और परम दयालु का) *भवतः किं वेदितव्यं मया* (मेरे द्वारा आपके विषय में क्या जानने योग्य है?) *शंभो* (शंभो!) *त्वं परम-अन्तरङ्गः* (आप मेरे अत्यन्त अन्तरङ्ग हैं) *इति मे चित्ते स्मरामि अनु-अहम्* (मेरे चित्त में प्रतिदिन यही सोचता रहता हूँ।)

शंभो (हे शिवशंकर!) आप योग और क्षेम का भार वहन करने वाले हैं। समस्त ज्ञात और अज्ञात हितों को प्रदान करने के लिये सदा तत्पर रहते हैं। बाहर और भीतर सर्वत्र व्याप्त हैं। सब कुछ जानने वाले हैं, और परम दयालु हैं। फिर, ऐसी व्यवस्था में, मेरे द्वारा आपको बताने के लिये क्या रह जाता है? आप मेरे घनिष्ट हितैषी हैं– मैं सदा रातदिन यही विचार करता रहता हूँ।

(३६)

भक्तो भक्तिगुणावृते मुदमृतापूर्णे प्रसन्ने मनः-
कुम्भे साम्ब तवाङ्घ्रिपल्लवयुगं संस्थाप्य संवित्फलम्।
सत्त्वं मन्त्रमुदीरयन्निजशरीरागारशुद्धिं वहन्
पुण्याहं प्रकटीकरोमि रुचिरं कल्याणमापादयन्॥

साम्ब (हे भवानी शंकर!) *भक्ति गुण आवृत्ते* (भक्ति रूपी सूत्र से बँधे) *मुद्-अमृत-पूर्णे* (प्रसन्नतारूपी अमृत जल से परिपूर्ण) *प्रसन्ने मनः-कुम्भे* (निर्मल मन रूपी घट में) *तव अंघ्रि-पल्लव युगं* (आपके चरणरूपी पत्तों से युक्त) *संवित्-फलं* (ज्ञानरूपी श्रीफल) *संस्थाप्य* (स्थापित कर) *सत्त्वं*

मन्त्रम् उदीरयन् (पञ्चाक्षर मन्त्र का उच्चारण करता हुआ) *निज-शरीर-आगार-शुद्धिं वहन्* (अपने शरीर रूपी निवासस्थान की शुद्धि करता हुआ) *रुचिरं* (पुनीत, पवित्र) *कल्याणं आपादयन्* (मङ्गल, शुभफल, उपलब्ध करता हुआ मैं) *पुण्याहं प्रकटीकरोमि* (पुण्याहवाचन कर रहा हूँ)।

हे भवानीशंकर! मैं, आपका भक्त, इस शरीररूपी निवास स्थान की शुद्धि और मङ्गलकामना के लिये 'पुण्याह वाचन' करता हूँ। इस पुण्याहवाचन में भक्तिरूपी सूत्र से आबद्ध, प्रसन्नतारूपी अमृतजल से भरे हुए निर्मल मनरूपी कुम्भ में, आपकी चरणरूपी आम के पत्तों से युक्त ज्ञानरूपी श्रीफल को स्थापित कर पञ्चाक्षर मन्त्र का जप कर रहा हूँ।

(३७)

आम्नायाम्बुधिमादरेण सुमनःसंघाः समुद्यन्मनो
मन्थानं दृढभक्तिरज्जुसहितं कृत्वा मथित्वा ततः।
सोमं कल्पतरुं सुपर्वसुरभिं चिन्तामणिं धीमतां
नित्यानन्दसुधां निरंतररमासौभाग्यमातन्वते॥

आम्नाय-अम्बुधिं (वेद रूपी समुद्र को) *आदरेण* (आदरपूर्वक) *सुमनः संघाः* (सद्बुद्धि वाले लोग) *समुद्यन्मनः मन्थानं* (दृढ़ संकल्प की मथानी) *दृढ़भक्तिरज्जुसहितं कृत्वा* (दृढ़भक्ति की रस्सी को साथ लेकर) *मथित्वा ततः* (उसको मथने के वाद प्राप्त करते हैं) *सोमं* (चन्द्रमा को) *कल्पतरुं* (कल्पवृक्ष को) *सुपर्वसुरभिं* (कामधेनु गाय को) *धीमतां चिन्तामणिं* (मनो कामना पूरी करनेवाली मणि को) *नित्यानन्दसुधां* (शाश्वत आनन्दरूपी अमृत को) *निरन्तर रमासौभाग्यं* (अखंड सौभाग्य लक्ष्मी को) *आतन्वते* (प्राप्त करते हैं)।

(यहाँ समुद्र मंथन के पौराणिक आख्यान के रूपक का आश्रय लेकर यह बताया है कि शिव भक्ति से समस्त मनोरथ पूरे होते हैं, नित्यानन्दरूपी अमृत (मुक्ति) प्राप्त होती है।)

देवताओं और दानवों ने सुमेरु पर्वत को मथानी और वासुकि सर्प को रस्सी बनाकर समुद्रमंथन किया और चौदह रत्न-चन्द्रमा, कल्पवृक्ष,

कामधेनु, चिन्तामणि आदि प्राप्त किये। उसी प्रकार दृढ़ संकल्प और अविचल भक्ति की मथानी और रस्सी की सहायता से वेदों का मन्थन कर मनीषी सारी कामनाओं को पूर्ण करते हैं, और नित्य आनन्दरूपी अमृत-मुक्ति प्राप्त करते हैं।

(३८)

प्राक्पुण्याचलमार्गदर्शितसुधामूर्तिः प्रसन्नः शिवः
सोमः सद्गणसेवितो मृगधरः पूर्णस्तमोमोचकः।
चेतः पुष्करलक्षितो भवति चेदानन्दपाथोनिधिः
प्रागल्भ्येन विजृम्भते सुमनसां वृत्तिस्तदा जायते।।

प्राक् (पूर्वकाल) *पुण्य अचल* (पुण्यों के अचल मार्ग से) *मार्गदर्शितसुधामूर्तिः* (प्रकटित अमृत-आनन्दस्वरूप) *प्रसन्न शिवः* (प्रशान्त शिव) *सोमः* (स+उमा, उमा सहित) *सद्गण-सेवितः* (देवगणों द्वारा पूजित) *मृगधरः* (मानव मन के प्रतीक दौड़ते हरिण को हाथ में लिये हुए) *पूर्णः तमोमोचकः* (अंधकार का नाश करने वाले और पूर्ण) *पुष्कर लक्षितः भवति चेतः आनन्दपाथः निधिः* (चित्त कमलों से सुशोभित आनन्दसागर हो जाता है) *प्रागल्भ्येन विजृम्भते* (ऊँचा उछलता है) *सुमनसा* (सद्बुद्धिवाले लोगों की) *वृत्तिः तदा जायते* (तब वृत्ति हो जाती है।)

इस सुन्दर पद्य में श्लेष अलंकार है। इसके दो अर्थ हो सकते हैं-एक शिव-सम्बन्धित और दूसरा चन्द्रमा से सम्बन्धित।

जब प्रशान्त मङ्गलकारी उमाशंकर (स+उमा = सोमः), जिनके हाथ में दौड़ता हुआ हरिण (मानव मन का प्रतीक) अवरुद्ध है, और जो संसार के अज्ञानरूपी अंधकार को दूर करने वाले हैं, और अपने गणों से सेवित हैं, पूर्व जन्मों के पुण्य-पर्वतों से प्रकट होते हैं, तो साधु पुरुषों के हृदय ब्रह्मानन्द से भर जाते हैं।

(३९)

धर्मो मे चतुरङ्घ्रिकः सुचरितः पापं विनाशं गतं
कामक्रोधमदादयो विगलिताः कालाः सुखाविष्कृतः।

ज्ञानानन्दमहौषधिः सुफलिता कैवल्यनाथे सदा

मान्ये मानसपुण्डरीकनगरे राजावतंसे स्थिते।

राजावतंसे कैवल्यनाथे (जब राजशिरोमणि एकाधिपत्य के स्वामी में) *ये मे मान्ये मानस पुण्डरीक नगरे स्थिते* (मेरे सम्माननीय हृदयरूपी श्वेतकमल की नगरी में प्रतिष्ठित होते हैं) *चतुः अंध्रिकः* (चतुष्पद, चार पैरा वाला) *धर्मः सुचरितः* (धर्म स्वस्थ हो जाता है) *पापं विनाशं गतं* (पापों का विनाश हो जाता है) *काम क्रोधमद आदयः* (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सरता आदि) *विगलिता* (पूर्णरूप से गल जाते हैं) *कालाः सुख आविष्कृताः* (सुखमय समय प्रकट हो जाता है) *ज्ञान आनन्द महौषधिः सुफलिता* (ज्ञान और आनन्दरूपी रोगनाशक वनस्पति फलने-फूलने लगती है)।

जब राजशिरोमणि एकाधिपत्य के स्वामी कैवल्यनाथ (मुक्तिदाता) भगवान् शिव मेरे हृदय-कमल रूपी नगरी के अधिपति हैं तब धर्म के चारों पैर सुदृढ़ हो जाते हैं। उस शिवराज्य में पाप नष्ट हो जाते हैं, और काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-मत्सरता आदि मनोविकार गल जाते हैं। उस राज्य में सुख का समय प्रकट होता है, तथा ज्ञान और आनन्दरूपी रोगनिवारक वनस्पति फलने-फूलने लगती हैं।

(४०)

धीयन्त्रेण वचोघटेन कविताकुल्योपकुल्याक्रमै-

रानीतैश्च सदाशिवस्य चरितांभोराशिदिव्यामृतैः।

हृत्केदारयुताश्च भक्तिकलमाः साफल्यमातन्वते

दुर्भिक्षान्मम सेवकस्य भगवन् विश्वेश भीतिः कुतः।

धीयन्त्रेण (बुद्धिरूपी पानीपेच से) *वचः घटेन* (वाणी रूपी घड़े से) *कविता-कुल्या-उपकुल्या क्रमैः* (कवितारूपी छोटी-बड़ी नहरों द्वारा) *आनीतैः* (लाये गये) *सदाशिवस्य* (सदाशिव के) *चरित-अंभः-राशि-दिव्य-अमृतैः* (चरितरूपी जलराशि जो दिव्य और अमृतमयी है) *हृत्केदारयुताः च भक्ति कलमाः* (हृदयरूपी पानी भरे खेत में भक्ति रूपी धान) *साफल्यं आतन्वते*

(सफल, फलयुक्त हो जाता है) *भगवन् विश्वेश* (हे भगवान् विश्वेश्वर!) *मम सेवकस्य दुर्भिक्षात्* (मुझ सेवक को दुर्भिक्ष से) *भीतिः कुतः* (डर कहाँ है?)

(इस पद्य में खेतिहर किसान के सौभाग्य के वर्णन द्वारा शिवभक्ति से मनोकामनाओं की पूर्ति बतायी गई है।)

बुद्धिरूपी कुँए से पानी खींचने के पानीपेच से, वाणीरूप घड़े से, कविता रूपी छोटी-बड़ी नहरों द्वारा आते हुए पानी से, भगवान् सदाशिव के चरित्रों रूपी सरोवर के दिव्य अमृत जैसे जल द्वारा हृदयरूपी पानीभरे खेत में धान के हरे पौधे फल-फूल रहे हैं। फिर, भगवन् विश्वनाथ! मुझे दुर्भिक्ष का डर कहाँ? आत्मा के सिंचन के लिये शिवकथाओं का अमृत (मुक्ति देने वाला) मिलने पर हृदय की भूख का डर कहाँ?

(४१)

पापोत्पातविमोचनाय रुचिरैश्वर्याय मृत्युञ्जय
स्तोत्रध्याननतिप्रदक्षिणसपर्यालोकनाकर्णने।
जिह्वाचित्तशिरोङ्घ्रिहस्तनयनश्रोत्रैरहं प्रार्थितो
मामाज्ञापय तन्निरूपय मुहुर्मामेव मा मेऽवचः॥

पापोत्पात-विमोचनाय (पापों के उत्पात निवारण के लिये) *रुचिर-ऐश्वर्याय* (ऐश्वर्य के लिये) *मृत्युञ्जय* (हे मृत्युविजेता!) *अहं* (मैं) *जिह्वा-चित्त-शिरः अंघ्रि-हस्त-नयन-श्रोत्रैः* (जीभ, मन, शिर, पैर, हाथ, नेत्र, कान आदि इन्द्रियों द्वारा) *स्तोत्र-ध्यान-नति-प्रदशिण-सपर्या-लोकन-आकर्णने* (स्तुति, ध्यान, वन्दन, प्रदक्षिणा, सेवा, दर्शन और कथा श्रवण के लिये) *प्रार्थितः* (मुझसे प्रार्थना की जा रही है।) *माम् आज्ञपय* (मुझे आज्ञा दें, आदेश दें) *तन् निरूपय* (विस्तार से समझायें) *मुहुः* (बार-बार) *माम् एव* (मेरे लिये) *मा मे अवचः* (मेरे लिये मौन मत होइये)।

हे मृत्युञ्जय! पापों के उत्पात का निवारण करने के लिये और रुचिर ऐश्वर्य के लिये मेरी इन्द्रियों द्वारा आपकी भक्ति की मुझसे प्रार्थना की जा रही है। मेरी जिह्वा स्तुति के लिये, चित्त ध्यान के लिये, शिर वन्दना के लिये, पैर प्रदक्षिणा के लिये, हाथ सेवा-पूजा के लिये, नेत्र दर्शन के लिये,

कान सुनने के लिये, कान आपके आदेश की प्रार्थना कर रहे हैं। आप विस्तार से मेरे लिये अपनी भक्ति के विधान समझाइये। बार-बार समझाइये। मेरे लिये मौन व्याख्यान अपर्याप्त है, मैं उसे नहीं समझ पाऊँगा।

भगवान् शिव ने, दक्षिणामूर्त्ति रूप में, सनक, सनन्दन, सनातन, और सनत्कुमार को मौन भाषण द्वारा उपदेश दिया था। वे मौन-संदेश समझ गये। उनकी-सी समझ कवि के पास नहीं है। उसे तो, बार-बार, विस्तार से व्याख्या की आवश्यकता है।

(४२)

गाम्भीर्यं परिखापदं घनधृतिः प्राकार उद्यद्गुण-
स्तोमश्चाप्तबलं घनेन्द्रियचयो द्वाराणि देहे स्थितः।
विद्या वस्तुसमृद्धिरित्यखिलसामग्रीसमेते सदा
दुर्गातिप्रियदेव मामकमनोदुर्गे निवासं कुरु॥

दुर्गा-अति-प्रियदेव (दुर्गा भवानी के अत्यंत प्रिय स्वामी।) *मामकमनः-दुर्गे निवासं कुरु* (मेरे मन रूपी दुर्ग में निवास कीजिये) *गम्भीर्यं परिखापदं* (इस किले के चारों ओर गम्भीरता रूपी खाई है) *घनघृतिः प्राकारः* (अडिग धैर्य का परकोटा है) *उद्यत् गुण स्तोमः* (सद्गुणों का समूह) *च आप्तबलं* (राजकीय सेना है) *घन-इन्द्रिय-चयः द्वाराणि* (इन्द्रियों के समूह के अभेद्य द्वार हैं) *देहे स्थितः* (देह में स्थित है) *विद्या वस्तु समृद्धि इति* (विद्या रूपी बहुमूल्य समृद्धि है) *अखिल सामग्री समेते सदा* (इस अखिल सामग्री वाले में)।

हे दुर्गा भवानी के अत्यंत प्रिय प्रभो! (हे दुर्गप्रिय स्वामिन्!) आप मेरे मन रूपी दुर्ग में सदा विराजमान रहिये। इस दुर्ग के चारों ओर गम्भीरता रूपी खाई है। अडिग धैर्य का परकोटा है। उत्तम गुणों के समूह की राजकीय सेना है। शरीर की इन्द्रियों के समूहों का दृढ़ द्वार हैं। विद्यारूपी धन-सम्पदा है।

(४३)

मा गच्छ त्वमितस्ततो गिरिश भो मय्येव वासं कुरु
स्वामिन्नादिकिरात मामकमनःकान्तारसीमान्तरे।

वर्तन्ते बहुशो मृगा मदजुषो मात्सर्यमोहादय-
स्तान्हत्वा मृगयाविनोदरुचितालाभं च संप्राप्स्यसि॥

भो गिरिश स्वामिन् आदि-किरात (हे कैलासपते स्वामिन् आदिकिरात!) *त्वं इतस्ततः मा गच्छ* (आप इधर-उधर मत जाइये) *मयि एव वासं कुरु* (मेरे शरीर में ही वास कीजिये) *मामक-मनः*-(मेरा मन) *कान्तार सीमा अन्तरे* (मेरे मन में घोर निर्जन वन है) *बहुशः मात्सर्य मोह आदयः मदजुषः मृगा वर्तन्ते* (इस मनरूप घने जंगल में, बहुत से मोह-मात्सर्व आदि मदमस्त पशु रहते हैं) *तान् हत्वा* (उनका शिकार कर) *मृगयाविनोदरुचिता-लाभं* (शिकार करने के मनोविनोद की रुचि और लाभ को) *संप्राप्स्यसि* (आप अच्छी तरह प्राप्त कर सकेंगे।)

इस पद्य में भगवान् शिव के किरातरूप की प्रार्थना की गई है।

हे स्वामी कैलाशपति आदिकिरात! आप मृगया के लिये इधर-उधर मत जाइये। मेरे मन में ही वास कीजिये। मेरे इस मन में बड़ा घना जंगल है, जिसमें मोह, मत्सर आदि न-जाने कितने मदमस्त जानवर रहते हैं। इन खूँख्वार जानवरों का शिकार कर मनोरंजन कीजिये और लाभ पाइये।

महाभारत की कथा के अनुसार अर्जुन को पाशुपत अस्त्र किरातवेषधारी शिव से युद्ध करने के बाद मिला था। संस्कृत का प्रसिद्ध नाटक **किरातार्जुनीयम्** इसी आख्यान पर आधारित है।

(४४)

करलग्नमृगः करीन्द्रभङ्गो
घनशार्दूलविखण्डनोऽस्तजन्तुः।
गिरिशो विशदाकृतिश्च चेतः-
कुहरे पञ्चमुखोऽस्ति मे कुतो भीः॥

चेतः-कुहरे (मेरे मन की गुफा में) *मे कुतः भीः* (मुझे कैसा डर?) *करलग्नमृगः* (भगवान् शिव के हाथ में दौड़ता हुआ मृग है; सिंह ने मृग को पकड़ रखा है) *करि-इन्द्र-भङ्गः* (जिन भगवान् शिव ने गजदानव को मारा था; जो सिंह गजराजों को मार सकता है) *धनशार्दूल-विखण्डनः* (जिन

रुद्रदेव ने खूँख्वार सिंह-दैत्य को पराजित किया; जो सिंहो को भी पछाड़ सकता है) *अस्त जन्तुः* (जिन्होंने मरे हुए हाथी अथवा वाघ के चर्म को धारण किया हुआ है; जिस सिंह के पास उसके द्वारा मारे हुए पशु पड़े हुए हैं) *गिरिशः विशद आकृति च* (जो सिंह पहाड़ों का राजा और बड़ी आकृति वाला है)।

(काव्य विनोद के लिये इस पद्य में श्लेषालंकार की सहायता से शिव के साथ-साथ सिंह का भी वर्णन है)

मेरे चित्त की गुफा में पञ्चमुखी शिव निवास करते हैं। मुझे किससे डर है? वे कैलासपति बड़ी आकृतिवाले हैं। उन्होंने एक हाथ में दौड़ता हुआ मृग पकड़ रखा है, और गज चर्म धारण किये हुए हैं। उन्होंने भयंकर शार्दूल दैत्य को परास्त किया है। जिन्होंने पशु-चर्म धारण किया हुआ है, और जो पर्वतेश्वर हैं।

(४५)

छन्दश्शाखिशिखान्वितैर्द्विजवरैः संसेविते शाश्वते
सौख्यापादिनि खेदभेदिनि सुधासारैः फलैर्दीपिते।
चेतःपक्षिशिखामणे त्यज वृथासंचारमन्यैरलं
नित्यं शंकरपादपद्मयुगलीनीडे विहारं कुरु॥

चेतः-पक्षि-शिखामणे (हे चित्तरूपी पक्षिराज!) *त्यज वृथा संचारं अन्यैः अलं* (इधर-उधर की बहुत हो चुकी, व्यर्थ भटकना छोड़) *नित्यं शङ्करपादपद्म-युगलीनीडे* (सदा भगवान् शंकर के चरणकमलयुगल रूपी आश्रम में) *विहारं कुरु* (आनन्दपूर्वक निवास कर) *छन्दः शाखि शिखान्वितैः* (वेदों की शाखाओं-उपनिषदों का अन्वेषण करने वाले) *द्विजवरैः* (विद्वानों द्वारा) *संसेविते शाश्वते* (सदा सेवा किये जाने वाले) *सौख्यापादिनि* (यह आश्रय परम सुख देने वाला है) *खेदभेदिनि* (दुःख मिटाने वाला है) *सुधासारैः फलैः दीपिते* (यह आश्रय अमृतमय फलों से सुशोभित है)।

इस पद्य में मन को पक्षी मान कर समझाया गया है।

हे मन पंछी, हे मनरूपी पक्षिराज! इधर-उधर भटकना छोड़। अब

बहुत हो चुका। सदा भगवान् शंकर के चरणकमल युगल का आश्रय ले– वहाँ अपना घोंसला बना। इन चरणकमलों की वेदान्त-वेत्ता पण्डित सदा सेवा करते हैं। इनसे परमसुख की प्राप्ति होती है और दुःखों का निवारण होता है। ये अमृत फलों से सुशोभित हैं।

(४६)

आकीर्णे नखराजिकान्तिविभवैरुद्यत्सुधावैभवै-
राधौतेऽपि च पद्मरागललिते हंसव्रजैराश्रिते।
नित्यं भक्तिवधूगणैश्च रहसि स्वेच्छाविहारं कुरु
स्थित्वा मानसराजहंस गिरिजानाथाङ्घ्रिसौधान्तरे।।

मानस-राजहंस (हे मनरूपी राजहंस!) *नखराजि* (नखों की पंक्ति) *कान्ति विभवैः आधौतेऽपि* (उगते हुए चन्द्र-रश्मियों के वैभव से स्वच्छ किये हुए) *पद्मराग-ललिते* (लाल माणिक्य से सुशोभित) *हंसब्रजैः आश्रिते* (जिसमें राजहंस आश्रय लेते हैं) *नित्यं भक्तिबधूगणैश्च रहसि* (सदा एकान्त में भक्तिरूपी प्रियाओं के साथ) *गिरिजानाथ*-(उमानाथ) *अंध्रि-सौधान्तरे* (चरणरूपी महल में) *स्थित्वा* (विश्राम लेकर) *स्वेच्छाविहारं कुरु* (स्वेच्छापूर्वक विहार करिये)।

इस पद्य में मानसराजहंस को समझाया गया है। राजहंस का अर्थ नीर-क्षीर विवेकी संत भी है। हंस और सन्त दोनों की ओर श्लेषालंकार से संकेत है।

हे मेरे मन के राजहंस! गिरिजापति भगवान् शिव के चरणरूपी प्रासाद में विश्राम कर, और स्वेच्छाविहार का आनन्द ले। यह महल भगवान् शिव के चरणों के नखों की पंक्ति की कान्ति से शोभायुक्त है, और उगते हुए चन्द्रमा की किरणों से नहाया हुआ है। यह लाल माणिक्यों से सुशोभित है, और हंसों के समूह इसमें विश्राम करते हैं। यहाँ भक्ति के विविध रूपों का एकान्त में परमानन्द प्राप्त कर।

(४७)

शंभुध्यानवसन्तसङ्गिनि हृदारामेऽघजीर्णच्छदाः
स्रस्ता भक्तिलताच्छटा विलसिताः पुण्यप्रवालश्रिताः।

दीप्यन्ते गुणकोरका जपवचः पुष्पाणि सद्वासना
ज्ञानानन्दसुधामरन्दलहरी संवित्फलाभ्युन्नतिः ।।

शंभु-ध्यान-वसन्तसङ्गिनि (भगवान् शिव के ध्यान रूपी वसन्तऋतु में) *हृद्-* (हृदयरूपी) *आरामे* (उद्यान में) *अघजीर्णच्छदाः* (पापरूपी पुराने पत्ते) *स्रस्ताः* (झड़ गये हैं) *पुण्यप्रवालश्रिताः भक्तिलताच्छटाः (पुण्य रूपी नवीन किसलयों के आश्रित, भक्तिरूपी लता से शोभित) गुणकोरका दीप्यन्ते* (गुणरूपी कलियाँ) *दीप्यन्ते (प्रकाशित हो रही हैं) जपवचःपुष्पाणि* (जिसमें जपरूपी पुष्प हैं) *सद्वासना* (अच्छी मनोवृत्ति) *ज्ञान-आनंद-सुधा* (ज्ञानरूपी आनन्दामृत) *मरन्द-लहरी* (फूलों की रस रूपी तरंगे) *संवित्फल-अभि-उन्नति* (प्रत्यक्षज्ञानरूपी फल निकल रहे हैं।)

हृदयरूपी उद्यान में, शंभुध्यान रूपी बसन्त के आगमन से, पाप रूपी पुराने पत्ते झड़ गये हैं। पुण्यरूपी किसलयों से आश्रित, भक्तिरूपी लता है। सद्गुणों की कलियाँ से युक्त जपवणी रूपी पुष्प दिखाई दे रहे हैं। सद्वासनाओं रूपी ज्ञानानन्दरूपी अमृत। ज्ञान-आनन्दामृत की रस-तरंगों से संबोधि का फल आ रहा है।

यहाँ हृदय को एक उद्यान और शंभुध्यान को बसन्त बता कर, फलते-फूलते उद्यान में भक्तिरूपी लता के पल्लवित-पुष्पित होने का वर्णन है।

(४८)

नित्यानन्दरसालयं सुरमुनिस्वान्तांबुजाताश्रयं
स्वच्छं सद्द्विजसेवितं कलुषहृत्सद्वासनाविष्कृतम्।
शंभुध्यानसरोवरं व्रज मनोहंसावतंस स्थिरं
किं क्षुद्राश्रयपल्वलभ्रमणसंजातश्रमं प्राप्स्यसि।।

मनः हंसावतंस (हे मेरे मनरूपी हंस शिरोमणे!) *स्थिरं शंभुध्यान-सरोवरं व्रज* (अविचल शिवध्यानरूपी सरोवर की ओर जा) *नित्य-आनन्द-रस-आलयं* (यह सरोवर नित्य आनन्दरस से भरा हुआ है) *सुर-मुनि-स्वान्तांम्बुजाताश्रयं* (देवता और मुनियों के हृदयरूपी कमलों से भरा हुआ है) *स्वच्छं* (निर्मल है) *सद्द्विज-सेवितं* (सद्ब्राह्मणों के द्वार सेवित् है) *कलुषहृत्* (पापरूपी

कीचड़ को दूर करने वाला है) *सद्‌वासनाविष्कृतम्* (अच्छी वासनाओं को प्रकट करने वाला है) *किं क्षुद्राश्रय-*(क्यों संसारी क्षुद्र आश्रय रूपी) *पल्वल* (छोटी पोखरों में) *भ्रमण-संजात-श्रमं प्राप्स्यसि* (घूमने से उत्पन्न श्रम का बोझा प्राप्त करेगा)।

हे मेरे मनरूपी राजहंस! भगवान् शिव के ध्यानरूपी निर्मल प्रशान्त सरोवर को जा। यह सरोवर नित्यानन्दरूपी पानी से भरा हुआ है। देवता और मुनियों के हृदयकमल इसमें खिले हुए हैं। सद्‌विप्र इसमें भजन करते हैं। इसमें पाप-कल्मष धुल जाते हैं, और शुभ वासनाएँ प्रकट होती हैं। छोटे-छोटे लोगों की शरणरूपी गन्दी पोखरों में घूमने के व्यर्थ श्रम को क्यों अंगीकार करता है?

(४६)

आनन्दामृतपूरिता हरपदाम्भोजालवालोद्यता
स्थैर्योपघ्नमुपेत्य भक्तिलतिका शाखोपशाखान्विता।
उच्चैर्मानसकायमानपटलीमाक्रम्य निष्कल्मषा
नित्याभीष्टफलप्रदा भवतु मे सत्कर्मसंवर्धिता॥

आनन्दामृतपूरिता (आनन्द रूपी जल से भरी हुई) *हरपदाम्भोज-*(भगवान शंकर के चरणकमलरूपी) *आलवाल* (पेड़ के चारों ओर की थाम में) *उद्यता* (उत्पन्न) *स्थैर्य-उपघ्नम्* (धीरजरूपी स्थिर खंभे को) *उपेत्य* (प्राप्त कर) *शाखोपशाखान्विता* (शाखा-उपशाखाओं में फैलती हुई) *उच्चैः* (ऊँची) *मानसकायमान* (मन और शरीर की माप के अनुरूप) *पटलीम् आक्रम्य* (पंडाल पर फैलकर) *निष्कल्मषा* (निष्कलंक, निर्मल) *सत्कर्म-संवर्धिता* (शुभकार्यों से पोषित) *भक्ति-लतिका* (भक्तिरूपी लता) (मेरे लिये) *नित्य अभीष्ट फलप्रदा भवतु* (नित्य अभीष्ट फल-मुक्ति-प्रदायिनी हो)।

भक्तिरूपी कल्पलता मेरे लिये अभीष्ट फल-मुक्ति-दायिनी हो। इस भक्तिलता का आनन्दरूपी जल से सिंचन होता है, और भगवान् शिव के चरणकमलों की थाम से यह उत्पन्न होती है। अविचल निष्ठारूपी दृढ़ आधार का सहारा लेकर शाखा-प्रशाखाओं में फैलती हुई, एक ऊँचे पंडाल (मन) पर लिपट कर, यह निर्मल भक्तिलता सत्कर्मों से बढ़ती है।

(५०)

संध्यारम्भविजृम्भितं श्रुतिशिरःस्थानान्तराधिष्ठितं
सप्रेमभ्रमराभिराममसकृत्सद्वासनाशोभितम्।
भोगीन्द्राभरणं समस्तसुमनःपूज्यं गुणाविष्कृतं
सेवे श्रीगिरिमल्लिकार्जुनमहालिङ्गं शिवालिङ्गितम्॥

इस पद्य में श्लेष द्वारा श्रीशैल पर स्थित मल्लिकार्जुन और भगवान् भवानीशंकर का साथ-साथ वर्णन है।

सेवे शिवा-आलिङ्गितं श्रीगिरिमल्लिकार्जुन-महालिङ्ग (मैं भवानी-द्वारा आलिङ्गित श्रीशैल पर प्रतिष्ठित मल्लिकार्जुन महालिङ्ग की सेवा करता हूँ) *संध्यारम्भविजृम्भितम्* (उनको जो संध्या समय प्रसन्न होकर नृत्य करते हैं; जो अर्जुनतरु संध्या समय खिलता है) *श्रुतिशिरः-स्थानान्तर-अधिष्ठितं* (उनको जो वेदान्त द्वारा प्रतिष्ठित हैं, उस मल्लिकार्जुन को जिसके पुष्प शिर और कानों में धारण किये जाते हैं) *सप्रेमभ्रमर-अभिरामं* (उनको जो शिव भ्रमराम्बिका सहित सुशोभित हैं; उस अर्जुनवृक्ष को जिसके चारों ओर भ्रमर गुंजार कर रहे हैं) *असकृत् सद्-वासना-शोभितम्* (उनको जो सत्पुरुषों के ध्यान में बारंबार प्रकाशित होते हैं; जिस अर्जुनवृक्ष से सदा सुगंध निकलती रहती है) *भोगीन्द्र-आभरणं* (उनको जिन्होंने नागराजों के आभूषण धारण किये हुए हैं; अर्जुनपुष्प जो विलासी लोगों की शोभा बढ़ाते हैं) *समस्तसुमनः-पूज्यं* (उनको जो समस्त देवताओं के पूज्य हैं; अर्जुन वृक्ष जो वृक्षों में सर्वश्रेष्ठ है) *गुण-आविष्कृतं* (जो सद्‌गुणों को व्यक्त करते हैं; जो अपने गुणों के लिये प्रसिद्ध है)।

मैं शिवा आलिङ्गित मल्लिकार्जुन महालिङ्ग की पूजा करता हूँ। जहाँ संध्या समय, जब अर्जुन के फूल खिलते हैं, तो भगवान् नटराज प्रसन्न होकर नृत्य करते हैं। भगवान् शिव वैदिक ज्ञान के चूडान्त पर स्थित हैं, उसी प्रकार जैसे अर्जुन के पुष्पों को शिर और कानों पर धारण किया जाता है। भगवान् शिव भ्रमराम्बिका के साथ सुशोभित होते हैं; अर्जुन गुंजार करते भ्रमरों से आच्छादित रहता है। भगवान् शिव की सत्पुरुष आराधना करते हैं; अर्जुन के पुष्प सब फूलों में सुन्दर दिखते हैं। भगवान् शिव

सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण को प्रकट करते हैं; अर्जुन के पुष्प सुगंध, रंग आदि से बड़े कमनीय दिखाई देते हैं। भगवान् शिव श्रीशैल पर मल्लिकार्जुन महालिङ्ग के रूप में विराजमान हैं; अर्जुन शैल शिखर पर सुशोभित है। भगवान् शिव शिवा द्वारा उसी भाँति आलिङ्गित हैं जैसे अर्जुन मल्लिका द्वारा।

श्रीशैल पर स्थापित मल्लिकार्जुन शिवा आलिङ्गित शिव का प्रतीक है।

कहते हैं कि मल्लिकार्जुन शिवलिङ्ग के दर्शन करते समय आचार्य शंकर को *शिवानन्दलहरी* की स्फूर्ति हुई थी।

(५१)

भृङ्गीच्छानटनोत्कटः करिमदग्राही स्फुरन्माधवा-
ह्लादो नादयुतो महासितवपुः पञ्चेषुणा चादृतः।
सत्पक्षः सुमनोवनेषु स पुनः साक्षान्मदीये मनो-
राजीवे भ्रमराधिपो विहरतां श्रीशैलवासी विभुः॥

भृङ्गी-इच्छा-नटनोत्कटः (भृङ्गी-ऋषि अथवा शिवगण– की इच्छा पर नृत्य करने में उन्मत्त अथवा श्रेष्ठ; भ्रमरी की इच्छापूर्ति के लिये नृत्योन्मत्त भ्रमर) *करिमदग्राही* (शिव, जिन्होंने गजासुर का गर्व चूर-चूर किया, भ्रमर जो हाथियों के मद का पान करता है) *स्फुरन्माधवाह्लादः* (शिव जो मोहिनी रूप धारण करने वाले विष्णु पर आह्लादित हो गये, भ्रमर जो बसन्तऋतु में प्रसन्न होता है) *नादयुतः* (शिव, जो प्रणवध्वनियुक्त हैं, भ्रमर जो भनभनाता है) *महासित-वपुः* (श्वेतवर्ण शिव, श्याम वर्ण भ्रमर, सित या असित) *पञ्च-इषुणा कामदेव से च आदृत*-(शिव जी देवों का पक्ष लेते हैं, भ्रमर, जो उपवनों में सुन्दर पंखों से विहार करते हैं) *स श्रीशैलवासी भ्रमराधिपः विभुः पुनः साक्षात् मदीये मनः-राजीवे विहरताम्* (वे श्रीशैल पर प्रस्थापित सर्वव्यापी मल्लिकार्जुन एक बार फिर साक्षात् मेरे हृदय-कमल में विहार करें)।

श्रीशैलनिवासी भ्रमराधिपति भगवान् शिव भ्रमरराज के समान हैं। जिस प्रकार भ्रमर अपनी प्रियतमा को रिझाने के लिये नृत्य करता है, भगवान् शिव अपने पार्षद भृङ्गी (अथवा ऋषिश्रेष्ठ भृङ्गी) के लिये नटराजरूप में नृत्य करते हैं। भ्रमर गजराजों के मद का पान करते हैं, वैसे ही भगवान्

शिव 'करिमदग्राही', गजदानव का गर्व खण्डित करने वाले हैं। भ्रमर वसन्तु ऋतु में आनन्दित होते हैं, भगवान् शिव महाविष्णु के साथ आनन्दित होते हैं। भ्रमर गुंजार करते हैं, भगवान् शिव ओंकार के नाद से प्रसन्न होते हैं। भगवान् शिव साक्षात् कामदेव की कान्ति को भी लज्जित करने वाले हैं। सत्पुरुषों के रक्षक शिव मेरे हृदय-कमल में निवास करें।

(५२)

कारुण्यामृतवर्षिणं घनविपद्ग्रीष्मच्छिदाकर्मठं
विद्यासस्यफलोदयाय सुमनःसंसेव्यमिच्छाकृतिम्।
नृत्यद्भक्तमयूरमद्रिनिलयं चंचज्जटामण्डलं
शंभो वाञ्छति नीलकंधर सदा त्वां मे मनश्चातकः॥

शंभो नीलकंधर (हे नीलग्रीव शंभो!) *मे मनः चातकः* (मेरा मनरूपी चातक) *कारुण्य-अमृत-वर्षिणं* (करुणा का अमृत बरसाने वाले को) *घनविपद्* (घनी विपत्ति)-*ग्रीष्म-च्छिदा-कर्मठं* (रूपी भीषण गर्मी को हटाने में प्रवीण को) *विद्यासस्यफलउदयाय* (विद्यारूपी खेती के फल की उपज के लिये) *सुमनः-संसेव्यं* (देवताओं द्वारा भली प्रकार सेवित को) *इच्छा-कृतिम्* (इच्छानुसार रूप धारण करने वाले को) *नृत्यद्-भक्त-मयूरं* (नाचते भक्तरूपी मयूरों से घिरे हुए को) *चंचत्-जटामण्डलं* (बिजली के समान हिलते हुए जटामण्डलवाले को) *अद्रि-निलयं* (गिरिवासी को) *सदा त्वां वाञ्छति* (सदा आपकी अभीप्सा करता है)

(इस पद्य में नीलकंठ शंभु और नीरधर बादल का साथ-साथ वर्णन है। इस प्रकार दो-दो अर्थ वाले शब्दों की संयोजना से काव्यानंद मिलता है।

हे नीलकंठ महादेव! मेरा चित्तचातक सदा आपके करुणारूपी अमृत बरसाने वाले जलधर की अभीप्सा करता है। जलधर की भाँति, हे शंभो! आप भयंकर विपदारूपी ग्रीष्म का अन्त करने में प्रवीण हैं। जलधर की भांति आप विद्यारूपी खेती की उपज के लिये लाभदायक हैं। देवता आपकी सेवा में रहते हैं, और आप इच्छावपुधारी हैं। भक्तरूपी मयूर आपके चारों ओर नाचते रहते हैं। आप कैलास गिरि पर निवास करने वाले हैं। बिजली-सी आपकी चञ्चल जटाएँ हैं।

(५३)

आकाशेन शिखी समस्तफणिनां नेत्रा कलापी नता-
ऽनुग्राहिप्रणवोपदेशनिनदैः केकीति यो गीयते।
श्यामां शैलसमुद्भवां घनरुचिं दृष्ट्वा नटन्तं मुदा
वेदान्तोपवने विहाररसिकं तं नीलकण्ठं भजे॥

तं नीलकण्ठं भजे (मैं उन नीलकण्ठ महादेव की सेवा करता हूँ) *आकाशेन शिखी* (जिनका आकाश मुकुट है) *समस्त फणिनां नेत्रा कलापी* (जो समस्त सर्पों के स्वामी को आभूषण की भाँति धारण करते हैं) *नत-अनुग्राहि-* (वन्दना करने वालों पर अनुग्रह करते हुए) *प्रणव-उपदेश-निनदैः* (प्रणव — ॐ — नाद द्वारा) *केकी इति गीयते* (मयूररूपी में गाये जाते हैं) *श्यामां शैल-समुद्भवां* (शैलजा पार्वती को) *घनरुचिं दृष्ट्वा मुदा नटन्तं* (जो रूपवती उमा को देखकर खुशी में नाचते हैं उनको) *वेदान्तोपवने विहाररसिकं* (वेदान्तरूपी उपवन में विहार करने वाले नीलग्रीव को)।

(इस पद्य में भगवान् नीलग्रीव और नीले कण्ठ वाले मोर का साथ-साथ वर्णन है)

मैं मोर के समान नीलकण्ठ भगवान् शिव का भजन करता हूँ। नीलग्रीव शिव का मुकुट आकाश है, जैसे मोर की शिखा होती है। भगवान् शिव सर्पराज का आभूषण धारण करते हैं; मोर सर्पों के बलवान् शत्रु होने के कारण उनपर शासन करते हैं। शिवजी शृंगार किये हुए रहते हैं; मोर अपनी रंग-बिरंगी पूँछ से सुशोभित होता है। जो भगवान् के सामने नतमस्तक होते हैं, उन्हें वे प्रणव मन्त्र (ॐ) द्वारा उपदेश देते हैं; मोर केकी ध्वनि करता है। गिरिजा भवानी को देखकर भगवान् शिव आनन्द में नृत्य करते हैं; मोर बादलों को देखकर नाचता है।

(५४)

संध्या घर्मदिनात्ययो हरिकराघातप्रभूतानक-
ध्वानो वारिदगर्जितं दिविषदां दृष्टिच्छटा चञ्चला।

भक्तानां परितोषवाष्पविततिर्वृष्टिर्मयूरी शिवा
यस्मिन्नुज्ज्वलताण्डवं विजयते तं नीलकण्ठं भजे॥

यस्मिन् उज्ज्वल-ताण्डवं विजयते (जिनमें दिव्य ताण्डवनृत्य विजय प्राप्त करता है) *तं नीलकण्ठं भजे* (उन नीलकंठ-भगवान् शिव, अथवा मोर की पूजा करता हूँ) *सन्ध्या* (दिन और रात के बीच की संधि, प्रदोषकाल) *घर्म* (गर्मी) *दिन-अत्ययः* (दिन का अवसान, समाप्ति) *हरि-कर-आघात* (महाविष्णु के हाथ की चोट) *प्रभूत* (बड़ा) *आनक-ध्वानः* (बड़े ढोल का शब्द) *वारिद गर्जितं* (मेघ गर्जन) *दिविषदां दृष्टिच्छटा चञ्चला* (देवताओं के नेत्रों की पंक्तियाँ, बिजली का कोंधना) *भक्तानां परितोषवाष्पविततिः वृष्टिः* (भक्तों के संतुष्टि में निकले हुए आँसुओं की धारा रूपी वर्षा) *मयूरी शिवा* (नृत्य करते हुए मोर को निहारती हुई मोरनी जैसी शिव के नृत्य से मुग्ध शिवा)

पिछले पद्य की भाँति, इस पद्य में नीलकण्ठ नटराज और वर्षा ऋतु में, बादलों की गर्जना और बिजली के चमक में मुग्ध मोरनी के सामने नाचते हुए मोर का साथ-साथ वर्णन है।

प्रदोष काल में (गर्मी की समाप्ति के बाद वर्षा ऋतु में) महाविष्णु द्वारा बड़े ढोल के बजने के साथ (बादलों की गर्जना के साथ), देवों की बिजली जैसी चमकती नेत्र पंक्तियों के समक्ष, परितुष्ट भक्तों की अश्रुधाराओं के बीच (वर्षा में पानी से भीगते हुए), शिवा (मयूरी) के सामने नृत्य करते हुए नटराज शिव की मैं पूजा करता हूँ। उनके दिव्य ताण्डव नृत्य की जय।

(५५)

आद्यायामिततेजसे श्रुतिपदैर्वेद्याय साध्याय ते
विद्यानन्दमयात्मने त्रिजगतः संरक्षणोद्योगिने।
ध्येयायाखिलयोगिभिः सुरगणैर्गेयाय मायाविने
सम्यक्ताण्डवसंभ्रमाय जटिने सेयं नतिः शंभवे॥

आद्याय (आदिकारण के लिये) *अमित-तेजसे* (असीम तेज के लिये) *श्रुतिपदैः वेद्याय* (वेद के पदों से जो जाना जाय उसके लिये) *साध्याय* (जो

प्राप्त करने योग्य है उसके लिये) *विद्या-आनन्द-मय-आत्मने* (जो ज्ञान और आनन्द स्वरूप हैं उनके लिये) *त्रिजगतः संरक्षण-उद्योगिने* (जो तीनों लोकों की रक्षा में तत्पर रहते हैं, उनके लिये) *अखिल योगिभिः ध्येयाय* (समस्त योगिजन जिनका ध्यान करते हैं, उनके लिये) *सुरगणैः गेयाय* (देवगण जिनकी प्रार्थना करते हैं, उनके लिये) *मायाविने* (माया के स्वामी के लिये) *सम्यक्-ताण्डव-संभ्रमाय* (जो सम्यक् नृत्य में संलग्न हैं) *जटिने शंभवे सा इयं नतिः* (जटाधारी शिव के लिये यह नमस्कार)

जो सबके आदि कारण हैं, अमिताभ हैं, वेदों से उनके बारे में ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, जो भक्ति द्वारा प्राप्य हैं, ज्ञान और आनन्द स्वरूप हैं, तीनों लोकों के संरक्षण के उद्योग में तत्पर हैं, समस्त योगियों के ध्यान के विषय हैं, देवता लोग उनकी स्तुति करते हैं, जो मायापति हैं, जो अद्भुत ताण्डव नृत्य में आनंदित हैं, उन जटाधारी शिव-शंभु के लिये मेरा यह नमस्कार।

(५६)

नित्याय त्रिगुणात्मने पुरजिते कात्यायनीश्रेयसे
सत्यायादिकुटुम्बिने मुनिमनःप्रत्यक्षचिन्मूर्तये।
मायासृष्टजगत्त्रयाय सकलाम्नायान्तसंचारिणे
सायंताण्डवसंभ्रमाय जटिने सेयं नतिः शंभवे॥

नित्याय (जो सनातन शाश्वत हैं उनके लिये) *त्रिगुणात्मने* (जो सत्व, रज और तम तीनों गुणों में व्याप्त हैं) *पुरजिते* (जिन्होंने स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर तीनों को अपने वश में कर रखा है उनके लिये) *कात्यायनी श्रेयसे* (जो भवानी पार्वती के सर्वस्व हैं) *सत्याय* (जो परम सत्य हैं, उनके लिये) *आदि-कुटुम्बिने* (जो आदि कुटुम्बी हैं, उनके लिये, *जगतः पितरौ)* *मुनिमनः प्रत्यक्षचिन्मूर्तये* (जो मुनियों के मन के लिये प्रत्यक्ष चिन्मूर्ति हैं, उनके लिये) *मायासृष्टजगत्त्रयाय* (जो माया से तीनों लोकों की सृष्टि करने वाले हैं, उनके लिये) *सकल-आम्नाय-अन्त-संचारिणे* (जो समस्त वेदान्त में व्याप्त हैं, उनके लिये) *सायं-ताण्डव-संभ्रमाय* (जो प्रदोष काल में नृत्य करते हैं, उनके लिये) *सा इयं नतिः जटिने शंभवे* (यह नमस्कार जटाधारी शम्भु के लिये हैं)।

मैं जटाधारी भगवान् शिव को प्रणाम करता हूँ। वे नित्य हैं, सत्व, रज, तम तीनों गुणों में व्याप्त हैं; उन्होंने स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर तीनों को वश में कर लिया है; वे भगवती उमा के लिये परम श्रेय हैं, वे परम सत्य हैं, आदि कुटुम्बी हैं, मुनियों के मन में प्रत्यक्ष चिन्मूर्ति हैं, उन्होंने माया से तीनों लोकों की सृष्टि की है। वे समस्त वेदान्त में व्याप्त हैं, और सायंकाल में ताण्डवनृत्य करते हैं।

(५७)

नित्यं स्वोदरपोषणाय सकलानुद्दिश्य वित्ताशया
व्यर्थं पर्यटनं करोमि भवतः सेवां न जाने विभो।
मज्जन्मान्तरपुण्यपाकबलतस्त्वं शर्व सर्वान्तर-
स्तिष्ठस्येव हि तेन वा पशुपते ते रक्षणीयोऽस्म्यहम्॥

नित्यं (प्रतिदिन) *स्व-उदर-पोषणाय* (अपना पेट पालने के लिये) *वित्त-आशया* (धनलाभ की आशा से) *सकलान् उद्दिश्य* (हर तरह के लोगों के पीछे) *व्यर्थं पर्यटनं करोमि* (व्यर्थ चक्कर काटता हूँ) *विभो* (हे सर्वव्यापिन् प्रभो!) *भवतः सेवां न जाने* (मैं आपकी सेवा नहीं जानता) *मत्-जन्मान्तर-पुण्यपाक-बलतः* (मेरे पूर्वजन्म के पुण्यों के फलीभूत हो जाने पर, उनके आधार पर) *शर्व* (हे शिवशंकर!) *सर्व-अन्तर-तिष्ठसि एव हि* (आप सब प्राणियों के अन्तःकरण में स्थित हैं) *तेन* (इस कारण) *पशुपते* (हे प्राणियों के स्वामिन्!) *अहम् रक्षणीयः अस्मि* (मैं आप द्वारा रक्षा योग्य हूँ।)

इस पद्य में हृदय की निश्छल पुकार है। धन कमाने की दौड़ में थक कर, केवल अपने पेट पालने के लिये लाभ की आशा में इधर उधर- के लोगों के पीछे चक्कर लगाने के बाद, इन सारे उद्योगों की व्यर्थता दिखाई देने लगती है। मनुष्य पछताता है। हीरा-जैसा जीवन कौड़ियाँ बीनने में बीता दिखाई देता है। भगवान् शिव से प्रार्थना करता हूँ, "प्रभो, मुझे बचाइये, मेरी रक्षा कीजिये"।

(५८)

एको वारिजबान्धवः क्षितिनभोव्याप्तं तमोमण्डलं
भित्वा लोचनगोचरोऽपि भवति त्वं कोटिसूर्यप्रभः।

वेद्यः किं न भवस्यहो घनतरं कीदृग्भवेन्मत्तम-
स्तत्सर्वं व्यपनीय मे पशुपते साक्षात्प्रसन्नो भव॥

एकः वारिजवान्धवः (अकेला कमल-बन्धु, सूर्य) *क्षितिनभः-व्याप्तं* (पृथ्वी और आकाश में सर्वत्र व्याप्त) *तमोमण्डलं* (अन्धकार को) *भित्वा* (हटाकर) *लोचन-गोचरः-अपि भवति* (दृष्टिगोचर होने लगता है) *त्वं कोटिसूर्यप्रभः* (किन्तु आप तो करोड़ों सूर्यों के समान प्रभावान् हो) *अहो वेद्यः किं न भवसि* (हाय, आप दिखायी क्यों नहीं देते!) *कीदृक् घनतरं भवेत् मत् तमः* (मेरा अज्ञान का अन्धकार कितना घना है!) *तत् सर्वं व्यपनीय* (अज्ञानरूपी इस सारे अंधकार को हटाकर) *पशुपते* (हे पशुपते!) *मे साक्षात् प्रसन्नः भव* (मेरे लिये आप साक्षात् प्रसन्न होइये)।

हे पशुपते! अकेला एक सूर्य पृथ्वी और आकाश में व्याप्त अंधकार को चीरकर दृष्टिगोचर हो जाता है। आपकी तो करोड़ों सूर्यों जैसी प्रभा है। आप मुझे दर्शन क्यों नहीं देते? मेरा ऐसा कितना घना अज्ञान है? मैं आपको क्यों नहीं जान पा रहा हूँ? इस सारे अंधकार को– मेरे घनीभूत अज्ञान को – दूर कर मुझे साक्षात् दर्शन दें।

(५६)

हंसः पद्मवनं समिच्छति यथा नीलाम्बुदं चातकः
कोकः कोकनदप्रियं प्रतिदिनं चन्द्रं चकोरस्तथा।
चेतो वाञ्छति मामकं पशुपते चिन्मार्गमृग्यं विभो
गौरीनाथ भवत्पदाब्जयुगलं कैवल्यसौख्यप्रदम्॥

हंसः पद्मवनं समिच्छति (हंस कमलों से भरे सरोवर की अभीप्सा करता है) *यथा चातकः नीलाम्बुदं* (जैसे चातक जल से भरे घने बादलों की अभिलाषा करता है) *कोकः कोकनदप्रियं प्रतिदिनं* (जैसे लाल हंस प्रतिदिन लाल कमल को चाहता है) *प्रतिदिनं चकोरः चन्द्रं* (चकोर चन्द्रमा को चाहता है) *तथा मामकं चेतः* (मेरा चित्त) *गौरीनाथ* (हे उमापते!) *भवत्* (आपके) *कैवल्यसौख्यप्रदम् चिन्मार्गमृग्यं पदाब्जयुगलं वाञ्छति* (मुक्ति का

आनन्द प्रदान करने वाले, ज्ञानमार्ग द्वारा प्राप्त करने योग्य, चरणकमलों की इच्छा करता है)।

हे उमापते! जैसे हंस पद्मसरोवर की अभिलाषा करता है, चातक जल से भरे श्याम घन की अभीप्सा करता है, जैसे गुलाबी रंग का हंस लाल कमल चाहता है, चकोर चन्द्रमा से प्रेम करता है, वैसे ही मेरा चित्त ज्ञानमार्ग से प्राप्य आपके मोक्षदायक चरणकमलों को चाहता है।

(६०)

रोधस्तोयहृत: श्रमेण पथिकश्छायां तरोर्वृष्टितो
भीत: स्वस्थगृहं गृहस्थमतिथिर्दीन: प्रभुं धार्मिकम्।
दीपं सन्तमसाकुलश्च शिखिनं शीतावृतस्त्वं तथा
चेत: सर्वभयापहं व्रज सुखं शंभो: पदाम्भोरुहम्॥

तोयहत: रोध: (जैसे पानी के थपेड़ों से आहत किनारा चाहता है) *श्रमेण पथिक: तरो: छायां* (श्रम से थका हुआ पथिक पेड़ की छाया चाहता है) *वृष्टित: भीत: स्वस्थगृहं* (भारी वर्षा से डरा हुआ मनुष्य अपना सुदृढ़ घर चाहता है) *अतिथि: गृहस्थं* (अतिथि स्वागत करने वाले गृहस्थ को चाहता है) *दीन: धार्मिकं प्रभुं* (दीनजन सम्पन्न दयावान् धार्मिक दानी को चाहता है) *दीपं तमस् आकुल: सन्* (अंधेरे से आकुल दीपक को चाहता है) *शीत-आवृत:* (ठंड से चारों ओर ढका हुआ) *शिखिनं* (तापने के लिये अग्नि को चाहता है) *तथा* (उसी भांति) *चेत:* (हे मेरे मन!) *सर्वभयापहं* (सब दु:खों को दूर करने वाले) *शंभो: पद-अम्भोरुहम् सुखं भज* (सुखपूर्वक भगवान् शिव के चरणकमलों की शरण में जा)।

जैसे पानी के थपेड़ों से आहत मनुष्य किनारे की ओर मुड़ता है, थका हुआ यात्री पेड़ की छाया ढूँढता है, वर्षा से डरा हुआ पक्का मकान चाहता है, अतिथि ऐसा गृहस्थ चाहता है जो सत्कार कर सके, दीन जन दानी धार्मिक की ओर देखता है, घने अंधकार में भटकता हुआ आदमी दीपक का सहारा लेता है, ठंड से चारों ओर घिरा हुआ आदमी तापने के लिये आग की अंगीठी की ओर जाता है, उसी भाँति मेरे मन, भय दूर करनेवाले भगवान् शिव के चरणकमलों का आश्रय ले।

(६१)

अंकोलं निजबीजसंततिरयस्कान्तोपलं सूचिका
साध्वी नैजविभुं लता क्षितिरुहं सिन्धुः सरिद्वल्लभम्।
प्राप्नोतीह यथा तथा पशुपतेः पादारविन्दद्वयं
चेतोवृत्तिरुपेत्य तिष्ठति सदा सा भक्तिरित्युच्यते॥

निजबीज-सन्ततिः अङ्कोलं (पिस्ते के पेड़ से गिरे हुए बीज जैसे पेड़ की ओर अपने-आप सरक कर आ जाते हैं) *सूचिका* (सुई) *अयस्कान्त-उपलं* (चुम्बक पत्थर की ओर खिंची आती है) *साध्वी नैजविभुं* (पतिव्रता स्त्री जैसे अपने पति की ओर आकर्षित होती है) *लताः क्षितिरुहं* (लता जैसे पेड़ का आलिङ्गन करती है) *यथा सिन्धुः सरित्-वल्लभम् प्राप्नोति इह* (नदी जैसे अपने प्रियतम समुद्र की ओर दौड़ती हैं) *चेतोवृत्ति तथा पशुपतेः पादारविन्दं उपेत्य तिष्ठति* (चित्तवृत्ति भगवान् शिव के चरण-कमलों को प्राप्त कर वहीं सदा स्थिर हो जाती है) *सा भक्तिः इति उच्यते* (वह भक्ति कहलाती है)।

इस पद्य में कई उपमाएँ देकर भक्ति को परिभाषित किया गया है।

जिस प्रकार पिस्ते के बीज, पेड़ से जा चिपकते हैं; जैसे सुई चुम्बक पत्थर से जा चिपकती है; जैसे पतिव्रता पत्नी अपनी पति की ओर आकर्षित होती है; जैसे लता पेड़ से, और नदी समुद्र के पास आकर मिल जाती है; उसी भाँति, हे पशुपते! जब चित्तवृत्ति आपके चरण-कमलों को प्राप्त कर, वहीं सदा स्थिर हो जाती है, तो वह 'भक्ति' कहलाती है।

(६२)

आनन्दाश्रुभिरातनोति पुलकं नैर्मल्यतश्छादनं
वाचाशङ्खमुखे स्थितैश्च जठरापूर्तिश्चरित्रामृतैः।
रुद्राक्षैर्भसितेन देव वपुषो रक्षां भवद्भावना-
पर्यङ्के विनिवेश्य भक्तिजननी भक्तार्भकं रक्षति॥

आनन्द-अश्रुभिः आतनोति पुलकं (आनन्द के आँसुओं से नहला कर पुलक उत्पन्न करती है) *नैर्मल्यतः छादनं* (निर्मलता रूपी वस्त्र पहनाती है)

वाचाशङ्खमुखे स्थितैः चरित-अमृतैः जठराग्निपूर्तिम् (वाणीरूपी शङ्खमुख से आपके चरितामृत द्वारा भूख की पूर्ति करती है) *रुद्राक्षैः भसितेन वपुषः रक्षां* (रुद्राक्ष और भस्म से शरीर की रक्षा करती है) *भवद् भावना पर्यङ्के विनिवेश्य* (आपकी भावना रूपी पलंग पर सुलाकर) *भक्ति-जननी भक्तार्भकं रक्षति* (भक्ति माता अपने भक्तरूपी पुत्र की रक्षा करती है)।

इस पद्य में भक्ति का माता के रूप में और भक्त का उसके बालक के रूप में वर्णन किया गया है। माता अपने बालक को स्नान कराती है, कपड़े पहनाती है, उसे दूध पिलाती है, और उसके शरीर पर रक्षासूत्र बाँधती है।

भक्तिमाता अपने बालक भक्त को आनन्द के अश्रुओं से स्नान कराकर, निर्मलता रूपी वस्त्र पहनाती है। भगवान् शिव के चरितामृत से वाणीरूपी शंख द्वारा भूख मिटाती है। रुद्राक्ष और भस्म से उसके शरीर की रक्षा करती है। हे देव पशुपते! आपकी भावना रूपी पलंग पर सुलाकर रक्षा करती है।

(६३)

मार्गावर्तितपादुका पशुपतेरङ्गस्य कूर्चायते
गण्डूषाम्बुनिषेचनं पुररिपोर्दिव्याभिषेकायते।
किञ्चित्भक्षितमांसशेषकवलं नव्योपहारायते
भक्तिः किं न करोत्यहो वनचरो भक्तावतंसायते॥

मार्ग-आवर्तित (रास्ते में चलने से घिसी हुई) *पादुका* (जूती) पशुपतेः *अङ्गस्य कूर्चायते* (भगवान् शिव के अङ्ग की दोनों भौंहों के बीच का निशान बन गया) *गण्डूष-अम्बु-निषेचनं* (मुँह में पानी का कुल्ला) *पुररिपो* (त्रिपुरारि का) *दिव्य-अभिषेकायते* (दिव्य अभिषेक हो गया) *किञ्चित्-भक्षित-मांस-शेष कवलं* (कुछ-कुछ खाया हुआ मांस का कौर) *नव्य-उपहारायते* (नया भोजन उपहार वन गया) *भक्तिः किं न करोति अहो* (अहा! भक्ति क्या नहीं कर सकती!) *वनचरः भक्तावतंसायते* (जंगल में शिकार करने वाला भक्तशिरोमणि हो गया)।

(अगर सच्ची भक्ति हो तो सेवा-पूजा के विधि-विधान की क्या

आवश्यकता? शिवभक्त कण्णपन का ही उदाहरण लें) जंगली शिकारी शिवभक्त कण्णप्पन की चलते-चलते घिसी हुई पैरों की जूती दोनों भोंओं के बीच का स्थान निश्चित करने के लिये ठीक थी। मुँह में भरे पानी के कुल्ले से भगवान् शिव का अभिषेक हो गया। कुछ-कुछ खाये हुए माँस के कौर का नैवेद्य बन गया। अहा! भक्ति क्या नहीं कर सकती! जंगली शिकारी भक्त शिरोमणि हो गया।

इस पद्य के पीछे शिवभक्त किरात कण्णप्पन की कथा है। कण्णप्पन जंगल में जीवों को मारकर अपनी भूख मिटाता था। उसे जंगल में एक खण्डित शिवमूर्ति मिल गई। इसे देखकर उसके हृदय में शिवभक्ति उदय हो गई। सेवा-पूजा के नियम, शरीर की शुद्धता आदि के बारे में तो जानता नहीं था। अपनी मनमानी रीति से शिवभक्ति करता था। मुँह में भरे पानी के कुल्ले से अभिषेक कर दिया, झूँठे मांस के टुकड़े का नैवेद्य चढ़ा दिया। उसे कुछ ऐसा लगा कि शिवमूर्ति की आँखों से रक्तस्राव हो रहा है। उसने झट अपनी एक आँख निकाल कर लगा दी। दूसरी आँख लगाने के लिये अपनी जूती से भोहों के बीच का स्थान निर्धारित कर लिया। उसने परम भक्त शिरोमणि की पदवी पाई।

(६४)

वक्षस्ताडनमन्तकस्य कठिनापस्मारसंमर्दनं
भूभृत्पर्यटनं नमत्सुरशिरःकोटीरसंघर्षणम्
कर्मेदं मृदुलस्य तावकपदद्वन्द्वस्य किं वोचितं
मच्चेतोमणिपादुकाविहरणं शम्भो सदाङ्गीकुरु॥

अन्तकस्य वक्षस्ताडनं (यम की छाती पर लात मारना, कठिन अपस्मार को कुचलने के बाद निर्बल करना) *भूभृत्-पर्यटनं* (पथरीले कैलास पर पैदल चलना) *नमत्-सुर-शिरः कोटीर-संघर्षणम्* (नमन करते हुए देवताओं के शिर पर पहने हुए मुकुटों से पैरों में रगड़) *इदं कर्म* (ये सब क्रियाएँ) *मृदुलस्य तावक-पदद्वन्द्वस्य किं वा उचितं* (क्या आपके कोमल चरणों के लिये उचित है?) *मत्-चेतः मणि-पादुका-विहरणं* (मेरी चित्तरूपी मणिमय पादुका पर चलना) *शंभो* (हे शिवशम्भो!) *सदा अङ्गीकुरु* (सदा स्वीकार करें)।

(इस पद्य का अर्थ समझने से पहले इसकी पृष्ठभूमि की कुछ कथाओं का स्मरण आवश्यक है।)

मार्कण्डेय की केवल सोलह वर्ष की निर्धारित आयु थी। माता-पिता बड़े चिन्तित हुए। किन्तु बालक शिवलिङ्ग की पूजा में सम्पूर्ण रूप से संलग्न हो गया। यम के दूत लेने आये, किन्तु शिवमन्दिर के गर्भगृह में प्रवेश नहीं पा सके। अन्त में स्वयं यमराज आये। भगवान् शिव ने लिङ्ग से प्रकट होकर यमराज की छाती पर लात मारी। मार्कण्डेय चिरंजीवी हो गया। भक्त कल्पना करता है इस कठोर कार्य में भगवान् के कोमल चरण को चोट लगी होगी।

दारुकवन के यज्ञ में अपस्मार (मिरगी से बीमार होना) उत्पन्न हुआ। इसने शिव से युद्ध करना चाहा। भगवान् ने पैर के अंगूठे से उसकी कमर तोड़ दी। नटराज की मूर्ति में भगवान् इसी अपस्मार को पैर से दबाये हुए दिखाई देते हैं।

देवतालोग शिव के चरणों में अपने मुकुटों को रखकर उनकी वन्दना करते हैं। इन खुरदरे मुकुटों से भगवान शिव के पैरों मे पीड़ा होती होगी।)

यमराज के वक्षस्थल पर लात मारना, अपस्मार का पैरों के नीचे कुलचना, पथरीले कैलासपर्वत पर पैदल चलना, नमन करते हुए देवताओं के मुकुटों की रगड़, हे शम्भो! क्या आपके कोमल चरणों के लिये उपयुक्त है? मेरी चित्तरूपी मणिमय पादुका को, आपके चरणों की सेवा के लिये स्वीकार कीजिये।

(६५)

वक्षस्ताडनशङ्क्या विचलितो वैवस्वतो निर्जराः
कोटीरोज्ज्वलरत्नदीपकलिकानीराजनं कुर्वते
दृष्ट्वा मुक्तिवधूस्तनोति निभृताश्लेषं भवानीपते
यच्चेतस्तव पादपद्मभजनं तस्येह किं दुर्लभम्॥

वक्षस्ताडनशङ्क्या (छाती पर लात पड़ने के भय से) *वैवस्वतः विचलितः* (सूर्यपुत्र यम विचलित हो गया) *निर्जराः कोटीर-उज्ज्वल-रत्नदीप-कलिका-*

नीराजनं कुर्वते (देवता मुकुटों में जड़े उज्ज्वल रत्नदीपों की पंक्तियों से आरती उतारते हैं) *दृष्ट्वा मुक्तिबधूः तनोति निभृत-आश्लेषं* (देखकर मुक्ति वधू नम्र आलिङ्गन करती है) *भवानीपते* (हे उमापते महेश्वर!) *यत् चेतः* (जो चित्त) *तव पाद-पद्म-भजनं* (आपके चरणों की सेवा में है) *तस्य इह किं दुर्लभम्* (उसके लिये इस संसार में क्या दुर्लभ है?)।

हे उमापते महेश्वर! जो कोई भी आपके चरण-कमलों की सेवा करता है, उसके लिये क्या दुर्लभ है? उससे मृत्यु का देवता यम भी दूर भागता है। उसे डर रहता है कि कहीं शिवभक्त मार्कण्डेय को बचाने के लिये शिव ने उसकी छाती पर लात मारी थी वैसी लात फिर न पड़ जाय। देवता उनकी अपने मुकुटों में लगे रत्नों की ज्योति से आरती उतारते हैं। मुक्तिवधू आपके चरणों का नम्र आलिङ्गन करती है।

(६६)

क्रीडार्थं सृजति प्रपञ्चमखिलं क्रीडामृगास्ते जनाः
यत्कर्माचरितं मया च भवतः प्रीत्यै भवत्येव तत्।
शंभो! स्वस्य कुतूहलस्य करणं मच्चेष्टितं निश्चितं
तस्मान्मामकरक्षणं पशुपते कर्तव्यमेव त्वया॥

शंभो (हे शंभो!) *क्रीडार्थं अखिलं प्रपञ्चं सृजति* (आप आप्तकाम हैं, और इस जगत् की सृष्टि में आपका कोई प्रयोजन-उद्देश्य नहीं है। यह सृष्टि आपकी क्रीड़ामात्र है) *जनाः ते क्रीडामृगाः* (सब लोग आपके क्रीडामृग, खेल के साधन हैं) *यत् कर्म मया आचरितं* (मेरे द्वारा जो कुछ भी कर्म किया गया) *तत् भवतः* (आपकी) *एव प्रीत्यैः भवति* (वह आपकी प्रीति के लिये ही है) *मत् चेष्टितं निश्चितं स्वस्य कुतूहलस्य करणं* (मैंने जो कुछ किया अपने कुतूहल के लिये है) *तस्मात्* (इसलिये) *पशुपते मामक-रक्षणं त्वया कर्तव्यं एव* (इसलिये आपको मेरी रक्षा करनी ही चाहिये)

हे शंभो! आप जगत् की सृष्टि केवल क्रीड़ा के लिये करते हैं। सब लोग आपके क्रीडामृग हैं। मैं, क्रीड़ामृग, जो कुछ करता हूँ, वह सब आपकी प्रीति, कुतूहल के लिये है। इसलिये हे पशुपते! आपको मेरी रक्षा करनी ही चाहिये। "यत् यत् कर्म करोमि तत् तत् अखिलं शंभो तवाराधनम्।"

(६७)

बहुविधपरितोषवाष्पपूर-
स्फुटपुलकाङ्कितचारुभोगभूमिम्।
चिरपदफलकाङ्क्षिसेव्यमानां
परमसदाशिवभावनां प्रपद्ये।।

बहुविध (अनेक प्रकार के) *परितोष-वाष्पपूर-स्फुट-पुलक-अंकित* (भक्ति में आनन्द के फलस्वरूप आँसू, पुलकावलि आदि सात्विक भावों से युक्त) *चारु-भोग-भूमिम्* (सुन्दर अनुभव भूमि को) *चिरपदफलकांक्षि* (जो चिरकालीन मोक्ष के फल की आकांक्षा रखते हैं) *सेव्यमानां* (उनके द्वारा सेवित) *परमसदाशिवभावनां प्रपद्ये* (मैं परम सदाशिव का ध्यान करता हूँ)

मैं भगवान् शिव के ध्यान में संलग्न होता हूँ। इस ध्यान का आश्रय वे लोग लेते हैं जो चिरकाल तक मुक्ति के आकांक्षी हैं, और भक्तिभाव में निकले अश्रुओं और अंगों में पुलकावलि का आनन्दमय अनुभव करने वाले हैं।

(६८)

अमितमुदमृतं मुहुर्दुहन्तीं
विमलभवत्पदगोष्ठमावसन्तीम्।
सदय पशुपते सुपुण्यपाकां
मम परिपालय भक्तिधेनुमेकाम्।।

सदय पशुपते (हे दयालो पशुपते!) *अमितमुद्-अमृतं* (अनन्त आनन्दरूपी अमृत जैसे दूध को) *मुहुर्दुहन्तीं* (बार-बार दुहने वाली को) *भवत्* (आपके) *विमलपदगोष्ठं आवसन्तीम्* (आपके चरणरूपी गोशाला में रहने वाली को) *मम सुपुण्यपाकां* (मेरे सत्कर्मों के फलस्वरूप प्राप्त हुई को) *परिपालय एकां भक्ति-धेनुम्* (अद्वितीय भक्तिरूपी कामधेनु का पालन कीजिये)।

हे कृपानिधान पशुपति! मेरी भक्तिरूपी इस कामधेनु की रक्षा कीजिये। यह भरपूर आनन्द-अमृत रूपी दूध बार-बार देती है। आपके दिव्य चरणकमल रूपी गोष्ठ में रहती हैं, और मेरे पुण्यों के फलस्वरूप प्राप्त हुई है।

(६९)

जडता पशुता कलङ्किता
कुटिलचरत्वं च नास्ति मयि देव।
अस्ति यदि राजमौले
भवदाभरणस्य नास्मि किं पात्रम्॥

हे देव जडता पशुता कलङ्किता कुटिलचरत्वं च (हे देव! विवेकशून्यता, पशुता, कलङ्किता और कुटिल आचरण मुझमें नहीं है) *राजमौले* (हे चन्द्रमौले!) *यदि अस्ति* (यदि मान लिया जाय कि ये बुराइयाँ हैं) *भवत् आभरणस्य पात्रं कि न अस्मि* (तब भी, इन बुराइयों के होते हुये भी क्या मैं आपकी कृपा का पात्र नहीं हूँ?)

(इस पद में शिवभक्त भगवान् शिव से मनुहार कर रहा हैं वह समझता है कि जडता, पशुता, कलङ्किता, कुटिल आचरण जैसी बुराइयाँ उसमें नहीं हैं। अगर हों भी तब भी भगवान् शिव उसे आभूषण रूप स्वीकार कर सकते हैं। उनके आभूषण तो गजचर्म (जड), हरिण और बैल (पशु), कलङ्की (चन्द्रमा), कुटिलगमन (सर्प) हैं। अगर इन्हें स्वीकार किया जा सकता है, तो उसे क्यों नहीं)

हे देव! मुझमें जडता, पशुता, कुटिलता, कलङ्क जैसी बुराइयाँ, मैं समझता हूँ, नहीं हैं। अगर हों तब भी मुझे आप अङ्गीकार कीजिये। गजचर्म, हरिण, चन्द्रमा और सर्पों को भी आपने अङ्गीकार किया हुआ है। मुझे क्यों नहीं?

(७०)

अरहसि रहसि स्वतंत्रबुद्ध्या
वरिवसितुं सुलभः प्रसन्नमूर्तिः।
अगणितफलदायकः प्रभुर्मे
जगदधिको हृदि राजशेखरोऽस्ति॥

मे प्रभुः (मेरे प्रभु) *राजशेखरः अस्ति* (राजराजेश्वर चन्द्रमौलि शिव हैं) *अरहसि* (बाहर) *रहसि* (एकान्त में) *स्वतंत्र-बुद्ध्या* (मन के अनुसार)

वरिवसितुं सुलभः (पूजा-अर्चना के लिये सुलभ हैं) *प्रसन्नमूर्तिः* (वे सदा अनुकूल, प्रसन्न रहते हैं) *अगणित फलदायकः* (वे अतुलित फल देने वाले हैं) *जगत् अधिकः मे हृदि* (वे समस्त जगत् से भी बड़े हैं, और मेरे हृदय में भी हैं)।

मेरे स्वामी राजराजेश्वर चन्द्रमौलि शिव हैं। उनकी पूजा-सेवा बाहर, भीतर, सबके सामने अथवा एकान्त में, कहीं भी, कैसे भी, की जा सकती है। वे सदा अनुकूल, सदा सुलभ और प्रसन्न रहते हैं। वे अनन्त फलदायक हैं, उनका अतुलित कृपा-प्रसाद है। वे समस्त जगत से बड़े हैं, और मेरे हृदय में भी निवास करते हैं।

(७१)

आरूढभक्तिगुणकुञ्चितभावचाप-
युक्तैः शिवस्मरणबाणगणैरमोघैः।
निर्जित्य किल्विषरिपून्विजयी सुधीन्द्रः
सानन्दमावहति सुस्थिरराजलक्ष्मीम्।

आरूढ (चढ़े हुए) *भक्तिगुणकुञ्चित* (भक्तिरूपी प्रत्यञ्चा से खींचे हुए) *भाव-चापयुक्तैः* (मननरूपी धनुष से) *अमोघैः शिवस्मरण-बाणगणैः* (अमोघ शिवस्मरणरूपी बाणों से) *किल्विषरिपून्* (पापरूपी शत्रुओं को) *निर्जित्य* (जीतकर) *विजयी सुधीन्द्रः* (विजयी मनीषी) *सुस्थिरराजलक्ष्मीम् सानन्दं आवहति* (अचल राजलक्ष्मी-मोक्ष-को प्राप्त करता है।)

सुदृढ़ भक्तिरूपी प्रत्यञ्चा से चिन्तनरूपी धनुष को खींचकर, शिवस्मरणरूपी अमोघ बाणों से पापरूपी शत्रुओं को जीतकर विजयी, मनीषी सानन्द अचल राजलक्ष्मी-मोक्ष प्राप्त करते हैं।

धनुर्धर का यह रूपक **मुण्डकोपनिषद्** (२.२.३-४) में भी मिलता है।

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं
शरं ह्युपासानिशितं संधयीत
आयम्य तद् भावगतेन चेतसा
लक्ष्यं तदेवाक्षरं सौम्य विद्धि॥

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्।

(आत्मा को प्रणव के उच्चारण एवं उसके अर्थरूप परमात्मा के चिन्तन में सम्यक् प्रकार से लगाना चाहिये। इसके अनन्तर जैसे धनुष को पूरी शक्ति से खींचकर वाण को लक्ष्य पर छोड़ा जाता है, उसी प्रकार यहाँ भावपूर्ण चित्त से ओंकार का चिन्तन करने के लिये कहा गया है। इस प्रकार आत्मा निश्चितरूप से अविनाशी आत्मा में प्रवेश कर जाता है।

इस रूपक में परमेश्वर का वाचक प्रणव ही मानो धनुष है, यह जीवात्मा ही बाण है, और परब्रह्म परमेश्वर ही उसके लक्ष्य हैं। प्रमादरहित साधक द्वारा ही लक्ष्य भेदा जा सकता है)।

(७२)

ध्यानाञ्जनेन समवेक्ष्य तमःप्रदेशं
भित्वा महाबलिभिरीश्वरनाममन्त्रैः।
दिव्याश्रितं भुजगभूषणमुद्वहन्ति
ये पादपद्ममिह ते शिव ते कृतार्थाः॥

ध्यान-अञ्जनेन (आँखों में ध्यानरूपी अञ्जन से) *समवेक्ष्य तमः-प्रदेशं* (अंधकारमय प्रदेश को देखकर) *महाबलिभिः ईश्वरनाम-मन्त्रैः भित्वा* (और उस अंधकारमय प्रदेश को भगवान् शिव के नाम मन्त्रों के बड़े यज्ञ से चीरकर) *दिव्य-आश्रितं* (देवताओं द्वारा आश्रित) *ते भुजगभूषणं पादपद्मं उद्वहन्ति* (साँपों के आभूषणों से सुशोभित आपके चरणकमलों को प्राप्त करते हैं) *शिव ते कृतार्थाः* (हे भगवान् शिव! वास्तव में वे ही कृतार्थ हैं)

(छिपे हुए खजाने के ढूँढने के लिये, कहते हैं, पहले आँखों में जादू का अञ्जन लगाना होता है। फिर प्रवेश प्राप्त करने के लिये मन्त्रों सहित बलि दी जाती है) ध्यानरूपी अञ्जन आँखों में लगाकर, ईश्वरनामरूपी मन्त्रों से युक्त आवश्यक बलि द्वारा अंधकारयुक्त प्रदेश में मार्ग निकाल कर, देवताओं से सेवित, और सर्पों के आभूषणों से सुशोभित, आपके चरणकमलों को जो प्राप्त करते हैं वे ही धन्य हैं।

(७३)

भूदारतामुदवहद्यदपेक्षया श्री-
भूदार एव किमतः सुमते लभस्व।
केदारमाकलितमुक्तिमहौषधीनां
पादारविन्दभजनं परमेश्वरस्य॥

सुमते (हे बुद्धिमान्!) *भूदारतां-उद्वहद् यद्-अपेक्षया* (जिसे जानने की आशा से पृथ्वी को खोदने का प्रयत्न करते हुए) *भूदारः एव* (शूकर रूपधारी महाविष्णु) *किम् अतः* (को क्या प्राप्त हुआ!) *मुक्ति-महा-औषधीनां केदारं आकलित* (मुक्ति रूप महाऔषध के पानी से भरे हुए उपजाऊ खेत को प्राप्त कर) *परमेश्वरस्य पादारविन्द-भजनं लभस्व* (परमेश्वर महादेव के चरण कमलों को प्राप्त कर)।

हे मेरे मन! भगवान् शिव के चरण-कमलों का आश्रय ले। ये चरणकमल उस जुती हुई, पानी से भरी हुई, मुक्तिरूपी महाऔषध की क्यारी के समान हैं जिसकी मुझे अभिलाषा है। यह पादपद्मभूमि अत्यंत दुर्लभ है। जब श्री और भू के पति, महाविष्णु ने शूकर रूप धारण कर इसे खोजने का प्रयत्न किया तो वे भी सफल नहीं हुए।

(पौराणिक कथा है कि ब्रह्मा और विष्णु भगवान् शिव का आकार जानना चाहते थे। ब्रह्मा हंस बनकर आकाश में उड़े, और विष्णु ने शूकर बनकर पृथ्वी को खोदना शुरु किया। दोनों में कोई भी सफल नहीं हो सका।)

(७४)

आशापाशक्लेशदुर्वासनादि-
भेदोद्युक्तैर्दिव्यगन्धैरमन्दैः।
आशाशाटीकस्य पादारविन्दं
चेतःपेटीं वासितां मे तनोतु॥

आशा-पाश-क्लेश-दुर्वासना-आदि (आशा की फाँस, आधिव्याधि, बुरी इच्छाओं आदि को) *भेद-उद्युक्तैः* (खंडित करने के लिये उद्यत) *अमन्दैः*

दिव्य-गन्धैः (घनी दिव्य गन्ध से) *आशा* (दिशा) *शाटीकस्य* (वस्त्रधारण करने वाले के, दिगम्बर शिव के) *पाद-अरविन्द* (चरणकमलों को) *चेतः पेटीं* (चित्तरूपी वक्से को) *वासितां मे तनोतु* (सुवासित, सुगन्धित करें)।

मेरा मन आशा-दुराशा, क्लेश और बुरी भावनाओं की दुर्गन्ध से भरा हुआ है। दिगम्बर भगवान् शिव के चरण-कमलों की दिव्य सुगन्ध, इस दुर्गन्ध को हटाकर, मेरे चित्तरूपी वक्से को सुगन्धित करे।

(७५)

कल्याणिनं सरसचित्रगतिं सवेगं
सर्वेङ्गितज्ञमनघं ध्रुवलक्षणाढ्यम्।
चेतस्तुरङ्गमधिरुह्य चर स्मरारे
नेतः समस्तजगतां वृषभाधिरूढ॥

समस्तजगतां नेतः वृषभ-अधिरूढ स्मर-अरे (हे समस्त जगत् के अधिनायक, बैल पर सवारी करने वाले, कामदेव को परास्त करने वाले!) *कल्याणिनं* (शुभलक्षण वाले) *सरस-चित्र-गतिं* (मनोहर और अनेक प्रकार की चाल चलने वाले) *सवेगं* (द्रुतगामी) *सर्व इङ्गितज्ञं* (सब इशारों को समझने वाले) *अनघं* (निष्पाप) *ध्रुव-लक्षण-आढ्यम्* (शुभ लक्षणों से युक्त) *चेतः-तुरङ्गं अधिरुध्य* (मेरे चित्तरूपी घोड़े पर सवार होकर) *चर* (विचरण करें, विहार करें)।

हे कामदेव को पराजित करने वाले जगत के स्वामिन्! आप बैल की सवारी करते हैं। मेरा चित्तरूपी तुरङ्ग आपकी सेवा के लिये उपयुक्त है। यह शुभदर्शन है, मनोहर विचित्र गतिवाला है, और द्रुतगामी है। यह अपने स्वामी के प्रत्येक आशय को समझ सकता है, और शुभलक्षणों से सुशोभित है। आप इस पर सवार होकर विचरण करें।

(७६)

भक्तिर्महेशपदपुष्करमावसन्ती
कादम्बिनीव कुरुते परितोषवर्षम्।
संपूरितो भवति यस्य मनस्तटाक-
स्तज्जन्मसस्यमखिलं सफलं च नान्यत्॥

महेशपद-पुष्करम् आवसन्ती (भगवान् शिव के चरणरूपी कमल में वास करने वाली) *भक्तिः कादम्बिनी इव* (भक्ति बादलों की पंक्ति के समान) *परितोषवर्षम् कुरुते* (आनन्दरूपी मेह की वर्षा करती है) *यस्य* (जिसका) *मनः-तटाकः* (मनरूपी सरोवर) *संपूरितः* (पूर्णरूप से भर जाता है) *तत् जन्म अखिलं सस्यं सफलं भवति* (उसकी जीवन रूपी खेती सफल हो जाती है) *न अन्यत्* (दूसरों की नहीं)।

भगवान् शिव की भक्ति मेघों से भरे आकाश की भाँति है। इससे जलभरे बादलों की पंक्ति के समान आनन्दरूपी जल की वर्षा होती है। जिस किसी का मन-सरोवर इस जल की वर्षा से अच्छी तरह भर जाता है, उसी की जीवनरूपी खेती सफल होती है, दूसरों की नहीं।

(७७)

बुद्धिः स्थिरा भवितुमीश्वरपादपद्म-
सक्ता वधूर्विरहिणीव सदा स्मरन्ती।
सद्भावनास्मरणदर्शनकीर्तनादि-
संमोहितेव शिवमन्त्रजपेन विन्ते॥

सदा स्मरन्ती (सदा स्मरण करनेवाली) *वधूविरहिणी इव* (विरहिणी नव विवाहिता के समान) *ईश्वरपादपद्मसक्ता* (भगवान् शिव के चरणकमलों में आसक्त) *स्थिरा भवितुं* (स्थिर होने के लिये) *सद्भावना-स्मरण-दर्शन-कीर्तन आदि सम्मोहिता इव* (सद् विचार, नाम-स्मरण, ध्यान-दर्शन, कीर्तन आदि में सम्मोहित जैसी) *शिवमन्त्रजपेन विन्ते* (शिवमन्त्र के जाप में संलग्न रहती है)।

विरहिणी नववधू के समान, जो अपने प्रियतम का स्मरण करती रहती है, भगवान् शिव के चरण-कमलों में अनुरक्त भक्ति, सुदृढ़ होने के लिये सद्विचार, नामस्मरण, दर्शन, कीर्तन आदि में सम्मोहित-सी, शिवमन्त्र के जाप में संलग्न रहती है।

(७८)

सदुपचारविधिष्वनुबोधितां
सविनयां सुहृदं समुपाश्रिताम्।

मम समुद्धर बुद्धिमिमां प्रभो
वरगुणेन नवोढवधूमिव॥

सद्-उपचार-विधिषु अनुबोधितां (सदाचरण और सेवा की विधियों में शिक्षित) *सविनयां* (विनयशील) *सुहृदं समुपाश्रिताम्* (भले हितैषियों के आश्रय में पली) *प्रभो* (हे प्रभो!) *वर गुणेन नवोढवधूं इव* (जैसे नवोढ़ा को वर के गुणों की चर्चा द्वारा शिक्षित किया जाता है) *इमां मम बुद्धिं समुद्धर* (मेरी इस बुद्धि को ऊपर – आपकी ओर – उठाइये)।

जैसे नवोढ़ा वधू को उसके पति के सद्गुणों की चर्चा द्वारा शिक्षित करते हैं, वैसे ही हे प्रभो! मेरी इस बुद्धि को, जो उचित उपचारों में शिक्षित है,जो विनयशील है, हितैषियों के आश्रय में पली है, ऊपर अपनी ओर आकर्षित कीजिये।

(७९)

नित्यं योगिमनःसरोजदलसञ्चारक्षमस्त्वत्क्रमः
शंभो तेन कथं कठोरयमराड्वक्षःकवाटक्षतिः।
अत्यन्तं मृदुलं त्वदंघ्रियुगलं हा मे मनश्चिन्तय-
त्येतल्लोचनगोचरं कुरु विभो हस्तेन संवाहये॥

नित्यं (सदा) *योगिमनः सरोजदल* (योगियों के मनरूप कमल की पंखुड़ियों पर) *संचारक्षमः त्वत्-क्रमः* (चलने-फिरने के अभ्यस्त हैं) *शंभो* (हे शुभकर्ता प्रभो!) *तेन कथं कठोर-यमराज-वक्षः कवाट-क्षतिः* (उससे यमराज के कठोर वक्षस्थलरूपी कपाट खुले होंगे) *त्वत्-अंघ्रियुगलं* (आपके चरण-कमल) *अत्यन्तं मृदुलं* (अत्यंत कोमल हैं) *हा मे मनः चिन्तयति* (हाय! मेरा मन यही चिन्ता करता रहता है)। *एतत् लोचनगोचरं कुरु* (इनको आँखों के सामने प्रकट कीजिये) *विभो* (हे सर्वव्यापिन् स्वामिन्!) *हस्तेन संवाहये* (मैं हाथ से संवाहन करूँगा)।

हे शंभो! आपके चरणकमल तो अत्यंत कोमल हैं। योगियों के चित्तरूपी कमलदलों पर नित्य विहार करते हैं। इन कोमल चरणों ने यमराज के वक्षस्थल के कठोर कपाट कैसे तोड़े होंगे? मैं यही चिन्ता करता रहता

हूँ। आपके चरणयुगल तो बड़े कमनीय कोमल हैं। उन्हें मेरी आँखों के सामने प्रकट कीजिये। मैं हाथों से संवाहन करूँगा, उन्हें सहलाऊँगा।

(८०)

एष्यत्येष जनिं मनोऽस्य कठिनं तस्मिन्नटानीति मद्-
रक्षायै गिरिसीम्नि कोमलपदन्यासः पुराभ्यासितः।
नो चेद्दिव्यगृहान्तरेषु सुमनस्तल्पेषु वेद्यादिषु
प्रायः सत्सु शिलातलेषु नटनं शंभो किमर्थं तव॥

एष जनिं एष्यति (यह जन्म ले रहा है) *अस्य मनः कठिनं* (इसका मन कठोर है) *तस्मिन् नटानीति* (तव भी, इस पर मैं नृत्य करूँगा) *मद्रक्षायै* (मेरी रक्षा के लिये) *गिरिसीम्नि* (पर्वत पठारों पर) *कोमलपदन्यासः पुरा अभ्यासितः* (आपने कोमल चरणों से चलने का पहले ही अभ्यास किया होगा) *नो चेत्* (अगर ऐसा नहीं है तो) *दिव्य-गृहान्तरेषु* (दिव्यदेवताओं के महलों के होते हुए) *सुमनतल्पेषु* (फूलों के गद्दे होते हुए) *सत्सु* (होते हुए) *प्रायः शिलातलेषु शिव तव नटनं किम् अर्थम्* (हे शिव! आपका प्रायः शिलाओं पर नृत्य करने का क्या अर्थ है?)

हे शंभो! मैं कल्पना करता हूँ आपने सोचा होगा कि "यह जन्मेगा और इसका कठोर मन होगा। मुझे इस कठोर मन पर ही नृत्य करना है।" तभी तो आप कठोर पहाड़ियों की तलहटियों पर नृत्य का अभ्यास करते हैं। यदि ऐसा नहीं है तो महलों, फूलों के गद्दों, और मनोरम वेदियों के होते हुए शिलातलों पर नृत्य का क्या अर्थ है?

(८१)

कञ्चित्कालमुमामहेश भवतः पादारविन्दार्चनैः
कञ्चिद्ध्यानसमाधिभिश्च नतिभिः कञ्चित्कथाकर्णनैः।
कञ्चित्कञ्चिदवेक्षणैश्च नुतिभिः काञ्चिद्दशामीदृशीं
यः प्राप्नोति मुदा त्वदर्पितमना जीवन्स मुक्तः खलु॥

उमामहेश (हे उमामहेश्वर!) *कंचित् कालं भवतः पाद-अरविन्द-अर्चनैः* (कुछ समय आपके चरण कमलों की पूजा-अर्चना में) *कंचिद् ध्यान*

समाधिभिः च (कुछ आपके ध्यान और समाधि में) *नतिभिः* (आपकी वन्दना में) *कंचित् कथा आकर्णनैः* (कुछ आपकी लीला कथाएँ सुनने में) *कंचित् कंचित् अवेक्षणैः* च (कुछ समय आपके रूप के दर्शन करने में) *नतिभिः* (आपके सम्मुख नमस्कार करने में) *यः प्राप्नोति काश्चिद् ईदृशीं दशां* (जो ऐसी दशा को प्राप्त होता है) *मुदा त्वत्-अर्पित-मनाः* (जिसका मन प्रसन्नता पूर्वक आपके चरणों में रम गया है) *जीवन् स मुक्तः खलु* (उसे जीते जी ही सचमुच मुक्त हो गया समझो)।

हे उमामहेश्वर! कुछ समय आपके चरणों की अर्चना करने से, कुछ आपके ध्यान और समाधि से, कुछ वन्दना से, कुछ आपके मनोरंजन के लिये नमस्कार से, कुछ कथा सुनने से, कुछ आपके दर्शन करने से, कुछ ऐसी आत्मविभोर दशा प्राप्त कर लेता है, वह, सचमुच, इसी लोक में, जीते- जी मुक्त हो जाता है।

(८२)

बाणत्वं वृषभत्वमर्धवपुषा भार्यात्वमार्यापते
घोणित्वं सखिता मृदङ्गवहता चेत्यादि रूपं दधौ।
त्वत्पादे नयनार्पणं च कृतवान् त्वद्देहभागो हरिः
पूज्यात्पूज्यतरः स एव हि न चेत् को वा तदन्योऽधिकः॥

आर्यापते (हे उमापते!) *हरिः* (विष्णु ने) *बाणत्वं वृषभत्वं* (बाण का, बैल का रूप धारण किया) *अर्धवपुषा भार्यात्वं* (आधे शरीर के रूप में भार्या बने) *घोणित्वं* (शूकर रूप धारण किया) *सखिता* (सखी बने) *मृदङ्ग वहता* (मृदङ्ग बजानेवाले बने) *च इति आदि रूपं दधौ* (इन-इन रूपों को धारण किया) *त्वद् पादे नयनार्पणं कृतवान्* (आपके चरणों मे एक नेत्र भी अर्पण किया) *हरिः पूज्यात् पूज्यतरः स* (इसलिये हरि पूज्य से भी अधिक पूज्य हैं) *स एव हि न चेत् कः वा तत् अन्यः अधिकः* (अगर वे पूज्यतर नहीं तो उनसे अधिक कौन है?)

(इस पद्य में कई पौराणिक कथाओं की पृष्ठभूमि है। यहाँ भगवान् शिव की हरिहर रूप में वन्दना है। भगवान् शिव ने विष्णु को बाण बनाकर त्रिपुर संहार किया। विष्णु वृषभरूप में शिव के वाहन बनते हैं। विष्णु

अर्धाङ्गिनी रूप में शिव की भार्या बने। शूकर बनकर विष्णु ने शिव के चरणों तक पहुँचने का प्रयास किया। मोहिनीरूप धारण कर विष्णु ने शिव की सहचरी का कर्तव्य निभाया। भस्मासुर बध के लिये भी विष्णु ने सुन्दर स्त्री का रूप धारण किया। जब शिवजी नृत्य करते हैं तो विष्णु मृगङ्ग बजाते हैं। जब, अर्चना करते समय, हज़ार कमल के पुष्पों में एक कम पड़ गया, तो विष्णु ने अपना नेत्र अर्पण कर दिया।)

हे उमापते! भगवान् विष्णु आपके लिये अनेक रूप धारण करते आये हैं। त्रिपुर संहार के लिये वाण बने, बृषभरुप में वाहन बने, अर्धाङ्गिनी के रूप में भार्या बने, शूकर बनकर पृथ्वी खोदते-खोदते शिव के चरणों तक पहुँचने का प्रयास किया। मोहिनी रूप में सहचरी बने। और तो और, जब सहस्र कमल से अर्चना के समय एक कमलपुष्प कम पड़ गया तो, उसके स्थान पर, अपना नेत्र अर्पण करने को तत्पर हो गये। उनसे बढ़कर शिव का प्रिय दूसरा कौन हो सकता है?

(८३)

जननमृतियुतानां सेवया देवतानां
न भवति सुखलेशः संशयो नास्ति तत्र।
अजनिममृतरूपं साम्बमीशं भजन्ते
य इह परमसौख्यं ते हि धन्या लभन्ते॥

जननमृतियुतानां देवतानां सेवया (जन्म लेने वाले और मरने वाले देवताओं की सेवा से) *सुखलेशः न भवति* (किंचित्मात्र भी सुख नहीं मिलता।) *तत्र संशयः न अस्ति* (इसमें कुछ भी संशय नहीं है) *अजनिम् अमृतरूपं* (अजन्मा और अमर) *स-अम्बं ईशं ये भजन्ते* (जो भवानी सहित शिव का भजन करते हैं) *इह परम-सौख्यं* (यहाँ पर परम आनन्द को) *ते हि धन्याः लभन्ते* (वे धन्य लोग इसे प्राप्त करते हैं)

जन्म लेने वाले और मरने वाले छोटे-बड़े देवताओं की सेवा से क्या लाभ? उनकी सेवा से किंचित्मात्र भी सुख नहीं मिलता। इसमें कुछ भी संशय नहीं है। जो लोग अजन्मा और अमर भगवान् शिव की आराधना करते हैं उन्हें परम आनन्द प्राप्त होता है। ऐसे लोग ही धन्य हैं।

(८४)

शिव तव परिचर्यासन्निधानाय गौर्या
भव मम गुणधुर्यां बुद्धिकन्यां प्रदास्ये।
सकलभुवनबन्धो सच्चिदानन्दसिन्धो
सदय हृदयगेहे सर्वदा संवस त्वम्॥

शिव सकल-भुवनबन्धो सच्चिदानन्दसिन्धो भव (हे विश्व-बन्धो! हे सच्चिदानन्द! हे जगत् के कारण! हे शिव!) *तव परिचर्या* (आपकी सेवा में) *गौर्या सन्निधानाय* (गौरी का हाथ बँटाने के लिये) *मम गुणधुर्यां बुद्धिकन्यां प्रदास्ये* (मेरी बुद्धि रूपी गुणसम्पन्न कन्या को अर्पण करता हूँ।) *सदय* (हे दयालो!) *त्वम् सर्वदा हृदयगेहे संवस* (आप मेरे इस हृदयरूपी घर में सदा सुख से निवास करें।)

हे शुभकारिन्! हे जगत् के कारण! हे विश्व-बन्धो! हे सत्‌चित् और आनन्द के सागर! हे दयालो! आपकी सेवा में गौरी का हाथ बँटाने के लिये मैं अपनी गुणवती बुद्धिरूपी कन्या को अर्पण करता हूँ। आप सदा मेरे हृदयरूपी घर में सुखपूर्वक निवास करें।

(८५)

जलधिमथनदक्षो नैव पातालभेदी
न च वनमृगयायां नैव लुब्धः प्रवीणः।
अशन-कुसुम-भूषा-वस्त्रमुख्यां सपर्यां
कथय कथमहं ते कल्पयानीन्दुमौले।

न एव जलधिमथन-दक्षः (न तो मैं सागरमंथन में दक्ष हूँ) *न एव पाताल-भेदी* (न ही पाताल में पहुँच सकने वाला) *न च वनमृगयायां* (और न जंगल में शिकार करने के लिये) *न एव प्रवीणः लुब्धः* (और न ही होशियार शिकारी) *अशन-कुसुम-भूषा-वस्त्रमुख्यां सपर्यां* (आपकी सेवा में, जिसके लिये नैवेद्य, पुष्प, आभूषण, वस्त्र आदि मुख्य हैं) *कथय* (बताइये) *इन्दुमौले* (हे चन्द्रशेखर!) *अहं ते कथं कल्पयामि* (मैं इन्हें कैसे समर्पण करूँ?)

(भगवान् शिव की सेवा में कालकूट हलाहल, सर्प, गजचर्म आदि रहते हैं। भक्त चिंतित है ऐसी सामग्री वह कहाँ से, कैसे, प्राप्त कर सकता है)

हे इन्दुशेखर शम्भो! मैं न तो समुद्रमंथन जानता हूँ, इसलिये चन्द्रमा और हलाहल जैसी चीजें नहीं ला सकता। पाताल पहुँचकर आपकी सेवा में सर्प भी नहीं ला सकता। जंगल में शिकार करने में प्रवीण शिकारी नहीं हूँ कि गजचर्म आदि एकत्र कर सकूँ। तब आप ही बताइये, आपका नैवेद्य, पुष्प, आभूषण, वस्त्र आदि मैं कहाँ से लाऊँ?

(८६)

पूजाद्रव्यसमृद्धयो विरचिताः पूजां कथं कुर्महे
पक्षित्वं न च वा किटित्वमपि न प्राप्तं मया दुर्लभम्।
जाने मस्तकमंघ्रिपल्लवमुमाजाने न तेऽहं विभो
न ज्ञातं हि पितामहेन हरिणा तत्त्वेन तद्रूपिणा॥

पूजा-द्रव्य-समृद्धयः विरचिताः (पूजा सामग्री भली भाँति जमाकर रख ली) *पूजां कथं कुर्महे* (किन्तु मैं पूजा कैसे करूँ?) *पक्षित्वं न* (ब्रह्मा की भाँति मैं हंस नहीं हो सकता) *च वा किटित्वं* (न मैं विष्णु की भाँति शूकर हो सकता हूँ) *न प्राप्तं मया दुर्लभं* (ये दुर्लभ रूप मेरे लिये संभव नहीं हैं, ये रूप मेरे लिये दुर्लभ हैं) *जाने मस्तकं अंघ्रिपल्लवं उमाजाने न ते अहं विभो* (हे विश्वव्यापिन् प्रभो! हे उमापते! मैं न आपके मस्तक तक पहुँच सकता हूँ और न आपके चरणकमलों तक) *न ज्ञातं हि* (मालूम नहीं हुआ!) *पितामहेन हरिणा* (पितामह ब्रह्मा द्वारा अथवा विष्णु द्वारा) *तत्त्वेन तद्रूपिणा* (उस रूप में भी यथार्थ रूप से)।

हे उमानाथ! मैंने पूजा की सारी आवश्यक सामग्री एकत्र कर ली। तब भी मैं आपकी पूजा कैसे करूँ? मैं ब्रह्मा की भाँति हंस अथवा विष्णु की भाँति शूकर रूप भी धारण नहीं कर सकता। यह मेरे लिये दुर्लभ है। हे सर्वव्यापिन् प्रभो! न तो आपके मस्तक तक पहुँच सकता हूँ न आपके चरण कमलों तक। मैं तो क्या ब्रह्मा और विशणु भी, हंस और शूकर रूप धारण कर, आपके सम्पूर्ण शरीर के ओर-छोर तक नहीं पहुँच सके।

(८७)

अशनं गरलं फणी कलापो
वसनं चर्म च वाहनं महोक्षः।
मम दास्यसि किं किमस्ति शंभो
तव पादाम्बुजभक्तिमेव देहि॥

शंभो (हे शुभकारिन् प्रभो!) *अशनं गरलं* (विष आपका भोजन है) *कलापः फणी* (सर्प आपके आभूषण हैं) *वसनं चर्म* (वस्त्रों के स्थान पर आपके पास गजचर्म है) *बाहनं महा-उक्षः* (सवारी के लिये बड़ा मोटा-ताजा बैल है) *मम किं दास्यसि* (मुझे आप क्या देंगे?) *किं अस्ति* (आपके पास क्या है) *तव पाद-अम्बुज-भक्तिं एव देहि* (केवल आपके चरणकमलों की भक्ति ही प्रदान करें)।

हे शंभो! विष आपका भोजन है, सर्प आपके आभूषण हैं, गजचर्म अथवा व्याघ्रचर्म आपके वस्त्र हैं, और बड़ा-सा बैल आपकी सवारी है। आप मुझे क्या देंगे? आपके पास देने को क्या है? आप तो मुझे केवल आपके चरणकमलों की भक्ति प्रदान करने की कृपा करें।

(८८)

यदा कृताम्भोनिधिसेतुबन्धनः
करस्थलाधःकृतपर्वताधिपः।
भवानि ते लंघितपद्मसंभवः
तदा शिवार्चास्तवभावनक्षमः॥

यदा कृत-अम्भः-निधि-सेतु-बन्धनः (जब समुद्र पर सेतुबंध कर लूँ) *करस्थल-अधः कृत-पर्वत-अधिपः* (और हाथ से विन्ध्याचल पर्वत दबा लूँ) *लंघित-पद्म-संभवः* (और ब्रह्मा से भी बड़ा हो जाऊँ) *तदा शिव-अर्चा-स्तव-भावन-क्षमः* (उस समय शिव की पूजा, प्रार्थना, ध्यान करने के लिये समर्थ हो सकूँगा।)

हे भगवान शिव! मैं आपकी पूजा करने, प्रार्थना करने और ध्यान करने के लिये तभी सक्षम हो सकता हूँ जब मैं भगवान् राम की भाँति समुद्र

पर सेतु बना सकूँ, अथवा अगस्त्य मुनि की भाँति अपनी हथेली से विन्ध्याचल पर्वत उठा सकूँ, अथवा श्रीकृष्ण के समान ब्रह्मा से भी बड़ा बन जाऊँ।

(८६)

नतिभिर्नुतिभिस्त्वमीश पूजा-
विधिभिर्ध्यानसमाधिभिर्न तुष्टः।
धनुषा मुसलेन चाश्मभिर्वा
वद ते प्रीतिकरं तथा करोमि॥

त्वं ईश (हे भगवान् शिव आप) *नतिभिः* (नमस्कार से) *नुतिभिः* (प्रार्थनाओं से) *पूजाविधिभिः* (पूजा के विधि-विधानों से) *ध्यान-समाधिभिः न तुष्टः* (ध्यान और समाधि से प्रसन्न न हुए) *धनुषा मुसलेन च अश्मिभि वा* (बाणों मूसल और पत्थरों से भी) *वद* (बताइये) *ते प्रीतिकरं* (आपका क्या प्रिय है) *तथा करोमि* (मैं वैसा ही करूँ)।

इस पद्य को समझने के लिये कई शिव लीलाओं का स्मरण करना होगा। अर्जुन जब दिव्यास्त्रों के लिये तपस्या कर रहा था तो भगवान् शिव किरात के रूप में प्रकट हुए और एक जंगली सूअर पर विवाद के बाद दोनों में बाणों से युद्ध हुआ। अर्जुन जब भगवान् शिव को नहीं हरा सका तो उसने पैर पकड़ लिये और शिव ने, प्रसन्न होकर, पाशुपत अस्त्र प्रदान किया।

दक्षिण भारत की एक पुण्यकथा के अनुसार शीलवती को धान कूट कर शिवभक्तों को भोजन कराने का काम सोंपा गया। वह शिव भक्तों को भोजन कराने के बाद वचे-खुचे धान से अपना पेट भरती थी। एक बार भगवान् शिव वेष बदलकर उसके यहाँ आये किन्तु उन्होंने शीलवती का भोजन स्वीकार नहीं किया। क्रुद्ध शीलवती मूसल लेकर दौड़ी। भगवान् शिव उसकी भक्ति से प्रसन्न हुए।

शाक्य नयनार फूलों से भगवान् शिव की पूजा नहीं कर सकता था, क्योंकि वह विधर्मियों के बीच में रहता था। वह प्रतिदिन भगवान् की पूजा

कंकड़ी फेंक कर करता था, और उसने अपना हृदय भगवान् को अर्पण कर दिया। भगवान् प्रसन्न हुए।

हे स्वामिन्! आप वन्दन से, स्तुति से, विधि-विधान युक्त पूजा से, ध्यान-समाधि से ही सन्तुष्ट नहीं होते। क्या बाण चलाकर, मूसल उठाकर, कंकड़ फेंक कर आपकी पूजा करूँ? बताइये, आपको जो अच्छा लगे मैं वही करूँ।

(९०)

वचसा चरितं वदामि शंभो-
रहमुद्योगविधासु तेऽप्रसक्तः।
मनसा कृतिमीश्वरस्य सेवे
शिरसा चैव सदाशिवं नमामि॥

शंभो (हे भगवन् शंभो!) *ते उद्योगविधासु अप्रसक्तः* (आपके ध्यान आदि में मैं संलग्न नहीं हो पा रहा हूँ) *वचसा चरितं वदामि* (इसलिये मैं बाह्य पूजा के रूप में आपकी लीलाओं की चर्चा करता हूँ) *मनसा ईश्वरस्य आकृतिं सेवे* (और मन से भगवान् शिव की मूर्ति की स्तुति करता हूँ) *शिरसा च एव सदाशिवं नमामि* (और मस्तक से सदाशिव को प्रणाम करता हूँ)।

हे शम्भो! मैं आपके ध्यान में दत्तचित नहीं रह पाता हूँ। इसलिये वाणी से आपकी लीलाओं का गान करता हूँ, मन से आपके रूप का स्मरण करता हूँ, और शिर से सदाशिव को प्रणाम करता हूँ।

(९१)

आद्याविद्या हृद्गता निर्गतासी-
द्विद्या हृद्या हृद्गता त्वत्प्रसादात्।
सेवे नित्यं श्रीकरं त्वत्पदाब्जं
भावे मुक्तेर्भाजनं राजमौले॥

त्वत् प्रसादात् (आपकी कृपा से) *राजमौले* (हे चन्द्रमौले!) *आद्या हृद्गता अविद्या निर्गता आसीद्* (हृदय की आद्या अविद्या दूर हो गई) *हृद्या विद्या*

हृद्गता (और हृदय के लिये हितकारी विद्या प्राप्त हो गई) *श्रीकरं मुक्तेर्भाजनं त्वत् पाद पङ्कजं नित्यं सेवे भावे* (शुभकारी और मुक्ति प्रदान करने वाले आपके चरणकमलों का सदा ध्यान करता हूँ और उनकी सेवा करता हूँ।)

हे राजशेखर! आपकी कृपा से अनादि अविद्या हृदय से दूर हो गई, और हृदय के लिये हितैषी विद्या हृदय में समा गई। अब मैं सदा शुभकारी और मुक्तिदायक आपके चरणकमलों का ध्यान करता हूँ और उनकी सेवा करता हूँ।

(६२)

दूरीकृतानि दुरितानि दुरक्षराणि
दौर्भाग्यदुःखदुरहंकृतिदुर्वचांसि।
सारं त्वदीयचरितं नितरां पिबन्तं
गौरीश मामिह समुद्धर सत्कटाक्षैः॥

त्वदीयं चरितं सारं नितरां पिबन्तं (आपकी लीलाओं की कथाओं का पूर्णरूप से रसपान करते हुए) *दुरितानि दुरक्षराणि* (कष्ट, खोटी दृष्टि) *दौभार्ग्य* (दुर्भाग्य) *दुःख-दुर्-अहंकृति* (दुःख और मिथ्या अहंकार) *दुर्वचांसि* (शाप) *दूरीकृतानि* (दूर हो गये हैं) *गौरीश* (हे गिरिजापते!) *सत्कटाक्षैः माम् इह समुद्धर* (अपने कृपाकटाक्षों से मेरा उद्धार कीजिये।)

हे गौरीपते! आपके चरित्रों का निरन्तर पूर्णरूप से रसपान करते हुए मेरे दुःख, दुर्भाग्य, कष्ट, बुरी दृष्टि, और बुरे वचन-सब दूर हो गये हैं। अपने कृपा-कटाक्षों से मेरा उद्धार कीजिये।

(६३)

सोमकलाधरमौलौ
कोमलघनकन्धरे महामहसि।
स्वामिनि गिरिजानाथे
मामकहृदयं निरन्तरं रमताम्॥

मामकहृदयं (मेरा हृदय) *स्वामिनि निरन्तरं* सदा *रमताम्* (स्वामी में निरन्तर

रमता रहे) *सोमकलाधरमौलौ* (जिनकी जटाओं में चन्द्रमा का मुकुट है) *कोमलधन कंधरे महामहसि* (नवीन मेघ के समान अत्यंत सुन्दर नीला कण्ठ है)।

जिन गिरिजापति शिव के मस्तक पर चन्द्रमा का मुकुट है, नवीन मेघ के समान अत्यन्त सुन्दर नीली ग्रीवा है, उन स्वामी में मेरा हृदय निरन्तर रमता रहे।

इन पद्यों में फलश्रुति के रूप में भगवान् शिव की भक्ति का प्रताप वर्णन किया जा रहा है। अब प्रार्थना से अधिक अहोभाग्य का प्रदर्शन है।

(६४)

सा रसना ते नयने
तावेव करौ स एव कृतकृत्यः।
या ये यौ यो भर्गं
वदतीक्षेते सदार्चतः स्मरति॥

सा रसना या भर्गं वदति (जिह्वा वही है जो भगवान् शिव के तेज का वर्णन करे) *ते नयने ये ईक्षेते* (नेत्र वही हैं जो उनके दर्शन करें) *तौ एव करौ यौ सदा अर्चतः* (वे ही दोनों हाथ हैं जो सदा उनकी अर्चना करते रहें) *स एव कृत-कृत्य : य : स्मरति* (वही भक्त धन्य है जो उनका स्मरण करता है)।

रसना वही जो उनका गुणगान करे, दो नेत्र वही जो उनका दर्शन करें, वे ही हाथ हैं जो उनकी अर्चना करें, और उनका स्मरण ही करने योग्य कार्य है।

(६५)

अतिमृदुलौ मम चरणा-
वतिकठिनं ते मनो भवानीश।
इति विचिकित्सां संत्यज
शिव कथमासीद् गिरौ तथा प्रवेशः॥

मम चरणौ अति मृदुलौ (मेरे चरण अत्यंत कोमल हैं) *ते मनः अति कठिनं*

(तेरा हृदय अत्यन्त कठोर है) *भवानीश* (हे भवानीपते शिव!) *इति विचिकित्सां संत्यज* (इस सोच-विचार को त्याग दीजिये) *शिव* (हे शिव!) *तथा गिरौ प्रवेशः कथं आसीत्* (पहाड़ों पर प्रवेश कैसे हुआ!)।

"मेरे चरण कोमल हैं, इसका हृदय कठोर है" इस सोच-विचार को, हे गिरिजापति! त्याग दीजिये। हे शिव! पर्वतों पर आपका प्रवेश कैसे हुआ?

(९६)

धैर्याङ्कुशेन निभृतं
रभसादाकृष्य भक्तिशृङ्खलया।
पुरहर चरणालाने
हृदयमदेभं बधान चिद्यन्त्रैः॥

धैर्य-अङ्कुशेन (धीरजरूपी अंकुश से) *निभृतं रभसाद् आकृष्य* (शीघ्र ही दृढ़ता से खींचकर) *भक्ति-शृङ्खलया* (भक्तिरूपी शृंखला से) *पुरहर* (हे त्रिपुरारे!) *मम हृदय इभं* (मेरे हृदयरूपी मदमस्त हाथी को) *चरण-आलाने* (आपके चरणों के खम्भे से) *चिद्यन्त्रैः* (ब्रह्मज्ञान की बेड़ियों की सहायता से) *बधान* (बाँध दीजिये)।

हे त्रिपुरारे! मेरा हृदय मदमस्त हाथी जैसा है। इसे धैर्य के दृढ़ अंकुश से, शीघ्र ही जोर से खींचकर भक्तिरूपी शृंखला से, ब्रह्मज्ञान की बेड़ियाँ डालकर आपके चरणों के खंभे से बाँध दीजिये।

(९७)

प्रचरत्यभितः प्रगल्भवृत्त्या
मदवानेष मनःकरी गरीयान्।
परिगृह्य नयेन भक्तिरज्ज्वा
परमस्थाणुपदं दृढं नयामुम्॥

मनः करी (मेरा मनरूपी हाथी) *गरीयान्* (बड़ा बलवान् है) *प्रगल्भवृत्या* (बड़े उद्दंडरूप से) *अभितः प्रचरति* (इधर-उधर चारों ओर घूमता है) *एष मदवान्* (यह मद में मस्त हो रहा है) *नयेन परिगृह्य* (कुशलता से इसे वश

में कर) *भक्ति-रज्ज्वा* (भक्तिरूपी रस्सी से) *दृढं परमस्थाणुपदं अमुं नय* (इसको दृढ़ स्थान (स्थाणु, शिव) पर ले जाइये।)

हे परमेश्वर! मेरा मन अत्यंत बलवान् मदमस्त हाथी के समान है। यह बड़ा उद्दंड होकर इधर-उधर, चारों ओर, घूमता है। इसे चतुराई से वश में कर, भक्तिरूपी रस्सी से दृढ़ स्थान (स्थाणुपदं का अर्थ शिव के चरण भी है) पर ले जाइये।

(६८)

सर्वालङ्कारयुक्तां सरलपदयुतां साधुवृत्तां सुवर्णां
सद्भिस्संस्तूयमानां सरसगुणयुतां लक्षितां लक्षणाढ्याम्।
उद्यद्भूषाविशेषामुपगतविनयां द्योतमानार्थरेखां
कल्याणीं देव गौरीप्रिय मम कविताकन्यकां त्वं गृहाण॥

गौरीप्रिय देव (हे गौरीशंकर!) *मम कविता-कन्यकां त्वं गृहाण* (मेरी कवितारूपी कन्या को आप स्वीकार करें) *सर्वालङ्कारयुक्तां* (ये मेरी कविता–कन्या–सब अलंकारों से युक्त है) *सरलपदयुतां* (सरल, सीधी गतिवाली है) *साधुवृत्तां* (पवित्र वृत्ति वाली है) *सुवर्णां* (गौरवपूर्ण है) *सद्भिः स्तूयमानां* (भले लोगों से प्रशंसनीय है) *सरसगुणयुतां* (रसपूर्ण गुणों से युक्त है) *लक्षितां लक्षणाढ्याम्* (आदर्श है और शुभ-लक्षणों से युक्त है) *उद्यद् भूषाविशेषां* (उज्ज्वल आभूषणों से सुशोभित है) *उपगत-विनयां* (बड़ी विनयशील है) *द्योतमान-अर्थ-रेखां* (इसकी हथेली पर शुभ अर्थ पूर्ण रेखायें हैं) *कल्याणीं* (शुभा को)।

(यह बड़ा सुन्दर और महत्त्वपूर्ण पद है। इसमें आचार्य नवयौवना कमनीय कन्या के साङ्ग रूपक द्वारा इस स्तोत्र के गुणों का वर्णन कर रहे हैं। शब्दार्थ में सौभाग्यकांक्षिणी कन्या के गुणों का वर्णन हैं यहाँ कविता के गुण बताये जा रहे हैं।)

हे गौरीशङ्कर देव, मेरी इस कविता-स्तोत्र को स्वीकार कीजिये। यह शब्दालंकार और अर्थालंकारों से युक्त है। इसकी सरल शैली है। इसकी सीधी वृत्ति है। इसमें उपयुक्त वृत्त हैं। उत्तम वर्ण हैं। इसकी मनीषियों ने

प्रशंसा की है। इसमें नवरसों के गुण हैं। इसका उद्देश्य शुभ है। यह काव्य लक्षणों से युक्त है। उज्ज्वल विशेषताओं वाली है, और इसकी कोमल गति है। इसकी अर्थसारिणी बड़ी महत्त्वपूर्ण है। यह पाठकों के लिये कल्याणकारी है।

(९९)

इदं ते युक्तं वा परमशिव कारुण्यजलधे
गतौ तिर्यग्रूपं तव पदशिरोदर्शनधिया।
हरिब्रह्माणौ तौ दिवि भुवि चरन्तौ श्रमयुतौ
कथं शंभो स्वामिन्कथय मम वेद्योऽसि पुरतः॥

कारुण्यजलधे परमशिव (हे करुणासागर परमशिव!) *इदं ते युक्तं वा* (क्या आपके लिये यह उचित है?) *हरिब्रह्माणौ* (विष्णु और ब्रह्मा) *तव पदशिरः-दर्शनधिया* (आपके पैर और शिर का दर्शन करने की इच्छा से) *तिर्यक् रूपं गतौ* (टेढ़ा हंस और शूकर का रूप लिया) *तौ दिवि भुवि चरन्तौ श्रमयुतौ* (वे दोनों आकाश और पृथिवी के भीतर आते-आते थक गये) *स्वामिन् कथय* (हे स्वामिन् बताइये) *कथं मम पुरतः वेद्यः असि* (मेरे सामने शीघ्र ही कब प्रकट होंगे)।

हे करुणासागर परमकल्याणकारिन् शिव! क्या आपके लिये यह उचित है कि आपके पैर और शिर का दर्शन करने की कामना से ब्रह्मा और विष्णु को हंस और शूकर का टेढ़ा रूप धारण करना पड़ा। तब भी वे आकाश और पृथ्वी के भीतर ढूँढते-ढूँढते थक गये। शंभो स्वामिन्! आप ही बताइये कि मेरे समक्ष आप किस भाँति प्रकट होंगे।

यहाँ एक पौराणिक आख्यान की ओर संकेत है। पद्य २३ में भी इस आख्यान की चर्चा की जा चुकी है। एक बार ब्रह्मा और विष्णु में इस बात पर विवाद हो गया कि दोनों में बड़ा कौन है। इस विवाद को निपटाने के लिए भगवान् शिव एक ज्योतिर्लिङ्ग के रूप में प्रकट हुए जिसका कोई ओर-छोर दिखाई नहीं देता था। ब्रह्मा और विष्णु दोनों में इसके किसी छोर पर पहले पहुँचने वाले को बड़ा मानना स्वीकार किया गया। ब्रह्मा हंस बनकर आकाश की ओर उड़े और विष्णु ने शूकर बन कर पृथ्वी के

नीचे खोदना आरंभ किया। दोनों ही जब किसी ओर-छोर तक नहीं पहुँच सके, तो नतमस्तक होकर भगवान् शिव को ही परमदेव मानकर उनकी स्तुति करने लगे।

पुष्पदन्त ने भी **शिवमहिम्नः स्तोत्रम्** में इस आख्यान की ओर संकेत किया है—

तवैश्वर्यं यत्नाद् यदुपरि विरिञ्चो हरिरधः
परिच्छेत्तुं यातावनलमनलस्कन्धवपुषः।
ततो भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिश यत्
स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति॥

(हे गिरिश! आपका जो लिङ्गाकार तेजस रूप प्रकट हुआ उसके ओर-छोर का पता लगाने के लिये ब्रह्मा हंस बनकर ऊपर की ओर तथा विष्णु शूकर बनकर नीचे की ओर गये। वे दोनों ही पार पाने में असमर्थ रहे। तब दोनों ने श्रद्धा और भक्ति पूर्वक नतमस्तक हो आपकी स्तुति की, और आप प्रकट हुए)।

(१००)

स्तोत्रेणालमहं प्रवच्मि न मृषा देवा विरिञ्चादयः
स्तुत्यानां गणनाप्रसङ्गसमये त्वामग्रगण्यं विदुः।
माहात्म्याग्रविचारणप्रकरणे धानातुषस्तोमवद्
धूतास्त्वां विदुरुत्तमोत्तमफलं शंभो भवत्सेवकाः॥

स्तोत्रेण अलं (स्तोत्र अब समाप्त हुआ) *अहं मृषा न प्रवच्मि* (मैं असत्य नहीं बोल रहा हूँ) *भवत्सेवकाः विरिञ्च-आदयः देवा* (आपके सेवक ब्रह्मा आदि देवता) *स्तुत्यानां गणना-प्रसङ्ग-समये* (जिनकी स्तुति की जानी चाहिये, स्तुतियोग्यों की गणना के प्रसङ्ग के समय) *त्वां अग्रगण्यं विदुः* (आपको प्रथम पूज्य माना) *माहात्म्य-अग्रविचारण-प्रकरणे* (महात्म्य के आधार पर अग्रणी के विषय में विचार करते समय) *धानातुषस्तोमवत्* (धान के ऊपर भूसे के समान) *धूताः* (उड़ गये, हल्के पड़ गये) *शंभो त्वां उत्तमोत्तमफलं विदुः* (हे शंभो! आपको उत्तम से उत्तम आदर्श माना)

अब स्तोत्र की समाप्ति। मैं बढ़ा-चढ़ा कर असत्य बात नहीं कह रहा हूँ। आपके सेवक ब्रह्मा आदि देवता जब स्तुतियोग्यों की गणना करने लगे तो आपको ही अग्रगण्य स्वीकार किया। माहात्म्य में अग्रणी-प्रथमपूज्य के विचार प्रकरण में दूसरे देवता धान के भूसे के समान उड़ गये, व्यर्थ समझ गये। शंभो आपको ही उत्तमोत्तम फल-आदर्श स्वीकार किया गया।

इस स्तोत्र के हिन्दी अनुवाद और संक्षिप्त व्याख्या में स्वामी तपस्यानन्द और टी. एम. पी. महादेवन द्वारा संपादित संस्करणों से बड़ी सहायता मिली है। यदि उनकी व्याख्या के प्रकाश में भी मुझसे कुछ भूलें हुई हों तो यही कह सकता हूँ, ''समुझि परी कछु मति अनुसारा''।

— इति —

शिवापराधक्षमापनस्तोत्रम्

(१)

आदौ कर्मप्रसङ्गात् कलयति कलुषं मातृकुक्षौ स्थितं मां
विण्मूत्रामेध्यमध्ये क्कथयति नितरां जाठरो जातवेदाः।
यद्यद्वै तत्र दुःखं व्यथयति नितरां शक्यते केन वक्तुं
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो॥

आदौ (आरम्भ में) *कर्मप्रसङ्गात्* (कर्म के फलस्वरूप) *कलुषं* (पाप) *मातृकुक्षौ स्थितं मां कलयति* (मां की कोख में स्थित मुझे बाँधता है) *विण्मूत्र-अमेध्य-मध्ये* (गन्दे विष्ठा-मूत्र के मध्य में) *जाठरः जातवेदाः* (जठराग्नि) *नितरां क्कथयति* (लगातार, निरन्तर तपाता है) *यत् यत् वै तत्र दुःखं* (जो-जो वहाँ दुःख) *नितरां व्यथयति* (निरन्तर व्यथित करता है) *केन वक्तुं शक्यते* (उन्हें कौन बता सकता है?) *शिव महादेव शम्भो क्षन्तव्यः मे अपराधः* (हे महादेव शिव शम्भो! उस अपराध को, जिसके कारण मुझे ये दुःख भोगने पड़ते हैं, क्षमा कीजिये)

पूर्व में किये कर्मों के फलस्वरूप किया हुआ पाप मुझे मां की कोख में डाल देता है। वहाँ गन्दे विष्ठा-मूत्र में पड़े हुए मुझको जठराग्नि निरन्तर तपाती रहती है। वहाँ कैसे-कैसे दुःख झेलने पड़ते हैं इसे कौन बता सकता है? हे शिव! हे शिव! हे शिव! हे महादेव शम्भो! मेरे अपराध क्षमा कीजिए।

(२)

बाल्ये दुःखातिरेकान्मललुलितवपुः स्तन्यपाने पिपासु-
र्नो शक्तश्चेन्द्रियेभ्यो भवगुणजनिता जन्तवो मां तुदन्ति।
नानारोगातिदुःखाद्रुदितपरवशः शंकरं न स्मरामि
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो॥

बाल्ये दुःख-अतिरेकः (बचपन में दुःख की अधिकता रहती थी) *मललुलितवपुः* (शरीर मल-मूत्र की गंदगी में लिपटा रहता था) *स्तन्यपाने पिपासुः* (मां का दूध पीने की लालसा बनी रहती थी) *इन्द्रियेभ्यः न उ शक्तः* (इन्द्रियों में कुछ भी करने की सामर्थ्य न थी) *भवगुणजनिता जन्तवः* (शैवी माया से उपजे जीव-जन्तु) *मां तुदन्ति* (मुझे काटते, कष्ट देते थे) *नानारोगाति-दुःखात् रुदनपरवशः* (अनेक रोगों से उत्पन्न कष्ट के कारण विवश रोता रहता था) *शङ्करं न स्मरामि* (तब भी, उस दुर्दशा में, शुभकर्ता शंकर का मुझसे स्मरण नहीं हो सका) *मे अपराधः क्षन्तव्यः* (मेरे अपराध क्षमा कीजिये) *शिव शिव शिव भो महादेव शम्भो* (हे शिव! हे शिव! हे महादेव शम्भो! मेरे अपराध क्षमा कीजिये।)

मेरे बचपन में दुःख ही दुःख रहे। मलमूत्र की गन्दगी में शरीर लिथड़ा रहता था और माँ के दूध पीने की सदा लालसा बनी रहती थी। इन्द्रियों से अशक्त था। भवगुणजनित शैवी सृष्टि से उत्पन्न मक्खी-मच्छर आदि जीव-जन्तु मुझे काटते और कष्ट देते रहते थे। अनेक प्रकार के कष्टों के कारण परवश मैं रोता ही रहता था। तब भी, उस अवस्था में, मैंनें भगवान शंकर का स्मरण नहीं किया। हे शिव शम्भो! मेरे अपराधों को क्षमा कीजिये।

(३)

प्रौढोऽहं यौवनस्थो विषयविषधरैः पञ्चभिर्मर्मसन्धौ
दष्टो नष्टो विवेकः सुतधनयुवतिस्वादसौख्ये निषण्णः।
शैवीचिन्ताविहीनं मम हृदयमहो मानगर्वाधिरूढं
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्री महादेव शम्भो॥

अहं प्रौढः यौवनस्थः (अब मैं युवा अवस्था में बड़ा हुआ) *पञ्चभिः विषय विषधरैः* (विषय रूपी पाँच विषधर सर्पों ने) *मर्मसन्धौ दष्टः* (मर्मस्थानों में डँस लिया) *विवेकः नष्टः* (विवेक नष्ट हो गया) *सुत-धन-युवति-स्वाद-सौख्ये निषण्णः* (युवती, सुत, धन के स्वाद के सुख में डूब गया) *शैवीचिन्ताविहीनं मम हृदयं* (कल्याणकारी भगवान् शिव के चिन्तन से विहीन मेरा मन) *अहो मान-गर्व-अधिरूढं* (हाय! झूंठे घमण्ड और मान-

बड़ाई से भर गया) *क्षन्तव्यः मेऽपराधः* (मेरा अपराध क्षम्य है, मैंने बहुत दुःख भोग लिया)

जब मैं यौवन में कुछ प्रौढ़ हुआ तो, विषयरूपी पाँच विषधरों ने मेरे मर्मस्थलों को डँसना आरंभ कर दिया। मैं विवेकहीन हो गया। युवतियों, वेटा-वेटियों और धन के भोग में अंधा होकर डूब गया। उस अवस्था में भी मुझे कल्याणकारी भगवान् शिव का स्मरण नहीं रहा। मेरा हृदय झूँठे घमण्ड और मान-बड़ाई की लालसा से भर गया। हे शिव! हे शिव शम्भो! मेरे अपराधों को क्षमा कीजिये।

(४)

वार्द्धक्ये चेन्द्रियाणां विकलगतिमतिश्चाधिदैवादितापैः
प्राप्ते रोगै र्वियोगैव्यसनकृशतनोर्ज्ञप्तिहीनं च दीनम्।
मिथ्यामोहाभिलाषैर्भ्रमति मम मनो धूर्जटेर्ध्यानशून्यं
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो॥

वार्धक्ये च (वृद्धावस्था में भी) *इन्द्रियाणां* (इन्द्रियों की) *विकलगतिमतिः* (गति और मति शिथिल हो गई है) *आधिदैव आदि तापैः* (आधिदैविक आदि कष्टों से) *प्राप्तैः* (प्राप्त हुए) *रोगैः वियोगैः तु व्यसनकृश तनोः* (रोगों और वियोगों से शरीर जर्जर हो गया) *ज्ञप्तिहीनं च दीनं* (ज्ञानशून्य और दीन) *मम मनः मिथ्या मोह अभिलाषैः भ्रमति* (मेरा मन झूठे मोह और थोथी अभिलाषाओं में चक्कर खा रहा है) *धूर्जटेः ध्यानशून्यं* (शिव के चिन्तन से शून्य) हे शिव शम्भो! मेरे अपराध क्षमा कीजिये।

अब बुढ़ापे में, जब इन्द्रियों की गति शिथिल पड़ गई है, और बुद्धि निर्बल हो गई है; आधिदैविक आदि कष्टों, पापों, रोगों, वियोगों से शरीर दीन और दुर्बल हो गया है; भगवान् शिव के चिन्तन से शून्य मेरा मन मिथ्या मोह और थोथी अभिलाषाओं में भटक रहा है। हे शिव! हे शिव! हे शिव! हे महादेव शम्भो! मेरे अपराध क्षमा कीजिये।

पिछले चार पदों में गर्भावस्था, बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था के दुःखों का सजीव और मार्मिक वर्णन है। प्रत्येक अवस्था की विवशताएँ,

व्यर्थ भ्रम और आधि-व्याधियाँ हैं। ये सब पूर्व में किये गये अपराधों, पापों का फल है। भगवान् शिव से इन दुखों से छुटकारा पाने के लिये अपराध क्षमा करने की प्रार्थना की गई है।

(५)

नो शक्यं स्मार्तकर्म प्रतिपदगहने प्रत्यवायाकुलाढ्ये
श्रौते वार्ता कथं मे द्विजकुलविहिते ब्रह्ममार्गानुसारे।
नास्था धर्मे विचारे श्रवणमननयोः किं निदिध्यासितव्यं
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भो श्रीमहादेव शम्भो॥

प्रतिपदगहने प्रत्यवाय (पल-पल में विपरीत कर्म से) *आकुलाढ्ये* (आकुल होने के कारण) *स्मार्तकर्म न उ शक्यं* (स्मृति निर्धारित कर्म भी नहीं बन पड़ते) *द्विजकुलविहिते* (ब्राह्मणकुल के लिये निर्धारित) *मार्गानुसारे ब्रह्ममार्गे* (ब्रह्ममार्ग में मार्गस्वरूप) *श्रौते* (श्रुति निर्धारित) *कथं वार्ता* (उनकी तो बात ही क्या?) *न आस्था धर्मे* (धर्म में आस्था नहीं है) *न श्रवण-मननयोः विचारः* (न भगवान् की भक्ति के श्रवण-मनन में विचार लगते हैं) *किं निदिध्यासितव्यं* (किसका कैसे ध्यान किया जाय) *क्षन्तव्यो मेऽपराधः* (मेरे अपराध को क्षमा कीजिये)

पद-पद पर मैं गहन अपराध–विपरीतकर्म– कर रहा हूँ। मुझसे स्मार्त कर्म नहीं होते। ब्राह्मणों के लिये साररूप में ब्रह्मप्राप्ति के लिए निर्दिष्ट कर्मों की तो बात ही क्या? मेरी धर्म में आस्था नहीं है, भगवान् के गुणों के श्रवण-मनन के विचार भी नहीं आते। ध्यान किसका और कैसे किया जाय? हे शिवशम्भो! मेरे अपराध क्षमा करें।

यहाँ एक चेतावनी आवश्यक है। आचार्य यहाँ अपनी नहीं, किसी काल्पनिक अपराधी की आर्त प्रार्थना कर रहे हैं। यह अपराध क्षमापन स्तोत्र है। जब तुलसीदास कहते हैं, "मो सम कौन पतित खल कामी?" तो यह स्वयं उनकी वास्तविकता का वर्णन नहीं है। अपराध क्षमा की प्रार्थना की यह शैली है। जब यामुनाचार्य **स्तोत्ररत्नम्** में कहते हैं कि "न निन्दितं कर्म तदस्ति लोके सहस्रशो यन्न मया व्यधायि" तो यह आत्मग्लानि नहीं, आत्मशोधन की क्रिया है।

(६)

स्नात्वा प्रत्यूषकाले स्नपनविधिविधौ नाहृतं गाङ्गतोयं
पूजार्थं वा कदाचिद्बहुतरगहनेऽखण्डबिल्वीदलानि।
नानीता पद्ममाला सरसि विकसिता गन्धपुष्पे त्वदर्थं
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो॥

प्रत्यूषकाले स्नात्वा (प्रातःकाल स्नान करके) *स्नपनविधिविधौ* (आपका अभिषेक करने की विधि में) *गाङ्गतोयं न आहृतं* (मैं गङ्गाजल नहीं लाया) *न वा कदाचित् बहुतरगहनात्* (न कभी घने वन से) *अखण्ड-बिल्वीदलानि* (बिल्वपत्र ही तोड़ कर लाया) *न सरसि विकसित-पद्ममाला आनीता* (न ही मैंने सरोवर में खिले हुए कमलों की माला लाकर ही आपको अर्पण की) *गन्धपुष्पे त्वत्-अर्थं* (आपके लिये सुगंधित फूलों में) *क्षन्तव्यो मेऽपराधः* (मेरे अपराध क्षमा कीजिये)

मैने सूर्योदय के समय स्नान कर, आपके अभिषेक के लिये, गङ्गाजल अर्पण नहीं किया। न आपकी पूजा के लिये मैंने गहन वन से विल्वपत्र तोड़ कर आपको समर्पित किये। आपके लिये सुगंधित सरोवर में खिले कमलों की पुष्पमाला भी मैंने नहीं बनायी। हे महादेव शम्भो! मेरे अपराध क्षमा कीजिये।

पिछले पद्यों में अपराधों के लिये क्षमा मांगी गई। अब इन पद्यों में, जो करना चाहिये था, वह नहीं किया, इसके लिये क्षमा प्रार्थना है।

(७)

दुग्धैर्मध्वाज्ययुक्तैर्दधिसितसहितैः स्नापितं नैव लिङ्गं
नो लिप्तं चन्दनाद्यैः कनकविरचितैः पूजितं न प्रसूनैः।
धूपैः कर्पूरदीपैर्विविधरसयुतैर्नैव भक्ष्योपहारैः
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो॥

मधु-आज्ययुक्तैः (शहद और पिघले हुए घी से युक्त) *दधि-सित-सहितैः* (दही और शर्करायुक्त दूध सहित – पञ्चामृत) *लिङ्गं न उ स्नापितं* (शिवलिङ्ग का अभिषेक नहीं किया) *न उ लिप्तं चन्दन-आद्यैः* (और न

चन्दन आदि का आलेप किया) *कनक-विरचितैः प्रसूनैः न पूजितं* (न धतूरे के खिले हुए फूलों से पूजा की) *धूपैः कर्पूरदीपैः विविधरसयुतैः भक्ष्य-उपहारैः* (धूप और कपूर का दीपक तथा विविध रसयुक्त नैवेद्य समर्पण से) *क्षन्तव्यो मेऽपराधक:* (मेरे अपराध को क्षमा कीजिये)।

मैंने मधु, पिघला हुआ घी, दही और मीठे दूध से शिवलिङ्ग का अभिषेक नहीं किया। न चन्दन आदि का लेप किया। धतूरे के खिले हुए फूल, धूप, दीप, कर्पूर की आरती से पूजा नहीं की। न मैंने विविध रसों से युक्त नैवेद्य ही अर्पण किया। हे शिव! हे श्रीमहादेव शम्भो! मेरे अपराध क्षमा कीजिये।

(८)

ध्यात्वा चित्ते शिवाख्यं प्रचुरतरधनं नैव दत्तं द्विजेभ्यो
हव्यं ते लक्षसंख्यैर्हुतवहवदने नार्पितं बीजमन्त्रैः।
नो तप्तं गाङ्गतीरे व्रतजपनियमै रुद्रजाप्यैर्न वेदैः
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भो श्री महादेव शम्भो॥

चित्ते शिवाख्यं ध्यात्वा (चित्त में शिव नाम का ध्यान कर) *द्विजेभ्यो प्रचुरधनं न एव दत्तं* (ब्राह्मणों को दान में प्रचुर धन नहीं दिया) *लक्षसंख्यैः बीजमन्त्रैः* (एक लाख बीजमन्त्रों से) *हुतवहवदने हव्यं ते न अर्पितं* (अग्नि में आहुतियाँ नहीं दी) *व्रतजपनियमैः* (व्रत और जप के नियमों के साथ) *रुद्रजाप्यैः* (रुद्रजाप सहित) *वेदैः* (वेद विधियों से) *गाङ्गतीरे न उ तप्तं* (गङ्गातीर पर तपस्या नहीं की) *क्षन्तव्यो मेऽपराधः* (मेरा अपराध क्षमायोग्य है)

मैंने शिवनाम चित्त में ध्यान कर, ब्राह्मणों को प्रचुरधन की दक्षिणा नहीं दी। एक लाख बीजमन्त्रों सहित अग्नि में आहुतियाँ भी नहीं दी। रुद्रजाप, व्रत-जप-नियमों का पालन करते हुए वेदविधि के अनुसार गङ्गातीर पर तपस्या भी नहीं की। हे शिव! हे श्री महादेवो शम्भो! मेरा अपराध क्षम्य है। क्षमा करने योग्य है। मेरे अपराध को क्षमा कीजिये।

(९)

स्थित्वा स्थाने सरोजे प्रणवमयमरुत्कुण्डले सूक्ष्ममार्गे
शान्ते स्वान्ते प्रलीने प्रकटितविभवे ज्योतिरूपे पराख्ये।

लिङ्गाग्रे ब्रह्मवाक्ये सकलतनुगतं शङ्करं न स्मरामि

क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो॥

सूक्ष्ममार्गे (सूक्ष्ममार्ग से गन्तव्य) *प्रणवमयमरुत्कुण्डले सरोजे* (प्रणवनाद रूपी कमल में) *स्थित्वा स्थाने* (उस स्थान पर पहुँचकर) *शान्ते सु-अन्ते प्रलीने* (प्रशान्त में लीन हो जाते हैं) *ज्योतिरूपे प्रकटितविभवे पराख्ये* (ज्योतिरूप शान्त परमतत्त्व में लीन हो जाते हैं) *लिङ्गाग्रे ब्रह्मवाक्ये सकलतनुगतं* (सर्वान्तरयामी आपका) *शङ्करं न स्मरामि* (भगवान् शङ्कर का स्मरण नहीं कर पाता) *क्षन्तव्यो मेऽपराधः* (मेरा अपराध क्षमा योग्य है)

सहस्रदल कमल में पहुँचकर प्राणसमूह– इन्द्रियाँ – प्रणव नाद में लीन हो जाती हैं। इस कमल तक सूक्ष्ममार्ग से ही पहुँचा जा सकता है। वहाँ पहुँचने पर वेद के वाक्यार्थ आविर्भूत ज्योतिरूप शान्त परमतत्त्व में प्राणसमूह लीन हो जाते हैं। उस सहस्रदल कमल में स्थित होकर, हे भगवन् शम्भो! मैं आप सर्वान्तियामी का स्मरण नहीं करता हूँ। हे शिव! हे शिव! हे शिव! हे श्रीमहादेव शम्भो! मेरे अपराध क्षमा कीजिये।

(१०)

नग्नो निःसङ्गशुद्धस्त्रिगुणविरहितो ध्वस्तमोहान्धकारो

नासाग्रे न्यस्तदृष्टिर्विदितभवगुणो नैव दृष्टः कदाचित्।

उन्मन्यावस्थया त्वां विगतकलिमलं शंकरं न स्मरामि॥

क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो॥

नग्नः-निःसङ्ग-शुद्धः-त्रिगुण-विरहितः (वस्त्रविहीन, सङ्गरहित, शुद्ध और त्रिगुणातीत होकर) *मोह-अन्धकारः ध्वस्तः* (मोहरूपी अन्धकार को हटाकर) *नासा-अग्रे न्यस्तदृष्टिः* (नासिका के अग्रभाग में दृष्टि स्थिर कर) *विदितभव-गुणः* (भगवान् शंकर के गुणों को जानकर) *न एव दृष्टः कदाचित्* (कभी आपके दर्शन नहीं किये) *उन्मनी-अवस्थया* (उन्मनी अवस्था से) *विगतकलिमलं त्वां शंकरं न स्मरामि* (कलिमल रहित आप भगवान् शंकर का स्मरण नहीं किया) *क्षन्तव्यो मेऽपराधः* (हे शिव! मेरे अपराध को क्षमा कीजिये।)

नग्न, निसःङ्ग और शुद्ध होकर तथा तीनों गुणों को पारकर, मोहरूपी अन्धकार को हटाकर और नासिका के अग्रभाग में दृष्टि स्थिर कर, मैंने आपके गुणों को जानकर कभी आपके दर्शन नहीं किये। उन्मनी अवस्था से कलिमलरहित आपका कभी स्मरण नहीं किया। हे शिव! हे शिव! हे शिव! हे श्रीमहादेव शम्भो! मेरा अपराध क्षमा करने योग्य है।

(११)

चन्द्रोद्भासितशेखरे स्मरहरे गङ्गाधरे शंकरे
सर्पैर्भूषितकण्ठकर्णविवरे नेत्रोत्थवैश्वानरे।
दन्तित्वक्कृतसुन्दराम्बरधरे त्रैलोक्यसारे हरे
मोक्षार्थं कुरु चित्तवृत्तिमखिलामन्यैस्तु किं कर्मभिः॥

चन्द्र-उद्भासितशेखरे (नवीन चन्द्रकला से जिनका मस्तक चमक रहा है उनमें) *स्मरहरे* (उनमें जिन्होंने कामदेव के घमण्ड को ध्वस्त किया) *गङ्गाधरे* (उनमें जिन्होंने गङ्गाजी को अपनी जटाओं में धारण कर रखा है) *शंकरे* (जो मङ्गलस्वरूप हैं उनमें) *सर्पैः भूषित-कण्ठ-कर्ण-विवरे* (जिनका कण्ठ और कान सर्पों से विभूषित हैं) *नेत्र-उत्थ-वैश्वानरे* (नेत्रों से अग्नि प्रकट हो रही है) *दन्तित्वक्कृत* (गजचर्म से बने) *सुन्दर-अम्बर-धरे* (सुन्दर वस्त्र धारण करने वाले में) *त्रैलोक्यसारे* (जो त्रिलोकी के सार हैं उनमें) *हरे* (भगवान शङ्कर में) *अखिलां चित्तवृत्तिं* (सम्पूर्ण चित्तवृत्तियों को) *मोक्षार्थं कुरु* (मोक्ष प्राप्ति के लिये लगा दे) *अन्यैः तु किं कर्मभिः* (दूसरे कर्मों से क्या प्रयोजन?)

जिन भगवान् शंकर का चन्द्रकला की कान्ति से ललाट चमक रहा है, जिन्होंने कामदेव को परास्त किया था, जिन्होंने गङ्गाजी को अपनी जटाओं में धारण कर रखा है, जो कल्याणस्वरूप हैं, कण्ठ और कानों में जिन्होंने सर्पों के आभूषण पहन रखे हैं, जिनके नेत्रों से अग्नि निकल रही है, गजचर्म को लपेटे हुए हैं, तथा जो त्रिलोकी के एकमात्र सार हैं– उन भगवान् शिव में, मोक्ष के लिये, अपनी सम्पूर्ण चित्तवृत्तियों को लगा। दूसरे कर्मों से क्या प्रयोजन?

(१२)

किं वानेन धनेन वाजिकरिभिः प्राप्तेन राज्येन किं
किं वा पुत्रकलत्रमित्रपशुभिर्देहेन गेहेन किम्।
ज्ञात्वैतत्क्षणभङ्गुरं सपदि रे त्याज्यं मनो दूरतः
स्वात्मार्थं गुरुवाक्यतो भज भज श्रीपार्वतीवल्लभम्॥

किं वा अनेन धनेन (इस धन से क्या?) *वाजि-करिभिः राज्येन किं* (घोड़े, हाथी और राज्य आदि से भी क्या?) *किं वा पुत्र-कलत्र-मित्र-पशुभिः* (अथवा बेटे, पत्नी, मित्र और पशुओं से क्या?) *देहेन गेहेन किम्* (इस देह और घर-गृहस्थी से भी क्या?) *ज्ञात्वा एतत् क्षणभङ्गुरं* (इस सब आडम्बर को क्षणभङ्गुर जानकर) *रे मनः सपदि दूरतः त्याज्यं* (अरे मूर्ख मन! इन सबको शीघ्र दूर-से ही त्याग दे) *स्व-आत्मा-अर्थं गुरुवाक्यतः* (गुरु वचनानुसार अपनी आत्मा के लिये) *श्रीपार्वतीवल्लभं भज* (उमाकान्त भगवान् शिव का भजन कर)

इन धन, घोड़े, हाथियों और राज्य आदि की प्राप्ति से क्या? पत्नी-पुत्र-मित्र और पशुओं से भी क्या? देह और गेह का भी क्या महत्त्व है? इन सब को क्षणभङ्गुर पहचान कर शीघ्र ही हे मन! इन्हें दूर-से ही त्याग दे। अपनी आत्मा के लिये– आत्मानुभव के लिये– उमाकान्त भगवान् शिव का भजन कर।

(१३)

आयुर्नश्यति पश्यतां प्रतिदिनं याति क्षयं यौवनं
प्रत्यायान्ति गताः पुनर्न दिवसाः कालो जगद्भक्षकः।
लक्ष्मीस्तोयतरङ्गभङ्गचपला विद्युच्चलं जीवितं
तस्मान्मां शरणागतं शरणद त्वं रक्ष रक्षाधुना॥

प्रतिदिनं पश्यतां आयुर्नश्यति (देखते-देखते प्रतिदिन आयु क्षीण हो रही है) *यौवनं क्षयं याति* (यौवन का दिन-दिन क्षय हो रहा है) *गताः दिवसाः पुनः न प्रति आयान्ति* (बीते हुए दिन कभी लौटकर नहीं आते) *कालः जगत् भक्षकः* (काल समस्त जगत् को खा रहा है) *लक्ष्मीः तोयतरङ्ग-भङ्ग-चपला*

(लक्ष्मी जल की तरङ्गों के समान चञ्चल है) *विद्युच्चलं जीवितं* (जीवन विजली जैसा क्षणिक है) *तस्मात्* (इसलिये) *शरणद मां शरणागतं अधुना त्वं रक्ष रक्ष* (हे शरणागतवत्सल! हे शरण देने वाले! शरण में आये हुए मुझे अब शरण दीजिये।)

देखते-देखते, दिन-दिन, आयु नष्ट हो रही है। यौवन क्षीण हो रहा है। बीते हुए दिन लौटकर नहीं आते। काल सम्पूर्ण जगत् का भक्षण कर रहा है। लक्ष्मी जल की तरङ्गों-सी चञ्चल है और जीवन बिजली जैसा क्षणिक है। इसलिये, हे शरणदायिन्! शरण में आये हुए को शरण में लीजिये, शरण में लीजिये।

(१४)

करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा
श्रवणनयनजं वा मानसं वाऽपराधम्।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत् क्षमस्व
जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो।

कर-चरण-कृतं (हाथ-पैर से किये हुए) *वाक्कायजं* (वाणी अथवा शरीर से उत्पन्न) *कर्मजं वा श्रवण नयनं वा मानसं* (आँख-कान, कर्म अथवा मन से उत्पन्न) *विहितं अविहितं वा* (जाने-अनजाने) *सर्वं एतत् अपराधं क्षमस्व* (इस सम्पूर्ण अपराध समूह को क्षमा कीजिये) *करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो जय जय* (करुणासागर महादेव शम्भो! आपकी जय! आपकी जय!)

जो कुछ भी हाथ पैर से किया हो; वाणी, शरीर, कर्म, कान, नाक अथवा मन से उत्पन्न हुआ हो; जाने-अनजाने में जो भी अपराध किये हों, उन सब को, हे करुणासागर! क्षमा कीजिये! हे महादेव शम्भो! आपकी जय! आपकी जय!

– इति –

उमामहेश्वरस्तोत्रम्

(१)

नमः शिवाभ्यां नवयौवनाभ्यां
परस्पराश्लिष्टवपुर्धराभ्याम्।
नगेन्द्रकन्यावृषकेतनाभ्यां
नमो नमः शङ्करपार्वतीभ्याम्॥

नवयौवनाभ्यां शिवाभ्यां (नित्यनवीन यौवनयुक्त शिव-शिवा के लिये) *परस्पर-आश्लिष्ट-वपुः-धराभ्याम्* (जिन दोनों ने एक-दूसरे को आलिङ्गन में बाँधकर एक अर्धनारीश्वर स्वरूप धारण किया हुआ है उनके लिये) *नगेन्द्रकन्या*-(पर्वतराज हिमालय की पुत्री पार्वती और) *वृषकेतनाभ्यां* (वृषभचिन्हित ध्वजाधारी भगवान् शंकर के लिये) *नमः* (नमस्कार) *शङ्करपार्वतीभ्याम् नमः नमः* (शंकर और पार्वती को बारम्बार नमस्कार)

चिरयौवनयुक्त (चिर युवा), परस्पर आलिङ्गन से युक्त अर्धनारीश्वर शरीरधारी, शिव और शिवा को मेरा नमस्कार। पर्वतराज हिमालय की पुत्री पार्वती और वृषभध्वज शिव, शङ्कर-पार्वती को मेरा बारम्बर नमस्कार।

यह शिव-पार्वती दोनों के संयुक्त स्वरूप *(परस्पराश्लिष्टवपुर्धराभ्याम्)* के लिये नमस्कारयुक्त स्तुति है।

चाम्पेयगौरार्धशरीरकायै कर्पूरगौरार्धशरीरकाय।
धम्मिलकायै च जटाधराय नमः शिवायै च नमः शिवाय॥
कस्तूरिकाकुङ्कमचर्चितायै चितारजःपुञ्जविचर्चिताय।
कृतस्मरायै विकृतस्मराय नमः शिवायै च नमः शिवाय॥

(जिस अर्धनारीश्वर स्वरूप में आधे शरीर में चम्पा पुष्पों-सी गोरी

पार्वती और आधे शरीर में कर्पूर के समान गोरे भगवान् शिव सुशोभित हो रहे हैं, जिन पार्वती गौरी के मस्तक पर सुन्दर केशपाश हैं, और जिन शिव-शंकर ने जटाजूट धारण किया हुआ है, उन शङ्कर-पार्वती दोनों को मेरा नमस्कार।

भगवती भवानी के शरीर पर कस्तूरी और कुङ्कुम का अङ्गराग लगा है, और भगवान् शङ्कर के शरीर पर चिता-भस्म है। भगवती कामदेव को जीवित करने वाली है, और भगवान् शिव उसे भस्म करने वाले हैं। ऐसी भगवती पार्वती और भगवान् शङ्कर को प्रणाम है।)

(२)

नमः शिवाभ्यां सरसोत्सवाभ्यां
नमस्कृताभीष्टवरप्रदाभ्याम्।
नारायणेनार्चितपादुकाभ्यां
नमो नमः शङ्करपार्वतीभ्याम्॥

सरस-उत्सवाभ्यां (आह्लादमय उत्सव में तन्मय के लिये) *नमस्कृत-अभीष्ट-वर-प्रदाभ्याम्* (प्रणाम करने वालों को इच्छित फल प्रदान करने वालों के लिये) *शिवाभ्यां नमः* (शिव-शिवा को प्रणाम) *नारायणेन*-(श्री नारायण द्वारा) *अर्चित*-(पूजित) *पादुकाभ्यां* (चरणपादुकाओंवाले शिव-शिवा के लिये) *शङ्करपार्वतीभ्याम् नमो नमः* (शङ्कर-पार्वती को बारम्बार प्रणाम)

जो शङ्कर-पार्वती आह्लादमय उत्सव में सदा आनंदित हैं, और नमस्कार करने मात्र से अभीष्ट वर देनेवाले हैं, उनके लिये प्रणाम। भगवान् श्रीनारायण द्वारा जिनकी चरण-पादुकाएँ पूजी जाती हैं, उन शिव-शिवा के लिये बारम्बार प्रणाम।

(३)

नमः शिवाभ्यां वृषवाहनाभ्यां
विरिञ्चिविष्ण्विन्द्रसुपूजिताभ्याम्।
विभूतिपाटीरविलेपनाभ्यां
नमो नमः शङ्करपार्वतीभ्याम्॥

वृषवाहनाभ्यां (बैल पर आसीन) *शिवाभ्यां नमः* (शिव-शिवा को प्रणाम) *विरिञ्चि-विष्णु-इन्द्र-सुपूजिताभ्यां* (ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि देवों से भलीभाँति पूजित) *विभूति-पाटीर-विलेपनाभ्यां* (भस्म और सुगन्धित द्रव्यों के अङ्गराग से सुशोभित) *शङ्करपार्वतीभ्यां नमो नमः* (शंकर-पार्वती को बारम्बार प्रणाम)

बैल पर आसीन एवं ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि प्रमुख देवताओं द्वारा भली भाँति पूजित शिव-शिवा को मेरा प्रणाम। जिन्होंने भस्म और सुगन्धित द्रव्यों का अङ्गराग लगाया हुआ है, उन शङ्कर-पार्वती को मेरा बारम्बार प्रणाम।

(४)

नमः शिवाभ्यां जगदीश्वराभ्यां
जगत्पतिभ्यां जयविग्रहाभ्याम्।
जम्भारिमुख्यैरभिवन्दिताभ्यां
नमो नमः शङ्करपार्वतीभ्याम्॥

जगदीश्वराभ्यां (जो समस्त ब्रह्माण्ड के स्वामी हैं उन दोनों के लिये) *जगत्पतिभ्यां* (जो जगन्नाथ हैं उन दोनों के लिये) *जयविग्रहाभ्याम्* (विजयरूप शरीरधारी के लिये) *नमः शिवाभ्यां* (शिव-शिवा को प्रणाम) *जम्भ-अरि-मुख्यैः-अभिवन्दिताभ्यां* (जो जम्भ दैत्य के शत्रु (इन्द्र) आदि देवों द्वारा अभिवन्दित हैं) *शङ्कर-पार्वतीभ्यां नमो नमः* (शङ्कर-पार्वती को बारम्बार नमस्कार है)

अखिल ब्रह्माण्ड के नायक, जगन्नाथ, विजयरूप शरीरधारी शिव-शिवा को मेरा प्रणाम। जम्भ दैत्य के शत्रु इन्द्र आदि प्रमुख देवगण जिनका अभिनन्दन करते हैं उन शङ्कर-पार्वती को मेरा बारम्बार प्रणाम।

(५)

नमः शिवाभ्यां परमौषधाभ्यां
पञ्चाक्षरीपञ्जररञ्जिताभ्याम्।
प्रपञ्चसृष्टिस्थितिसंहृताभ्यां
नमो नमः शङ्करपार्वतीभ्याम्॥

परम-औषधाभ्यां (योगियों के लिये परम औषधस्वरूप) *पञ्चाक्षरीपञ्जररञ्जिताभ्याम्* (पञ्चाक्षर – नमः शिवाय – मंत्र से सुशोभित) *शिवाभ्यां नमः* (शिव-शिवा को प्रणाम) *प्रपञ्च-सृष्टि-स्थिति–संहृताभ्याम्* (इस प्रपंच-संसार-की सृष्टि, स्थिति, और संहारस्वरूप) *शङ्करपार्वतीभ्यां नमो नमः* (शङ्कर-पार्वती को मेरा बारम्बार प्रणाम)

जो योगी जनों के लिये परम औषधस्वरूप हैं– योगियों के लिये सिद्धिदाता हैं– पञ्चाक्षर मन्त्र **नमः शिवाय** के तन्त्र में सुशोभित हैं, जो समस्त ब्रह्माण्ड की सृष्टि, स्थिति, और संहार के कर्ता-धर्ता हैं, उन शङ्कर-पार्वती के लिये मेरा बारम्बार प्रणाम।

(६)

नमः शिवाभ्यामतिसुन्दराभ्या-
मत्यन्तमासक्तहृदम्बुजाभ्याम्।
अशेषलोकैकहितङ्कराभ्यां
नमो नमः शङ्करपार्वतीभ्याम्॥

अति सुन्दराभ्यां (अत्यन्त सुन्दर) *अत्यन्तं-आसक्त-हृद्-अम्बुजाभ्याम्)* अपने भक्तों-योगिजनों- के हृदय-कमल में सदा निवास करनेवाले) *अशेष-लोक-एक-हितङ्कराभ्यां* (समस्त चराचर प्राणियों के एकमात्र हितकारी) *नमः शिवाभ्यां* (शिव-शिवा को मेरा प्रणाम) *शङ्कर-पार्वतीभ्यां नमो नमः* (शङ्कर-पार्वती को मेरा नमन – बारम्बार प्रणाम)

अत्यन्त सौन्दर्य-स्वरूप, योगियों के हृदय-कमल में सदा निवास करनेवाले शिव-शिवा को प्रणाम। समस्त चराचर ब्रह्माण्ड के एकमात्र हितकारी भगवान् शङ्कर और भगवती पार्वती को बारम्बार प्रणाम।

(७)

नमः शिवाभ्यां कलिनाशनाभ्यां
कङ्कालकल्याणवपुर्धराभ्याम्।
कैलासशैलस्थितदेवताभ्यां
नमो नमः शङ्करपार्वतीभ्याम्॥

कलिनाशनाभ्यां (कलियुग के दोषों का निवारण करने वाले) *कङ्काल-कल्याण-वपुः-धराभ्याम्* (मृतप्राय, हड्डियों के कङ्काल का भी कल्याण करने के लिये शरीर धारण करने वाले) *कैलाशशैलस्थितदेवताभ्यां* (कैलास पर्वत पर निवास करने वाले देव-देवी के लिये) *नमोः नमः शङ्करपार्वतीभ्याम्* (शङ्कर-पार्वती के लिये बारम्बार नमस्कार)

जो कलियुग के सभी दोषों का नाश करने वाले हैं, तथा मृतप्राय अस्थिपञ्जर को भी तारक मन्त्र द्वारा परमपद प्रदान करनेवाले हैं, उन कैलासपर्वत पर निवास करनेवाले शिव-शिवा के लिए मेरा प्रणाम। शङ्कर-पार्वती को बारम्बार प्रणाम।

(८)

नमः शिवाभ्यामशुभापहाभ्या-
मशेषलोकैकविशेषिताभ्याम्।
अकुण्ठिताभ्यां स्मृतिसम्भृताभ्यां
नमो नमः शङ्करपार्वतीभ्याम्॥

अशुभ-अपहाभ्यां (अशुभों को दूर करने वाले) *अशेष-लोक-एक-विशेषिताभ्याम्* (समस्त लोकों में एकमात्र विशिष्ट, अद्वितीय) *नमः शिवाभ्यां* (शिव-शिवा को प्रणाम) *अकुण्ठिताभ्यां* (अवाधित शक्तिसम्पन्न) *स्मृति-सम्भृताभ्यां* (भक्तों की स्मृति सदा संग्रहीत रखनेवाले) *शङ्करपार्वतीभ्यां नमो नमः* (शिव-पार्वती को मेरा बारम्बार प्रणाम)

अशुभों को दूर करने वाले, समस्त लोकों में एकमात्र अद्वितीय (अतिविशिष्ट) शिव-शिवा को मेरा प्रणाम। जिनकी शक्ति अवाधित है, और जो अपने भक्त योगीजनों का सदा स्मरण रखते हैं, उन शिव-पार्वती को मेरा बारम्बार प्रणाम।

(९)

नमः शिवाभ्यां रथवाहनाभ्यां
रवीन्दुवैश्वानरलोचनाभ्याम्।

राकाशशाङ्काभमुखाम्बुजाभ्यां
नमो नमः शङ्करपार्वतीभ्याम्॥

रथवाहनाभ्यां (रथ पर सवार) *रवि-इन्दु-वैश्वानर* (सूर्य, चन्द्र और अग्निरूपी) *लोचनाभ्याम्* (तीन नेत्रों वाले) *शिवाभ्यां नमः* (शिव-शिवा को प्रणाम) *राका-शशङ्काभ* (पूर्णिमा के चन्द्रमा की आभा के समान) *मुख-अम्बुजाभ्यां* (मुखारविन्द वाले) *शङ्कर-पार्वतीभ्यां नमो नमः* (शङ्कर-पार्वती को बारम्बार नमस्कार)

रथ के वाहन पर सवार, सूर्य-चन्द्र-अग्निरूपी तीन नेत्रोंवाले शिव और शिवा को मेरा प्रणाम। पूर्णिमा की रात (राका) के चन्द्रमा की शुभ्र आभा के समान मुखारविन्दवाले शिव-पार्वती को मेरा बारम्बार प्रणाम।

(१०)

नमः शिवाभ्यां जटिलन्धराभ्यां
जरामृतिभ्यां च विवर्जिताभ्याम्।
जनार्दनाब्जोद्भवपूजिताभ्यां
नमो नमः शङ्करपार्वतीभ्याम्॥

जटिलन्धराभ्यां (जटाजूटधारी) *जरा-मृतिभ्यां* (वृद्धावस्था और मृत्यु से) *विवर्जिताभ्याम्* (रहित, अवाधित) *शिवाभ्यां नमः* (शिव-शिवा को नमस्कार) *जनार्दन* (विष्णु) *अब्ज*-(कमल से) *उद्भव*-(उत्पन्न–ब्रह्मा) *पूजिताभ्यां* (पूजितों के लिये)

जटाजूटधारी, वृद्धावस्था और मृत्यु से परे, शिव और पार्वती को मेरा प्रणाम। भगवान् विष्णु और ब्रह्माजी द्वारा पूजित भगवान् शङ्कर और भगवती पार्वती को बारम्बार मेरा प्रणाम।

(११)

नमः शिवाभ्यां विषमेक्षणाभ्यां
बिल्वच्छदामल्लिकदामभृद्भ्याम्।

शोभावतीशान्तवतीश्वराभ्यां
नमो नमः शङ्करपार्वतीभ्याम्॥

विषमेक्षणाभ्यां (विषम-तीन-नेत्रवाले) *बिल्वच्छदा-मल्लिक-दाम-भृद्भ्यां* (बिल्वपत्र, मालती आदि सुगंधित पुष्पों की माला धारण करनेवाले के लिये) *नमः शिवाभ्यां* (शिव-पार्वती को प्रणाम) *शोभावती-शान्तवती-ईश्वराभ्यां* (शोभावती और शान्तवती के स्वामी)

त्रिलोचन, बिल्वपत्र, मालती आदि सुगंधित पुष्पों की माला धारण करनेवाले शिव-शिवानी को मेरा प्रणाम। शोभा और शान्ति के स्वामी शङ्कर-पार्वती को बारम्बार प्रणाम।

(१२)

नमः शिवाभ्यां पशुपालकाभ्यां
जगत्त्रयीरक्षणबद्धहृद्भ्याम्।
समस्तदेवासुरपूजिताभ्यां
नमो नमः शङ्करपार्वतीभ्याम्॥

पशुपालकाभ्यां (जीवों का पालन-पोषण करनेवाले) *जगत्त्रयीरक्षणबद्धहृद्भ्याम्* (तीनों लोकों की रक्षा का भार जिनके हृदय में सदा रहता है) *नमः शिवाभ्यां* (उन शिव-शिवानी को प्रणाम) *समस्तदेवासुरपूजिताभ्यां* (समस्त देव और असुरों से पूजित) *नमो नमः शङ्करपार्वतीभ्याम्* (शङ्कर-पार्वती को मेरा बारम्बार प्रणाम)

समस्त प्राणियों का पालन-पोषण करने वाले, तथा तीनों लोकों की रक्षा करने में जिनका हृदय निरन्तर लगा हुआ है उन शिव-शिवानी को मेरा प्रणाम। जिनकी सारे सुर-असुर पूजा करते हैं, उन शिव-पार्वती को मेरा बारम्बार प्रणाम।

(१३)

स्तोत्रं त्रिसन्ध्यं शिवपार्वतीयं
भक्त्या पठेद् द्वादशकं नरो यः।

स सर्वसौभाग्यफलानि भुङ्क्ते
शतायुरन्ते शिवलोकमेति॥

यः नरः (जो मनुष्य) *त्रिसन्ध्यं* (प्रातःकाल, मध्याह्न और सायंकाल) *द्वादशकं* (बारह श्लोकोंवाले) *शिवपार्वतीयं* (शिव-पार्वती के) *स्तोत्रं* (इस स्तोत्र को) *भक्त्या* (भक्तिपूर्वक) *पठेत्* (पाठ करता है) *स सर्वसौभाग्यफलानि* (उसे सौभाग्य फलों का) *शतायुः अन्ते* (सौ वर्षों तक) *शिवलोकं एति* (शिवलोक को प्राप्त करता है)

जो मनुष्य बारह श्लोकों वाले इस स्तोत्र का प्रातःकाल-मध्याह्न-सायंकाल, तीनों संध्याओं में श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पाठ करता है, वह सौ वर्ष की आयु प्राप्त कर, अन्त में, शिवलोक को प्राप्त होता है।

– इति –

अर्धनारीश्वरस्तोत्रम्

(१)

चाम्पेयगौरार्धशरीरकायै

कर्पूरगौरार्धशरीरकाय।

धम्मिलकायै च जटाधराय

नमः शिवायै च नमः शिवाय॥

(मैं शिव-शिवा के अर्धनारीश्वर – वाँया आधा भाग नारी (पार्वती) और दाँया आधा भाग ईश्वर (शिव) रूप को नमन करता हूँ)

चाम्पेयगौर-अर्ध-शरीरकायै (अर्धनारीश्वर का वाँया आधा अङ्ग चम्पा के समान गौरवर्ण है उन शिवा के लिये) *कर्पूरगौरार्धशरीरकाय* (और आधा दाँया अङ्ग कर्पूर के समान गौरवर्ण है उन शिव के लिये) *धम्मिल्लकायै च जटाधराय* (अर्धाङ्गिनी शिवानी की सुसज्जित केशराशि है और भगवान् शिव जटाओं से सुशोभित हैं – ऐसे शिव-शिवा के लिये) *नमः शिवायै च नमः शिवाय* (शिवा के लिये नमस्कार और शिव के लिये नमस्कार)

जिन अर्धनारीश्वर का वाँया आधा अंग चम्पा के समान गौरवर्ण है, और दाँया आधा अङ्ग कपूर के समान गौरवर्ण है, जिनके वाँये भाग में सुगंधित केश-सज्जा है, और दाँये भाग में जटाजूट है, उन शिव-शिवा के लिये नमस्कार।

(२)

कस्तूरिकाकुङ्कुमचर्चितायै

चितारजःपुञ्जविचर्चिताय।

कृतस्मरायै विकृतस्मराय

नमः शिवायै च नमः शिवाय॥

कस्तूरिका कुङ्कुम चर्चिताय (जिन शिवा के अंग कस्तूरी और कुङ्कुम से सुगंधित हैं) *चितारजःपुञ्जविचर्चिताय* (और जिनका शरीर चिता भस्म से – चिता की धूल से – धूसरित है उन भगवान् शिव के लिये) *कृतस्मरायै* (जिन्होंने कामदेव को पुनर्जीवित किया उन शिवा के लिये) *विकृतस्मराय* (जिन योगीश्वर शिव ने कामदेव को भस्म किया उनके लिये)

कस्तूरी और कुङ्कुम से सुगंधित अंगोंवाली और कामदेव को पुनर्जीवित करने वाली अर्धाङ्गिनी शिवा के लिये नमस्कार। कामदेव को भस्म करने वाले और चिता-भस्म-विभूषित भगवान् शिव को नमस्कार।

(३)

झणत्क्वणत्कङ्कणनूपुरायै
पादाब्जराजत्फणिनूपुराय।
हेमाङ्गदायै भुजगाङ्गदाय
नमः शिवायै च नमः शिवाय॥

झणत्-क्वणत्-कङ्कण-नूपुरायै (जिनके कङ्कण और नूपुर झनझना रहे हैं, उन शिवा के लिये) *हेम-अङ्गदाय* (सोने के बाजूवन्द धारण करने वाली शिवा के लिये) *पाद-अब्ज-राजत्फणि-नूपुराय* (जिन भगवान् शिव के चरण-कमल सर्पों के नूपुरों से सुशोभित हैं उनके लिये) *भुजग-अङ्गदाय* (जिन्होंने सर्पों के भुजबन्ध धारण किये हैं उन शिव के लिये)

मैं उन शिवा के लिये नमन कर रहा हूँ जिनके कङ्कण और नूपुर झनझना रहे हैं, और जिन्होंने स्वर्णाभूषण धारण कर रखे हैं। मैं उन भगवान् शिव की वन्दना करता हूँ जिनके सर्पों के भुजबन्ध हैं, और जिनके चरण-कमल सर्पों के नूपुरों से सुशोभित हैं।

(४)

विशालनीलोत्पललोचनायै
विकासिपङ्केरुहलोचनाय।
समेक्षणायै विषमेक्षणाय
नमः शिवायै च नमः शिवाय।

विशाल-नीलोत्पल-लोचनायै (नीलकमल जैसे बड़े-बड़े नेत्रों वाली शिवा के लिये) *विकासि-पङ्केरुहलोचनाय* (विकसित, प्रफुल्लित लाल कमल जैसे नेत्रोंवाले भगवान् शिव के लिये) *सम-ईक्षणायै* (सम, वरावर दो नेत्रों वाली शिवा के लिये) *विषम-ईक्षणाय* (तीन नेत्रोंवाले भगवान् शिव के लिये)

नीलकमल जैसे विशाल दो नेत्रों वाली शिवा के लिये नमस्कार। प्रफुल्लित लाल कमल जैसे तीन नेत्रों वाले भगवान् शिव के लिये नमस्कार।

(५)

मन्दारमालाकलितालकायै
कपालमालाङ्कितकन्धराय।
दिव्याम्बरायै च दिगम्बराय
नमः शिवायै च नमः शिवाय॥

मन्दारमालाकलित-अलकायै (मन्दार पुष्पों की माला से सुसज्जित केशराशि वाली शिवा के लिये) *कपाल-माला-अङ्कित-कन्धराय* (जिनके कन्धों को नरमुण्डों की माला अलंकृत कर रही है उन भगवान् शिव के लिये) *दिव्य-अम्बरायै* (दिव्य वस्त्र धारण करनेवाली शिवा के लिये) *दिगम्बराय* (जिनके वस्त्र दिशायें हैं, जो निर्वस्त्र रहते हैं उन शिव के लिये) *नमः शिवायै च नमः शिवाय* (शिवा के लिये नमस्कार और शिव के लिये नमस्कार।)

जिनकी केशराशि मन्दार-पुष्पों की माला से सुसज्जित है, और जो शुभ्र वस्त्र धारण करती है उन शिवा के लिये नमस्कार। जिनके कन्धों पर नरमुण्डों की माला अलंकार है, और जो निर्वस्त्र-दिगम्बर रहते हैं उन भगवान् शिव के लिये नमस्कार।

(६)

अम्भोधरश्यामलकुन्तलायै
तटित्प्रभाताम्रजटाधराय।
निरीश्वरायै निखलेश्वराय
नमः शिवायै च नमः शिवाय।

अम्भोधर-श्यामल-कुन्तलायै (जल से भरे श्याम मेघ के समान घुंघराले श्यामल केशोंवाली के लिये) *तडित्प्रभाताम्रजटाधराय* (बिजली की प्रभा जैसी ताम्र वर्ण जटाओंवाले के लिये) *निरीश्वरायै* (जिसके ऊपर किसी का स्वामित्व नहीं है ऐसी सम्प्रभुतासम्पन्न शिवा के लिये) *निखिलेश्वराय* (जो समस्त विश्व के स्वामी हैं उन शिव के लिये) *नमः शिवायै च नमः शिवाय* (शिवा के लिये नमस्कार, शिव के लिये नमस्कार!)

जिसकी घनी घुँघराली केशराशि जल से भरे श्याम मेघ के समान श्यामल है, और जो सम्प्रभुता-सम्पन्न है उन पार्वती के लिये नमस्कार। जिनकी ताम्रवर्ण जटायें बिजली की प्रभा जैसी चमकती हैं उन भगवान् शिव के लिये नमस्कार।

(७)

प्रपञ्चसृष्ट्युन्मुखलास्यकायै
समस्तसंहारकताण्डवाय।
जगज्जनन्यै जगदेकपित्रे
नमः शिवायै च नमः शिवाय।

प्रपञ्च-सृष्टि-उन्मुख-लास्यकायै (जगत्-प्रंपच की सृष्टि की ओर उन्मुख लास्य नृत्य करने वाली जगन्माता पार्वती के लिये) *समस्त-संहारक-ताण्डवाय* (प्रलयंकर ताण्डव नृत्य करने वाले शिव के लिये) *जगज्जनन्यै* (सारे संसार की माता भवानी के लिये) *जगत्-एक-पित्रे* (समस्त संसार के एकमात्र सृष्टिकर्त्ता पिता के लिये)

जो माता पार्वती सृष्टि-प्रवर्तक लास्य नृत्य करती हैं, और जगज्जननी उनके लिये नमस्कार। जो रुद्रस्वरूप शिव समस्त संहारक प्रलयंकर-ताण्डव नृत्य करते हैं, और, साथ ही, सारे जगत् के एकमात्र पिता हैं उनके लिये नमस्कार।

(८)

प्रदीप्तरत्नोज्ज्वलकुण्डलायै
स्फुरन्महापन्नगभूषणाय।

शिवान्वितायै च शिवान्विताय

नमः शिवायै च नमः शिवाय।

प्रदीप्तरत्न-उज्ज्वल-कुण्डलायै (जिनके रत्नजटित कुण्डल प्रदीप्त प्रभा से जगमगा रहे हैं उन शिवा के लिये) *शिव-अन्वितायै* (जो सदा शिव के साथ रहती हैं, शिव की अर्धाङ्गिनी हैं, उनके लिये) *शिवा-अन्विताय* (जो शिवा के सदा साथ रहते हैं, शिवा के अर्धाङ्ग हैं उन शिव के लिये)

जिन शिवा के रत्नजटित कुण्डल प्रदीप्त प्रभा से जगमगा रहे हैं, और जो सदा शिव के साथ रहने वाली अर्धाङ्गिनी हैं, उनके लिये नमस्कार। जिन भगवान् शिव के कर्णफूलों में सर्पराजों के मस्तकों की मणि जगमगा रही हैं, और जो सदा शिवा के साथ रहते हैं, उनके अर्धाङ्ग हैं, उन भगवान् शिव के लिये नमस्कार।

(९)

एतत्पठेदष्टकमिष्टदं यो

भक्त्या स मान्यो भुवि दीर्घजीवी।

प्राप्नोति सौभाग्यमनन्तकालं

भूयात्सदा तस्य समस्तसिद्धिः॥

यः एतत् इष्टदं अष्टकं भक्त्या पठेत् (जो इस मनोवाञ्छित फल देने वाले अष्टक का – आठ पद्यों वाले स्तोत्र को भक्ति भाव से पाठ करता है) *सः भुवि मान्यः दीर्घजीवी* (वह पृथ्वी पर सम्माननीय और दीर्घजीवी होगा) *अनन्तकालं सौभाग्यं प्राप्नोति* (और अनन्त काल तक सौभाग्य प्राप्त करता है) *तस्य समस्त-सिद्धिः सदा भूयात्* (उसकी सारी सिद्धियाँ – सफलताएँ – सदा रहेंगी)

जो समस्त मनोवाञ्छित फल देने वाले इस अष्टपदी स्तोत्र का भक्तिभाव से पाठ करेगा, वह पृथ्वी पर सम्माननीय और दीर्घजीवी होगा। उसे अनन्तकालीन सौभाग्य प्राप्त होगा और उसके लिये समस्त सिद्धियाँ मिलेंगी।

– इति –

द्वादशलिङ्गस्तोत्रम्

(१)

सौराष्ट्रदेशे वसुधावकाशे
ज्योतिर्मयं चन्द्रकलावतंसम्।
भक्तिप्रदानाय कृतावतारं
तं सोमनाथं शरणं प्रपद्ये॥

वसुधा-अवकाशे सौराष्ट्रदेशे (मनोरम विस्तृत सौराष्ट्र प्रदेश में) *ज्योतिर्मयं चन्द्रकला-अवतंसं भक्ति-प्रदानाय कृत-अवतारं सोमनाथं प्रपद्ये* (भक्ति का प्रचार करने के लिये जिन चन्द्रशेखर सोमनाथ ने ज्योतिर्लिङ्ग के रूप में अवतार लिया। मैं उनकी शरण लेता हूँ)

चन्द्रमौलि सोमनाथ ने, सौराष्ट्र के मनोरम विस्तृत प्रदेश में, शिवभक्ति का प्रसार करने के लिये ज्योतिर्मय ज्योतिर्लिङ्ग के रूप में अवतार लिया। मैं उनकी शरण लेता हूँ।

(२)

श्रीशैलशृङ्गे विविधप्रसङ्गे
शेषाद्रिशृङ्गेऽपि सदा वसन्तम्।
तमर्जुनं मल्लिकपूर्वमेनं
नमामि संसारसमुद्रसेतुम्॥

श्रीशैलशृङ्गे (श्रीशैलगिरि के शिखर पर) *विविधप्रसङ्गे* (यथोचित अनेक अवसरों पर) *शेषाद्रिशृंगेऽपि* (शेषाद्रि के शिखर पर भी) *सदा वसन्तं* (सदा निवास करनेवाले को) *तं अर्जुनं मल्लिकपूर्वमेनं* (उन मल्लिकार्जुन को) *संसारसमुद्रसेतुम्* (जो भवसागर पार करने के लिए सेतु के समान हैं) *नमामि* (मैं नमन करता हूँ।)

श्री शैलपर्वत के शिखर पर, और यथा अवसर शेषाद्रि के शिखर पर भी सदा निवास करनेवाले श्री मल्लिकार्जुन को मैं प्रणाम करता हूँ।

(३)

अवन्तिकायां विहितावतारं
मुक्तिप्रदानाय च सज्जनानाम्
अकालमृत्योः परिरक्षणार्थं
वन्दे महाकालमहं सुरेशम्॥

सज्जनानां मुक्ति-प्रदानाय (सज्जनों को मुक्ति प्रदान करने के लिये) *अकालमृत्योः परिरक्षणार्थं* (और अकाल मृत्यु से रक्षा करने के लिये) *अवन्तिकायां विहितावतारं* (जिन्होंने उज्जयिनी में अवतार लिया) *सुरेशं महाकालं अहं वन्दे* (मैं सुरेश्वर महाकाल की वन्दना करता हूँ)

जिन्होंने सज्जनों को मुक्ति प्रदान करने के लिये, और अकालमृत्यु से भलीभाँति रक्षा करने के लिये, उज्जयिनी में अवतार लिया, उन महाकाल की मैं वन्दना करता हूँ।

(४)

कावेरिकानर्मदयोः पवित्रे
समागमे सज्जनतारणाय।
सदैव मान्धातृपुरे वसन्त-
मोंकारमीशं शिवमेकमीडे॥

सज्जनतारणाय (सज्जनों को संसार-सागर से पार लगाने के लिये) *कावेरिकानर्मदयोः पवित्रे समागमे* (कावेरी और नर्मदा के पवित्र संगम पर) *सदैव मान्धातृपुरे वसन्तं* (सदा मान्धातापुर में प्रतिष्ठित) *ओंकारं ईशं* (ओंकारेश्वर) *शिवं एकं ईडे* (एकलिङ्ग शिव का स्तवन करता हूँ)

संसार-सागर से सज्जनों का उद्धार करने के लिये, कावेरी और नर्मदा के पवित्र सङ्गम पर स्थित मान्धातापुरी में जो सदा स्थित हैं उन एकलिङ्ग ओंकारेश्वर की मैं स्तुति करता हूँ।

(५)

पूर्वोत्तरे पारलिकाभिधाने
सदाशिवं तं गिरिजासमेतम्।
सुरासुराराधितपादपद्मं
श्रीवैद्यनाथं सततं नमामि॥

पूर्वोत्तरे पारलिकाभिधाने (पूर्वोत्तर में परली नाम के स्थान पर) *सुर-असुर-आराधित-पादपद्मं* (जिनके चरणकमलों की सुर और असुर आराधना करते हैं) *गिरिजा-समेतं सदाशिवं श्री वैद्यनाथं सततं नमामि* (गिरिजा-पार्वती-समेत श्री वैद्यनाथ सदाशिव को मैं सदा नमन करता हूँ)

पूर्वोत्तर में, परली नामक स्थान पर, देवता और दैत्यों द्वारा समान भाव से आराधित गिरिजा समेत श्री वैद्यनाथ सदाशिव को सदा नमस्कार करता हूँ।

(६)

आमर्दसंज्ञे नगरे च रम्ये
विभूषिताङ्गं विविधैश्च भोगैः
सद्भुक्तिमुक्तिप्रदमीशमेकं
श्रीनागनाथं शरणं प्रपद्ये॥

आमर्दसंज्ञे रम्ये नगरे (आमर्द नाम के सुन्दर नगर में) *विविधैः भोगैः विभूषिताङ्गं* (अनेक सर्पों के आभूषणों से सुशोभित अंगवाले) *सद्-भुक्ति-मुक्तिप्रदं ईशं-एकं* (श्रेष्ठ सुखोपभोग और मुक्ति प्रदान करने वाले ईश्वर को) *श्रीनागनाथं शरणं प्रपद्ये* (श्री नागनाथ शिव की शरण लेता हूँ)

आमर्द नाम के सुन्दर नगर में, विविध सर्पों के आभूषणों से सुसज्जित, अच्छे सुखोपभोग और मुक्ति प्रदान करने वाले श्रीनागनाथ (श्री नागेश्वर) स्वामी की शरण लेता हूँ।

(७)

सानन्दमानन्दवने वसन्त-
मानन्दकन्दं हतपापवृन्दम्।
वाराणसीनाथमनाथनाथं
श्रीविश्वनाथं शरणं प्रपद्ये॥

सानन्दं आनन्दवने वसन्तं (आनन्दपूर्वक आनन्दवन काशी में स्थित) *आनन्दकन्दं हतपाप-वृन्दं* (पाप समूहों का नाश करने वाले और आनन्दमूल) *वाराणसीनाथं-अनाथ-नाथं श्री विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये* (अनाथों के नाथ काशीनाथ श्रीविश्वनाथ की शरण लेता हूँ।

जो आनन्दपूर्वक आनन्दवन – काशी – में स्थित हैं, पापों के समूह को नष्ट करने वाले और आनन्दमूल हैं, उन अनाथों के नाथ काशीनाथ विश्वनाथ की मैं शरण लेता हूँ।

(८)

यो डाकिनीशाकिनिकासमाजे
निषेव्यमानः पिशिताशनैश्च।
सदैव भीमादिपदप्रसिद्धं
तं शङ्करं भक्तहितं नमामि॥

यः (जो) *डाकिनी-शाकिनी समाजे* (डाकिनी-शाकिनी समूह में) *पिशित-अशनैः निषेव्यमानः* (मांस-भक्षी पिशाचों द्वारा पूजित हैं) *सदा एव भीम-आदि-पद-प्रसिद्धं* (और सदा 'भीम' आदि पद से प्रसिद्ध हैं) *तं भक्तहितं शकरं नमामि* (भक्तों के हितकारी भगवान् शंकर को) *नमामि* (नमन करता हूँ)

जिनकी डाकिनी-शाकिनी समूह में मांस-भक्षी पिशाचों द्वारा सेवा की जाती है, और जो सदा 'भीम' इस आदि पद से प्रसिद्ध हैं, उन भक्त-हितकारी श्री भीमशंकर को नमन करता हूँ।

(९)

श्रीताम्रपर्णीजलराशियोगे
निबद्ध्य सेतुं निशि बिल्वपत्रैः
श्रीरामचन्द्रेण समर्चितं तं
रामेश्वराख्यं सततं नमामि॥

श्रीताम्रपर्णी-जलराशियोगे (शोभायमान ताम्रपर्णी नदी और महासागर जलराशि के संगम पर) *निबध्य सेतुं (सेतु बनाकर) श्रीरामचन्द्रेन बिल्वपत्रैः*

समर्चितं (भगवान् राम ने बिल्वपत्रों से पूजा-अर्चना की) *तं* (उन) *रामेश्वराख्यं* ('रामेश्वर' नाम से प्रसिद्ध को) *सततं नमामि* (सदा नमन करता हूँ)

पवित्र ताम्रपर्णी नदी और महासागर के संगम पर, रात्रि के समय, पुल बना कर भगवान् राम ने जिनकी बिल्वपत्रों से पूजा अर्चना की, और जिनका नाम 'रामेश्वर' प्रसिद्ध है, उनको मैं लगातार नमन करता हूँ।

(१०)

सिंहाद्रिपार्श्वेऽपि तटे रमन्तं
गोदावरीतीरपवित्रदेशे।
यद्दर्शनात्पातकजातनाशः
प्रजायते त्र्यम्बकमीशमीडे॥

सिंहाद्रि-पार्श्वेऽपि गोदावरीतीर-पवित्र-देशे (पुण्यतोया गोदावरी-गौतमी-के पवित्र प्रदेश में सिंहगिरि-ब्रह्मगिरि-के पठार पर) *तटे रमन्तं* (तट पर रमण करते हुए) *त्र्यम्बकं ईशं ईडे* (त्र्यम्बकेश्वर की स्तुति करता हूँ) *यत्-दर्शनात् पातकजातनाशः प्रजायते* (जिसके दर्शनमात्र से पापसमूह नाश हो जाते हैं)

जिनके दर्शनमात्र से पाप समूह नष्ट हो जाते हैं उन त्र्यम्बकेश्वर की मैं स्तुति करता हूँ। वे पुण्यतोया गोदावरी–गौतमी– के पवित्र प्रदेश में सिंहाद्रि-ब्रह्माद्रि– के पठार पर रमण करते हैं।

(११)

हिमाद्रिपार्श्वेऽपि तटे रमन्तं
संपूज्यमानं सततं मुनीन्द्रैः
सुरासुरैर्यक्षमहोरगाद्यैः
केदारसंज्ञं शिवमीशमीडे॥

हिमाद्रि-पार्श्वेऽपि तटे (हिमगिरि-हिमालय-के पार्श्व तट पर) *रमन्तं* (विहार करते हुए, निवास करते हुए, रमण करते हुए को) *सुर-असुरैः–यक्ष-महा-उरग-आद्यैः* (सुर-असुर, यक्ष नाग आदि द्वारा) *सम्पूज्यमानं* (विधि-विधान से पूज्य) *केदारसंज्ञं* (केदार नामधारी) *शिवं-ईशं-ईडे* (भगवान् शिव की स्तुति करता हूँ)

हिमगिरि (हिमालय) के पार्श्वतट पर रमण करनेवाले केदारनाथ शिव की स्तुति करता हूँ। उनकी मुनीश्वर, सुर, असुर, यक्ष, महानाग आदि विधि-विधान से सदा पूजा करते रहते हैं।

(१२)

एलापुरीरम्यशिवालयेऽस्मि-
न्समुल्लसन्तं त्रिजगद्वरेण्यम्।
वन्दे महोदारतरस्वभावं
सदाशिवं तं धिषणेश्वराख्यम्॥

अस्मिन् एलापुरीरम्य-शिवालये (इस एलापुरी के शिवालय में) *समुल्लसन्तं त्रिजगत्-वरेण्यं* (उल्लासपूर्वक विहार करते हुए और तीनों लोकों में सर्वोत्तम) *महा-उदार-तर स्वभावं* (अत्यंत उदार स्वभाववाले) *तं धिषणेश्वराख्यम् सदाशिवं वन्दे* (उस सदाशिव की वन्दना करता हूँ)

एलापुरी शिवालय में उल्लासपूर्वक विहार करने वाले, तीनों लोकों में सर्वोत्तम, अत्यंत सरल उदार स्वभा वाले धिषणेश्वर सदाशिव की वन्दना करता हूँ।

(१३)

एतानि लिङ्गानि सदैव मर्त्याः
प्रातः पठन्तोऽमलमानसाश्च
ते पुत्रपौत्रैश्च धनैरुदारैः
सत्कीर्तिभाजः सुखिनो भवन्ति॥

एतानि लिङ्गानि (इन ज्योतिर्लिङ्गों को) *सदा एव अमल-मानसाः* (जो लोग सदानिर्मल स्वभाववाले) *प्रातः स्मरन्ति* (प्रातःकाल पाठ करते हैं) *ते पुत्र-पौत्रैश्च धनैः-उदारैः सत्कीर्तिभाजः सुखिनो भवन्ति* (वे पुत्र-पौत्र, विपुल धन और मानप्रतिष्ठा से सुखी रहते हैं)

जो लोग, निर्मल मन से, इन द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों का नित्य प्रातः काल पाठ करते हैं वे पुत्र-पौत्र, विपुल धन और सत्कीर्ति पाकर सुखी रहते हैं।

– इति –

ललितापञ्चरत्नम्

(१)

प्रातः स्मरामि ललितावदनारविन्दं
विम्बाधरं पृथुलमौक्तिकशोभिनासम्।
आकर्णदीर्घनयनं मणिकुण्डलाढ्यं
मन्दस्मितं मृगमदोज्ज्वलभालदेशम्॥

प्रातः स्मरामि (मैं सवेरे स्मरण करता हूँ) ललिता-वदन-अरविन्दं *(राजराजेश्वरी त्रिपुरसुन्दरी ललितादेवी के मुखारविन्द का)* विम्बाधरं (उनके विम्बसमान लाल होठ हैं) *पृथुलमौक्तिक*-(विशाल मोती से) *शोभिनासम्* (सुशोभित नासिका है) *आकर्णदीर्घनयनं* (कानों तक विस्तीर्ण नयन हैं) *मणिकुण्डलाढ्यं* (मणिमय कुण्डल से युक्त) *मन्दस्मितं* (मन्द मुस्कान से शोभित) *मृगमद* (कस्तूरी) *उज्ज्वलभालदेशम्* (से अलंकृत ललाट है।)

मैं प्रातःकाल उठकर श्रीललितादेवी के मुखकमल का स्मरण करता हूँ। उनके विम्बफल जैसे लाल-लाल होठ हैं, नासिका बड़े मोती की नथ से सुशोभित है, कानों तक फैले हुए नेत्र हैं, मणियुक्त कुण्डल और मन्द मुस्कान से मनोहर हैं, और उनके उज्ज्वल ललाट पर कस्तूरीतिलक सुशोभित है।

(२)

प्रातर्भजामि ललिताभुजकल्पवल्लीं
रक्ताङ्गुलीयलसदङ्गुलिपल्लवाढ्याम्।
माणिक्यहेमवलयाङ्गदशोभमानां
पुण्ड्रेक्षुचापकुसुमेषुसृणीर्दधानाम्॥

प्रातः (सवेरे) *ललिताभुजकल्पवल्लीं* (श्री ललितादेवी की भुजारूपिणी

कल्पलता का) *भजामि* (मैं भजन करता हूँ) *रक्त-अङ्गुलीय-लसद्*-(जो लाल मणि युक्त अंगूठी से सुशोभित है) *अङ्गुलिपल्लवआढ्याम्* (सुकोमल अंगुलीरूप पल्लवोंवाली है) *माणिक्यहेमवलय-अङ्गद-शोभमानां* (माणिक रवचित सोने के कङ्कण और वाजूवन्द से अलंकृत है) *पुण्ड्र इक्षु* (लाल गन्ने) *चाप* (धनुष) *कुसुम-इषु सृणीः* (पुष्पमय वाण और अङ्कुश) *दधानाम्* (धारण किये हुए हैं)

मैं श्रीललितादेवी की भुजारूपिणी कल्पलता का प्रातःकाल भजन करता हूँ। यह भुजा-कल्पलता लाल मणियुक्त अँगूठी से सुशोभित है, और कोमल अँगुलीरूप पल्लवों से युक्त है। इन भुजाओं में माणिकों से जड़े सोने के कङ्गन और वाजूवंद शोभा बढ़ा रहे हैं। वे लाल गन्ने का धनुष और पुष्पों के बाण और अङ्कुश से अलंकृत हैं।

(३)

प्रातर्नमामि ललिताचरणारविन्दं
भक्तेष्टदाननिरतं भवसिन्धुपोतम्।
पद्मासनादिसुरनायकपूजनीयं
पद्माङ्कुशध्वजसुदर्शनलाञ्छनाढ्यम्॥

ललिताचरणारविन्दं (श्रीललितादेवी के चरणकमलों को) *प्रातः नमामि* (मैं सवेरे उठकर प्रणाम करता हूँ) *भक्त-इष्ट-दान-निरतं* (ये चरणकमल भक्तों को अभीष्ट फल देने में तत्पर हैं) *भवसिन्धुपोतम्* (भवसागर पार करने के लिये नौका के समान हैं) *पद्मासन-आदि-सुरनायक-पूजनीयं* (कमल पर विराजमान ब्रह्मा आदि देवेन्द्रों से पूजित हैं) *पद्म-अङ्कुश-ध्वज-सुदर्शन-लाञ्छनाढ्यम्* (कमल, अङ्कुश, ध्वजा, चक्र आदि मङ्गलमय चिन्हों से सुशोभित हैं)

मैं श्रीललितादेवी के उन चरणकमलों को प्रातःकाल उठकर प्रणाम करता हूँ जो भक्तों को अभीष्ट फल देने के लिये सदा तत्पर हैं, और संसार-सागर को पार करने के लिये जहाज के समान हैं। वे चरणकमल ब्रह्मा आदि देवेश्वरों द्वारा पूजित हैं, और कमल, अङ्कुश, ध्वजा, चक्र आदि माङ्गलिक चिन्हों से सुशोभित हैं।

(४)

प्रातः स्तुवे परशिवां ललितां भवानीं
त्रय्यन्तवेद्यविभवां करुणानवद्याम्।
विश्वस्य सृष्टिविलयस्थितिहेतुभूतां
विद्येश्वरीं निगमवाङ्मनसातिदूराम्।।

परशिवां ललितां भवानीं (परम कल्याणरूपिणी श्रीललिता भवानी की) *प्रातः स्तुवे* (मैं प्रातःकाल स्तुति करता हूँ) *त्रयी-अन्त-वेद्य-विभवां* (उनका वैभव तीनों वेदों के अंत– वेदान्त द्वारा बोधगम्य है) *करुणा-अनवद्याम्* (जो करुणामयी शुद्धस्वरूपा हैं) *विश्वस्य* (समस्त ब्रह्माण्ड की) *सृष्टि-विलय-स्थिति* (उत्पत्ति, स्थिति और अंत की) *हेतुभूतां* (आदि कारण हैं) *विद्येश्वरीं* (विद्या की अधिष्ठात्री, श्रीविद्या हैं) *निगम* (वेद) *वाक्* (वाणी) *मनसा* (मन की गति से) *अतिदूराम्* (बहुत दूर हैं उनको)

मैं प्रातः काल परम कल्याण रूपिणी श्रीललिता भवानी की स्तुति करता हूँ। उनका वैभव वेदान्त से बोधगम्य है, वे शुद्धस्वरूपा हैं क्योंकि वे करुणामयी हैं, समस्त ब्रह्माण्ड की सृष्टि, स्थिति और अन्त की मुख्य हेतु हैं, विद्या की अधिष्ठात्री देवी श्रीविद्या हैं, और वेद, वाणी और मन की गति से बहुत दूर हैं।

(५)

प्रातर्वदामि ललिते तव पुण्यनाम
कामेश्वरीति कमलेति महेश्वरीति।
श्रीशाम्भवीति जगतां जननी परेति
वाग्देवतेति वचसा त्रिपुरेश्वरीति।।

ललिते (हे ललिते!) *तव* (तेरे) *पुण्यनाम* (पुण्यमय नामों का) *वचसा* (अपनी वाणी द्वारा) *प्रातः वदामि* (प्रातः काल जप करता हूँ) (यथा) कामेश्वरी , कमला, महेश्वरी, शाम्भवी, जगज्जननी, परा, वाग्देवी तथा त्रिपुरेश्वरी।

हे जगदम्बा ललितादेवि! मैं तेरे कामेश्वरी, कमला, महेश्वरी, शाम्भवी,

जगज्जननी, परा, वाग्देवी, त्रिपुरेश्वरी आदि नामों का प्रातःकाल उठकर अपनी वाणी से जप करता हूँ।

(६)

यः श्लोकपञ्चकमिदं ललिताम्बिकायाः
सौभाग्यदं सुललितं पठति प्रभाते।
तस्मै ददाति ललिता झटिति प्रसन्ना
विद्यां श्रियं विमलसौख्यमनन्तकीर्तिम्॥

यः (जो पुरुष) *ललिता-अम्बिकायाः* (जगज्जननी श्री ललितादेवी के) *इदं* (इस) सौभाग्यदं सुललितं *(सौभाग्यप्रद और सुमधुर)* श्लोकपञ्चकं (पाँच श्लोकों के स्तोत्र को) *प्रभाते पठति* (प्रातः काल पढ़ता है, कीर्तन करता है) *तस्मै* (उसके लिये) *झटिति प्रसन्ना* (शीघ्र प्रसन्न) *ललिता* (भवानी ललिता) विद्या, लक्ष्मी, निर्मल सुख और अनन्त कीर्ति प्रदान करती हैं।)

यह श्लोक फलश्रुति के रूप में इस *ललितापञ्चरत्नम्* का माहात्म्य वर्णन कर रहा है। जगज्जननी श्रीललितादेवी के सुमधुर और सौभाग्यप्रद इस श्लोकपञ्चक (पाँच श्लोकों को) को जो मनुष्य प्रातःकाल पढ़ता है, उसे ललितादेवी, शीघ्र प्रसन्न होकर, विद्या, धन-सम्पत्ति, निर्मल सुख और अनन्त कीर्ति प्रदान करती हैं।

— इति —

कनकधारास्तोत्रम्
(कनकलक्ष्मीस्तवः)

(१)

अङ्गं हरेः पुलकभूषणमाश्रयन्ती।
भृङ्गाङ्गनेव मुकुलाभरणं तमालम्॥
अङ्गीकृताखिलविभूतिरपाङ्गलीला
माङ्गल्यदाऽस्तु मम मङ्गलदेवतायाः॥

भृङ्गाङ्गना इव (भ्रमरी के समान) *मुकुल-आभरणं तमालं* (अधखिले फूलों से सुशोभित) *तमालं आश्रयन्ती* (तमालवृक्ष का आश्रय लेती हुई) *हरेः* (भगवान विष्णु के) *पुलकभूषणं अङ्गं* (पुलकावली से सुशोभित अङ्ग को) *अङ्गीकृत- अखिल-विभूतिः अपाङ्गलीला* (सारे ऐश्वर्यों की निधि श्रीलक्ष्मी की कृपादृष्टि) *मङ्गलदेवतायाः* (सम्पूर्ण मङ्गलों की अधिष्ठात्री की) *मम* (मेरे लिये) *माङ्गल्यदा अस्तु* (मङ्गलदायिनी हो)

सचमुच जैसे भ्रमरी (भ्रमराङ्गना) अधखिले फूलों से सुशोभित तमालवृक्ष पर मंडराती रहती है, वैसे ही जो श्रीविष्णु के पुलकावली से अलङ्कृत अङ्गों पर सदा संलग्न रहती है, और जो समस्त ऐश्वर्य-सम्पन्न हैं वह मङ्गलों की अधिष्ठात्री श्रीलक्ष्मी की कृपादृष्टि मेरे लिये मङ्गलदायिनी हो।

(२)

मुग्धा मुहुर्विदधती वदने मुरारेः।
प्रेमत्रपाप्रणिहितानि गतागतानि॥
माला दृशोर्मधुकरीव महोत्पले या
सा मे श्रियं दिशतु सागरसम्भवायाः॥

महा-उत्पले (विशाल कमल पर) *मधुकरी इव* (भ्रमरी के समान) *या प्रेमत्रपा-*(जो प्रेम की लज्जा से) *प्रणिहितानि* (प्रेरित) *मुरारेः वदने विदधती* (श्रीकृष्ण के मुख पर) *गतगतानि* (आती और जाती रहती हैं) *सा सागरसम्भवायाः* (सागरपुत्री लक्ष्मी की) *मुग्धा दृशोः माला* (मुग्ध दृष्टिमाला) *मे श्रियं दिशतु* (मेरे लिये श्री-लक्ष्मी-प्रदान करें।)

जिस प्रकार भ्रमरी किसी बड़े कमल पर इधर-उधर मंडराती रहती है, वैसे ही समुद्रकन्या श्रीलक्ष्मीजी की दृष्टिमाला मुरारि श्रीकृष्ण के मुखमण्डल की ओर प्रेम से आती, और लज्जा के कारण लौट जाती हैं। वह मुग्ध दृष्टिमाला मुझे धन-सम्पत्ति प्रदान करें।

(३)

विश्वामरेन्द्रपदविभ्रमदानदक्ष-
मानन्दहेतुरधिकं मुरविद्विषोऽपि।
ईषन्निषीदतु मयि क्षणमीक्षणार्ध-
मिन्दीवरोदरसहोदरमिन्दिरायाः॥

विश्व-अमर-इन्द्र-(सम्पूर्ण देवों के अधिपति इन्द्र) *पद-विभ्रमदान-दक्षं* (पद का वैभव विलास देने की दक्षता रखती हैं) *मुर-विद्विषः-अपि* (और मुरारि श्री विष्णु को भी) *आनन्दहेतुः अधिकं* (अधिक आनन्द देने वाली हैं) *इन्दीवर-सहोदर-*(नील कमल के भीतरी भाग के समान) *क्षणं* (किञ्चित् मात्र) *ईक्षणार्धं* (थोड़ी-सी ही कृपादृष्टि) *मयि ईषत् निषीदतु* (मुझ पर थोड़ी विराजमान हो जाय।)

लक्ष्मी जी के अधखुले नेत्रों की कृपादृष्टि, जो समस्त देवताओं के स्वामी इन्द्र के पद का वैभव प्रदान करने में समर्थ हैं, और जो श्रीविष्णु भगवान् को निरन्तर आनन्द देती रहती हैं, और जो नीलकमल के भीतरी भाग के समान सुन्दर हैं, वह कृपादृष्टि क्षणभर के लिये मुझ पर भी बरसे।

(४)

आमीलिताक्षमधिगम्य मुदा मुकुन्द-
मानन्दकन्दमनिमेषमनङ्गतन्त्रम्।

आकेकरस्थितकनीनिकपक्ष्मनेत्रं

भूत्यै भवेन्मम भुजङ्गशयाङ्गनायाः॥

आमीलित-अक्षं (मुँदे हुए नेत्रों वाले) *आनन्द-कन्दं* (आनन्द निधि) *मुकुन्दं* (मुकुन्द को) *मुदा अधिगम्य* (प्रेम से पास पहुँच कर) *अनिमेषं अनङ्गतन्त्रम्* (प्रेम के वशीभूत होकर लगातार देखते रहने वाले को) *आकेकर*-(तिरछी) *स्थितकनीनिकपक्ष्मनेत्रं* (जिनके नेत्रों की पुतली और बरौनियाँ) *भुजङ्गशय-अङ्गनायाः* (शेषशायी विष्णु की पत्नी लक्ष्मी की) *मम* (मेरे लिये) *भूत्यै भवेत्* (सिद्धि-समृद्धिदायक हो)

आनन्दकन्द मुकुन्द प्रेमवश अधखुले नेत्रों से निरन्तर लक्ष्मीजी की ओर देख रहे हैं। उन्हें अपने निकट पाकर जिन लक्ष्मीजी की पुतलियाँ और वरौनियाँ किञ्चित् तिरछी हो गई हैं, शेषशायी विष्णु की पत्नी उन लक्ष्मीजी के नेत्र हमें समृद्धि प्रदान करें।

(५)

बाह्वन्तरे मधुजितः श्रितकौस्तुभे या

हारावलीव हरिनीलमयी विभाति।

कामप्रदा भगवतोऽपि कटाक्षमाला

कल्याणमावहतु मे कमलालयायाः॥

या (जो) *मधुजितः* (मधुसूदन के) *श्रितकौस्तुभे* (कौस्तुभमणि से सुशोभित) *बाहु-अन्तरे* (वक्षस्थल पर) *हरिनीलमयी* (इन्द्रनीलमणिकी) *हार-अवली-इव* (हार सी) *विभाति* (सुशोभित होती है) *भगवतः अपि कामप्रदा* (भगवान् के हृदय में भी प्रीति उत्पन्न करनेवाली है) *कमल-आलयायाः* (कमल निवासिनी की) *कटाक्षमाला* (कृपाकटाक्ष) *मे कल्याणं आवहतु* (मेरा कल्याण करें)

जो लक्ष्मीजी भगवान् मधुसूदन के कौस्तुभमणि से सुशोभित वक्षःस्थल पर इन्द्रनीलमयी हार की लड़ियों जैसी सुशोभित होती हैं, और भगवान् के हृदय में भी प्रीति का सञ्चार करती हैं, उन कमल निवासिनी लक्ष्मी के कृपा कटाक्ष मेरा मङ्गल करें।

(६)

कालाम्बुदालिललितोरसि कैटभारे
र्धाराधरे स्फुरति या तटिदङ्गनेव।
मातुः समस्तजगतां महनीयमूर्ति-
र्भद्राणि मे दिशतु भार्गवनन्दनायाः॥

धाराधरे (मेघमाला में) *तडित्-अङ्गना इव* (विजली की चमक जैसी) *कैटभ अरेः* (कैटभ दानव के शत्रु भगवान् विष्णु की) *काल-अम्बुद-आलि-ललित-उरसि* (मेघश्याम मनोहर वक्षःस्थल पर) *या स्फुरति* (जो चमकती हैं) *समस्तजगतां मातुः* (सारे संसार की माता की) *भार्गवनन्दनायाः* (भृगुवंश को आनन्द देने वाली की) *महनीयमूर्त्तिः* (आराध्य मूर्त्ति) *मे भद्राणि दिशतु* (मेरे लिये मङ्गल प्रदान करें।)

जिस प्रकार् मेघों में बिजली चमकती है, वैसे ही कैटभहन्ता श्रीविष्णु के घनश्याम सुन्दर वक्षःस्थल पर जो प्रकाशित होती हैं, जो सारे जगत् की माता हैं, और जिन्होंने अपने जन्म से भृगुवंश को आनन्दित किया है, उन लक्ष्मीजी की आराध्य मूर्त्ति मेरे लिये मङ्गलदायिनी हो।

(७)

प्राप्तं पदं प्रथमतः किल यत्प्रभावा-
न्माङ्गल्यभाजि मधुमाथिनि मन्मथेन।
मय्यापतेत्तदिह मन्थरमीक्षणार्ध
मन्दालसं च मकरालयकन्यकायाः॥

यत्-प्रभावात् (जिनके प्रभाव से) *मन्मथेन* (कामदेव ने) *माङ्गल्यभाजि* (मङ्गलस्वरूप) *मधुमाथिनि* (मधुदैत्यहन्ता भगवान् विष्णु में) *प्रथमतः किल पदं प्राप्तं* (सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया) *मकरालयकन्यकायाः* (समुद्रकन्या के) *मन्द-आलसं मन्थर-ईक्षणार्धम्* (मन्द, अलसाई, मन्थर, अर्धोन्मीलित दृष्टि) *तत् इह मयि आपतेत्* (वह यहाँ मेरे ऊपर पड़े।)

जिनके प्रभाव से पहले-पहल कामदेव ने मधुसूदन श्रीकृष्ण के हृदय

में स्थान पाया, उन समुद्रकन्या लक्ष्मीजी की मन्द, अलसाई, मन्थर, अधखुली आँखों की कृपादृष्टि मेरे ऊपर यहाँ मुझ पर पड़े।

(८)

दद्याद्दयानुपवनो द्रविणाम्वुधारा-
मस्मिन्नकिञ्चनविहङ्गशिशौ विषण्णे।
दुष्कर्मघर्ममपनीय चिराय दूरं
नारायणप्रणयिनीनयनाम्बुवाहः॥

नारायणप्रणयिनी-(श्रीविष्णु की प्रिया) *नयन-अम्वुवाहः* (नयनरूपी मेघ) *दया अनुपवनो* (दयारूपी पवन से प्रेरित) *चिराय* (चिरकाल के लिये) *दुष्कर्मधर्म अपनीय दूरं* (दुष्कर्मरूपी ताप को दूर कर) *अस्मिन्-अकिश्चन*-(इस अकिश्चन) *विषण्णे विहङ्ग-शिशौ* (दुख में पड़े हुए मुझ चातक शिशु पर) *द्रविण-अम्बुधारां दद्यात्* (धनरूपी जलधारा की वर्षा करे)

विष्णुप्रिया श्रीलक्ष्मी जी की कृपादृष्टि रूपी मेघ, करुणारूपी पवन से प्रेरित होकर, दुष्कर्मरूपी धूप को दूर कर, मुझ दीनरूपी चातक शिशु पर धनरूपी जलधारा की वृष्टि करे।

अधिक सरलभाषा में अर्थ होगा कि करुणा प्रेरित विष्णुप्रिया लक्ष्मी, मुझ दीन पर दया कर, मेरे दुष्कर्मों के सन्ताप को दूर कर, मेरे ऊपर कनकधारा की वर्षा करें।

(९)

इष्टा विशिष्टमतयोऽपि यया दयार्द्र-
दृष्ट्या त्रिविष्टपपदं सुलभं लभन्ते।
दृष्टिः प्रहृष्टकमलोदरदीप्तिरिष्टां
पुष्टिं कृषीष्ट मम पुष्करविष्टरायाः॥

इष्टाःविशिष्टमतयः अपि (प्रिय विशिष्ट प्रज्ञावान् लोग) *यया दया-आर्द्र-दृष्ट्या* (जिस करुणामयी कृपादृष्टि से) *त्रिविष्टिप-पदं* (तीनों लोकों के अधिपति के पद को) *सुलभं लभन्ते* (अनायास ही प्राप्त कर लेते हैं) *पुष्कर-(कमल) विष्टरायाः* (आसनवाली की) *प्रहृष्ट-कमल-उदर-दीप्तिः*

(विकसित कमलगर्भ के समान दिव्य कान्ति) *इष्टां पुष्टिं कृषीष्ट* (मनोवाञ्छित पोषण देने की कृपा करें)

जिनके कृपापात्र होकर, प्रज्ञावान् मनुष्य तीनों लोकों के अधिनायक के पद को सहज ही प्राप्त कर लेते हैं, उन्हीं कमलासना लक्ष्मीजी की प्रफुल्ल पद्म के समान दिव्य कृपादृष्टि मुझे मनोवाञ्छित पुष्टि प्रदान करे।

(१०)

गीर्देवतेति गरुडध्वजसुन्दरीति
शाकम्भरीति शशिशेखरवल्लभेति।
सृष्टिस्थितिप्रलयकेलिषु संस्थितायै
तस्यै नमस्त्रिभुवनैकगुरोस्तरुण्यै॥

सृष्टि-स्थिति-प्रलय-केलिषु (सृष्टि, स्थिति और प्रलय लीलाओं में) *गीः देवता इति* (जो वाग्देवता) *संस्थितायै* (के रूप में स्थित रहती है) *गरुडध्वज सुन्दरी इति* (पालन-लीला में भगवान् विष्णु की सुन्दर पत्नी लक्ष्मी) *शाकम्भरी शशिशेखरवल्लभा इति* (प्रलयकाल में शाकम्भरी अथवा शिवप्रिया उमा (रुद्रशक्ति) के रूप में रहती है) *तस्यै त्रिभुवन-एक-गुरोः तरुण्यै नमः* (त्रिभुवन के एकमात्र गुरु श्रीनारायण की नित्य यौवना पत्नी श्रीलक्ष्मी को प्रणाम)

जो सृष्टि-लीला के समय वाग्देवता के रूप में स्थित रहती हैं, पालन-लीला में विष्णुप्रिया लक्ष्मी के रूप में रहती हैं, प्रलयकाल में शाकम्भरी अथवा पार्वती के रूप में स्थित रहती हैं, उन ब्रह्मशक्ति, वैष्णवीशक्ति और रुद्रशक्ति त्रिभुवन के एकमात्र गुरु नारायण की नित्ययौवना प्रेयसी को मैं प्रणाम करता हूँ।

(११)

श्रुत्यै नमोऽस्तु शुभकर्मफलप्रसूत्यै
रत्यै नमोऽस्तु रमणीयगुणार्णवायै।
शक्त्यै नमोऽस्तु शतपत्रनिकेतनायै
पुष्ट्यै नमोऽस्तु पुरुषोत्तमवल्लभायै॥

शुभकर्म-फल-प्रसूत्यै (शुभ कर्मों का फल देने के लिये) *श्रुत्यै नमः अस्तु* (श्रुति को नमस्कार) *रमणीय-गुण-अर्णवायै रत्यै नमः अस्तु* (गुणनिधि रति स्वरूपा को नमस्कार) *शतपत्रनिकेतनायै शक्त्यै नमः अस्तु* (कमलकुञ्ज निवासिनी शक्तिस्वरूपा को नमस्कार) *पुरुषोत्तमवल्लभायै पुष्ट्यै नमः अस्तु* (पुरुषोत्तम प्रेयसी पुष्टि को नमस्कार)

शुभ कर्मों का फल देने वाली श्रुतिस्वरूपा को नमस्कार! रमणीय गुणों की निधि रतिस्वरूपा को नमस्कार! कमल-कुञ्ज निवासिनी शक्तिस्वरूपा को नमस्कार! पुरुषोत्तम प्रेयसी पुष्टिस्वरूपा को नमस्कार!

(१२)

नमोऽस्तु नालीकनिभाननायै
नमोऽस्तु दुग्धोदधिजन्मभूम्यै।
नमोऽस्तु सोमामृतसोदरायै
नमोऽस्तु नारायणवल्लभायै।

नालीक-(कमल) *निभ*-(समान) *आननायै* (मुखारविन्दवाली के लिये) *दुग्ध-उदधि*-(क्षीरसागर) *जन्मभूम्यै* (में जन्मी) *सोम-अमृत-सोदरायै* (चन्द्रमा और अमृत के साथ उत्पन्न सगी बहिन को नमस्कार) *नारायणवल्लभायै* (विष्णुप्रिया के लिये) *नमः अस्तु* (नमस्कार)

पद्मानना लक्ष्मी के लिये नमस्कार! क्षीरसागर सम्भूता श्रीदेवी को नमस्कार! चन्द्रमा और अमृत के साथ क्षीरसागर से उत्पन्न लक्ष्मी को नमस्कार! नारायणप्रिया को नमस्कार!

(१३)

सम्पत्कराणि सकलेन्द्रियनन्दनानि
साम्राज्यदानविभवानि सरोरुहाक्षि।
त्वद्वन्दनानि दुरिताहरणोद्यतानि
मामेव मातरनिशं कलयन्तु मान्ये।।

मान्ये सरोरुह-अक्षि (हे आदरणीय नलिन विलोचन माँ!) *त्वद् वन्दनानि* (आपको किये गये प्रणाम) *सम्पत्कराणि* (धन-सम्पत्ति देने वाले हैं) *सकल*

इन्द्रिय-नन्दनानि (समस्त इन्द्रियों को आनन्दित करने वाले हैं) *साम्राज्य-विभवानि* (साम्राज्य का वैभव प्रदाने करने वाले हैं) *दुरित-आहरण-उद्यतानि* (पापों का नाश करने के लिये सदा तत्पर हैं) *माम् एव अनिशं कलयन्तु* (मेरे लिये ही सदा उपलब्ध हों)

हे माननीय नलिन विलोचन माँ! आपके चरणकमलों में किये हुए प्रणाम धन-सम्पत्ति देने वाले, समस्त इन्द्रियों के लिये आनन्ददायक, साम्राज्यवैभव प्रदान करने वाले और समस्त पापों का नाश करने के लिये तत्पर हैं। मुझे वे अहर्निश, निरन्तर मिलते रहें।

(१४)

यत्कटाक्षसमुपासनाविधिः
सेवकस्य सकलार्थसंपदः।
सन्तनोति वचनाङ्गमानसै
स्त्वां मुरारिहृदयेश्वरीं भजे॥

यत्-(जिनकी) *कटाक्षसमुपासनाविधिः* (कृपाकृटाक्ष के लिये की गई उपासना विधि) *सेवकस्य सकल-अर्थ-सम्पदः सन्तनोति* (भक्त सेवक के लिये सब प्रकार के मनोरथों और सम्पत्तियों का विस्तार करती है।) *त्वां* (आपको) *मुरारिहृदयेश्वरीं* (विष्णु प्रिया को) *वचन-अङ्ग-मानसैः* (मन, वचन और शरीर से) *भजे* (भजता हूँ)

जिनकी कृपाकटाक्ष के लिये की गई उपासना भक्त के लिये समस्त लाभों और सम्पत्तियों का विस्तार करती है, उन विष्णुवल्लभा का मैं मन, वाणी, और शरीर से भजन करता हूँ।

(१५)

सरसिजनिलये सरोजहस्ते
धवलतमांशुकगन्धमाल्यशोभे।
भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे
त्रिभुवनभूतिकरि प्रसीद मह्यम्॥

सरसिज-निलये (हे कमलनिवासिनि!) *सरोजहस्ते* (हे कमलकरे!) *धवलतम-*

अंशुक-गन्ध-माल्य-शोभे (धवलतम पोशाक, माला, सुगंध से सुशोभित माता!) *मनोज्ञे* (हे परम सुन्दरि!) *भगवति हरिवल्लभे* (विष्णुप्रिये भगवति!) *त्रिभुवनभूतिकरि* (हे त्रिभुवन के वैभव प्रदान करनेवाली!) *मह्यम् प्रसीद* (मुझ पर कृपा कीजिये)

हे भगवति विष्णुप्रिये! आप कमलकुञ्ज में निवास करती हैं, आपके हाथों में कमल रहते हैं, आप अत्यन्त धवल पोशाक, सुगन्ध और माला धारण करती हैं। हे सौन्दर्यशिरोमणि! त्रिभुवन की विभूति प्रदान करने वाली भगवति! मेरे ऊपर कृपा कीजिये।

(१६)

दिग्धस्तिभिः कनककुम्भमुखावसृष्ट–
स्ववर्हिनीविमलचारुजलप्लुताङ्गीम्।
प्रातर्नमामि जगतां जननीमशेष-
लोकाधिनाथगृहिणीममृताब्धिपुत्रीम्॥

दिक्-हस्तिभिः (दिग्गजों द्वारा) *कनक-कुम्भ*-(स्वर्ण कलश) *मुख-अवसृष्ट-स्वर्वाहिनी-विमल-चारुजल*-(के मुख से वरसाये गये स्वर्गङ्गा के निर्मल पवित्र जल से) *प्लुताङ्गीम्* (जिनका अभिषेक किया गया है उनको) *जगतां जननीम्* (समस्त जगत् की माता को) *अशेष-लोक-अधिनाथ*-(समस्त लोकों के एकमात्र स्वामी) *गृहिणी*-(पत्नी) *अमृत-अब्धिपुत्रीम्* (अमृत सिन्धु की पुत्री को) *प्रातः नमामि* (प्रातः काल नमस्कार करता हूँ)

त्रिलोकीनाथ विष्णु की पत्नी, जगज्जननी, अमृतसिंधु पुत्री को मैं प्रातः काल प्रणाम करता हूँ। चारों दिशाओं के गजराज, सुवर्ण कलशों में स्वर्गंगा का पवित्र जल भर कर उनका अभिषेक करते हैं।

(१७)

कमले कमलाक्षवल्लभे त्वं
करुणापूरतरङ्गितैरपाङ्गैः।
अवलोकय मामकिञ्चनानां
प्रथमं पात्रमकृत्रिमं दयायाः॥

कमले कमलाक्षवल्लभे (हे राजीवलोचन प्रेयसि! हे माता लक्ष्मी!) *त्वं* (आप) *करुणापूरतरङ्गितैः अपाङ्गैः* (करुणामय कृपाकटाक्षों से) *अकिञ्चनानां प्रथमं* (अकिञ्चनों में प्रथम) *दयायाः अकृत्रिमं पात्रं अवलोकय* (दया के वास्तविक पात्र की ओर कृपादृष्टि डालिये।)

हे कमलनयन विष्णुप्रिये! हे कमले! अपने करुणापूर्ण कृपाकटाखों से मेरी ओर दृष्टिपात कीजिये। मैं अकिञ्चन-दीन-दुखियों-में प्रथम, और आपकी दया का अकृत्रिम पात्र हूँ।

(१८)

स्तुवन्ति ये स्तुतिभिरमूभिरन्वहं
त्रयीमयीं त्रिभुवनमातरं रमाम्।
गुणाधिका गुरुतरभाग्यभाजिनो
भवन्ति ते भुवि बुधभाविताशयाः॥

ये (जो लोग) *अमूभिः स्तुतिभिः* (इन स्तुतियों से) *अनुअहं* (प्रतिदिन) *त्रयीमयीं* (ऋक्, यजुः, साम वेद स्वरूपा) *त्रिभुवनमातरं* (तीनों लोकों की माता) *रमां स्तुवन्ति* (श्री लक्ष्मी जी स्तुति करते हैं) *भुवि* (पृथ्वी पर) *ते* (वे) *गुणाधिकाः* (बड़े गुणवान्) *गुरुतरभाग्यभागिनः* (परम भाग्यवान्) *बुधभावितआशयाः* (बुद्धिमानों द्वारा उनके आशयों– मन्तव्यों का मनन किया जाता है।)

जो लोग इन स्तुतियों द्वारा प्रतिदिन वेदत्रयीस्वरूपा त्रिभुवनजननी भगवती लक्ष्मी की उपासना करते हैं, वे इस पृथ्वी पर बड़े गुणवान् और बहुत सौभाग्यशाली बनते हैं। बुद्धिमान् लोग उनके मन्तव्यों पर विचार करते हैं।

इस स्तोत्र के सम्बन्ध में एक मनोरम बोधकथा है। वटुक शङ्कर गाँव में प्रतिदिन भिक्षा के लिये जाया करते थे। एक दिन वे एक गरीब ब्राह्मणी के घर पहुँचे। ब्राह्मणी अत्यन्त धार्मिक और अत्यन्त निर्धन थी। घर में भिक्षा में देने के लिये कुछ था नहीं, और वटुक बिना भिक्षा लिये चला जाय यह उसे सहन नहीं हो रहा था। अपनी विवशता में दुखी उसे एक आँवला घर में मिल गया। उसने वही श्रद्धापूर्वक समर्पित कर दिया। वटुक शंकर ने इस स्तोत्र की रचना कर धनलक्ष्मी की स्तुति की। प्रसन्न होकर कनकलक्ष्मी ने स्वर्ण आँवलों की वर्षा कर ब्राह्मणी को समृद्ध बना दिया।

ऐसी मान्यता है कि यह सिद्ध स्तोत्र है। इसके श्रद्धापूर्वक पाठ से ऋण-मुक्ति होती है और सुख सम्पत्ति की प्राप्ति होती है।

कल्याणवृष्टिस्तवः

(१)

कल्याणवृष्टिभिरिवामृतपूरिताभि-
लक्ष्मीस्वयंवरणमङ्गलदीपिकाभिः।
सेवाभिरम्ब तव पादसरोजमूले
नाकारि किं मनसि भक्तिमतां जनानाम्॥

अम्ब (हे माता!) *कल्याणवृष्टिभिः इव* (कल्याण की वर्षा करने वाली) *अमृतपूरिताभिः* (अमृत से परिपूर्ण) *लक्ष्मीस्वयंवरणमङ्गलदीपिकाभिः* (लक्ष्मी को स्वयं वरण करने वाली मङ्गलमयी दीपमालिका की भाँति) *तव पादसरोज-मूले* (आपके चरण कमलों में) *सेवाभिः* (सेवाओं ने) *भक्तिमतां जनानां मनसि* (भक्तिभाव रखने वाले मनुष्यों के मन में) *किं न अकारि* (क्या नहीं कर दिया? अर्थात् उनके सारे मनोरथ पूर्ण कर दिये।)

हे माँ! आपकी सेवायें अमृत से परिपूर्ण कल्याण की वर्षा करने वाली हैं। वे लक्ष्मी को स्वयं वरण करने वाली मङ्गलमयी दीपमाला के समान हैं। आपके चरणकमलों में भक्तिभाव रखने वाले भक्तों के मन में आपकी सेवाओं ने क्या नहीं कर दिया? अर्थात् उनके सारे मनोरथ सम्पन्न हो गये।

(२)

एतावदेव जननि स्पृहणीयमास्ते
त्वद्वन्दनेषु सलिलस्थगिते च नेत्रे।
सांनिध्यमुद्यदरुणायतसोदरस्य
त्वद्विग्रहस्य परया सुधयाप्लुतस्य॥

जननि (हे माँ) *एतावत् एव* (केवल इतनी ही बड़ी) *स्पृहणीयं आस्ते* (अभिलाषा है) *परया सुधया-आप्लुतस्य* (परमोत्कृष्ट अमृत से परिपूर्ण)

उद्यद्-अरुणायतसोदरस्य (उदीयमान अरुणाभ सूर्य की समता करने वाले) *त्वद् विग्रहस्य सानिध्यं* (आपके श्रीविग्रह के सान्निध्य में) *त्वद्वन्दनेषु* (आपकी वन्दनाओं में) *नेत्रे सलिलस्थगिते च* (मेरी आँखें आँसुओं से भर जाँय)

हे माँ! मेरी केवल इतनी ही बड़ी अभिलाषा है कि आपके श्रीविग्रह के निकट पहुँचकर वन्दनाओं में तल्लीन मेरी आँखें आँसुओं से परिपूर्ण हो जायँ। आपका अरुण श्रीविग्रह उदीयमान अरुणाभ सूर्य की समता करने वाला है, और परमोत्कृष्ट अमृत से परिपूर्ण है।

(३)

ईशत्वनामकलुषाः कति वा न सन्ति
ब्रह्मादयः प्रतिभवं प्रलयाभिभूताः
एकः स एव जननि स्थिरसिद्धिरास्ते
यः पादयोस्तव सकृत्प्रणतिं करोति॥

ईशत्वनामकलुषाः (प्रभुत्व, ईशत्व, नाम से कलुषित) *ब्रह्मा-आदयः* (ब्रह्मा आदि) *प्रतिभवं* (प्रत्येक युग में) *प्रलय-अभिभूताः* (प्रलय के समय विनष्ट होने वाले) *कति न सन्ति* (न जाने कितने हो चुके हैं) *जननि* (हे मातः!) *एकः स एव स्थिरसिद्धिः आस्ते* (किंतु केवल एक वही व्यक्ति स्थायीसिद्धियुक्त विद्यमान रहता है) *यः सकृत् तव पादयोः प्रणतिं करोति* (जो एक बार आपके चरणयुगल में प्रणाम कर लेता है।)

हे माँ! ईशत्वनाम से कलुषित ब्रह्मा आदि न जाने कितने देवता प्रत्येक युग में प्रलय के समय विनष्ट हो जाते हैं। किन्तु जो व्यक्ति एक बार आपके चरणयुगल में प्रणाम कर लेता है, वह स्थायी सिद्धियुक्त सदा विद्यमान रहता है।

(४)

लब्ध्वा सकृत्त्रिपुरसुन्दरि तावकीनं
कारुण्यकन्दलितकान्तिभरं कटाक्षम्।
कन्दर्पकोटिसुभगास्त्वयि भक्तिभाजः
सम्मोहयन्ति तरुणीर्भुवनत्रयेषु॥

त्रिपुर-सुन्दरि (हे त्रिपुर सुन्दरि!) *त्वयि भक्तिभाजः* (आप में भक्तिभाव रखने वाले भक्तजन) *तावकीनं* (आपके) *कारुण्यकन्दलितकान्तिभरं कटाक्षं* (करुणा से अङ्कुरित सुशोभन कटाक्ष को) *लब्ध्वा* (प्राप्त कर) *कन्दर्पभाव-सुभगाः* (कामदेव सदृश सौन्दर्यशाली) *भुवनत्रयेषु* (तीनों लोकों में) *तरुणीः सम्मोहयन्ति* (युवतियों का मन मोह लेते हैं।)

हे त्रिपुर-सुन्दरि, राजराजेश्वरि! आप में भक्तिभाव रखने वाले भक्तजन आपके करुणामय सुशोभन कृपा कटाक्ष को अगर एक बार भी प्राप्त कर लेते हैं, तो वे कामदेव के समान सौन्दर्यसम्पन्न सुदर्शन हो जाते हैं, और त्रिभुवन की युवतियों को सम्मोहित कर लेते हैं।

(५)

ह्रींकारमेव तव नाम गृणन्ति वेदा
मातस्त्रिकोणनिलये त्रिपुरे त्रिनेत्रे।
त्वत्संस्मृतौ यमभटाभिभवं विहाय
दीव्यन्ति नन्दनवने सह लोकपालैः॥

त्रिकोणनिलये त्रिपुरे त्रिनेत्रे मातः (त्रिकोणनिवासिनि त्रिपुरसुन्दरि! तीन नेत्रों वाली सौन्दर्यमयी मातः!) *वेदाः ह्रींकारं एव तव नाम गृणन्ति* (वेद "ह्रीं" को ही आपका नाम बतलाते हैं) *यत् संस्मृतौ* (जिसके स्मरण करने पर) *यम-भट-अभिभवं विहाय* (यमराज के दूतों आदि के तिरस्कार से मुक्त होकर) *नन्दनवने लोकपालैः सह दीव्यन्ति* (लोकपालों के साथ नन्दनवन में विहार करते हैं)

त्रिकोणनिवासिनि! त्रिपुरसुन्दरि! त्रिनयने! हे मातः! वेद "ह्रीं"कार को ही आपका नाम बतलाते हैं। इस नाम का जो एक बार भी स्मरण कर लेता है, वह, यमूदतों के तिरस्कार से मुक्त होकर, लोकपालों के साथ नन्दनवन में विहार करता है।

(६)

हन्तुः पुरामधिगलं परिपीयमानः
क्रूरः कथं नु भविता गरलस्य वेगः।

नाश्वासनाय किल मातरिदं तवार्धं
देहस्य शश्वदमृताप्लुतशीतलस्य॥

हन्तुः पुरामधिगलं (त्रिपुरहन्ता शिव के गले में) *परिपीयमानः* (पीया जाता हुआ) *गरलस्य वेगः* (विष का प्रभाव) *क्रूरः कथं नु भविता* (अनिष्टकारी कैसे हो सकता था?) *मातः* (हे माता!) *तव शश्वत्* (सदा) *अमृत-आप्लुत शीतलस्य देहस्य* (अमृत से परिपूर्ण आपकी शीतल देह का) *इदं अर्धं* (यह आधा भाग) *किल न आश्वासनाय* (सुरक्षा के लिये यदि न होता।)

त्रिपुरासुरहन्ता शिवजी के गले में भरा हुआ हलाहल अनिष्टकारी कैसे हो सकता था? निरन्तर अमृत से परिपूर्ण होने के कारण शीतल हुआ आपके शरीर से संलग्न आधा भाग उनकी सुरक्षा के लिये था।

(७)

सर्वज्ञतां सदसि वाक्पटुतां प्रसूते
देवि त्वदङ्ध्रिसरसीरुहयोः प्रणामः।
किं च स्फुरन्मुकुटमुज्ज्वलमातपत्रं
द्वे चामरे च वसुधां महतीं ददाति॥

देवि (हे देवि!) *त्वत्-अङ्ध्रिसरसीरुहयोः* (आपके चरणकमलों के लिये) *प्रणामः* (प्रणाम) *सदसि सर्वज्ञतां वाक्पटुतां प्रसूते* (सभा-सम्मेलनों में सर्वज्ञता और वाक्पटुता उत्पन्न करता है।) *किं च स्फुरद्-मुकुटं उज्ज्वलं आतपत्रं द्वे चामरे च महतीं वसुधां ददाति* (साथ ही झिलमिलाता राजमुकुट, उज्ज्वल छत्र, दो चामर और विस्तृत पृथ्वी का साम्राज्य भी प्रदान करता है।)

हे देवि! आपके चरणों में किया हुआ प्रणाम सर्वज्ञता के साथ सभा-सम्मेलनों में वाक्चातुर्य तो उत्पन्न करता ही है, साथ में देदीप्यमान राजमुकुट, श्वेत छत्र, दो चामर, और विस्तृत पृथ्वी का साम्राज्य भी प्रदान करता है।

(८)

कल्पद्रुमैरभिमतप्रतिपादनेषु
कारुण्यवारिधिभिरम्ब भवत्कटाक्षैः।

आलोकय त्रिपुरसुन्दरि मामनाथं
त्वय्येव भक्तिभरितं त्वयि दत्तदृष्टिम्॥

अम्ब (हे मातः) *अभिमतप्रतिपादनेषु* (मनोरथ प्रदान करने में) *कल्पद्रुमैः* (कल्पवृक्ष जैसों से) *कारुण्यवारिधिभिः भवत् कटाक्षैः* (करुणासागर स्वरूप अपने कृपाकटाक्षों से) *माम् अनाथं* (मुझ अनाथ को) *आलोकय* (एक बार देख लें) *त्रिपुरसुन्दरि* (हे त्रिपुरसुन्दरि!) *त्वयि एव भक्तिभरितं त्वयि दत्तदृष्टिम्* (मैं आपकी भक्ति में तल्लीन और आपकी ओर ही दृष्टि लगाये हुए हूँ।)

हे मातः! आप मनोरथों को पूरा करने में कल्पवृक्ष के समान हैं। करुणानिधि स्वरूप आपके कृपाकटाक्षों से मुझ अनाथ पर दृष्टिपात तो कर लें। हे त्रिपुरसुन्दरि! मैं आपकी भक्ति से परिपूर्ण हूँ, और आपकी ओर ही अपनी दृष्टि लगाये हुए हूँ।

(६)

हन्तेतरेष्वपि मनांसि निधाय चान्ये
भक्तिं वहन्ति किल पामरदैवतेषु।
त्वामेव देवि मनसा वचसा स्मरामि
त्वामेव नौमि शरणं जननि त्वमेव॥

हन्त (कितने खेद की बात है) *इतरेषु च अन्ये पामरदेवतेषु* (अन्यान्यजन आपके अतिरिक्त दूसरे निम्न कोटि के देवताओं में) *मनांसि निधाय* (मन लगा कर) *भक्तिं वहन्ति* (भक्ति करते हैं) *देवि* (हे देवि!) *त्वां एव मनसा वचसा स्मरामि* (मैं तो केवल आपको ही मन से और वाणी से स्मरण करता हूँ) *त्वां एव नौमि* (केवल आपको ही नमस्कार करता हूँ) *त्वम् एव जननि शरणं* (हे जननि! केवल आप ही शरण देने वाली हैं।)

हे देवि! कितने खेद की बात है कि अन्यान्यजन, आपके अतिरिक्त, दूसरे निम्न कोटि के देवी-देवताओं में मन लगा कर उनकी भक्ति करते हैं। मैं तो केवल आपका ही मन से और वाणी से स्मरण करता हूँ। केवल आपको ही नमस्कार करता हूँ। इस संसार में केवल आप ही शरण देने वाली हैं।

(१०)

लक्ष्येषु सत्स्वपि तवाक्षिविलोकनाना-
मालोकय त्रिपुरसुन्दरि मां कथंचित्।
नूनं मया तु सदृशं करुणैकपात्रं
जातो जनिष्यति जनो न च जायते च॥

तव अक्षि-विलोकनानाम् (आपकी आखों के देखने के लिये) *लक्ष्येषु सत्सु अपि* (लक्ष्य . वर्तमान होने पर भी) *त्रिपुरसुन्दरि* (हे त्रिपुरसुन्दरि!) *मां कथंचित् आलोकय* (मेरी ओर भी किसी प्रकार कृपाकटाक्ष कर दें) *नूनं* (निश्चय ही) *मया अपि सदृशं* (मेरे समान) *करुणा-एक-पात्रं* (करुणा का एकमात्र पात्र) *जनः* (मनुष्य) *जातो न जनिष्यति न जायते च* (न कोई अभी तक पैदा हुआ, और न हो रहा है, और न पैदा होगा।)

हे त्रिपुरसुन्दरि माँ! आपके नेत्रों के लिये तो बहुत-सी देखने योग्य वस्तुएँ हैं। उन सब के होते हुए भी, किसी प्रकार, मेरी ओर भी दृष्टिपात कर लें। सचमुच, निश्चय ही, मेरे जैसा आपकी करुणा का पात्र न कोई मनुष्य अभी तक हुआ, न अब है, न आगे होने वाला है।

(११)

ह्रीं ह्रीमिति प्रतिदिनं जपतां तवाख्यां
किं नाम दुर्लभमिह त्रिपुराधिवासे!
मालाकिरीटमदवारणमाननीयां
स्तान् सेवते वसुमती स्वयमेव लक्ष्मीः॥

त्रिपुराधिवासे (हे त्रिपुरनिवासिनि!) *प्रतिदिनं* (रोजाना, प्रतिदिन) *"ह्रीं" "ह्रीं" इति जपतां नराणां* (जप करने वाले मनुष्यों के लिये) *इह* (इस संसार में) *किं नाम दुर्लभं* (क्या दुर्लभ हो सकता है?) *माला-किरीट* (रत्नमाला और मुकुट जैसे राजचिन्ह) *मदवारण-*(मदोन्मत्त गजराज) *माननीयान्* (से माननीय ऐसे भक्तों की) *तान् वसुमती लक्ष्मीः स्वयमेव सेवते* (उनकी वैभवशालिनी लक्ष्मी स्वयं सेवा करती है।)

हे त्रिपुरनिवासिनि माँ! जो मनुष्य प्रतिदिन "ह्री", "ह्री" इस बीजमन्त्र

का जाप करते हैं, उनके लिये संसार में क्या दुर्लभ है? रत्नमाला, मुकुट और मदोन्मत्त गजराजों से युक्त उन माननीय जप करने वालों की तो वैभवशालिनी लक्ष्मी भी सेवा करती है।

(१२)

सम्पत्कराणि सकलेन्द्रियनन्दनानि
साम्राज्यदानकुशलानि सरोरुहाक्षि।
त्वद्वन्दनानि दुरिताहरणोद्यतानि
मामेव मातरनिशं कलयन्तु नान्यम्॥

सरोरुहाक्षि (हे कमलनयनि!) *सम्पत्कराणि* (सम्पत्ति देने वाली) *सकल इन्द्रिय-नन्दनानि* (समस्त इन्द्रियों को आनन्दित करने वाली) *साम्राज्यदान-कुशलानि* (साम्राज्य प्रदान करने में कुशल) *दुरित-आहरण*-(पापों के समूह को हरने के लिये) *उद्यतानि* (दूर करने के लिये उद्यत) *त्वद् वन्दनानि* (आपकी वन्दनाएँ हैं) *मातः* (हे मातः!) *माम् एव* (केवल मुझको) *अनिशं* (निरन्तर) *कलयन्तु* (मिलती रहें) *न अन्यम्* (किसी दूसरे को नहीं)

हे कमलनयनि! आपकी वन्दनाएँ सम्पत्ति प्रदान करने वाली हैं, समस्त इन्द्रियों को आनन्दित करने वाली हैं, पापों के समूह को दूर करने वाली हैं, और साम्राज्य प्रदान करने में कुशल हैं। हे मातः वे निरन्तर मुझे ही प्राप्त हों दूसरों को नहीं।

(१३)

कल्पोपसंहरणकल्पितताण्डवस्य
देवस्य खण्डपरशोः परमेश्वरस्य।
पाशाङ्कुशैक्षवशरासनपुष्पबाणा
सा साक्षिणी विजयते तव मूर्तिरेका॥

कल्प-उपसंहरण-(कल्प के उपसंहार के समय) *कल्पित-ताण्डवस्य* (ताण्डव नृत्य करने वाले) *खण्डपरशोः* (खण्डपरशु के) *देवस्य परमेश्वरस्य* (देवाधिदेव शंकर की) *पाश-अङ्कुश-ऐक्षव-शरासन-पुष्पबाणा तव एका मूर्तिः* (पाश,

अङ्कुश, ईख का धनुष और पुष्पों के बाण धारण करनेवाली आपकी एक मात्र मूर्त्ति) *सा साक्षिणी विजयते* (वह साक्षी रूप से सुशोभित होती है)

कल्प के उपसंहार के समय – कल्पान्त में – जब खण्डपरशुधारी देवाधिदेव भगवान् शंकर ताण्डव नृत्य करते हैं तो उनकी साक्षी के रूप में पाश, अङ्कुश, ईख का धनुष, और पुष्पबाण धारण करनेवाली आपकी एकमात्र मूर्त्ति सुशोभित रहती है।

(१४)

लग्नं सदा भवतु मातरिदं तवार्धं
तेजः परं बहुलकुङ्कुमपङ्कशोणम्।
भास्वत्किरीटममृतांशुकलावतंसं
मध्ये त्रिकोणनिलयं परमामृतार्द्रम्॥

मातः (हे मातः) *परं तेजः* (परमतेजस्वी) *बहुलकुङ्कुम*-(अत्यधिक कुङ्कुम) *पङ्कशोणम्* (कुङ्कुम के लेप से लाल) *भास्वत्-किरीटं* (जगमगाते मुकुट से युक्त) *अमृतांशु*-(चन्द्रमा) *कला-अवतंसं* (कला का कर्णफूल) *परम-अमृत-आर्द्रम्* (परम अमृत से आर्द्र) *मध्ये त्रिकोण-निलयं* (त्रिकोण के मध्य में अवस्थित) *इदं तव अर्धं* (आपका यह आधा अङ्ग) *लग्नं सदा भवतु* (सदा शिवजी से संलग्न रहे)

हे मातः! आपका अर्धांग अत्यंत तेजोमय, अत्यधिक कुङ्कुमराग से अरुणाभ, जगमगाते मुकुट से सुशोभित, चन्द्रकला के कर्णाभूषण से अलङ्कृत, त्रिकोण के मध्य में स्थित और परम अमृत से आर्द्र है। ऐसा आपका यह अर्धांग सदा भगवान् शिव से संलग्न रहे।

(१५)

ह्रींकारमेव तव नाम तदेव रूपं
त्वन्नाम दुर्लभमिह सुन्दरि सरोजमूले।
त्वत्तेजसा परिणतं वियदादिभूतं
सौख्यं तनोति सरसीरुहसम्भवादेः॥

सरोजमूले सुन्दरि (कमलनिवासिनि त्रिपुर सुन्दरि!) *ह्रीकारं एव* ("ह्रीं"

बीजमन्त्र ही) *तव नाम* (आपका नाम है) *तत् एव रूपं* (वही आपका रूप है) *त्वत् नाम* इह दुर्लभं (आपका इस संसार में दुर्लभ नाम) *त्वत् तेजसा* (आपके तेज से) *वियद्* (आकाश) *परिणतं* (उत्पन्न) *आदिभूतं* (आदिकारण) *सरसीरुह*-(कमल) *सम्भव आदेः* (कमल से जन्मे ब्रह्माजी आदि से) *सौख्यं तनोति* (परम आनन्द का विस्तार करता है।)

कमलनिवासिनि त्रिलोकसुन्दरि! ''ह्रीं'' बीजमन्त्र ही आपका नाम है, यहीं आपका रूप है, और यही आपका नाम इस संसार में दुर्लभ है। यही आपके तेज से उत्पन्न हुए आकाश आदि से परिणत जगत् का आदिकारण है, जो ब्रह्मा आदि द्वारा परम सुख का विस्तार करता है।

(१६)

ह्रींकारत्रयसम्पुटेन महता मन्त्रेण संदीपितं
स्तोत्रं यः प्रतिवासरं तव पुरो मातर्जपेन्मन्त्रवित्
तस्य क्षोणिभुजो भवन्ति वशगा लक्ष्मीश्चिरस्थायिनी
वाणी निर्मलसूक्तिभारभरिता जागर्ति दीर्घं वयः॥

मातः (हे मातः) *यः मन्त्रवित्* (जो मन्त्रज्ञ) *ह्रींकारत्रयसम्पुटेन* (तीन ह्रींकारों से सम्पुटित) *महता मन्त्रेण संदीपितं* (महान् मन्त्र से उद्दीप्त) *स्तोत्रं* (इस स्तोत्र को) *तव पुरः* (आपके सामने) *प्रतिवासरं जपेत्* (प्रतिदिन जपता है) *तस्य* (उसके) *क्षोणिभुजः* (पृथ्वीपाल, राजा) *वशगाः भवन्ति* (वश में रहने वाले हो जाते हैं) *लक्ष्मीः चिरस्थायिनी* (लक्ष्मी सदा निवास करने वाली, चिरस्थाई हो जाती हैं) *वाणी निर्मल* सूक्तिभारभरिता (वाणी निर्मल सदुक्तियों से परिपूर्ण हो जाती है) *जागर्ति दीर्घं वयः* (और वह दीर्घायु हो जाता है, लम्बी आयु तक जीवित रहता है।)

हे माँ! जो मन्त्रज्ञ तीन ''ह्रीं''कार से सम्पुटित महान् मन्त्र से उद्दीप्त इस स्तोत्र का प्रतिदिन, आपके समक्ष, जप करता है, राजा लोग उसके वश में हो जाते हैं, उसकी लक्ष्मी चिरस्थायिनी हो जाती हैं, और उसकी वाणी निर्मल सदुक्तियों से परिपूर्ण हो जाती है, और लम्बी आयु तक जीवित रहता है, दीर्घायु हो जाता है।

भवान्यष्टकम्

(१)

न तातो न माता न बन्धुर्न दाता
न पुत्रो न पुत्री न भृत्यो न भर्ता।
न जाया न विद्या न वृत्तिर्ममैव
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि॥

मम (मेरा) *न तातः न माता न बन्धुः न दाता* (न मेरा वास्तविक रूप में कोई पिता है, न माता है, न बन्धु है, न दाता है) *न पुत्रः न पुत्री न भृत्यः न भर्ता* (न पुत्र है, न पुत्री है, न दास है, न स्वामी है) *न जाया न विद्या न वृत्तिः* (न पत्नी है, न विद्या है और न कोई जीविका है) *भवानि त्वम् एका गतिः त्वम् एका एव गतिः* (हे महादेवि! केवल तुम्हीं मेरी एक मात्र आश्रय हो, केवल तुम्ही मेरी एकमात्र शरण्य हो।)

हे महादेवि भवानि! न पिता, न माता, न बन्धु, न दाता, न पुत्र, न पुत्री, न दास, न स्वामी, न पत्नी, न विद्या, न कोई और आश्रय– इनमें से कोई भी मेरा सहारा नहीं है। केवल आप ही मेरी एकमात्र शरण्य हो, आप ही एकमात्र गति हो।

(२)

भवाब्धावपारे महादुःखभीरुः
पपात प्रकामी प्रलोभी प्रमत्तः।
कुसंसारपाशप्रबद्धः सदाहं
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि॥

अपारे भव-अब्धौ (इस अपार भवसागर में) *पपात* (पड़ा हुआ हूँ) *महादुःखभीरुः* (भयानक दुःखों से भयभीत) *प्रकामी प्रलोभी प्रमत्तः* (अत्यंत

कामी, अत्यन्त लोभी, और अत्यन्त मतवाला) *अहं सदा* (मैं सदा) *कुसंसारपाश-प्रबद्धः* (घृणित संसार के बन्धनों में बुरी तरह जकड़ा हुआ हूँ) *भवानि गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका* (हे भवानि! केवल आप ही – केवल आप ही – मेरी शरण्य हैं।)

मैं इस अथाह अपार संसार-सागर में पड़ा हूँ। भयानक दुःखों से भयभीत हूँ। अत्यंत कामी, लोभी, और उन्मत्त हूँ। सदा इस घृणित संसार के बन्धनों में जकड़ा हुआ हूँ। हे भवानि! केवल आप ही मेरी आश्रय हैं, आप ही मेरी आश्रय हैं।

(३)

न जानामि दानं न च ध्यानयोगं
न जानामि तन्त्रं न च स्तोत्रमन्त्रम्।
न जानामि पूजां न च न्यासयोगं
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि॥

न जानामि दानं (न तो मैं दान देना जानता हूँ) *न च ध्यानयोगं* (और न मुझे ध्यानमार्ग का पता है) *न जानामि तन्त्रं* (तन्त्र भी नहीं जानता) *न च स्तोत्रमन्त्रम्* (और मुझे स्तोत्र-मंत्रों का ज्ञान भी नहीं है) *न जानामि पूजां न च न्यासयोगं* (न पूजा-पद्धति जानता हूँ, और न न्यास आदि की क्रियाओं का मुझे ज्ञान है) *गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि!* (हे भवानि! आप ही मेरा आश्रय हैं, आप ही मेरी शरण्य हैं, केवल आप ही)

न मैं दान देना जानता हूँ, और न मुझे ध्यानयोग का कुछ ज्ञान है। मैं तन्त्र भी नहीं जानता, और न मुझे स्तोत्रों और मन्त्रों का कुछ पता है। पूजा पद्धति भी नहीं जानता और न्यास आदि क्रियाओं (अङ्गन्यास) करन्यास आदि) का भी मुझे कुछ ज्ञान नहीं है। हे भवानि! ऐसी दशा में, केवल आप ही मेरी आश्रय हैं, केवल आप ही आश्रय हें, केवल आप ही।

(४)

न जानामि पुण्यं न जानामि तीर्थं
न जानामि मुक्तिं लयं वा कदाचित्।

न जानामि भक्तिं व्रतं वापि मातः
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि॥

न जानामि पुण्यं न जानामि तीर्थं (मैं न पुण्यों को समझता हूँ, और न मुझे तीर्थों का पता है) *न जानामि मुक्तिं* (न मुझे मोक्ष-मार्ग का ज्ञान है) *लयं वा कदाचित्* (न किंचित् मात्र मृत्यु का पता है) *न जानामि भक्तिं व्रतं वा अपि मातः* (हे माँ! भक्ति और व्रत आदि का भी मुझे ज्ञान नहीं है) *गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि* (हे भवानि! केवल आप ही, केवल आप ही, मेरे लिये आश्रव हैं।)

हे माँ! न मैं पुण्य जानता हूँ, न तीर्थ। न मुझे बिल्कुल मोक्ष का ज्ञान है, न विलीन होने का। भक्तिमार्ग का भी पता नहीं है, और न व्रतपालन करना जानता हूँ। इसलिये, ऐसी दशा में, हे भवानि! केवल आपका ही सहारा है, केवल आपका ही।

(५)

कुकर्मी कुसङ्गी कुबुद्धिः कुदासः
कुलाचारहीनः कदाचारलीनः।
कुदृष्टिः कुवाक्यप्रबन्धः सदाहं
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि॥

अहं सदा (मैं सदा) *कुकर्मी कुसङ्गी कुबुद्धि कुदासः* (मैं बुरे कामों में लिप्त, बुरी संगति में रहने वाला, दुर्बुद्धि, दुष्टों का सेवक) *कुलाचारहीनः कदाचार-लीनः* (दुराचरणों का दास, कुल के लिये उचित सदाचार से हीन, दुराचारपरायण) *कुदृष्टिः* (दूषित दृष्टिवाला) *कुवाक्य-प्रबन्धः* (कुत्सित वाक्य प्रयोग करने वाला, दुर्वचन बोलने वाला हूँ) *गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि* (ऐसी अवस्था में केवल आप ही, केवल आप ही मेरी शरण हैं।)

हे भवानि! मैं सदा कुकर्मी, कुसङ्गी, दुर्बुद्धि युक्त दुष्टों का दास, कुलोचित सदाचारहीन, दुराचारी, कुत्सित दृष्टि वाला, और दुर्वचन बोलने वाला हूँ। ऐसी दुर्दशा में केवल आपका ही, आपका ही केवल, सहारा है।

(६)

प्रजेशं रमेशं महेशं सुरेशं
दिनेशं निशीथेश्वरं वा कदाचित्।
न जानामि चान्यत् सदाहं शरण्ये
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि॥

शरण्ये (हे शरण देने वाली!) *प्रजेशं* (प्रजाईश, ब्रह्मा) *रमेशं* (रमाईश, विष्णु) *महेशं* (महादेव) *सुरेशं* (इन्द्र) *दिनेशं* (दिन ईशं, सूर्य) *निशीथेश्वरं* (निशीथ ईश्वरं, चन्द्रमा) *न जानामि वा कदाचित्* (इन सबको बिल्कुल भी नहीं जानता) *च अन्यत्* (न किसी और देवता को) *गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि* (आप ही मेरे लिये शरण देने वाली हैं, केवल आपका ही आसरा है।)

हे शरण देनेवाली माँ! मैं ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र अथवा और किसी देवता को बिल्कुल नहीं जानता। एकमात्र आपही, केवल आप ही, मेरे लिये शरण्य हैं। केवल आपका ही आसरा है।

(७)

विवादे विषादे प्रमादे प्रवासे
जले चानले पर्वते शत्रुमध्ये।
अरण्ये शरण्ये सदा मां प्रपाहि।
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि॥

विवादे (वाद-विवाद, झगड़े में) *विषादे* (दुःख में) *प्रमादे* (उन्मत्तता में) *प्रवासे* (परदेश में) *जले च अनले* (जल में और अग्नि में) *पर्वते शत्रुमध्ये* (दुर्गम पर्वतों और शत्रुओं के बीच में) *अरण्ये* (वन में) *शरण्ये* (हे शरण देने वाली) *सदा मां प्रपाहि* (सदा ही मेरी भली भाँति रक्षा कीजिये) *गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वेमका भवानि* (हे भवानि! केवल आप ही, केवल आप ही, मेरी गति हैं।)

हे शरणागतरक्षक माँ! वाद-विवाद में, शोक में, असावधानी के समय,

परदेश में, जल में, अग्नि में, पर्वत और शत्रुओं से घिरे होने पर, निर्जन वन में, सर्वत्र आप मेरी भलीभाँति रक्षा कीजिये।

(८)

अनाथो दरिद्रो जरारोगयुक्तो
महाक्षीणदीनः सदा जाड्यवक्त्रः।
विपत्तौ प्रविष्टः प्रणष्टः सदाहं
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि।

भवानि (हे भवानि) *अहं सदा* (मैं सदा ही) *अनाथः* (विना स्वामी) *दरिद्रः* (दरिद्री) *जरारोगयुक्तः* (बुढ़ापे के रोग से युक्त) *महाक्षीण*-(अत्यंत दुर्बल) *दीनः* (अतिदीन, दया करने योग्य) *जाड्यवक्त्र* (मुखवंद, गूँगा) *विपत्तौ प्रविष्टः* (विपदाओं से घिरा हुआ) *प्रणष्ट* (और सब प्रकार से नष्ट-भ्रष्ट हूँ) *गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि* (हे माँ, ऐसी दुर्दशा में केवल आपका ही सहारा है, केवल आपका ही सहारा है।)

यह स्तोत्र *शांकरग्रन्थावलिः* में सम्मिलित नहीं किया गया है, किन्तु इतनी सुललित स्तुति आदि शंकराचार्य की ही प्रतीत होती है।

यह नहीं समझा जाय कि आचार्य अपने दुर्गुणों और दुर्दशा का वखान कर रहे हैं। अगर कोई ऐसा भी दीन-दुखी हो तो उसकी यह स्तुति हो सकती है।

— इति —

मीनाक्षीपञ्चरत्नम्

(१)

उद्यद्भानुसहस्रकोटिसदृशां केयूरहारोज्ज्वलां
बिम्बोष्ठीं स्मितदन्तपंक्तिरुचिरां पीताम्बरालङ्कृताम्।
विष्णुब्रह्मसुरेन्द्रसेवितपदां तत्त्वस्वरूपां शिवां
मीनाक्षीं प्रणतोऽस्मि सन्ततमहं कारुण्यवारांनिधिम्॥

कारुण्यवारांनिधिं (करुणा की सागर) *तत्त्वस्वरूपां शिवां मीनाक्षीं अहं सन्ततं प्रणतः अस्मि* (तत्त्वस्वरूपिणी कल्याणकारिणी करुणावरुणालया श्री मीनाक्षीदेवी की मैं निरन्तर वन्दना करता हूँ, उनके चरणों में सदा नतमस्तक हूँ।) *उद्यत्भानुसहस्रकोटिसदृशां* (उन मीनाक्षीदेवी को प्रणाम करता हूँ जो उदय होते हुए सहस्रकोटि सूर्यों के समान आभायुक्त हैं) *केयूरहार-उज्ज्वलां* (उनको जो बाजूवंद और हार आदि आभूषणों से भव्य हैं) *बिम्बोष्ठीं* (उनको जो बिम्बफल के समान लाल-लाल अधरों वाली हैं) *स्मितदन्तपंक्तिरुचिरां* (उनको जो मधुर मुसकानयुक्त दन्तावलि से अत्यंत सुन्दर हैं) *पीताम्बर-अलंकृताम्* (उनको जो पीताम्बर से सुशोभित हैं) *विष्णुब्रह्मसुरेन्द्रसेवितपदां* (उनको जिनके चरणों की सेवा ब्रह्मा, विष्णु इन्द्र आदि देवनायक करते हैं।)

मैं सदा, निरन्तर, श्रीमीनाक्षी देवी का वन्दन करता हूँ, सदा नतमस्तक हूँ। वे उदय होते हुए सहस्रकोटि सूर्यों के समान उज्ज्वल आभावाली हैं। वाजूवंद और हार आदि आभूषणों से अलंकृत हैं। विम्बफल के समान लाल-लाल उनके अधर हैं। मधुर मुसकान युक्त दन्तावलि से वे बड़ी सुन्दर लगती हैं। वे पीताम्बर से अलंकृत हैं। ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि देवगण उनके चरणों की सेवा करते हैं। वे तत्त्वस्वरूपिणी हैं, कल्याणमयी हैं और करुणावरुणालया हैं।

(२)

मुक्ताहारलसत्किरीटरुचिरां पूर्णेन्दुवक्त्रप्रभां
शिञ्जन्नूपुरकिङ्किणीमणिधरां पद्मप्रभाभासुराम्।
सर्वाभीष्टफलप्रदां गिरिसुतां वाणीरमासेवितां
मीनाक्षीं प्रणतोऽस्मि सन्ततमहं कारुण्यवारांनिधिम्॥

कारुण्यवारांनिधिं मीनाक्षीं अहं सततं प्रणतः अस्मि (करुणानिधि मङ्गलमयी श्रीमीनाक्षी देवी को मैं सदा निरन्तर प्रणाम करता हूँ) *मुक्ताहार-लसत् किरीटरुचिरां* (उनको जो मोती की झालर से युक्त मुकुट धारण किये हुए हैं) *पूर्णेन्दुवक्त्रप्रभां* (उनको जिनके मुख की कान्ति पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान हैं) *शिञ्जन्नूपुरकिङ्किणीमणिधरां* (उनको जो झनकारते हुए नूपुर और करधनी में अनेकों मणियाँ धारण किये हुए हैं) *पद्मप्रभाभासुराम्* (उनको जो कमल की-सी कोमल कान्ति से आभासित, उज्ज्वल हैं) *सर्व-अभीष्ट-फलप्रदां* (उनको जो समस्त अभीष्ट फल प्रदान करने वाली हैं) *गिरिसुतां* (उनको जो गिरिराज हिमालय की पुत्री हैं) *वाणी-रमा-सेवितां* (उनको जो सरस्वती और लक्ष्मी आदि से सेवित हैं।)

मैं करुणा की सागर, मङ्गलमयी, तत्त्वस्वरूपा, श्रीमीनाक्षी देवी के चरणों में सदा निरन्तर नतमस्तक हूँ। वे मोती की लड़ियों से सुशोभित मुकुट धारण किये बड़ी सुन्दर दिखाई देती हैं। उनके मुख की कान्ति पूर्णचन्द्र के समान उज्ज्वल हैं। वे झंकृत नूपुर और करधनी में मणियाँ धारण किये हुए हैं। वे कमल-की सी कोमल कान्ति से आभासित हैं। वे समस्त अभीष्ट मनोरथों को पूर्ण करने वाली हैं। गिरिराज हिमालय की पुत्री की सरस्वती लक्ष्मी आदि देवियाँ सेवा में रहती हैं।

(3)

श्रीविद्यां शिववामभागनिलयां ह्रींकारमन्त्रोज्ज्वलां
श्रीचक्राङ्कितबिन्दुमध्यवसतिं श्रीमत्सभानायिकाम्
श्रीमत्षण्मुखविघ्नराजजननीं श्रीमज्जगन्मोहिनीं
मीनाक्षीं प्रणतोऽस्मि सन्ततमहं कारुण्यवारांनिधिम्॥

अहं सन्ततं मीनाक्षीं प्रणतः अस्मि (मैं निरन्तर श्री मीनाक्षी देवी को नमन करता हूँ) *श्रीविद्यां* (उनको जो श्रीविद्या हैं) *शिववामभागनिलयां* (उनको जो शिवजी के वाम भाग में विराजमान हैं) *ह्रींकारमन्त्रोज्ज्वलां* (उनको जो ''ह्रीं'' बीजमन्त्र से सुशोभित हैं) *श्रीचक्रांकितबिन्दुमध्यवसतिं* (उनको जो श्रीचक्र में अङ्कित केन्द्र बिन्दु के मध्यम में निवास करती हैं) *श्रीमत्सभानायिकाम्* (उनको जो श्रीमानों की देवसभा की सभानेत्री हैं) *श्रीमत्-षण्मुखविघ्नराजजननीं* (उनको जो श्रीस्वामीकार्तिकेय और विघ्नेश्वर गणेश की माता हैं) *श्रीमज्जगन्मोहिनीं* (उनको जो जगन्मोहिनी हैं)

मैं मङ्गलमयी करुणानिधि श्रीमीनाक्षी देवी की वन्दना करता हूँ। वे श्रीविद्या हैं, भगवान् शिव के वामभाग में विराजमान हैं, और ''ह्रीं'' बीजमन्त्र से अलंकृत हैं। वे श्रीचक्र में अङ्कित केन्द्र बिन्दु के मध्य में निवास करती हैं। वे देवसभाओं की नायिका हैं। श्रीमती मीनाक्षी कार्तिकेय और विघ्नेश्वर गणेश की जननी हैं, और समस्त विश्व को मोहित करने वाली हैं।

(4)

श्रीमत्सुन्दरनायिकां भयहरां ज्ञानप्रदां निर्मलां
श्यामाभां कमलासनार्चितपदां नारायणस्यानुजाम्।
वीणावेणुमृदङ्गवाद्यरसिकां नानाविधामम्बिकां
मीनाक्षीं प्रणतोऽस्मि सन्ततमहं कारुण्यवारांनिधिम्॥

श्रीमत्सुन्दरनायिकां (श्रीयुत सुन्दर स्वामिनी को) *भयहरां* (भय दूर करने वाली को) *ज्ञानप्रदां* (ज्ञान प्रदायिनी को) *निर्मलां* (उज्ज्वला को) *श्यामाभां* (श्याम कान्ति वाली को) *कमलासन-अर्चित-पदां* (ब्रह्मा द्वारा पूजित चरणों वाली को) *नारायणस्य अनुजाम्* (श्रीमन्नारायण की छोटी बहन को) *वीणावेणुमृदङ्गवाद्यरसिकां* (जो वीणा, वेणु, मृदङ्ग आदि वाद्यों की रसिका हैं उनको) *नानाविधां* (नानाविध लीलाओं में आनन्दित) *अम्बिकां कारुण्यवारांनिधिं* (करुणावारिधि माँ को) *मीनाक्षीं अहं सततं प्रणतः अस्मि* (मैं सदा निरन्तर श्रीमीनाक्षी देवी को प्रणाम करता हूँ।)

करुणामयी माता श्रीमीनाक्षी श्रीयुत सुन्दर स्वामिनी हैं। वे समस्त भयों

का हरण करनेवाली हैं। वे ज्ञानप्रदायिनी हैं। उनकी निर्मल श्याम कान्ति है। ब्रह्मादि देवता उनके चरणकमलों को पूजते हैं। वे श्रीकृष्ण की छोटी बहन हैं। वीणा, मुरली, मृदङ्ग आदि वाद्य उन्हें प्रिय हैं। उन विचित्र लीला विहारिणी माता श्रीमीनाक्षी की मैं सदा सर्वदा वन्दना करता हूँ।

(5)

नानायोगिमुनीन्द्रहृत्सु वसतिं नानार्थसिद्धिप्रदां
नानापुष्पविराजिताङ्घ्रियुगलां नारायणेनार्चिताम्।
नादब्रह्ममयीं परात्परतरां नानार्थतत्त्वात्मिकां
मीनाक्षीं प्रणतोऽस्मि सन्ततमहं कारुण्यवारांनिधिम्॥

नाना-योगिमुनीन्द्र-हृत्सु वसतिं (अनेकों योगी और मुनीश्वरों के हृदय में निवास करने वाली को) *नानार्थसिद्धिप्रदां* (नाना प्रकार की सिद्धियाँ प्रदान करनेवाली को) *नाना-पुष्प-विराजित-अङ्घ्रियुगलां* (नाना प्रकार के पुष्पों से सुसज्जित चरणयुगल वाली को) *नारायणेन अर्चिताम्* (श्री नारायण जिनकी पूजा करते हैं उनको) *नादब्रह्ममयीं* (जो नाद ब्रह्ममयी हैं उनको) *परात्परतरां* (जो पर से परे हैं उनको) *नाना-अर्थ-तत्त्वात्मिकाम्* (जो नाना पदार्थों की तत्त्वस्वरूपा हैं उनको) *अहं सन्ततं कारुण्यवारां निधिं मीनाक्षीं प्रणतोऽस्मि* (मैं सदा करुणा की सागर माता मीनाक्षी को प्रणाम करता हूँ।)

मैं करुणामयी माँ मीनाक्षी को सदा निरन्तर प्रणाम करता हूँ। वे अनेकों योगिजन और मुनीश्वरों के हृदय में निवास करने वाली हैं। वे नाना प्रकार के पदार्थों की प्राप्ति कराने वाली हैं। उनके चरणयुगल नाना प्रकार के पुष्पों से सुशोभित हैं। श्रीनारायण उनकी पूजा करते हैं। वे नादब्रह्मस्वरूपा परे से भी परे, और नाना पदार्थों की तत्त्वस्वरूपा हैं।

– इति –

आनन्दलहरी

(१)

भवानि स्तोतुं त्वां प्रभवति चतुर्भिर्न वदनैः
प्रजानामीशानस्त्रिपुरमथनः पञ्चभिरपि।
न षड्भिः सेनानीर्दशशतमुखैरप्यहिपति-
स्तदान्येषां केषां कथय कथमस्मिन्नवसरः॥

भवानि (हे माँ भवानि!) *प्रजानाम् ईशानः* (प्रजापति ब्रह्मा) *चतुर्भिः वदनैः* (चार मुखों से) *त्वां स्तोतुं न प्रभवति* (आपकी स्तुति करने में समर्थ नहीं है) *त्रिपुरमथनः पञ्चभिः अपि* (त्रिपुरासुरहन्ता पाँच मुखों से भी नहीं) *सेनानी न षड्भिः* (स्वामिकार्तिक अपने छहः मुखों से भी नहीं) *अहिपतिः दशशतमुखैः अपि* (सर्पराज शेष हजार मुखों से भी आपका गुणगान नहीं कर सकते) *तत् कथय* (तब बताइये) *अन्येषां केषां अस्मिन् कथं अवसरः* (दूसरे किसी को कैसे आपकी स्तुति करने का अवसर मिल सकता है?)

हे माँ भवानि! आपकी स्तुति करने के लिये तो चार मुखों वाले ब्रह्मा भी समर्थ नहीं हैं। त्रिपुरारि शिव पाँच मुखों से भी आपकी स्तुति नहीं कर सकते। कार्तिकेय छः मुखों से भी समर्थ नहीं हैं। नागराज अनन्त हजार मुखों से भी आपकी स्तुति करने में समर्थ नहीं हैं। तो फिर, आप ही बतलाइये, ऐसी दशा में दूसरा कौन, किस प्रकार आपकी स्तुति कर सकता है?

(२)

घृतक्षीरद्राक्षामधुमधुरिमा कैरपि पदै-
र्विशिष्यानाख्येयो भवति रसनामात्रविषयः।

तथा ते सौन्दर्यं परमशिवदृङ्मात्रविषयः
कथङ्कारं ब्रूमः सकलनिगमागोचर गुणे॥

घृतक्षीरद्राक्षामधुमधुरिमा (घी, दूध, द्राक्षा और शहद का मीठापन) *कैः अपि पदैः विशिष्य-अनाख्येयः भवति* (किसी भी शब्द समूह से विशिष्ट – प्रभेदयुक्त – नहीं बताया जा सकता) *रसनामात्रविषयः* (वह तो केवल रसना (जीभ) का विषय है।) *तथा ते सौन्दर्यं* (उसी प्रकार आपका सौन्दर्य) *परमशिवदृङ्मात्रविषयः* (परमशिव के नेत्रों का ही विषय है) *कथङ्कारं* (किसी रीति से, कैसे) *ब्रूमः* (कहें) *सकल-निगम-अगोचर-गुणे* (जो समस्त वेदों के लिये भी अगोचर, अज्ञेय है)

घी, दूध, द्राक्षा, शहद सभी मीठे होते हैं, किन्तु प्रत्येक की विशिष्ट मधुरिमा को किसी भी शब्दसमूह से व्याख्यायित नहीं किया जा सकता। उनके प्रभेद को तो केवल रसना (जीभ) ही अनुभव कर सकती है। इसी प्रकार, हे माँ, आपका सौन्दर्य तो केवल परमशिव के नेत्रों का ही विषय है। जब समस्त वेद भी आपके गुणों का वर्णन नहीं कर सकते – जब वेदों के लिये भी वे अगोचर (अज्ञेय) हैं, तब हम उसका वर्णन कैसे करें?

(३)

मुखे ते ताम्बूलं नयनयुगले कज्जलकला
ललाटे काश्मीरं विलसति गले मौक्तिकलता।
स्फुरत्काञ्ची शाटी पृथुकटितटे हाटकमयी
भजामि त्वां गौरीं नगपतिकिशोरीमविरतम्॥

मुखे ते ताम्बूलं (माँ, तुम्हारे मुख में ताम्बूल है) *नयनयुगले कज्जलकला* (दोनों नेत्रों में काजल की रेखा है) *ललाटे काश्मीरं विलसति* (ललाट पर केसर की बिन्दी सुशोभित है) *गले मौक्तिक-लता* (गले में मोतियों का हार है) *पृथुकटितटे* (उन्नत नितम्बों पर) *हाटकमयी काञ्ची* (रत्नजटित सोने की करधनी) *स्फुरत् शाटी* (चमकदार सुनहरी साड़ी है) *त्वां नगपतिकिशोरीं गौरीं अविरतं भजामि* (ऐसी वेष-भूषा से सुसज्जित गिरिराजकिशोरी गौरी को सदा ही भजता हूँ)

भवानी के रूप-सौन्दर्य और शृंगार का वर्णन करते हुए आचार्य स्तुति कर रहे हैं, ''माँ, आपके मुख में ताम्बूल है, दोनों नेत्रों में काजल की रेखा है, ललाट पर कश्मीर में पैदा होने वाली केसर की बिन्दी है, और गले में मोतियों की माला शोभायमान है। उन्नत नितम्बों पर रत्नमयी सोने की करधनी और चमकीली सुनहरी साड़ी है। गिरिराजकिशोरी गौरी! मैं अनवरत रूप से आपका भजन करता हूँ।

(४)

विराजन्मन्दारद्रुमकुसुमहारस्तनतटी
नदद्वीणानादश्रवणविलसत्कुण्डलगुणा।
नताङ्गी मातङ्गी रुचिरगतिभङ्गी भगवती
सती शम्भोरम्भोरुहचटुलचक्षुर्विजयते॥

विराजन् (शोभा पा रहा है) *मन्दारद्रुमकुसुमहारः* (पारिजात वृक्ष के पुष्पों का हार) *स्तनतटी* (जिनके उरोजपटल पर) *नदद्वीणानाद*-(बजती हुई वीणा का नाद) *श्रवण*-(कान) *विलसत्-कुण्डल-गुणा* (जिनके कानों के कुण्डल शोभा पा रहे हैं) *नताङ्गी* (यौवन के बोझ से जिनके अङ्ग झुके हुए हैं) *मातङ्गी* (हथिनी) *रुचिरगतिभङ्गी* (मन्द मनोहारिणी चाल) *शम्भोः सती* (भगवान् शिव की भार्या) *अम्भोरुहचटुलचक्षुः* (कमल के समान सुन्दर चपल नेत्रों वाली) *भगवती विजयते* (भगवती विजय को प्राप्त करती है)

जहाँ पारिजातवृक्ष के पुष्पों की माला सुशोभित है, उस उन्नत उरोज पटल के समीप बजती हुई वीणा का मधुर नाद सुनते हुए जिनके कानों में कुण्डल शोभा पा रहे हैं, यौवन के भार से जिनका शरीर झुका हुआ है, हथिनी की मन्द चाल की भाँति उनकी गतिभङ्गिमा है, जिनके नेत्र कमल के समान कमनीय और चञ्चल हैं, भगवान् शिव की भार्या वह भगवती उमा विजय को प्राप्त करती है।

(५)

नवीनार्कभ्राजन्मणिकनकभूषापरिकरै-
र्वृताङ्गी सारङ्गीरुचिरनयनाङ्गीकृतशिवा।

तडित्पीता पीताम्बरललितमञ्जीरसुभगा
ममापर्णा पूर्णा निरवधिसुखैरस्तु सुमुखी॥

नवीन-अर्क-(नवोदित सूर्य) *भ्राजन् मणिकनकभूषापरिकरैः वृताङ्गी* (जिनके अङ्ग नवोदित सूर्य के समान चमकते मणि और सोने के आभूषणों से आवृत-अलङ्कृत हैं) *सारङ्गी* रुचिरनयना (हरिणी के नेत्रों के समान जिनके विशाल नेत्र हैं) *अङ्गीकृत-शिवा* (जिन्होंने भगवान् शिव का पतिरूप में वरण किया है) *तडित्पीता* (विजली के समान जिनकी पीली प्रभा है) *पीतम्बर*-(पीले वस्त्रों से) *ललित*-(सुन्दर) *मञ्जीर* (नूपुर) *सुभगा* (सुन्दर) *निरवधिसुखैः पूर्णा* (अनन्त आनन्द से पूर्ण) *अपर्णा* (भगवती पार्वती उमा) *मम सुमुखी अस्तु* (मुझ पर प्रसन्न हों)

भगवती शिवा के अङ्ग नवोदित बालसूर्य के समान अरुण आभा वाले मणि और सोने के आभूषणों से अलङ्कृत हैं। उनके नेत्र मृगी के नयनों के समान विशाल हैं। भगवान् शिव को उन्होंने पतिरूप में वरण किया है। उनके अंगों की कांति बिजली की प्रभा जैसी है। पीत वस्त्रों की आभा से उनके नूपुर और भी चमकीले दिखाई दे रहे हैं। ऐसी भगवती भवानी, जो अनन्त आनन्द से परिपूर्ण हैं, मुझ पर प्रसन्न हों।

(६)

हिमाद्रेः सम्भूता सुललितकरैः पल्लवयुता
सुपुष्पा मुक्ताभिर्भ्रमरकलिता चालकभरैः।
कृतस्थाणुस्थाना कुचफलनता सूक्तिसरसा
रुजां हन्त्री गन्त्री विलसति चिदानन्दलतिका॥

हिमाद्रेः सम्भूता (हिमालय में जन्मी) *सुललित-करैः पल्लवयुता* (सुकोमल हाथ ही मानों उमारूपी चलती-फिरती लता के पल्लव हैं) *मुक्ताभिः सुपुष्पा* (आभूषणों में जड़े हुए मोती ही मानों सुन्दर पुष्प हैं) *अलकभरैः च भ्रमरकलिता* (घनी काली-काली अलकें ही मानों पुष्पों पर गुञ्जार करते हुए भौरें हैं) *कृतस्थाणुस्थाना* (जिन्होंने स्थाणुस्था-शिव को ही अपना निवासस्थान बनाया है) *कुचफल-नता* (जो कुच रूपी फलों से झुकी हुई हैं) *सु-उक्ति-सरसा* (सुमधुर वाणी से सरस हैं) *रुजां* (रोगों को) *हन्त्री*

(नष्ट करने वाली हैं) *गन्त्री* (चलती-फिरती) *चिदानन्दललिता विलसति* (चिदानन्दमयी लता (उमा) सुशोभित हो रही है।)

इस पद में हिमालय की पुत्री पार्वती और हिमालय में उपजी आनन्द लता का साङ्ग रूपक है। स्तोत्र का नाम "आनन्दलहरी" है। पिछले पद में भगवती को 'निरवधिसुखैः पूर्णा'– अनन्त आनन्द से परिपूर्ण बताया। यहाँ उन्हें 'चिदानन्दललिता' कहा। आगे पद सं १० में उन्हें 'कल्पलतिका', मनोरथों को पूर्ण करने वाली लता कहा जायेगा। अगले पद ७ में भी पार्वती और लता की तुलना मिलेगी।

शिव की अर्धाङ्गिनी भगवती पार्वती चलती-फिरती चिदानन्दलतिका की भाँति सुशोभित हो रही हैं। वे हिमालय में जन्मीं हैं, उनके सुकुमार हाथ मानो चिदानन्दलता के पल्लव हों। मोतियों की झालर मानों सुन्दर पुष्प हों। काली घनी अलकें पुष्पों पर मँडराते भ्रमर हों। जैसे लता स्थाणु (ठूँठ वृक्ष पर) आश्रित हो जाती है, उसी प्रकार पार्वती ने स्थाणु (शिव) को अपना आश्रय बना लिया है। उनके उन्नत उरोज मानों आनन्दलतिका के फल हों। सुललित वाणी से वे सरस हैं। ऐसी रोगों को हरनेवाली, चलती-फिरती (गन्त्री) चिदानन्दलतिका सुशोभित हो रही हैं।

(७)

सपर्णामाकीर्णां कतिपयगुणैः सादरमिह
श्रयन्त्यन्ये वल्लीं मम तु मतिरेवं विलसति।
अपर्णैका सेव्या जगति सकलैर्यत्परिवृतः
पुराणोऽपि स्थाणुः फलति किल कैवल्यपदवीम्॥

अन्ये (कुछ दूसरे लोग) *कतिपयगुणैः* (कुछ गुणों से) *आकीर्णां* (परिपूर्ण) सादरमिह सपर्णां वल्लीं श्रयन्ति *(पत्तों वाली लता का आदरपूर्वक सेवन करते हैं) मम तु एवं मतिः विलसति* (किन्तु मेरी बुद्धि तो यों स्फुरित होती हैं, मेरा तो यह विचार है) *जगति* (संसार में) *सकलैः एका अपर्णा* (सब लोगों द्वारा केवल एक अपर्णा) *सेव्या* (सेवा करने योग्य है) *यत्-परिवृतः* (जिससे परिवेष्टित, घिरा हुआ) *पुराणः स्थाणुः अपि* (पुराना सूखा हुआ पेड़ का ठूँठ भी) *किल* (सचमुच) *कैवल्यपदवीं फलति* (मोक्षरूप फल देता

है लता से लिपटा हुआ ठूँठ मोक्षरूप फल देता है का दूसरा अर्थ है शक्तिसमन्वित शिव मोक्ष देते हैं।)

इस कवित्वमय पद में श्लेष– दो अर्थों वाले कई शब्दों का प्रयोग हुआ है। पुराने सूखे हुए पेड़ के ठूँठ (स्थाणुः) से लिपटी हुई अपर्णा (विना पत्तों वाली लता) को ''कतिपयगुणैः आकीर्णा सपर्णा'' से अधिक उपयोगी समझा है। अपर्णा (विना पत्तों वाली, पार्वती) स्थाणु (सूखे पेड़ का ठूँठ, शिव) के सन्दर्भ में कालिदास का *कुमारसम्भवम्* (५.२८) उद्धृत है।

स्वयं विशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता परा हि काष्ठा तपसस्तया पुनः।
तदप्यपाकीर्णमतः प्रियंवदा वदन्त्यपर्णेति च तां पुराविदः।।

कुछ दूसरे अल्पज्ञ लोग कुछ ही गुणों से युक्त सपर्णा (पत्तेवाली) लता का आदरपूर्वक सेवन करते हैं। किन्तु, आचार्य कह रहे हैं, हमारे विचार में तो इस जगत् में सभी को एक मात्र अपर्णा (उमा, पार्वती) का ही आश्रय लेना चाहिये। इस अपर्णा से आवृत होकर पुराना ठूँठ (शिव) मोक्ष प्रदान रूप फल देते हैं। बिना पत्तों वाली लता से आवेष्टित सूखे पेड़ का ठूँठ (अपर्णा, पार्वती, से आवृत शिव)

तात्पर्य यह है कि 'सदाशिव' (स्थाणु, निर्गुण, क्रियाशून्य शिव) शक्ति समन्वित होकर ही कुछ कर सकते हैं।

''शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं।
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।।''

(*सौन्दर्यलहरी*, १)

(शक्तियुक्त शिव ही सृष्टि कर सकते हैं। शक्ति के बिना तो वे हिल भी नहीं सकते।)

(८)

विधात्री धर्माणां त्वमसि सकलाम्नायजननी
त्वमर्थानां मूलं धनदनमनीयाङ्घ्रिकमले।
त्वमादिः कामानां जननि कृतकन्दर्पविजये
सतां मुक्तेर्बीजं त्वमसि परमब्रह्ममहिषी।।

जननि (हे माँ!) *धर्माणां त्वं विधात्री असि* (तुम समस्त धर्मों की सृष्टि करनेवाली हो) *सकल-आम्नाय-जननी त्वं असि* (समस्त वेदों का आदिस्रोत भी तुम्हीं हो) *त्वं असि अर्थानां मूलं* (समस्त वैभवों की मूल भी तुम हो) *धनद*-(कुबेर) *नमनीय-अङ्घ्रिकमले* (नमन करनेयोग्य चरण कमलों वाली हे माता) *कामानां त्वं आदिः* (समस्त कामनाओं की आदिकारण हो) *कृत-कन्दर्प-विजये जननि* (कामदेव पर विजय प्राप्त करने वाली माँ) *सतां मुक्तेः बीजं* (सत्पुरुषों की मुक्ति भी आपसे ही प्राप्त होती है) *त्वं असि परब्रह्ममहिषी* (तुम परब्रह्मस्वरूप परमशिव की पटरानी हो)

हे माँ! सारे धर्मों की आप सृष्टि करती हैं, विधात्री हो। समस्त वेदों की आप आदिस्रोत हैं। वैभवों के मूल में भी आप हैं। आपके चरणकमलों में कुबेर नमन करते हैं। सारी कामनाएँ आपसे ही जन्मती हैं। हे माँ! आपने कामदेव पर विजय प्राप्त कर ली है। सत्पुरुषों की मुक्ति की आप बीज हो। आप परब्रह्मस्वरूप परमशिव की पटरानी हैं।

(६)

प्रभूता भक्तिस्ते यदपि न ममालोलमनस-
स्त्वया तु श्रीमत्या सदयमवलोक्योऽहमधुना।
पयोदः पानीयं दिशति मधुरं चातकमुखे
भृशं शङ्के कैर्वा विधिभिरनुनीता मम मतिः।

यत्-अपि (यद्यपि) *न मम-अलोल-मनसः ते प्रभूता भक्तिः* (यद्यपि सुदृढ़ मनसे आपमें मेरी प्रचुर भक्ति नहीं है) *त्वया तु* (किन्तु आपके द्वारा) *श्रीमत्या* (श्रीमती द्वारा) *सदयम्* (दयालुतापूर्वक) *अहम् अधुना अवलोक्यः* (इस समय मुझ पर दयादृष्टि रखनी चाहिये।) *पयोदः* (बादल) *चातक-मुखे* (चातक के मुख में) *पानीयं दिशति* (मधुर जल गिराता ही है) *भृशं शङ्के* (मुझे बड़ी शङ्का है) *कैः वा* (किन-किन) *विधिभिः* (उपायों से) *मम मतिः अनुनीता* (आपकी ओर उन्मुख हो)

(हे मातः!) यद्यपि दृढ़ चित्त से मैं आपकी निष्ठापूर्वक भक्ति में अनुरक्त नहीं हूँ, तब भी, महाऐश्वर्यशालिनी आप द्वारा मैं दयादृष्टिपूर्ण देखनेयोग्य हूँ। प्रसिद्ध है कि चातक मेघ से प्रेम करे या न करे किन्तु मेघ

तो उसके मुख में मधुर जल गिराता ही है। मुझे बड़ी शङ्का है कि किन विधियों से मैं अपनी बुद्धि को आपकी ओर उन्मुख कर पाऊँगा।

(१०)

कृपापाङ्गालोकं वितर तरसा साधुचरिते
न ते युक्तोपेक्षा मयि शरणदीक्षामुपगते।
न चेदिष्टं दद्यादनुपदमहो कल्पलतिका
विशेषः सामान्यैः कथमितरवल्लीपरिकरैः॥

साधुचरिते (हे सदाचारिणि!) *तरसा* (वेग से, शीघ्र ही) *कृपा-अपाङ्ग-आलोकं* (कृपा कटाक्ष दृष्टि) *वितर* (वितरण कीजिये, आपके कृपाकटाक्ष से मुझे अनुगृहीत कीजिये) *मयि शरणदीक्षां उपगते* (आपकी शरण की दीक्षा ले चुके मुझ पर) *न ते उपेक्षा युक्तः* (आपकी उपेक्षा उचित नहीं है) *अहो कल्पलतिका* (कल्पना कीजिये यदि कल्पलता) *अनुपदं* (पद पद पर) *इष्टं न चेत् दद्यात्* (अभीष्ट कामनाओं की पूर्त्ति न करे) *कथं इतर-सामान्यैः वल्ली-परिकरैः* (तो दूसरी साधारण लताओं की तुलना में उसकी क्या विशेषता है?)

हे सदाचारिणि माँ! मेरी ओर अविलम्ब कृपाकटाक्ष कीजिये। मैंने आपकी शरण की दीक्षा ले रखी है, इसलिये आपको मेरी ओर अनदेखी करना उपयुक्त नहीं है। यदि कल्पलता पग-पग पर अभीष्ट कामनाओं की पूर्ति न करेगी, तो उसमें और सामान्य अन्य लताओं में क्या अन्तर रहेगा, कल्पलता में औरों से अधिक क्या विशिष्टता मानी जायेगी?

(११)

महान्तं विश्वासं तव चरणपङ्केरुहयुगे
निधायान्यन्नैवाश्रितमिह मया दैवतमुमे।
तथापि त्वच्चेतो यदि मयि न जायेत सदयं
निरालम्बो लम्बोदरजननि के यामि शरणम्॥

लम्बोदरजननि उमे (गणेशजननि उमे!) *तव चरण-पङ्केरुहयुगे* (आपके युगल चरणारविन्दों में) *महन्तं विश्वासं* (बड़ा विश्वास रख कर) *मया निधाय अन्यं*

न एव दैवतम् आश्रयं (मेरे द्वारा किसी दूसरे देवता में आश्रय न रख कर) *तथापि* (तब भी) *त्वत् चेतः* (आपका चित्त) *मयि सदयं न जायेत* (मुझ पर दयालु न हो तो) *निरालम्बः कं यामि शरणम्* (मैं बेसहारा किसके शरण जाऊँगा ?)

हे लम्बोदर गणेश की जननि उमे! आपके युगल चरणकमलों में बड़ा विश्वास रख कर, मैंने किसी अन्य देवता का आश्रय नहीं लिया है। तब भी, यदि आपका चित्त मेरी ओर दयामय नहीं हुआ तो बेसहारा मैं किस दूसरे देवता की शरण में जाऊँगा ?

(१२)

अयः स्पर्शे लग्नं सपदि लभते हेमपदवीं
यथा रथ्यापाथः शुचि भवति गङ्गौघमिलितम्।
तथा तत्तत्पापैरतिमलिनमन्तर्मम यदि
त्वयि प्रेम्णासक्तं कथमिव न जायेत विमलम्॥

यथा (जैसे) *अयः* (लोहाः) *स्पर्शे लग्नं* (पारस के सम्पर्क में आने से) *सपदि* (तत्काल) *लभते हेम पदवीं* (सोने की पदवी प्राप्त कर लेता है) *रथ्या-पाथः* (गलियों के नाले का पानी) *गङ्गौघमिलितम्* (गङ्गाजल में मिलकर) *शुचि भवति* (पवित्र हो जाता है) *तथा* (उसी भाँति) *तत् तत् पापैः* (अनेक प्रकार के पापों से) *अतिमलिनं* (अत्यन्त मलिन हुआ) *मम अन्तर्* (मेरा अन्तकरण) *यदि* (अगर) *त्वयि प्रेम्णा आसक्तं* (आपकी भक्ति में अनुरक्त) *कथं इव न जायेत विमलम्* (विमल कैसे नहीं होगा ?)

जिस प्रकार लोहा पारस के सम्पर्क में आने पर सोना हो जाता है, और सड़क के नाले में बहने वाला पानी, गङ्गाजल में मिलकर, पवित्र हो जाता है, वैसे ही मेरा अत्यंत मलिन अन्तकरण यदि आपकी भक्ति में आसक्त हो तो वह मलरहित, निर्मल कैसे नहीं होगा ?

(१३)

त्वदन्यस्मादिच्छाविषयफललाभे न नियम-
स्त्वमर्थानामिच्छाधिकमपि समर्था वितरणे।

इति प्राहुः प्राञ्चः कमलभवनाद्यास्त्वयि मन-
स्त्वदासक्तं नक्तं दिवमुचितमीशानि कुरु तत्॥

त्वत्-अन्यस्मात् (आपके अतिरिक्त दूसरे द्वारा) *इच्छा-विषयफललाभे* (मनोवाञ्छित फल प्राप्त हो ही जाय) *न नियमः* (ऐसा तो कोई नियम नहीं है) *त्वम्* (लेकिन आप) *अर्थानां इच्छा-अधिकं अपि* (मनोरथों की इच्छा से भी अधिक) *वितरणे समर्था* (वितरण करने में समर्थ हैं) *कमलभवनआद्याः प्राञ्चः* (कमलासनब्रह्मा आदि प्राचीन लोग) *इति प्राहुः* (ऐसा कहते हैं) *ईशानि* (हे भवानि!) *नक्तं दिवं* (दिन-रात) *मनः त्वयि आसक्तं* (मेरा मन आप में आसक्त है) *त्वत्-उचितं तत् कुरु* (जो कुछ भी आप उचित समझें करें)

हे भवानि! आपके अतिरिक्त किसी और से मनोवाञ्छित फल मिल जाये ऐसा तो कोई नियम नहीं है। लेकिन आप तो इच्छाओं-कामनाओं– से भी अधिक फल देने के लिये समर्थ हैं। ऐसा ब्रह्मा आदि प्राचीन लोग कहते हैं। मेरा मन तो आप में ही दिन-रात आसक्त है, इसलिये आपके लिये जो उचित हो वही कीजिये।

(१४)

स्फुरन्नानारत्नस्फटिकमयभित्तिप्रतिफल-
त्त्वदाकारं चञ्चच्छशधरकलासौधशिखरम्।
मुकुन्दब्रह्मेन्द्रप्रभृतिपरिवारं विजयते
तवागारं रम्यं त्रिभुवनमहाराजगृहिणि॥

त्रिभुवनमहाराजगृहिणि (हे त्रिभुवन-अधिपति भगवान् शिव की गृहिणि!) *तव रम्यं आगारं विजयते* (आपका रमणीय भवन सुशोभित हो रहा है) *स्फुरन् नाना-रत्न-स्फटिक-मय-भित्ति* (जहाँ नाना प्रकार की रत्न और स्फटिक की चमकीली भित्तियों पर) *त्वत् आकारं प्रतिफलत्* (आपकी मूर्त्ति प्रतिबिम्बित हो रही है) *चञ्चत्-शशधर-कला-सौध-शिखरम्* (उसकी अट्टालिकाओं के शिखरों पर प्रतिबिम्बित होकर चन्द्रमा की कलाएँ झिलमिला रही हैं) *मुकुन्दब्रह्मेन्द्रप्रभृति* परिवारं (मुकुन्द, ब्रह्मा आदि का परिवार)।

हे त्रिलोकीनाथ शिव की गृहिणि! आपका रमणीय भवन बड़ा सुशोभित हो रहा है। इसमें रत्न और स्फटिक की चमकीली भित्तियों पर आपकी मूर्ति प्रतिबिम्बित हो रही है। ऊँची अट्टालिकाओं के शिखरों पर चन्द्रमा की किरणे केलि कर रही हैं। भगवान् विष्णु, ब्रह्मा और इन्द्र आदि इसके चारों ओर खड़े हैं।

(१५)

निवासः कैलासे विधिशतमखाद्याः स्तुतिकराः
कुटुम्बं त्रैलोक्यं कृतकरपुटः सिद्धिनिकरः।
महेशः प्राणेशस्तदवनिधराधीशतनये
न ते सौभाग्यस्य क्वचिदपि मनागस्ति तुलना॥

अवनिधराधीशतनये (हे गिरिराजनन्दिनि!) *त्वत्* (आपका) *कैलासे निवासः* (कैलासपर्वत पर निवासस्थान है) *विधि-शतमख-आद्याः* (ब्रह्मा और सौ यज्ञ करने वाले इन्द्र आदि) *स्तुतिकराः* (स्तुति करने वाले हैं) *त्रैलोक्यं कुटुम्बं* (समस्त त्रिभुवन आपका कुटुम्ब है) *सिद्धिनिकरः कृतकरपुटः* (समस्त सिद्धियों का समूह अञ्जलि बाँधे आपके सामने प्रस्तुत है) *महेशः प्राणेशः* (भगवान् महादेव आपके प्राणनाथ हैं) *ते सौभाग्यस्य* (आपके सौभाग्य की) *न क्वचित् अपि मनाक्* (कुछ थोड़ी-सी भी) *न तुलना* (माप नहीं हो सकती)

हे गिरिराजकुमारि! कैलास आपका निवास-स्थान है। ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवता आपकी स्तुति करने वाले हैं। तीनों लोक आपका कुटुम्ब है। सिद्धियों का समूह हाथ जोड़ कर आपकी सेवा में उपस्थित है। भगवान् महादेव आपके प्राणनाथ हैं। आपके सौभाग्य की कहीं थोड़ी-सी भी तुलना नहीं हो सकती।

(१६)

वृषो वृद्धो यानं विषमशनमाशा निवसनं
श्मशानं क्रीडाभूर्भुजगनिवहो भूषणविधिः।
समग्रा सामग्री जगति विदितैवं स्मररिपो-
र्यदेतस्यैश्वर्यं तव जननि सौभाग्यमहिमा॥

जननि (हे मातः!) *स्मररिपोः* (कामदेव के शत्रु, भगवान् शिव का) *वृद्धः वृषः यानं* (बूढ़ा बैल सवारी है) *विषं अशनं* (विष ही भोजन है) *आशाः निवसनं* (दिशाएँ ही वस्त्र हैं) *श्मशानं क्रीड़ाभूः* (श्मशान क्रीड़ास्थली है) *भुजगनिवहः भूषणविधिः* (साँपों के समूह आभूषणों का काम करते हैं) *समस्ता सामग्री जगति विदिता एवं* (यह सारी सामग्री संसार में प्रसिद्ध ही है) *यत् एतस्य ऐश्वर्यं* (किन्तु इस तामझाम का जो ऐश्वर्य है) *जननि तव सौभाग्यमहिमा* (यह सब आपके सौभाग्य की ही महिमा है)

कामदेव के शत्रु भगवान् शिव का बड़ा अद्भुत स्वरूप है। बूढ़ा बैल वाहन है, विष भोजन है, दिशाएँ वस्त्र हैं, श्मशान क्रीड़ास्थली है, सर्पों का समूह (निवहः) भूषणों का काम देते हैं। ये सारी सामग्री विश्वविदित है। लेकिन इस सामग्री का ऐश्वर्य, हे मातः, आपके सौभाग्य के कारण ही है।

(१७)

अशेषब्रह्माण्डप्रलयविधिनैसर्गिकमतिः

श्मशानेष्वासीनः कृतभसितलेपः पशुपतिः।

दधौ कण्ठे हालाहलमखिलभूगोलकृपया

भवत्याः संगत्याः फलमिति च कल्याणि कलये॥

अशेष-(समस्त) *ब्रह्माण्ड-प्रलय-विधि*-(ब्रह्माण्ड का संहार करने में ही प्रवृत्त है) *नैसर्गिक-मतिः* (स्वाभाविक रुचि) *श्मशानेषु आसीनः* (जो श्मशानों में बैठे रहते हैं) *कृतभसितलेपः* (जो अपने शरीर पर श्मशान की भस्म पोते रहते हैं) *पशुपतिः* (पशुपति शिव) *अखिलभूगोलकृपया हालाहलं कण्ठे दधौ* (अखिल ब्रह्माण्ड पर कृपा करने के लिये कण्ठ में हालाहल धारण कर लिया) *कल्याणि* (हे कल्याण करनेवाली मातः!) *इति भवत्याः संगत्याः फलं कलये* (यह सब आपकी संगति का प्रताप है, मैं ऐसा मानता हूँ)

पशुपति भगवान् रुद्र की रुचि स्वभावतः समस्त ब्रह्माण्ड का संहार करने में ही प्रवृत्त रहती है। शरीर पर चिताभस्म लपेट कर वे श्मशानों में ही बैठे रहते हैं। इतना रौद्ररूप होते हुए भी यदि उन्होंने समस्त ब्रह्माण्ड

के हित में कृपाकर हालाहल विष धारण कर लिया तो, हे कल्याण करने वाली माँ शिवा, यह आपकी संगति का ही प्रभाव है।

(१८)

त्वदीयं सौन्दर्यं निरतिशयमालोक्य परया
भियैवासीद्गङ्गा जलमयतनुः शैलतनये।
तदेतस्यास्तस्माद्वदनकमलं वीक्ष्य कृपया
प्रतिष्ठामातन्वन्निजशिरसिवासेन गिरिशः॥

शैलतनये (हे गिरिराज-कुमारि!) *त्वदीयं निरतिशयं सौन्दर्यं आलोक्य* (आपके सर्वोत्कृष्ट सौन्दर्य को देखकर) *परया भिया एव आसीद् गङ्गा जलमयतनुः* (अत्यंत भय के कारण गङ्गा ने जलमय शरीर धारण कर लिया) *तत् एतस्याः तस्मात् वदनकमलं वीक्ष्य* (तब उनके मलीन मुखकमल को देखकर) *कृपया* (कृपापूर्वक) *गिरिशः* (कैलासगिरि पर शयन करनेवाले भगवान् शिव ने) *निजशिरसिवासेन* (अपने शिर पर निवास देकर) *प्रतिष्ठां आतन्वन्* (प्रतिष्ठा बढ़ाई)

हे शैलपुत्रि! (ऐसा लगता है) आपके सर्वोत्कृष्ट सौन्दर्य को देखकर, अत्यन्त भय के कारण, गङ्गा ने जलमय शरीर धारण कर लिया होगा। तब गङ्गाजी के दीन-मलीन मुखकमल को देखकर भगवान् शिव ने उन्हें अपने शिर पर बैठाकर उनकी प्रतिष्ठा बढ़ायी।

(१९)

विशालश्रीखण्डद्रवमृगमदाकीर्णघुसृण-
प्रसूनव्यामिश्रं भगवति तवाभ्यङ्गसलिलम्।
समादाय स्रष्टा चलितपदपांसून्निजकरैः
समाधत्ते सृष्टिं विबुधपुरपङ्केरुहदृशाम्॥

भगवति (हैमवति) *विशाल-श्रीखण्डद्रव*-(बड़े चन्दन का रस) *मृगमद-आकीर्ण*-(कस्तूरी से परिपूर्ण) *घुसृण-प्रसून*-(केसर के फूलों से) *व्यामिश्रं* (मिलाकर बनाया हुआ) *तव* (आपका) *अभ्यङ्गसलिलम्* (अनुलेपन के जल को) *चलित-पदपांसून् निजकरैः* समादाय (चलते हुए आपके चरणों की

धूलि को अपने हाथों से लेकर) *स्रष्टा* (ब्रह्माजी) *विबुधपुर-* (सुरपुर, स्वर्ग) *पङ्केरुहदृशाम्* (कमल नयनियों की) *सृष्टिं समाधत्ते* (सृष्टि करते हैं।)

हे भगवति! विशाल चन्दन के रस, कस्तूरी, और केसर के फूलों को मिलाकर बनाये हुए तुम्हारे अनुलेपन के जल को, और चलते हुए आपके चरणकमलों की धूलि को अपने हाथों में लेकर ब्रह्मा सुरपुर की कमलनयनियों की सृष्टि करते हैं।

(२०)

वसन्ते सानन्दे कुसुमितलताभिः परिवृते
स्फुरन्नानापद्मे सरसि कलहंसालिसुभगे।
सखीभिः खेलन्तीं मलयपवनान्दोलितजले
स्मरेद्यस्त्वां तस्य ज्वरजनितपीडापसरति॥

सानन्दे वसन्ते (आनन्दमय वसन्त में) *कुसुमितलताभिः परिवृते* (खिले हुए फूलों से ढकी हुई लताओं से घिरी) *स्फुरन्-नाना पद्मे* (जिसमें अनेक कमल खिले हैं) *कलहंस-आलिसुभगे* (राजहंसों की पंक्ति से सुशोभित) *मलय-पवन-आन्दोलितजले* (जिसका जल मलय पवन से आन्दोलित हो रहा है उसमें) *सरसि* (सरोवर में) *सखीभिः* (सखियों के साथ) *खेलन्तीं* (खेलती हुई) *यः* (जो) *त्वां* (आपको) *स्मरेत्* (स्मरण करे) *तस्य* (उसकी) *ज्वरजनितपीडा अपसरति* (उद्विग्नता जनित पीडा दूर हो जाती है।)

(हे देवि!) आनन्दयुक्त वसन्त ऋतु में, पुष्पों से लदी लताओं से घिरी, अनेक खिले हुए कमलों से ढकी, राजहंसों की पंक्ति से सुशोभित, जिसका जल मलयानिल से उद्वेलित हो रहा है, ऐसी झील में, सखियों के साथ खेलती हुई, आपकी छवि का जो स्मरण करता है उसकी उद्वेगजनित पीड़ा दूर हो जाती है।

– इति –

त्रिपुरसुन्दर्यष्टकम्

(१)

कदम्बवनचारिणीं मुनिकदम्बकादम्बिनीं
नितम्बजितभूधरां सुरनितम्बिनीसेविताम्।
नवाम्बुरुहलोचनामभिनवाम्बुदश्यामलां
त्रिलोचनकुटुम्बिनीं त्रिपुरसुन्दरीमाश्रये।।

कदम्बवनचारिणीं (कदम्बवृक्षों के वन में विहार करनेवाली को) *मुनिकदम्बकादम्बिनीं* (मुनियों के मनरूपी कदम्बवन के लिये बादलों की पंक्ति जैसी को; प्रसिद्ध है कि कदम्ब के फूल बादलों की गर्जना से खिलते हैं।) *नितम्बजितभूधरां* (अपने पृथुल नितम्बों से पर्वतों को लजाने वाली। यहाँ अतिशयोक्ति है। (पृथुलनितम्बिनी) *सुरनितम्बिनी-सेविताम्* (सुरसुन्दरियों द्वारा सेवित को। 'नितम्बिनी' का शाब्दिक अर्थ सुन्दर नितम्बोंवाली होगा।) *नवअम्बुरुहलोचनां* (नये खिले हुए कमल जैसे नेत्रों वाली को) *अभिनव-अंबुदश्यामलां* (नवीन बादल के समान नीलवर्णा को) *त्रिलोचन-कुटुम्बिनीं* (तीन नेत्रों वाले भगवान् शिव की गृहिणी को) *त्रिपुरसुन्दरीं आश्रये* (त्रिपुरसुन्दरी राजराजेश्वरी की शरण लेता हूँ)

मैं त्रिपुरसुन्दरी की शरण लेता हूँ। वे कदम्बवन में विहार करने वाली है, और मुनिजनों के मनरूप कदम्बवन को प्रफुल्लित करने के लिये बादलों की पंक्ति के समान हैं। वे पृथुल नितम्बिनी हैं, और नितम्बिनी सुरबालाओं द्वारा सेवित हैं। उनके नवल कमल जैसे नेत्र हैं, और वे नवजलधर श्याम हैं। वे भगवान् शिव की गृहस्वामिनी हैं।

'कदम्ब' का एक अर्थ घना वन भी है। कदम्ब को समस्त विश्व का प्रतीक मानें तो देवी विश्वव्यापिनी समझी जानी चाहिये।

'त्रिलोचन' शिव का विशेषण है। उनका तीसरा नेत्र प्रज्ञान का सूचक है।

'त्रिपुरसुन्दरी' का साधारण अर्थ तीनों लोकों में सौन्दर्य की सीमा होगा। 'त्रिपुरारि' शिव– कमलाक्ष, तारकाक्ष, विद्युन्मालि नाम के तीन असुरों के पुरों को ध्वंस करने वाले– की प्रियतमा भी अर्थ हो सकता है। राजराजेश्वरी ललितादेवी त्रिपुरसुन्दरी कहलाती हैं।

कादम्बिनी, बादलों की पंक्ति से कदम्ब के फूल खिलते हैं। त्रिपुरसुन्दरी के दर्शनों से मुनिजनों के मनों की प्यास बुझती है।

(२)

कदम्बवनवासिनीं कनकवल्लकीधारिणीं
महार्हमणिहारिणीं मुखसमुल्लसद्वारुणीम्।
दयाविभवकारिणीं विशदलोचनीं तारिणीं
त्रिलोचनकुटुम्बिनीं त्रिपुरसुन्दरीमाश्रये॥

कदम्बवनवासिनीं (कदम्ब-कुञ्जों में निवास करनेवाली को) *कनकवल्लकीधारिणीं* (सोने से बनी हुई वीणा धारण करने वाली को) *महा-अर्ह-मणिहारिणीं* (बहुमूल्य मणियों का हार पहनने वाली को) *मुख-समुल्लसद्वारुणीं* (सुरापान से रक्ताभ मुखमण्डल वाली को) *दयाविभवकारिणीं* (अपनी कृपा से भक्तों का वैभव बढ़ाने वाली को) *विशदलोचनीं* (विशाल नेत्रोंवाली को) *तारिणीं* (मुक्तिदायिनी को)

मैं त्रिपुरसुन्दरी त्रिलोचन गृहिणी राजराजेश्वरी की शरण लेता हूँ।

वे कदम्बवन में निवास करती हैं, और स्वर्णरचित वीणा धारण किये हुए हैं।

उन्होंने बहुमूल्य मणियों का हार धारण किया हुआ है, और मदिरापान से उनका मुखमण्डल रक्ताभ है।

वे विशाललोचना हैं, और अपनी कृपा से भक्तों का उद्धार करनेवाली और उन्हें वैभव प्रदान करनेवाली हैं।

यहाँ वारुणी, चावल से बनी मदिरा, का अर्थ अमृत समझना चाहिये।

(३)

कदम्बवनशालया कुचभरोल्लसन्मालया
कुचोपमितशैलया गुरुकृपालसद्वेलया।
मदारुणकपोलया मधुरगीतवाचालया
कयाऽपि घननीलया कवचिता वयं लीलया।।

कदम्बवनशालया (कदम्बवन में निवास करने वाली द्वारा) *कुचभरोल्लसन्मालया* (माला से सुशोभित पीनोन्नत पयोधरवाली द्वारा) *कुचोपमितशैलया* (पर्वतों से भी अधिक उन्नत पृथुल पयोधरा द्वारा) *गुरुकृपालसद्वेलया* (परम वात्सल्यमयी द्वारा) *मद-अरुण-कपोलया* (मद से अरुण कपोलों वाली द्वारा) *मधुरगीत-वाचालया* (मधुर संगीतप्रिय द्वारा) *घननीलया* (मेघ के समान नीलकान्तिवाली द्वारा) *लीलया वयं कवचिता* (लीला से हम रक्षित हैं)

हमें उस नवजलधरश्याम कदम्बवनवासिनी ने लीला में ही अपनी कृपा का कवच पहना रखा है। उनके पीनोन्नत पयोधर मणि मालाओं से सुशोभित हैं, और पर्वतों से भी अधिक महान् हैं। उनकी महती कृपा विस्तृत है। मदिरापान से उनके कपोल रक्ताभ हैं, और उन्हें मधुर गीत गाना प्रिय लगता है।

देवी 'लीलामयी', 'ललिता' प्रसिद्ध हैं। सारी सृष्टि उनकी लीला है। देवी के पीन पयोधर मातृत्व के प्रतीक हैं।

(४)

कदम्बवनमध्यगां कनकमंडलोपस्थितां
षडम्बुरुहवासिनीं सततसिद्धसौदामिनीम्।
विडम्बितजपारुचिं विकचचन्द्रचूडामणिं
त्रिलोचनकुटुम्बिनीं त्रिपुरसुन्दरीमाश्रये।।

कदम्बवनमध्यगां (कदम्बवन में निवास करने वाली को) *कनक-मण्डल-उपस्थितां* (स्वर्ण मण्डल स्थित को) *षड्-अम्बुरुह-वासिनीं* (षट्दलकमल निवासिनी को) *सतत-सिद्ध-सौदामिनीम्* (भक्तों की शक्ति को सदा विजली

की भाँति प्रकाशित करनेवाली को) *विडंबितजपारुचिं* (जिनकी प्रभा जपाकुसुम जैसी है) *विकचचन्द्रचूडामणिं* (जिनका प्रभायुक्त चन्द्रमुकुट है उनको)

मैं त्रिलोचनगृहिणी त्रिपुरसुन्दरी की शरण लेता हूँ। वे कदम्बवन में निवास करती हैं, स्वर्णमण्डल और षट्‌दलकमलों (षट्‌चक्रों) में स्थित हैं। वे योगियों के हृदय को विद्युत्प्रभा की भाँति सदा प्रकाशित करती हैं। उनकी प्रभा जपाकुसुम जैसी है। उनके ललाट पर पूर्णचन्द्र का मुकुट सुशोभित है।

'षट्‌कमल' मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञापद्म षट्‌चक्रों को कहते हैं। देवी कुण्डलिनीरूप में इन चक्रों में रहती हैं।

(५)

कुचाञ्चितविपञ्चिकां कुटिलकुन्तलालङ्कृतां
कुशेशयनिवासिनीं कुटिलचित्तविद्वेषिणीम्।
मदारुणविलोचनां मनसिजारिसंमोहिनीं
मतङ्गमुनिकन्यकां मधुरभाषिणीमाश्रये॥

कुच-अञ्चित-विपञ्चिकां (जिनके वक्षःस्थल पर वीणा टिकी हुई है उनको) *कुटिल-कुन्तल-अलंकृतां* (जो घुँघराले बालों से अलङ्कृत हैं उनको) *कुशेशयनिवासिनीं* (कमल पर स्थित, कमला, पद्मा को) *कुटिलचित्तविद्वेषिणीम्* (कुटिल चित्तवालों का विध्वंस करनेवाली को) *मद-अरुण-विलोचनां* (वारुणीपान से रक्ताभ नेत्रोंवाली को) *मनसिजारि*-(कामदेव के शत्रु, शिव) *मोहिनीं* (मोहित करने वाली को) *मत्तङ्गमुनिकन्यकां* (मतङ्ग ऋषि की पुत्री को) *मधुरभाषिणीं आश्रये* (मधुर भाषिणी की शरण लेता हूँ।)

मैं मतङ्ग ऋषि की कन्या मधुरभाषिणी त्रिपुरसुन्दरी की शरण लेता हूँ।

उनके वक्षःस्थल पर वीणा टिकी रहती है, और वे घुँघराले बालों से अलङ्कृत रहती हैं।

वे कमलासना हैं, और कुटिल चित्तवालों का दमन करती हैं।

मदिरापान से उनके रतनारे नेत्र हैं, और वे कामजित् भगवान् शिव को मोहित करने वाली हैं।

(६)

स्मरेत्प्रथमपुष्पिणीं रुधिरबिन्दुनीलाम्बरां
गृहीतमधुपात्रिकां मधुविघूर्णनेत्रांचलाम्।
घनस्तनभरोन्नतां गलितचूलिकां श्यामलां
त्रिलोचनकुटुम्बिनीं त्रिपुरसुन्दरीमाश्रये।।

स्मरेत् (स्मरण करें, ध्यान करें) *प्रथमपुष्पिणीं* (तरुणावस्था के प्रथम पुष्पों से चिह्नित) *रुधिरबिन्दुनीलअम्बरां* (जिनकी नीली पोशाक 'प्रथम पुष्पों' से अनुरञ्जित है) *गृहीतमधुपात्रिकां* (जिन्होंने मधुपात्र हाथ में ले रखा है उनको) *मधुविघूर्णनेत्र-अञ्चलां* (जिनके नेत्रों की कोर मदिरामान से चञ्चल हैं) *घनस्तनभरोन्नतां* (जिनके आपस में सटे हुए स्तन उन्नत हैं उनको) *गलितचूलिकां* (बिखरे हुए बालों से सुशोभित को) *श्यामलां* (श्यामवर्ण वाली को)

मैं त्रिलोचनकुटुम्बिनी त्रिपुरसुन्दरी की शरण लेता हूँ।

उनका ध्यान तरुणाई की प्रथम पुष्पिका और प्रथम पुष्पों से अनुरञ्जित नीली पोशक के रूप में करें। उनके हाथ में मधुपात्र है, और आँखों की कोरें मदिरापान से घूर रही हैं। उनके सटे हुए उन्नत स्तन हैं, और बिखरे हुए बाल हैं। उनका श्याम वर्ण है।

देवी का यह वर्णन तांत्रिक दृष्टि से है। काली, तारा, छिन्नमस्तका की ऐसी ही छवि का तांत्रिक ध्यान करते हैं।

(७)

सकुंकुमविलेपनामलकचुम्बिकस्तूरिकां
समन्दहसितेक्षणां सशरचापपाशांकुशाम्।
अशेषजनमोहिनीमरुणमाल्यभूषाम्बरां
जपाकुसुमभासुरां जपविधौ स्मराम्यंबिकाम्।।

जपाकुसुमभासुरां (जपा कुसुम जैसी सुन्दर) *जपविधौ अम्बिकां स्मरामि* (जप करते समय देवी माता का ध्यान करता हूँ) *सकुंकुमविलेपनां* (केसर से

अनुरञ्जित को) *अलक-चुम्बिकस्तूरिकां* (कस्तूरी से सुगंधित केशकलापवाली को) *समंदहसितेक्षणां* (नेत्रों से जिसकी मन्दस्मित झलक रही है उसको) *सशरचापपाश-अंकुशाम्* (जिन्होंने बाण, धनुष, पाश और अङ्कुश धारण किया हुआ है) *अशेषजनमोहिनीं* (जो समस्त जनों को मोहित करने वाली हैं उनको) *अरुणमाल्यभूषांबरां* (अरुण माला, आभूषण, और पोशाक धारण करने वाली को)

देवी माता का जप करते समय मैं उनके जपा कुसुम जैसे सुन्दर रूप का ध्यान करता हूँ। उनके शरीर पर केसर और चन्दन का विलेपन है, और उनकी केशराशि कस्तूरी से सुगंधित है। वे चारुहासा हैं, और उनका मन्दस्मित नेत्रों में झलकता है, और उन्होंने लाल माला, लाल आभूषण, और लाल पोशाक धारण की हुई है। उनके चारों हाथों में धनुष, बाण, पाश और अङ्कुश हैं। वे सब लोगों को मोहित करने वाली हैं।

देवी के आयुधों के प्रतीकात्मक और भी अर्थ हैं। मन ईक्षुधनुष है, इच्छा पाश है, क्रोध अङ्कुश है, और पाँच तन्मात्राएँ पञ्चबाण हैं। कहीं-कहीं ऐसा भी वर्णन है कि पाश इच्छाशक्ति है, अङ्कुश ज्ञानशक्ति और धनुषबाण क्रियाशक्ति हैं।

देवी माया से प्राणियों को मोहित करती हैं। 'सर्वमोहिनी' देवी का एक विशेषण है।

(८)

पुरंदरपुरंध्रिकाचिकुरबंधसैरंध्रिकां
पितामहपतिव्रतापटुपटीरचर्चारताम्।
मुकुंदरमणीमणीलसदलंक्रियाकारिणीं
भजामि भुवनांबिकां सुरवधूटिकाचेटिकाम्॥

सुरवधूटिकाचेटिकाम् (देवताओं की पत्नियाँ जिनकी सेविकाएँ हैं) *भुवन-अंबिकां भजामि* (जगन्माता का भजन करता हूँ) *पुरंदर*-(इन्द्र) *पुरंध्रिकाचिकुरबंधसैरंध्रिकां* (इन्द्र की पत्नी शची जिनके केश-कलाप को सजाने के लिये सैरन्ध्री का काम करती हैं।) *पितामह-पतिव्रता*-(ब्रह्मा की

पतिव्रता पत्नी) *पटुपटीरचर्चारताम्* (जिनका चन्दन लेपन करने में दक्ष हैं) *मुकुन्दरमणीं* (विष्णु की पत्नी) *मणी-लसद्-अलंक्रियाकारिणीं* (मणियों से जिसे अलंकृत करती हैं, उन्हें) *सुरबधूटिकाचेटिकाम्* (सुरबधुएँ जिनकी चेरी, सेविकाएँ हैं, उन्हें) *भुवन-अंबिकां भजामि* (समस्त संसार की माता की शरण लेता हूँ)

जिनकी देवपत्नियाँ सेविकाएँ हैं उन भुवनाम्बिका की मैं शरण लेता हूँ। इन्द्र की पत्नी शची केश-सज्जा के लिये निपुण सैरन्ध्री हैं। पितामह ब्रह्मा की पतिव्रता पत्नी चन्दन लगाने में कुशल हैं। विष्णुप्रिया मणियों से अलङ्कृत करने वाली सेविका हैं।

– इति –

षट्पदीस्तोत्रम्

(१)

अविनयमपनय विष्णो दमय मनः शमय विषय मृगतृष्णाम्।
भूतदयां विस्तारय तारय संसारसागरतः॥

विष्णो (हे विष्णुभगवन्) *अविनयं अपनय* (मेरे दर्प को दूर कीजिये) *मनः दमय* (मन को मर्यादित कीजिये) *विषय-मृगतृष्णां शमय* (झूँठी आशाओं के पीछे भागने की तृष्णा शान्त कीजिये) *भूतदयां विस्तारय* (प्राणियों के लिये सहानुभूति – दयाभाव, करुणा – का विस्तार कीजिए) *संसारसागर-तः तारय* (इस संसार रूपी समुद्र से मुझे पार कीजिये)

हे सर्वव्यापिन् परमेश्वर विष्णो! मेरी उद्दण्डता हटाइये; मन को मर्यादित कीजिये; मृगतृष्णा शान्त कीजिये; और प्राणियों के प्रति मेरी करुणा का विस्तार कीजिये। संसारसागर में डूबते हुए मुझे पार लगाइये।

(२)

दिव्यधुनीमकरन्दे परिमलपरिभोगसच्चिदानन्दे।
श्रीपतिपदारविन्दे भवभयखेदच्छिदे वन्दे॥

दिव्यधुनी-(दिव्य नदी, गङ्गा) *मकरन्दे* (जिनके चरणकमलों का मकरदन्द गङ्गा है) *परिमलपरिभोगसच्चिदानन्दे* (और सत्-चित्-आनन्द का अनुभव सौरभ है) *भव-भय-खेद-च्छिदे* (संसार के भय और खेद का नाश करने वाले) *श्रीपति-पद-अरविन्दे वन्दे* (भगवान् पद्मापति के चरणकमलों की वन्दना करता हूँ)

मैं लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु के चरणकमलों में प्रणाम करता हूँ। इन दोनों चरणकमलों का मकरन्द दिव्यनदी गङ्गा है, और सच्चिदानन्द का

अनुभव सौरभ है। ये चरणकमल संसार के भय और खेद का नाश करने वाले हैं।

(३)

सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः॥

सति-अपि भेद-अपगमे (भेद के अभाव होने पर भी, भेद न होते हुए भी) *नाथ* (हे स्वामिन्!) *तव अहं न मामकीनः त्वम्* (मैं आपका हूँ, आप मेरे नहीं हैं) *तरङ्गः हि सामुद्रः* (वास्तव में तरङ्ग समुद्र की होती है) *समुद्रः क्वचन न तारङ्गः* (क्या कभी तरङ्ग का समुद्र हो सकता है? ; समुद्र कभी तरङ्ग का नहीं होता)

हे स्वामिन्! वेदान्त की दृष्टि से ब्रह्म और जीव, आप में और मुझ में कोई अन्तर नहीं है। तब भी, मैं आपका हूँ, आप मेरे नहीं हैं। तरङ्ग समुद्र की होती है, समुद्र तरङ्ग का नहीं होता।

(४)

उद्धृतनग नगभिदनुज दनुजकुलामित्र मित्रशशिदृष्टे।
दृष्टे भवति प्रभवति न भवति किं भवतिरस्कारः॥

उद्धृतनग (हे गोवर्धन पर्वत उठानेवाले!) *नगभिद्-अनुज* (हे इन्द्र के अनुज, वामन!) *दनुज-कुल-अमित्र* (हे दानवों के शत्रो!) *मित्र-शशि-दृष्टे* (हे सूर्य-चन्द्रनेत्रधारिन्!) *दृष्टे भवति* (आपके दर्शन के उपरान्त) *न प्रभवति* (क्या उत्पन्न नहीं होता?) *भवति किं भवतिरस्कारः* (ससांर के प्रति तिरस्कार का भाव)

हे गिरिधारिन्! हे वामन! हे दानवशत्रो! हे चन्द्रसूर्यनेत्रधारिन्! क्या आपके दर्शन के उपरान्त संसार के प्रति तिरस्कारभाव – उपेक्षा – उत्पन्न नहीं हो जाती?

(५)

मत्स्यादिभिरवतारैरवतारवतावता सदा वसुधाम्।
परमेश्वर परिपाल्यो भवता भवतापभीतोऽहम्॥

मत्स्य-आदिभिः अवतारैः (मत्स्य आदि अवतारों द्वारा) *अवतारवतावता* (अवतरित होकर पालन किया है) *सदा वसुधाम्* (सदा पृथ्वी का) *परमेश्वर* (हे परमेश्वर!) *भवतापभीतः अहं भवता परिपाल्यः* (आवागमन के चक्र से भयभीत मैं आप द्वारा पालन करने योग्य हूँ)

हे परमेश्वर! आपने मत्स्य आदि अवतारों में अवतरित होकर सदा ही पृथ्वी का पालन किया है। जन्म-मरण के आवागमन से मैं सन्तप्त हूँ। आप मेरी रक्षा कीजिये।

(६)

दामोदर गुणमन्दिर सुन्दरवदनारविन्द गोविन्द।
भवजलधिमथनमन्दर परमं दरमपनय त्वं मे॥

दामोदर गुणमन्दिर सुन्दरवदनारविन्द गोविन्द (हे दामोदर! हे गुणनिधे! हे मनोहर मुखारविन्द वाले! हे गोविन्द!) *भवजलधि-मथन-मन्दर* (हे संसारसमुद्र के मन्थन में मन्दराचल स्वरूप!) *त्वं मे परमं दरं अपनय* (आप मेरे परम भय को दूर कीजिये)

हे दामोदर! हे गुणनिधान! हे मनोहर मुखारविन्द वाले! हे गोविन्द! हे भवसागर मन्थन के लिये मन्दराचल स्वरूप! आप मेरे परम भय को दूर कीजिये।

(७)

नारायण करुणामय शरणं करवाणि तावकौ चरणौ।
इति षट्पदी मदीये वदनसरोजे सदा वसतु॥

दामोदर नारायण (हे कृपालो दयामय नारायण!) *तावकौ चरणौ शरणं करवाणि* (मैं आपके चरणयुगल की शरण में हूँ) *इति षट्पदी* (यह छः पदों की षट्पदी– भ्रमरी) *मदीये वदनसरोजे सदा वसतु* (मेरे मुखरूपी कमल में सदा निवास करे, मैं इस षट्पदी स्तोत्र को सदा जपता रहूँ)

हे करुणामय नारायण! मैं आपके युगल चरणारविन्दों की शरण लेता हूँ। यह षट्पदी स्तोत्ररूप भ्रमरी मेरे मुखारविन्द में निवास करती रहे।

– इति –

श्री अच्युताप्टकम्

(१)

(ऐसी मान्यता है कि जब सन्यस्त होकर शंकर अपने गाँव से चलने वाले थे तो स्वप्न में उन्हें भगवान् अच्युत ने उत्तर दिशा में गोविन्दपाद आचार्य के पास ओंकारेश्वर जाने का दिशा-निर्देश दिया। इस स्तोत्र की रचना उन्होंने इसी समय की थी। उस समय उनकी अवस्था आठ वर्ष की रही होगी। बड़ी ललित पदावली का फलदायक स्तोत्र है)

अच्युतं केशवं रामनारायणं
कृष्णदामोदरं वासुदेवं हरिम्।
श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं
जानकीनायकं रामचन्द्रं भजे॥

अच्युत, केशव, राम, नारायण, कृष्ण, दामोदर, वासुदेव, हरि, श्रीधर, माधव, गोपीवल्लभ, जानकीनाथ, श्रीराम को मैं भजता हूँ।

(२)

अच्युतं केशवं सत्यभामाधवं
माधवं श्रीधरं राधिकाराधितम्।
इन्दिरामन्दिरं चेतसा सुन्दरं
देवकीनन्दनं नन्दजं संदधे॥

अच्युत, केशव, सत्यभामाधव (स्वामी), माधव, श्रीधर, श्रीराधा द्वारा आराधित, लक्ष्मी (इन्दिरा) निवास, मनमोहन, देवकीनन्दन, नन्दकुमार का मैं ध्यान करता हूँ।

(३)

विष्णवे जिष्णवे शङ्खिने चक्रिणे
रुक्मिणीरागिणे जानकीजानये।
वल्लवीवल्लभायार्चितायात्मने
कंसविध्वंसिने वंशिने ते नमः॥

जो सर्वव्यापक विष्णु हैं, सर्वविजयी हैं, शङ्खधर हैं, चक्रपाणि हैं, रुक्मिणी के परम प्रिय पति हैं, सीतापति हैं, *(बल्लवीवल्लभाय अर्चिताय आत्मने)* गोपियों के प्राणाधार हैं, परमपूज्य हैं, आत्मस्वरूप हैं, कंस का बध करने वाले हैं, मुरलीधर (वंशिने) हैं, उनके लिये मेरा प्रणाम।

(४)

कृष्ण गोविन्द हे राम नारायण
श्रीपते वासुदेवाजित श्रीनिधे।
अच्युतानन्त हे माधवाधोक्षज
द्वारकानायक द्रौपदीरक्षक॥

हे कृष्ण! हे गोविन्द! हे राम! हे नारायण! हे लक्ष्मीकान्त! हे वासुदेव! हे अजित! हे शोभानिधे! हे अच्युत! हे अनन्त! हे माधव! हे अधोक्षज! हे द्वारकानाथ! हे द्रौपदीरक्षक!

(४)

राक्षसक्षोभितः सीतया शोभितो
दण्डकारण्यभूपुण्यताकारणः।
लक्ष्मणेनान्वितो वानरैः सेवितो-
ऽगस्त्यसम्पूजितो राघवः पातु माम्॥

जो राक्षसों से क्षुब्ध हैं, सीताजी से सुशोभित हैं, दण्डकारण्य को पुण्यभूमि बनानेवाले हैं, लक्ष्मण जिनके अनुगामी हैं, वानरों द्वारा सेवित हैं, और अगस्त्य ऋषि द्वारा पूजित हैं, वे राघव मेरी रक्षा करें।

(६)

धेनुकारिष्टकानिष्टकृद्द्वेषिहा
केशिहा कंसहृद्वंशिका वादकः।
पूतनाकोपकः सूरजाखेलनो
बालगोपालकः पातु मां सर्वदा।।

धेनुक और अरिष्ट आदि असुरों का अनिष्ट करने वाले, शत्रुओं को ध्वंस करने वाले (द्वेषिहा), केशी का बध करने वाले, कंस को हराने वाले, बंशी बजाने वाले, पूतना पर कोप करने वाले, यमुना (सूरजा) तट पर खेलने वाले, बालगोपाल कृष्ण मेरी रक्षा करे।

(७)

विद्युदुद्योतवत्प्रस्फुरद्वाससं
प्रावृडम्भोदवत्प्रोल्लसद्विग्रहम्।
वन्यया मालया शोभितोरःस्थलं
लोहिताङ्घ्रिद्वयं वारिजाक्षं भजे।।

विद्युत्-उद्योतवत्-प्रस्फुरत्-वाससं (विजली की चमक के समान जिनका पीताम्बर झिलमिला रहा है) *प्रावृड्-अम्भोदवत्* (वर्षाकालीन मेघ के समान) *प्रोल्लसत्-विग्रहम्* (जिनका शरीर शोभायमान है) *वन्यया मालया* (वनमाला से) *शोभित-उरः-स्थलं* (जिनका वक्षःस्थल शोभित है) *लोहित*-(अरुणवर्ण) *अङ्घ्रिद्वयं* (चरणयुगल) *वारिज-अक्षं* (कमल नयन को) *भजे* (भजता हूँ)

जिनका पीताम्बर विजली की चमक जैसा कान्तियुक्त है, वर्षाकालीन मेघ के समान जिनका शरीर अत्यंत शोभायमान है, वनमाला से जिनका वक्षःस्थल सुशोभित है, जिनके चरण युगल अरुणाभ हैं, उन अरविन्दाक्ष श्रीकृष्ण को मैं भजता हूँ।

(८)

कुञ्चितैः कुन्तलैर्भ्राजमानाननं
रत्नमौलिं लसत्कुण्डलं गण्डयोः।

हारकेयूरकं कङ्कणप्रोज्ज्वलं
किङ्किणीमञ्जुलं श्यामलं तं भजे॥

घुंघराले बालों से जिनका मुखमण्डल सुशोभित है, रत्नजटित मुकुट मस्तक पर शोभायमान है, कपोलों पर कुण्डल चमक रहे हैं, उज्ज्वल हार और बाजूवन्द तथा मनोहर घुंघरूदार करधनी से सुशोभित श्री श्यामसुन्दर को मैं भजता हूँ।

(९)

अच्युतस्याष्टकं यः पठेदिष्टदं
प्रेमतः प्रत्यहं पूरुषः सस्पृहम्।
वृत्ततः सुन्दरं कर्तृविश्वम्भर-
स्तस्य वश्यो हरिर्जायते सत्वरम्॥

जो पुरुष अच्युत के इस अष्टक को, जो अत्यन्त मनोहर छन्द में रचित है, और वाञ्छित फलदायक है, प्रेम और प्रबल कामना के साथ पढ़ता है, विश्वकर्ता विश्वम्भर श्रीहरि शीघ्र ही उसके वश में हो जाते हैं।

– इति –

श्रीगोविन्दाष्टकम्

(१)

सत्यं ज्ञानमनन्तं नित्यमनाकाशं परमाकाशं
गोष्ठप्राङ्गणरिङ्गणलोलमनायासं परमायासम्।
मायाकल्पितनानाकारमनाकारं भुवनाकारं
क्ष्माया नाथमनाथं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्॥

सत्यं ज्ञानं अनन्तं नित्यं (जो सत्यस्वरूप और ज्ञानस्वरूप, अनन्त और नित्य हैं उनको) *अनाकाशं परमाकाशं* (जो आकाश नहीं होते हुए भी परम आकाश हैं उनको) *गोष्ठप्राङ्गणरिङ्गणलोलं* (जो व्रजभूमि में पेट के बल सरकता हुआ बड़ा चपल है उसको) *अनायासं परम-आयासं* (परिश्रम रहित होते हुए भी जो अत्यंत श्रान्त हैं उनको) *मायाकल्पित-नाना-आकारं अनाकारं भुवनाकारं* (माया द्वारा अनेक आकार, विश्वरूप धारण करने पर भी जो आकारहीन – निराकार है – उसको) *क्ष्माया* (पृथ्वी का) *नाथं* (पृथ्वीनाथ को) *अनाथं* (उसको जिसका कोई स्वामी नहीं है) *परमानन्दं गोविन्दं प्रणमत* (परम आनन्दमय गोविन्द को प्रणाम करो)

जो सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप नित्य और अनन्त है, जो आकाश नहीं होते हुए भी परम आकाश है, जो व्रजभूमि पर पेट के बल सरकता हुआ चपल है, परिश्रमरहित होते हुए भी बहुत थका-सा दिखाई देता है, मायाद्वारा निर्मित नानारूपों में विश्वस्वरूप होने पर भी निराकार है, पृथ्वीनाथ होते हुए भी अनाथ (जिसका कोई नाथ नहीं) है, उस परमानन्दस्वरूप गोविन्द को प्रणाम करो।

सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार का भेद-अभेद बताने वाला बड़ा महत्त्वपूर्ण पद है। 'विनु पद चलइ सुनइ विन काना' में यही कहा गया

है। जो सर्वत्र है वह विना पैर चलता है, उसे चलने की आवश्यकता ही नहीं है। व्रज रज में लोटने वाला विश्वरूप है, पृथ्वीनाथ होते हुए भी अनाथ है।

आलोलचन्द्रकलसद्वनमाल्यवंशी-
रत्नाङ्गदं प्रणयकेलिकलाविलासम्।
श्यामं त्रिभङ्गललितं नियतप्रकाशं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ (ब्रह्मसंहिता, ३१)

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्॥ (१)

निर्गुण-निराकार ब्रह्म सगुण-साकार रूप में मिल सकता है।

परमिममुपदेशमाद्रियध्वं
निगमवनेषु नितान्तचारखिन्नाः।
विचिनुत भवनेषु वल्लवीना-
मुपनिषदर्थमुलूखले निबद्धम्॥

(श्रीकृष्णकर्णामृतम् १.१८)

ध्यानाभ्यासवशीकृतेन मनसा तन्निर्गुणं निष्क्रियं
ज्योतिः किंचन योगिनो यदि परं पश्यन्ति पश्यन्तु तत्।
अस्माकं तु तदेव लोचनचमत्काराय भूयाच्चिरं
कालिन्दीपुलिनेषु यत्किमपि तन्नीलं महो धावति॥

मधुसूदन-सरस्वती (गी. गूढ. १३.१)

(२)

मृत्स्नामत्सीहेति यशोदाताडनशैशवसंत्रासं
व्यादितवक्त्रालोकितलोकालोकचतुर्दशलोकालिम्।
लोकत्रयपुरमूलस्तम्भं लोकालोकमनालोकं
लोकेशं परमेशं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्॥

मृत्स्नामत्सि इह इति ("क्या तू यहाँ मिट्टी खा रहा है?") *यशोदाताडनशैशवसंत्रासं* (यशोदा की ताड़ना के बालोचित भय से कांपते हुए को) *व्यादित-वक्त्र-*(मुँह खोल कर) *आलोकित-लोक-अलोक चतुर्दश-लोकालिम्* (जो लोक-अलोक की पंक्ति सहित चौदह भुवन दिखा देते हैं उन्हें) *लोकत्रयपुर-मूलस्तम्भं* (जो त्रिभुवनरूपी पुर के आधार-स्तम्भ हैं उनको) *लोक-आलोकं अनालोकं* (जो अदृश्य होते हुए भी विश्व के आलोक हैं उन्हें) *लोकेशं परमेशं गोविन्दं परमानन्दं प्रणमत* (उन लोकनाथ परमेश्वर परम आनन्द गोविन्द की वन्दना करो)

जब माँ यशोदा ने डाँटकर पूछा " क्या तू यहाँ मिट्टी खा रहा है?" तो बालोचित भय से काँपते हुए बालकृष्ण ने मुँह खोलकर उसके भीतर चौदह भुवन दिखला दिये। वे ही बालकृष्ण त्रिभुवन रूपी पुर के आधारस्तम्भ हैं। अदृष्ट होते हुए भी वे जगत् के आलोक हैं। उन लोकेश्वर, परमानन्दस्वरूप परमेश्वर गोविन्द को नमस्कार करो।

इस पद में भगवान् के माधुर्य और ऐश्वर्य एक साथ दर्शन कराया गया है। साधारण बालक की भाँति वे मिट्टी खाते हुए पकड़े जाने पर भयभीत होते हैं, माँ की ताड़ना के डर से काँपने लगते हैं। वे ही भगवान् तीनों लोकों के आधार हैं, उनके मुख में चौदह भुवन समाये हुए हैं।

(३)

त्रैविष्टपरिपुवीरघ्नं क्षितिभारघ्नं भवरोगघ्नं
कैवल्यं नवनीताहारमनाहारं भुवनाहारम्।
वैमल्यस्फुटचेतोवृत्तिविशेषाभासमनाभासं
शैवं केवलशान्तं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्॥

त्रैविष्टप-रिपु-वीर-घ्नं (देवताओं के वैरी दैत्यों के वीरों का नाश करने वाले को) *क्षितिभारघ्नं* (पृथ्वी का भार हरण करनेवाले को) *भवरोगघ्नं* (संसाररोग को दूर करने वाले को) *कैवल्यं* (मोक्षस्वरूप को) *नवनीत-आहारं* (मक्खन खानेवाले को) *अनाहारं* (आहार रहित को) *भुवन-आहारं* (जिनमें समस्त लोक लीन हो जाते हैं उनको) *वैमल्य-*(निर्मल) *स्फुट-*(स्वच्छ) *चेतः-वृत्ति-*

विशेषाभासं (चित्तवृत्ति में विशेषरूप से आभासित को) *शैवं केवलशान्तं* (जो मङ्गलकारी, अद्वितीय, और शान्त हैं) *प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्* (उन परम आनन्दस्वरूप गोविन्द को नमस्कार करो)

जो परम आनन्दस्वरूप गोविन्द देवताओं के शत्रु दैत्यों के वीरों का नाश करने वाले हैं, पृथ्वी का भार हरण करने वाले हैं, भवबाधाओं का नाश करने वाले हैं, मोक्षस्वरूप हैं, आहाररहित होते हुए भी नवनवीत खाते हैं, और चौदहों भुवनों को आत्मसात् कर लेते हैं, आभास रहित होते हुए भी निर्मल मन में प्रकाशित होते हैं, जो कल्याणस्वरूप, अद्वितीय और प्रशान्त हैं – उनको प्रणाम करो।

इन पदों में भगवान् के विरोधाभासी स्वरूप का वर्णन है। आहाररहित होते हुए भी वे मक्खन से लेकर चौदह भुवनों तक अपने में लीन कर लेते हैं, आभासरहित होते हुए भी निर्मल चित्त में आभासित होते हैं। *अणोरणीयान् महतो महीयान्।*

(४)

गोपालं भूलीलाविग्रहगोपालं कुलगोपालं
गोपीखेलनगोवर्धनधृतिलीलालालितगोपालम्।
गोभिर्निगदितगोविन्दस्फुटनामानं बहुनामानं
गोपीगोचरदूरं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्॥

गोपालं (गौओं का पालन करने वाले को) *भूलीलाविग्रहगोपालं* (संसार में लीला करने के लिये गोपालरूप धारण करने वाले को) *कुलगोपालं* (जो वृष्णिकुल में जन्म लेकर गोपाल बने उनको) *गोपी-खेलन-गोवर्धन-धृतिलीलालालितगोपालं* (उन गोपाल को जिन्होनें गोपियों के साथ लीला करते हुए गोवर्धन अपनी उंगली पर उठा कर गोपों का पालन किया) *गोभिः निगदित-गोविन्द-स्फुट-नामानं* (गौओं ने जिनका 'गोविन्द' नाम प्रसिद्ध किया) *बहुनामानं* (अनेक नाम वाले को) *गोपी-गोचरदूरं* (गोपियों की इन्द्रियों के विषयों से दूर को) *प्रणमत गोविन्दं परम-आनन्दम्* (परम आनन्दस्वरूप गोविन्द को प्रणाम करो।)

जो गौओं के पालक हैं, संसार में लीला करने के लिये जिन्होंने गोपाल शरीर धारण किया है, जो गोपालवंशी हैं, गोपियों के साथ लीला करते हुए जिन्होंने गोवर्धन उठाकर गोपों का पालन किया था, गौओं ने उनका 'गोविन्द' नाम प्रचारित किया, अनेक नामधारी, गोपियों की इन्द्रियों के विषय से दूर परम आनन्दस्वरूप गोविन्द को प्रणाम करो।

(५)

गोपीमण्डलगोष्ठीभेदं भेदावस्थमभेदाभं
शश्वद्गोखुरनिर्धूतोद्धतधूलीधूसरसौभाग्यम्
श्रद्धाभक्तिगृहीतानन्दमचिन्त्यं चिन्तितसद्भावं
चिन्तामणिमहिमानं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्॥

गोपीमण्डलगोष्ठीभेदं (गोपीमण्डल की गोष्ठी में प्रवेश करने वाले को) *भेद-अवस्थं अभेदाभं* (भेद अवस्था में रहते हुए भी अभिन्न दिखाई देते हैं उनको) *शश्वत्* (सदा) *गोखुर-निर्धूत-उद्धत-धूली-धूसर-सौभाग्यम्* (गौओं के खुरों से ऊपर उड़ी हुई धूल से धूसरित होने का सौभाग्य जिन्हें सदा प्राप्त है उनको) *श्रद्धा-भक्ति-गृहीत-आनन्दं* (जो श्रद्धा-भक्ति से प्रसन्न होते हैं उनको) *अचिन्त्यं* (जो चिन्तन से परे हैं उनको) *चिन्तितसद्भावं* (लेकिन सद्भावों से जिनका चिन्तन किया जा सकता उनको) *चिन्तामणिमहिमानं* (चिन्तामणि जैसी महिमा वाले को) *प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्* (परम आनन्द स्वरूप गोविन्द को प्रणाम करो।)

जो गोपीमण्डल में प्रविष्ट हैं, भिन्न अवस्था में भी अभिन्न प्रतीत होते हैं, गौओं के खुरों से ऊपर उड़ी हुई धूल से धूसरित होने का जिन्हें सदा सौभाग्य रहता है, जो श्रद्धा-भक्ति से आनन्दित होते हैं, जिनकी चिन्तामणि जैसी महिमा है, उन परम आनन्दस्वरूप गोविन्द को प्रणाम करो।

(६)

स्नानव्याकुलयोषिद्वस्त्रमुपादायागमुपारूढं
व्यादित्सन्तीरथ दिग्वस्त्रा ह्युपदातुमुपाकर्षन्तम्।
निर्धूतद्वयशोकविमोहं बुद्धं बुद्धेरन्तःस्थं
सत्तामात्रशरीरं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्॥

स्नानव्याकुलयोषिद्-(स्नान करते समय अकुलाई हुई गोपियों के) *वस्त्रं उपादाय* (वस्त्रों को लेकर) *अगम-उपारूढं* (पेड़ प चढ़े हुए को) *व्यादित्सन्तीरथ दिग्वस्त्रा* (जलविहार करती हुई निर्वस्त्र) *हि उपदातुं उप आकर्षन्तम्* (गोपियों को उनके वस्त्र लौटाने के लिये जो उन्हें पास बुला रहे थे) *निर्धूतद्वयशोकविमोहं* (जो शोक और मोह दोनों को मिटाने वाले हैं उनको) *बुद्धं बुद्धेः अन्तस्थं* (बुद्धि से परे ज्ञानस्वरूप हैं उनको) *सत्ता-मात्र-शरीरं* (जिनका शरीर सत्तामात्र है उनको) *प्रणमत गोविन्दं परमानन्दं* (उन परम आनन्दस्वरूप गोविन्द की वन्दना करो।)

स्नानकरते समय अकुलाती हुई गोपियों के वस्त्रों को लेकर जो पेड़ के ऊपर चढ़ गये, और वस्त्रों को लौटाने के लिये निर्वस्त्र जलविहार करती हुई उनको पास बुलाने लगे, उन परमानन्दस्वरूप गोविन्द को प्रणाम करो। वे शोक और मोह दोनों का नाश करने वाले हैं, और बुद्धि से परे शुद्ध ज्ञान स्वरूप हैं। उनका शरीर सत्तामात्र है।

(७)

कान्तं कारणकारणमादिमनादिं कालमनाभासं
कालिन्दीगतकालियशिरसि सुनृत्यन्तं मुहुरत्यन्तम्।
कालं कालकलातीतं कलिताशेषं कलिदोषघ्नं
कालत्रयगतिहेतुं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्॥

कान्तं (मनमोहन को) *कारण-कारणं* (कारणों के भी आदिकारण, आदिसत्ता हैं उन्हें) *आदिं अनादिं* (जो अनादि आदिकारण हैं उन्हें) *अनाभासं कालं* (अदृष्ट कालस्वरूप को) *कालिन्दीगत*-(यमुना में) *कालिय-शिरसि* (कालिय नाग के शिर पर) *सुनृत्यन्तं मुहुरत्यन्तं* (बार-बार अत्यन्त नाचते हुए को) *कालं कालकला-अतीतं* (काल की कलाओं से अतीत, अव्यय, अनन्त को) *कलित-अशेषं* (सर्वज्ञ को) *कलिदोषघ्नं* (कलियुग के दोषों का नाश करने वाले को) *कालत्रयगतिहेतुं* (तीनों कालों- भूत, भविष्यत्, वर्तमान– की गति के कारण को) *प्रणमत परमानन्दं गोविन्दम्* (परम आनन्दस्वरूप गोविन्द को प्रणाम करो)

परम आनन्दस्वरूप गोविन्द की वन्दना करो। वे मनमोहन हैं; कारणों

के आदिकारण और अनादि हैं; अदृश्य कालस्वरूप हैं। वे यमुना के भीतर कालियनाग के शिर पर लगातार नाचते रहे, नाचते रहे। वे काल की कलाओं से अतीत काल हैं। शाश्वत सनातन हैं। वे सर्वज्ञ हें। कलियुग के दोषों का नाश करने वाले हैं। भूत, भविष्यत् और वर्तमान – तीनों कालों की गति के कारण हैं।

(८)

वृन्दावनभुवि वृन्दारकगणवृन्दाराध्यं वन्देऽहं
कुन्दाभामलमन्दस्मेरसुधानन्दं सुहृदानन्दम्।
वन्द्याशेषमहामुनिमानसवन्द्यानन्दपदद्वन्द्वं
वन्द्याशेषगुणाब्धिं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्॥

वृन्दावनभुवि (वृन्दावन की भूमि पर) *वृन्दारकगण*-(देवसमूहों के) *वृन्दा-आराध्यं* (वृन्दा वनदेवता, राधा अथवा तुलसी के आराध्य) *अहं वन्दे* (मैं वन्दना करता हूँ) *कुन्द-आभ-अमल-मन्द-स्मेर-सुधा-आनन्दं* (कुन्द की आभा के समान निर्मल मन्द मुसकान में अमृत के आनन्द को) *सुहृद्-आनन्दं* (सुहृदों के लिये आनन्द देने वाले को) *आनन्दपदद्वन्द्वं* (जिनके आनन्दस्वरूप चरणयुगल) *वन्द्य-अशेषमहामुनिमानसवन्द्य*-(वन्दनीय महामुनियों के मानस के वन्दनीय है) *वन्द्य-अशेष-गुण-अब्धिं* (समस्त वन्दनीय गुणों के सागर को) *परम-आनन्दं गोविन्दं प्रणमत* (परम आनन्दस्वरूप गोविन्द की वन्दना करो।)

परम आनन्दस्वरूप गोविन्द की वन्दना करो। वृन्दावन की कुञ्जों में देवगण और वृन्दा के आराध्य श्रीकृष्ण की मैं वन्दना करता हूँ। कुन्द की आभा के समान उनकी शुभ्र मुस्क्यान अमृत का आनन्द देने वाली है। वे सुहृदों - मित्रों - का आनन्द वर्धन करते हैं। समस्त आदरणीय महामुनियों के हृदय उनके आनन्दस्वरूप चरणयुगल की वन्दना करते हैं। वे समस्त वन्दनीय गुणों के सागर हैं।

(९)

गोविन्दाष्टकमेतदधीते गोविन्दार्पितचेता यो
गोविन्दाच्युत माधव विष्णो गोकुलनायक कृष्णेति।

गोविन्दाङ्घ्रिसरोजध्यानसुधाजलधौतसमस्ताघो
गोविन्दं परमानन्दामृतमन्तःस्थं स समभ्येति॥

यः गोविन्द-अर्पितचेता (जो श्रीगोविन्द में अपने चित्त को समर्पित कर) *गोविन्द-अच्युत-माधव विष्णो गोकुलनायक कृष्ण इति* (हे गोविन्द! हे अच्युत! माधव! विष्णो! गोकुलाधीश! कृष्ण!) *एतद् गोविन्दाष्टकम् अधीते* (इस गोविन्दाष्टक का पाठ करता है) *गोविन्द-अङ्घ्रिसरोजध्यान*-(भगवान् गोविन्द के चरण कमलों के ध्यान से) *सुधाजलधौतसमस्त-अघः* (सुधाजल से समस्त पापों को धोकर) *स अन्तः स्थं परम-आनन्द-अमृतं-अभ्येति* (वह अपने अन्तःकरण में विद्यमान परम आनन्द अमृतरूप गोविन्द को प्राप्त कर लेता है।)

जो मनुष्य भगवान् गोविन्द में चित्त लगाकार 'गोविन्द! अच्युत! माधव! विष्णो! गोकुलाधीश! कृष्ण! आदि नामों का कीर्तन कर, भगवान् के चरण कमलों के चरणामृत से अपने समस्त पापों को धोकर, इस गोविन्दाष्टक का पाठ करता है, वह अपने अन्तःकरण में स्थित परम आनन्दस्वरूप गोविन्द की शरण प्राप्त करता है।

– इति –

श्रीलक्ष्मीनृसिंहकरुणारसस्तोत्रम्

(१)

श्रीमत्पयोनिधिनिकेतन चक्रपाणे
भोगीन्द्रभोगमणिराजितपुण्यमूर्ते।
योगीश शाश्वत शरण्य भवाब्धिपोत
लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम्॥

श्रीमत्-(हे अत्यंत शोभायुक्त) *पयोनिधि*-(समुद्र में) *निकेतन!* (निवास करने वाले!) *चक्रमाणे* (हे चक्रधर!) *भोगीन्द्र*-(शेषजी) *भोगमणि*-(के फणों की मणियों से) *राजित-पुण्यमूर्ते* (सुशोभित दिव्य स्वरूप) *योगीश* (हे यतिश्रेष्ठ!) *शाश्वत* (हे सनातन!) *शरण्य* (शरणागतों के रक्षक) *भव-अब्धि-पोत* (हे संसारसागर को पार कराने के लिये नौकारूप) *लक्ष्मीनृसिंह* (हे लक्ष्मीपति नरसिंह रूपधारी विष्णो!) *मम कर-अवलम्बम् देहि* (मुझ डूबते हुए को अपने हाथ का सहारा दीजिये)

हे शोभायमान समुद्र में निवास करने वाले! (हे क्षीरशायिन् विष्णो!), हे चक्रधर! हे शेषनाग के फणों की मणियों से सुशोभित पवित्रशरीर! हे योगीश्वर! हे शाश्वत! हे शरणदायक! हे भवसागर पार करानेवाले जहाज! हे लक्ष्मीनृसिंह! मुझे अपने हाथ का सहारा दीजिये।

(२)

ब्रह्मेन्द्ररुद्रमरुदर्ककिरीटकोटि-
सङ्घट्टिताङ्घ्रिकमलामलकान्तिकान्त।
लक्ष्मीलसत्कुचसरोरुहराजहंस
लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम्॥

ब्रह्मा-इन्द्र-रुद्र-मरुत्-अर्क-(ब्रह्मा, इन्द्र, शिव, वायु, सूर्य के) *किरीट-कोटि-सङ्घट्टित-*(मुकुटों के किनारों की रगड़ से) *अंध्रिकमल* (चरण कमल) *अमल-कान्ति-कान्त* (शुभ्र कान्ति से कान्तिमान्!) *लक्ष्मी-लसत्-कुच-सरोरुह-*(हे लक्ष्मी के कुचकमल के) *राजहंस* (राजहंस!)

हे लक्ष्मीनृसिंह! आपके चरण कमल ब्रह्मा, शिव, मरुत्, और सूर्य आदि देवताओं के मुकुटों के किनारों के सङ्घर्षण के द्वारा निर्मल कान्ति से देदीप्यमान हैं। हे लक्ष्मी-कुच-कमल-राजहंस! हे श्रीलक्ष्मीनृसिंह! मुझे अपने करकमल का सहारा दीजिये।

(३)

संसारघोरगहने चरतो मुरारे
मारोग्रभीकरमृगप्रवरार्दितस्य
आर्तस्य मत्सरनिदाघनिपीडितस्य
लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम्॥

संसारघोरगहने (इस घोर भवाटवी, संसाररूपी इस घने जंगल में) *चरतः* (भटकते हुए) *मार-उग्र-भीकर-मृगप्रवर-आर्दितस्य* (कामरूपी उग्र और भयानक मृगराज-सिंह से पीड़ित) *आर्तस्य* (डरे हुए) *मत्सर-निदाघ-निपीडितस्य* (लोभ-लालच रूपी धूप से पीड़ित) *लक्ष्मीनृसिंह मम कर-अवलम्बम् देहि* (हे लक्ष्मीनृसिंह! मुझे अपने करकमल का सहारा दीजिये)

हे मुरारे! मैं इस संसार रूपी घने जंगल में भटक रहा हूँ। उग्र भयानक कामरूपी सिंह मुझे भयभीत कर रहा है। लोभ-लालच रूपी ताप में मुझे वेदना हो रही है। हे लक्ष्मीनृसिंह मुझे अपने कर कमल का सहारा दीजिये।

(४)

संसारकूपमतिघोरमगाधमूलं
सम्प्राप्य दुःखशतसर्पसमाकुलस्य।
दीनस्य देव कृपणापदमागतस्य
लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम्॥

संसार-कूपं (संसाररूपी कुँआ) *अतिघोरं* (अत्यन्त भयानक) अगाध-मूलं

(गहरे-कुएँ के तल में) संप्राप्य (पहुँचकर) *दुःखशतसर्पसमाकुलस्य* (दुःखरूपी सैकड़ों सर्पों से व्याकुल) *दीनस्य कृपणस्य* (इस दीन कृपण, वेसहारा) *आपदं-आगतस्य* (आपत्तिग्रस्त को) *लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम्* (हे लक्ष्मीनृसिंह! अपने हाथ का सहारा दीजिये)

हे लक्ष्मीपति नृसिंह! संसाररूपी भयानक गहरे कुँए के तल पर पहुँचकर, मैं दुःखरूपी सैकड़ों सर्पों से व्याकुल हो रहा हूँ। हे देव! मुझ दीन आपद्ग्रस्त कृपण को अपने करकमल का सहारा दीजिये।

(५)

संसारसागरविशालकरालकाल-
नक्रग्रहग्रसननिग्रहविग्रहस्य।
व्यग्रस्य रागरसनोर्मिनिपीडितस्य
लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम्॥

संसार-सागर-(संसाररूपी सागर में) *विशाल-कराल-काल-*(बहुत बड़े और काल के समान कराल) *नक्र-ग्रह-ग्रसन-निग्रह-विग्रहस्य* (मगर और घड़ियालों के पकड़ने से जिसका शरीर क्षतविक्षत हो गया है उसे) *व्यग्रस्य* (जो व्यथित है उसे) *राग-रसना-ऊर्मि-निपीडितस्य* (जो आसक्ति और रसनारूप तरंगों से अत्यंत पीड़ित है उसे)

हे श्रीलक्ष्मीनृसिंह! मेरा शरीर इस संसारसागर के विशाल कालस्वरूप मगरमच्छों ने पकड़-पकड़ कर क्षत-विक्षत कर दिया है। मैं अत्यन्त विकल हूँ। आसक्ति और रसना-सुख रूपी तरङ्गों से मैं अत्यन्त सन्तप्त हूँ। हे देव! अपने करकमल का मुझे सहारा दीजिये।

(६)

संसारवृक्षमघबीजमनन्तकर्म-
शाखाशतं करणपत्रमनङ्गपुष्पम्।
आरुह्य दुःखफलितं पततो दयालो
लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम्॥

दयालो (हे दयालो प्रभो!) *संसार-वृक्ष-अघ-बीजम्* (इस संसाररूपी वृक्ष का

बीज पाप है) *अनन्तकर्मशाखाशतं* (अनगिनत कर्म सैकड़ों शाखायें हैं) *करणपत्रम्* (इन्द्रियाँ पत्ते हैं) *अनङ्ग-पुष्पम्* (काम इसका पुष्प है) *दुःखफलितं* (और दुख इसका फल है) *आरुह्य पततः* (इस पर चढ़कर अब मैं नीचे गिर रहा हूँ)

हे कृपालो प्रभो! इस संसाररूपी वृक्ष का पाप बीज है। अनगिनत कर्म इसकी सैकड़ों शाखायें हैं। इन्द्रियाँ पत्ते हैं। काम इसका पुष्प है, और दुःख इसका फल है। इस संसाररूपी वृक्ष पर सवार मैं अब गिर रहा हूँ। मुझे अपने करकमल का सहारा दीजिये।

(७)

संसारसर्पघनवक्त्रभयोग्रतीव्र-
दंष्ट्राकरालविषदग्धविनष्टमूर्तेः
नागारिवाहन सुधाब्धिनिवास शौरे
लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम्॥

संसारसर्प-(संसाररूपी सर्प) *घनवक्त्र*-(विकट मुख) *भय-उग्र-तीव्र-दंष्ट्राकराल*-(भयावह उग्र और तीखी कराल दाढ़ों के) *विष-विदग्ध-विनष्टमूर्तेः* (विष से दग्ध होकर नष्ट हो गई है काया जिसकी उसे) *नाग-अरि-वाहन* (हे गरुड़वाहन!) *सुधा-अब्धि-निवास* (हे क्षीरसागरशायिन्!) *शौरे* (हे शूरसेन के वंशज)

इस संसारसर्प के विकरालमुख की विकट दाढ़ों के कराल विष से दग्ध होकर नष्टकाय मुझको हे गरुड़वाहन! हे शौरे! हे क्षीरसागरशायिन्! हे लक्ष्मीनृसिंह! आप अपने करकमल का सहारा दीजिये।

(८)

संसारदावदहनातुरभीकरोरु-
ज्वालावलीभिरतिदग्धतनूरुहस्य।
त्वत्पादपद्मसरसीशरणागतस्य
लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम्॥

संसारदाव-(संसाररूपी दावानल) *दहन-आतुर*-(दाह से विकल) *भीकर-ऊरु*-

(भयङ्कर और विशाल) *ज्वालावलीभिः* (ज्वालाओं से) *अति-दग्ध-तनू-रुहस्य* (जिसके रोम-रोम अत्यन्त दग्ध हो गये हैं) *त्वत्-पादपद्म-*(आपके चरण कमलरूपी) *सरसी-*(सरोवर) *शरण-आगतस्य* (का आश्रय किया है)

संसाररूपी दावानल की भयङ्कर और विशाल ज्वालाओं के दाह से मेरा रोम-रोम जल रहा है। मैं अत्यन्त आतुर हूँ। मैंने आपके चरणकमलरूपी सरोवर की शरण ली है। हे लक्ष्मीनृसिंह! अपने हाथ का मुझे सहारा दीजिये।

(९)

संसारजालपतितस्य जगन्निवास
सर्वेन्द्रियार्तवडिशार्थ झषोपमस्य।
प्रोत्खण्डितप्रचुरतालुकमस्तकस्य
लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम्॥

जगत्-निवास (हे जगन्निवास!) *सर्व-इन्द्रिय-आर्त-वडिश-अर्थ* (इन्द्रियों के विषयरूपी मछली पकड़ने के काँटे में फँसी हुई) *झषोपमस्य* (मछली के समान) *संसारजालपतितस्य* (संसाररूपी जाल में फँसे हुए के लिये) *प्रोत्खण्डित-प्रचुर-तालुक-मस्तकस्य* (जिसके तालु और मस्तक क्षतविक्षत हो गये हैं।)

हे जगन्निवास! विषयरूपी मछली पकड़ने के काँटे में फँसे हुए मत्स्य के समान में तड़प रहा हूँ। मेरे अङ्ग – तालु और मस्तक – क्षत-विक्षत हो गये हैं। मैं संसार की मोह-माया के जाल में उलझ गया हूँ। हे लक्ष्मीनृसिंह! मुझे अपने करकमल का सहारा दीजिये।

(१०)

संसारभीकरकरीन्द्रकराभिघात-
निष्पिष्टमर्मवपुषः सकलार्तिनाश।
प्राणप्रयाणभवभीतिसमाकुलस्य
लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम्॥

सकल-आर्तिनाश (हे समस्त पीड़ाओं को नष्ट करने वाले!) *संसार-भीकर-करि-इन्द्र-*(संसाररूपी विशालकाय गजराज) *कर-अभिघात-*(सूँड़ के आघात

से) *निष्पिष्ट-मर्म-वपुषः* (जिसके शरीर के मर्मस्थल कुचल गये हैं उसे) *प्राणप्रयाण*-(मृत्यु, जब प्राणपखेरु उड़ जाते हैं) *भवभीतिसमाकुलस्य* (संसार में जन्म-मरण के भय से अत्यंत व्याकुल के लिये)

हे सकलसन्तापहर्तः! इस संसार रूपी विशाल गजराज ने अपनी सूँड़ से कुचल कर मेरे शरीर के मर्मस्थलों को आहत कर दिया है। जिस प्रकार प्राण निकलने के समय डर लगता है, वैसे ही मैं इस संसार में आवागमन के चक्कर से भयभीत हूँ। हे लक्ष्मीनृसिंह! मुझे अपने करकमल का सहारा दीजिये।

(११)

अन्धस्य मे हृतविवेकमहाधनस्य
चोरैः प्रभो बलिभिरिन्द्रियनामधेयैः।
मोहान्धकूपकुहरे विनिपातितस्य
लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम्॥

प्रभो (हे भगवन्!) *इन्द्रियनामधेयैः* (इन्द्रिय नामधारी) *बलिभिः चोरैः* (बलशाली चोरों द्वारा) *हृतविवेकमहाधनस्य* (जिसका विवेकरूपी मुख्य धन हर लिया गया है उसे) *मोह-अन्धकूपे* (और जो मोहरूपी अन्धे कुँए में) *विनिपातिस्य* (बहुत नीचे गिरा दिया गया है उसे)

हे भगवन्! इन्द्रिय नामक प्रबल चोरों ने मेरे विवेकरूप महाधन को छीन लिया है और मुझे अन्धा कर दिया है। मुझे इन चोरों ने मोहरूप गहरे अन्धकूप में धकेल दिया है। इस अन्धे, निर्बल, विवश दीन जन को, हे लक्ष्मीनृसिंह! अपने करकमल का सहारा दीजिये।

पिछले पद्यों में संसाररूपी अन्धे कुँए में पड़े हुए (४), मगरमच्छों से भरे हुए महासागर (५), पापों से उत्पन्न संसारवृक्ष (६), संसाररूपी विषधर से डसा हुआ (७), संसाररूपी दावानल में दग्ध (८), संसाररूप जाल में फँसी मछली (९) गजराज की सूँड़ से कुचले हुए असहाय जन आदि की उपमाओं द्वारा संसार के दीन-दुःखी जनों की पीड़ा बता कर लक्ष्मीपति भगवान् नृसिंह से सहारा देने की प्रार्थना की गई है। इस स्तोत्र का 'संकष्टनाशनस्तोत्रम्' नाम प्रसिद्ध है।

पद्य संख्या ११ *(अन्धस्य हृतविवेकमहाधनस्य)*, ज्यों-का-त्यों, कुलशेखर कृत *मुकुन्दमाला* में मिलता है।

(१२)

लक्ष्मीपते कमलनाभ सुरेश विष्णो
वैकुण्ठ कृष्ण मधुसूदन पुष्कराक्ष।
ब्रह्मण्य केशव जनार्दन वासुदेव
देवेश देहि कृपणस्य करावलम्बम्॥

हे लक्ष्मीपते! हे कमलनाभ! हे सुरेश! हे विष्णो! हे वैकुण्ठ! हे कृष्ण! हे मधुसूदन! हे कमलनयन! हे ब्रह्मण्य! हे केशव! हे जनार्दन! हे वासुदेव! हे देवेश! मैं अत्यन्त दीन हूँ। मुझे अपने करकमल का सहारा दीजिये।

(१३)

यन्माययोर्जितवपुःप्रचुरप्रवाह-
मग्नार्थमत्र निवहोरुकरावलम्बम्।
लक्ष्मीनृसिंहचरणाब्जमधुव्रतेन
स्तोत्र कृतं सुखकरं भुवि शङ्करेण॥

यत्-मायया-ऊर्जित-वपुः (जिसका शरीर – स्वरूप – माया से उत्पन्न हुआ है) *प्रचुर-प्रवाहः* (जिसका बड़ा तेज प्रवाह है) *मग्न-अर्थं* (उसमें डूबे हुए लोगों के लिये) *निवह ऊरु-कर-अवलम्बम्* (हाथ का बड़ा सहारा देने वाला) *लक्ष्मीनृसिंह-चरण-अब्ज-*(लक्ष्मीनृसिंह के चरण कमल) *मधुव्रतेन* (मधुकररूप) *शङ्करेण भुवि सुखकरं स्तोत्रं कृतम्* (आचार्य शङ्कर ने इस संसार में इस सुखदायी स्तोत्र की रचना की)

इस संसार का स्वरूप माया से प्रकट हुआ है। इसके प्रबल प्रवाह में डूबते हुए मनुष्यों के लिये बड़ा दृढ़ हाथ का सहारा इस स्तोत्र के रूप में है। इस सुखकर स्तोत्र की रचना इस पृथ्वी पर लक्ष्मीनृसिंह के चरण कमलों के मधुकर रूप आचार्य शंकर ने की।

– इति –

श्रीकृष्णाष्टकम्

(१)

भजे व्रजैकमण्डनं समस्तपापखण्डनं
स्वभक्तचित्तरञ्जनं सदैव नन्दनन्दनम्।
सुपिच्छगुच्छमस्तकं सुनादवेणुहस्तकं
अनङ्गरङ्गसागरं नमामि कृष्णनागरम्॥

व्रज-एक-मण्डनं (व्रजमण्डल के एकमात्र आभूषण को) *समस्तपापखण्डनं* (सारे पापों को नष्ट करने वाले को) *स्वभक्तचित्तरञ्जनं* (अपने भक्तों के चित्त को आनन्दित करने वाले को) *नन्दनन्दनम्* (नन्दकुमार को) *सदा एव भजे* (सदा ही भजता हूँ) *सुपिच्छगुच्छमस्तकं* (जिनके मस्तक पर सुन्दर मोर-पंखों का मुकुट है उनको) *सुनादवेणुहस्तकं* (जिनके हाथों में सुमधुर वंशी है उनको) *अनङ्गरङ्गसागरं* (जो कामकला के सागर हैं उन्हें) *कृष्णनागरं नमामि* (उन चतुरशिरोमणि कृष्ण को नमस्कार करता हूँ)

मैं व्रजमण्डल के अद्वितीय आभूषण, सब प्रकार के पापों को नष्ट करने वाले, और अपने भक्तों के मन को आनन्दित करने वाले नन्दकुमार श्रीकृष्ण को भजता हूँ। जिनके सिर पर मोर-पङ्ख का सुन्दर मुकुट है, हाथ में मधुर ध्वनि करने वाली मुरली है, और जो कामकला के सागर हैं, उन चतुर शिरोमणि श्रीकृष्ण को मेरा प्रणाम।

(२)

मनोजगर्वमोचनं विशाललोललोचनं
विधूतगोपशोचनं नमामि पद्मलोचनं।
करारविन्दभूधरं स्मितावलोकसुन्दरं
महेन्द्रमानदारणं नमामि कृष्णवारणम्॥

मनोजगर्वमोचनं (अपने सौन्दर्य से कामदेव को लज्जित करने वाले को, "साक्षान्मन्मथमन्मथः") *विशाललोललोचनं* (बड़े-बड़े सुन्दर नेत्रों वाले को) *विधूतगोपशोचनं* (अपने गोपसखाओं का शोक दूर करनेवाले को) *पद्मलोचनं नमामि* (अरविन्दाक्ष श्रीकृष्ण को नमस्कार करता हूँ) *कर-अरविन्द-भूधरं* (अपने करकमलों से गिरिराज गोवर्धन को उठानेवाले को) *स्मित-अवलोक-सुन्दरं* (जिनकी चितवन और मुस्क्यान मनोहर है उनको) *महेन्द्र*-(इन्द्र) *मानदारणं* (मान-मर्दन करने वाले को) *कृष्णवारणम्* (गजराज श्रीकृष्ण को) *नमामि* (नमस्कार करता हूँ)

मैं कामदेव का मान-मर्दन करने वाले, बड़े-बड़े सुन्दर नयनकमल वाले, सब पापों को मिटाने वाले, गोपसखाओं की चिन्ता मिटाने वाले, अरविन्दाक्ष श्रीकृष्ण को प्रणाम करता हूँ। अपने हाथों में गिरिराज गोवर्धन को उठाने वाले, मनोहर मुस्क्यान और चितवनवाले, देवराज इन्द्र का गर्व दलन करनेवाले श्रीकृष्णरूपी गजराज को नमस्कार करता हूँ।

(३)

कदम्बसूनकुण्डलं सुचारुगण्डमण्डलं
व्रजाङ्गनैकवल्लभं नमामि कृष्णदुर्लभम्।
यशोदया समोदया सगोपया सनन्दया
युतं सुखैकदायकं नमामि गोपनायकम्।

कदम्बसून-कुण्डलं (जिनके कानों में कदम्बप्रसूनों के कुण्डल हैं उनको) *सुचारुगण्डमण्डलं* (जिनके कपोल अत्यन्त कमनीय हैं उन्हें) *व्रजाङ्गना-एक वल्लभं* (जो ब्रजबालाओं के एकमात्र प्रियतम हैं उन्हें) *कृष्णदुर्लभम् नमामि* (अलभ्य श्रीकृष्ण को प्रणाम करता हूँ।) *समोदया यशोदया* (मुदितमन यशोदा से युक्त) *सगोपया सनन्दया* (गोपगण और नन्दबाबा से युक्त) *युतं* (युक्त) *सुख-एक-दायकं* (अद्वितीय सुखदायक) *गोपनायकं नमामि* (गोपेश श्रीकृष्ण को नमस्कार करता हँ)

मैं उन भगवान् श्रीकृष्ण को प्रणाम करता हूँ जिन्होंने अपने कानों में कदम्ब प्रसूनों के कुण्डल धारण कर रखे हैं, जिनके अत्यन्त मनोहर कपोल हैं, जो ब्रजबालाओं के एकमात्र प्रियतम हैं, और जो भक्तिहीन लोगों के

लिये दुर्लभ हैं, गोपियों और नन्दबाबा के सहित मुदितमन यशोदा से युक्त अद्वितीय सुखदायक गोपेश श्रीकृष्ण को मैं नमस्कार करता हूँ।

(४)

सदैव पादपङ्कजं मदीयमानसे निजं
दधानमुक्तमालकं नमामि नन्दबालकम्।
समस्तदोषशोषणं समस्तलोकपोषणं
समस्तगोपमानसं नमामि नन्दलालसम्॥

निजं पादपङ्कजं (अपने चरण कमल) *सदा एव मदीय-मानसे* (सदा ही मेरे मनरूपी सरोवर में) *दधान-मुक्तमालकं* (मोतियों की माला धारण करने वाले को) *नन्दबालकं नमामि* (नन्दनन्दन कृष्ण को नमस्कार करता हूँ) *समस्त* (सारे) *दोषशोषणं* (दोषों को दूर करने वाले को) *समस्तलोकपोषणं* (सारे लोकों का पालन करनेवाले को) *समस्तगोपमानसं* (सारे गोप-गोपालों के मन को) *नन्दलालसं नमामि* (नन्दबाबा की लालसा को नमस्कार)

जो श्रीकृष्ण अपने चरणकमलों को मेरे मनरूपी सरोवर में सदा रखते हैं, मोतियों की माला धारण करते हैं, सारे दोषों को मिटाते हैं, सारे लोकों का पालन करते हैं, सारे गोपसखाओं के हृदय में निवास करते हैं, और नन्दबाबा की लालसा हैं, उन नन्दनन्दन को मैं प्रणाम करता हूँ।

(५)

भुवो भरावतारकं भवाब्धिकर्णधारकं
यशोमतीकिशोरकं नमामि चित्तचोरकम्।
दृगन्तकान्तभङ्गिनं सदासदालसङ्गिनं
दिने दिने नवं नवं नमामि नन्दसम्भवम्॥

भुवः (पृथ्वी का) *भर-अवतारकं* (भार उतारने वाले को) *भव-अब्धिकर्णधारकं* (संसार-सागर के कर्णधार को) *यशोमतीकिशोरकं* (यशोदानन्दन को) *चित्तचोरकं नमामि* (चितचोर को नमस्कार करता हूँ) *दृग्-अन्त-कान्त-भङ्गिनं* (सुन्दर नयनों की कोरवाले को) *सदासदालसङ्गिनं* (सदैव मनोहर आभूषण धारण करने वाले को) *दिने दिने नवं नवं* (दिन-

दिन नित्य नवीन, ''दिने-दिने यन्नवतामुपेति'') *नमामि नन्दसम्भवम्* (नन्दलाल को नमस्कार करता हूँ) सदालः का अर्थ बेल, नारियल भी होता है।

पृथ्वी का भार उतारने वाले, भवसागर पार कराने के लिये कर्णधार, यशोदानंदन चितचोर श्रीकृष्ण को प्रणाम करता हूँ। कमनीय कटाक्ष वाले, सदा सुन्दर आभूषण धारण करने वाले, दिन-दिन नित्य-नवीन नन्दकुमार को नमस्कार करता हूँ।

(६)

गुणाकरं सुखाकरं कृपाकरं कृपापरं
सुरद्विषन्निकन्दनं नमामि गोपनन्दनम्।
नवीनगोपनागरं नवीनकेलिलम्पटं
नमामि मेघसुन्दरं तडित्प्रभालसत्पटम्।।

गुणाकरं (समस्त गुणों के भण्डार को) *सुख-आकरं* (आनन्दसरोवर को) *कृपा-आकरं* (कृपासागर को) *कृपा-परं* (परम कृपालु को) *सुर-द्विषत् निकन्दनं* (देवताओं के वैरी दानवों का नाश करनेवाले को) *गोपनन्दनं नमामि* (नन्दगोपकुमार को) *नमामि* (नमस्कार करता हूँ) *नवीनगोपनागरं* (नित्यनवीन नटनागर को) *नवीनकेलिलम्पटं* (नित्यनवीन लीलाचतुर को) *मेघसुन्दरं* (श्यामसुन्दर को) *तडित्-प्रभा-लसत्-पटम्* (जिन्होंने बिजली के समान चमकीला पीताम्बर धारण किया हुआ है। नमामि (नमस्कार करता हूँ)

जो श्रीकृष्ण गुणों के भण्डार हैं, सुखसागर हैं, कृपासागर, परम कृपालु, देवताओं के शत्रु दानवों का विध्वंस करने वाले हैं, नितनूतन लीलाधर हैं, चतुरशिरोमणि गोप हैं, मेघश्यामसुन्दर हैं, बिजली जैसी चमकवाले पीताम्बर को धारण किये हुए हैं, उन नन्दगोपनन्दन को प्रणाम करता हूँ।

(७)

समस्तगोपनन्दनं हृदम्बुजैकमोदनं
नमामि कुञ्जमध्यगं प्रसन्नभानुशोभनम्।
निकामकामदायकं दृगन्तचारुसायकं
रसालवेणुगायकं नमामि कुञ्जनायकम्।।

समस्तगोपनन्दनं (सारे बालगोपालों की आँखों के तारे) *हृद्-अम्बुज-एक-मोदनं* (हृदयरूपी कमल को प्रभुदित, प्रफुल्लित करने वाले को) *कुञ्जमध्यगं* (केलि-कुञ्ज के भीतर जानेवाले कुञ्जबिहारी को) *प्रसन्नभानुशोभनम्* (निर्मल सूर्य के समान शोभायमान को) *निकामकामदायकं* (पुष्कल मनोवाञ्छित कामनाओं को पूर्ण करनेवाले को) *दृक्-अन्त-चारु-सायकं* (वाण के समान चारु चितवनवाले को) *रसालवेणुगायकं* (मधुर वंशी बजानेवाले को) *कुञ्जनायकं* (कुञ्जविहारी को)

गोपगणों की आँखों के तारे, हृदयरूपी कमल को खिलानेवाले चमकते हुए सूर्य के समान शोभायमान, कुञ्जबिहारी श्रीकृष्ण को नमस्कार। जो मनोवाञ्छित समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं, बाण जैसे कटीले कटाक्षवाले हैं, मधुर मुरली की तान पर गायन करने वाले हैं, उन कुञ्ज केलि नटनागर को प्रणाम करता हूँ।

(८)

विदग्धगोपिकामनोमनोज्ञतल्पशायिनं
नमामि कुञ्जकानने प्रबृद्धवह्निपायिनम्।
किशोरकान्तिरञ्जितं दृगञ्जनं सुशोभितं
गजेन्द्रमोक्षकारिणं नमामि श्रीविहारिणम्।।

विदग्धगोपिका-(चतुर गोपियाँ) *मनः मनोज्ञ* (मन के मनोरम) *तल्पशायिनं* (पलङ्ग पर शयन करनेवाले को) *कुञ्जकानने प्रबुद्धवह्निपायिनम्* (कुञ्जवन में बढ़ती हुई अग्नि का पान करनेवाले को) *किशोरकान्तिरञ्जितं* (तरुणाई की कान्ति से सुशोभित) *गजेन्द्रमोक्षकारिणं* (गजेन्द्र को ग्राह से छुड़ानेवाले को) *श्रीविहारिणं नमामि* (श्री राधाजी के साथ विहार करनेवाले को नमस्कार करता हूँ।)

चतुर गोपियों के मनरूपी मनोहर पलंग पर शयन करने वाले, कुञ्जवन में फैलती हुई दावाग्नि का पान करने वाले, किशोरकान्ति से सुशोभित, अञ्जन से सुशोभित नेत्रों वाले, गजेन्द्र को ग्राह से छुड़ाने वाले, श्रीराधा के साथ विहार करने वाले, श्रीकृष्ण को प्रणाम करता हूँ।

(६)

यदा तदा यथा तथा तथैव कृष्णसत्कथा
मया सदैव गीयतां तथा कृपा विधीयताम्।
प्रमाणिकाष्टकद्वयं जपत्यधीत्य यः पुमान्
भवेत्स नन्दनन्दने भवे भवे सुभक्तिमान्।।

(हे प्रभो!) यदा तदा यथा तथा तथा एव (जब-जब, जैसी-भी स्थिति में, जहाँ-जहाँ भी, मैं रहूँ) *कृष्ण-सत्-कथा मया सदा एव गीयतां* (मैं श्रीकृष्ण की सत्कथाओं का सदा ही गान कीर्तन करता रहूँ) *तथा कृपा विधीयताम्* (ऐसी कृपा कीजिये) *यः पुमान्* (जो पुरुष) *प्रमाणिका अष्टकद्वयं* (इन दोनों प्रामाणिक अष्टक द्वय का) *जपति अधीत्य* (समझ कर पाठ करता है) *सः नन्दनन्दने भवे भवे सुभक्तिमान् भवति* (वह जन्म-जन्म में नन्दनन्दन श्रीकृष्ण की भक्ति से युक्त होता है।)

हे प्रभो! मैं जहाँ-जहाँ, जैसी-भी अवस्था में रहूँ, श्रीकृष्ण की सत्कथाओं का सदा कीर्तन करता रहूँ– यही कृपा कीजिये। जो पुरुष इन प्रामाणिक अष्टक द्वय का अच्छी तरह अध्ययन कर पाठ करते हैं, उनकी नन्दनन्दन श्रीकृष्ण में सदा भक्ति बनी रहती है।

(इस स्तोत्र के अन्त में कहा गया है 'प्रमाणिक अष्टकद्वयं'– यह श्रीकृष्णाष्टकम् और अगला कृष्णाष्टकम् – दोनों प्रमाणिक हैं। अगले कृष्णाष्टकम् के अन्त में सूचना दी गई है कि आचार्य ने अपनी माता की मुक्ति के लिये, उनके अन्तसमय, इस स्तोत्र से भगवान् की आराधना की और वे प्रकट हुए। जो विद्वान् इस स्तोत्र को, अथवा अगले स्तोत्र को, अथवा दोनों को, आदि शंकराचार्य की रचना नहीं मानते हों, उनसे सहमत होते हुए भी इतने सुललित स्तोत्रों को मैं छोड़ नहीं पाया हूँ।)

– इति –

कृष्णाष्टकम्

(१)

श्रियाश्लिष्टो विष्णुः स्थिरचरवपुर्वेदविषयो
धियां साक्षी शुद्धो हरिरसुरहन्ताब्जनयनः।
गदी शङ्खी चक्री विमलवनमाली स्थिररुचिः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः॥

श्रिया आश्लिष्टः (जो श्रीलक्ष्मी जी द्वारा आलिङ्गित, श्रीयुक्त हैं) *विष्णु* (सर्वव्यापक हैं) *स्थिर-चर-वपुः* (चराचर शरीरधारी हैं) *वेदविषयः* (श्रुति संवेद्य हैं) *धियां साक्षी* (बुद्धियों के साक्षी हैं) *शुद्धः* (मायारहित हैं) *हरिः असुरहन्ता* (असुरों को पराजित करनेवाले श्रीहरि हैं) *अब्जनयनः* (अरविन्दाक्ष हैं) *गदी शङ्खी चक्री* (शंख-चक्र-गदाधारी हैं) *विमलवनमाली* (शुभ्र वनमाला धारण किये हुए हैं) *स्थिररुचिः* (स्थिर, अचञ्चल आभायुक्त हैं) *शरण्यः लोकेशः* (लोकों के स्वामी शरणागतवत्सल हैं) *कृष्णः मम अक्षि-विषयः भवतु* (वे श्रीकृष्ण मेरे नेत्रों के सामने प्रकट हों)

श्रीयुक्त, सर्वव्यापक, चराचरवपु, वेद-संवेद्य, समस्त प्रज्ञाओं के साक्षी, विमलस्वरूप, श्रीहरि असुरहन्ता, कमलनयन, शंख-चक्र-गदाधारी, विमलवनमाला धारण करनेवाले, अचञ्चल आभायुक्त, शरणदायक त्रिलोकीनाथ, श्रीकृष्ण मेरे नेत्रों को दर्शन दें।

(भगवान् विष्णु और उनके अवतार श्रीकृष्ण का एक साथ वर्णन स्थान-स्थान पर मिलता है। ''कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्''।)

(२)

यतः सर्वं जातं वियदनिलमुख्यं जगदिदं
स्थितौ निःशेषं योऽवति निजसुखांशेन मधुहा।

लये सर्वं स्वस्मिन् हरति कलया यस्तु स विभुः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः॥

यत्-(जिनसे) *वियद्-अनिल-मुख्यं* (आकाश और वायु आदि) *सर्वं इदं जगत् जातं* (यह सारा जगत् उत्पन्न हुआ है) *यः मधुहा* (जो मधुसूदन) *निजसुखांशेन* (अपने आनन्द के अंश से) *स्थितौ निःशेषं अवति* (स्थिति में सबकी रक्षा करते हैं) *लये सर्वं स्वस्मिन् हरति* (प्रलयकाल में सारी सृष्टि लीला मात्र से अपने में ही विलीन कर लेते हैं) *सः विभुः* (वे सर्वव्यापक) *शरण्यः लोकेशः कृष्णः मम अक्षिविषयः भवतु* (वे शरणदायक त्रिलोकीनाथ मुझे दर्शन दें)

जिनसे सृष्टि के समय आकाश और वायु आदि से लेकर यह समस्त चराचर जगत् उत्पन्न होता है, जो मधुसूदन स्थिति के समय, अपने आनन्द के अंश से, इस सबकी रक्षा करते हैं, और प्रलय के समय जो विभु, शरणदायक, त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्ण इस समस्त प्रपञ्च को अपने आप में विलीन कर लेते हैं, वे मुझे दर्शन दें।

(३)

असूनायम्यादौ यमनियममुख्यैः सुकरणै-
र्निरुध्येदं चित्तं हृदि विमलमानीय सकलम्।
यमीड्यं पश्यन्ति प्रवरमतयो मायिनमसौ
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः॥

यं ईड्यं मायिनं (जिस पूज्य मायापति को) *प्रवरमतयः* (प्रज्ञावान् मनुष्य) *आदौ* (आरम्भ में) *यम-नियम-मुख्यैः* (यम-नियम आदि) *सुकरणैः* (योग-क्रियाओं से) *असून् आयम्य* (प्राणों पर नियन्त्रण कर) *इदं सकलं विमलं हृदि आनीय पश्यन्ति* (इस समस्त मायामय संसार को अपने हृदय में देखते हैं) *शरण्यो लोकेशो मम कृष्णः अक्षि-विषयः भवतु* (वे त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्ण मुझे दर्शन दें।)

जिन वन्दनीय मायापति को प्रज्ञावान् मनुष्य, यम-नियम आदि योगक्रियाओं से प्राणों को नियन्त्रित कर, इस समस्त जगत्प्रपञ्च को अपने

हृदय में देखते हैं, वे शरणागतवत्सल, त्रिलोकीनाथ भगवान् श्रीकृष्ण मुझे दर्शन दें।

(४)

पृथिव्यां तिष्ठन् यो यमयति महीं वेद न धरा
यमित्यादौ वेदो वदति जगतामीशममलम्।
नियन्तारं ध्येयं मुनिसुरनृणां मोक्षदमसौ
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः॥

पृथिव्यां तिष्ठन् (इस पृथ्वी पर रहते हुए भी) *यः महीं यमयति* (जो समस्त पृथ्वी का नियमन करते हैं) *धरा न वेद* (किन्तु पृथ्वी उस पृथ्वीनाथ को नहीं जानती) *यं इति आदौ* (जिस आदि-अन्त को) *अमलं जगतां ईशं* (उस मायातीत जगदीश्वर को) *नियन्तारं ध्येयं मुनिसुरनृणां असौ मोक्षदं* (उन नियन्ता, परमगति और मुनि, देवता और मनुष्यों को मुक्ति देने वाले को) *वेदः वदति* (श्रुति बतलाती है)

जो इस पृथ्वी पर रहते हुए ही इस सारी पृथ्वी का नियन्त्रण करता है, किन्तु पृथ्वी उसे नहीं जानती, जिस मायातीत जगदीश्वर, नियन्ता, परमगति और मुनि-देव-मानवों के मुक्तिदाता का वेद वर्णन करते हैं, वह शरणागतवत्सल, त्रिलोकीनाथ मेरे नेत्रों के समक्ष प्रकट हों।

(५)

महेन्द्रादिर्देवो जयति दितिजान्यस्य बलतो
न कस्य स्वातन्त्र्यं क्वचिदपि कृतौ यत्कृतिमृते
कवित्वादेर्गर्वं परिहरति योऽसौ विजयिनः।
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः॥

यस्य बलतः (जिनकी शक्ति से) *महेन्द्र-आदिः देवः* (इन्द्र आदि देवगण) *दितिजान्* (दिति के पुत्र दैत्यों को) *जयति* (जीतते हैं) *यत्-कृतिं ऋते* (जिनकी ऊर्जा विना) *क्वचित् अपि कृतौ* (किसी भी कार्य में) *न कस्य स्वातन्त्र्यं* (किसी की भी स्वतंत्रता नहीं है) *यः असौ कवित्वादेः विजयिनः गर्वं परिहरति* (कवियों और विजयी लोगों के गर्व का हरण करते हैं)

जिनकी शक्ति से इन्द्र आदि देवगण दैत्यों पर विजयी होते हैं, जिनकी ऊर्जा बिना किसी भी कार्य में कोई स्वतंत्र नहीं है, जो कवित्व आदि का गर्व करनेवालों का अभिमान चूर करते हैं, वे शरणागतवत्सल, त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्ण मुझे दर्शन दें।

(६)

विना यस्य ध्यानं व्रजति पशुतां सूकरमुखां
विना यस्य ज्ञानं जनिमृतिभयं याति जनता।
विना यस्य स्मृत्या कृमिशतजनिं याति स विभुः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः॥

यस्य ध्यानं विना (जिसके ध्यान के विना) *सूकरमुखां पशुतां व्रजति* (मनुष्य को सूअर आदि पशुयोनियों में जाना पड़ता है) *यस्य ज्ञानं विना* (जिसके ज्ञान के बिना) *जनिमृतिभयं याति जनता* (जीव जन्म और मृत्यु के भय को प्राप्त होते हैं) *विना यस्य स्मृत्या* (जिनका स्मरण किये विना) *कृमिशतजनिं याति* (मनुष्य सैकड़ों कीड़े-मकोड़ों की योनि में जन्म लेता है) *सः विभुः* (वह सर्वव्यापी) *शरण्यो लोकशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः* (वे शरणागतवत्सल त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्ण मुझे दर्शन दें)

जिनका ध्यान किये विना मनुष्य को शूकर आदि पशुयोनियों में जाना पड़ता है, जिनके ज्ञान के विना जन्म-मरण का मनुष्यों को भय रहता है, जिसके स्मरण विना सैकड़ों कीड़े-मकोड़ों की योनि में जन्म लेना पड़ता है, वे सर्वव्यापी, शरणागतवत्सल, त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्ण मुझे दर्शन दें।

(७)

नरातङ्कोत्तङ्कः शरणशरणो भ्रान्तिहरणो
घनश्यामः कामो व्रजशिशुवयस्योऽर्जुनसखः
स्वयम्भूर्भूतानां जनक उचिताचारसुखदः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः॥

नर-आतङ्क-उत्तङ्कः (जो मनुष्यों के भय को दूर करने वाले हैं) *शरणशरणः* (शरणागतों को शरण देने वाले हैं) *भ्रान्तिहरणः* (भ्रम का निवारण करने

वाले हैं) *घनश्यामः* (जल से भरे हुए मेघ के समान श्यामसुन्दर हैं) *कामः* (कमनीय हैं) *व्रजशिशुवयस्यः* (ब्रज के गोप-सखाओं के समवयस्क हैं) *अर्जुनसखः* (अर्जुन के सखा हैं) *स्वयंभूः* (अपने-आप जन्म लेने वाले हैं) *भूतानां जनकः* (प्राणियों के जन्मदाता हैं) *उचित-आचार-सुखदः* (उचित आचरण वालों को सुखदायी हैं)

मनुष्यों का भय दूर करने वाले, शरणागतों को शरण देने वाले, भ्रमनिवारण करनेवाले, मेघश्याम, श्यामसुन्दर, व्रजबालकों के समवयस्क, अर्जुन के सखा, स्वयंभू, प्राणियों के जन्मदाता, उचित आचरण वालों को सुखदायक, शरणागतवत्सल, त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्ण मुझे दर्शन दें।

(८)

यदा धर्मग्लानिर्भवति जगतां क्षोभकरणी
तदा लोकस्वामी प्रकटितवपुः सेतुधृगजः।
सतां धाता स्वच्छो निगमगणगीतो व्रजपतिः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः॥

यदा (जब) *जगतां क्षोभकरणी* (संसार को क्षुब्ध कर देने वाला) *धर्मग्लानिःभवति* (धर्म का ह्रास होता है) *तदा* (तव) *लोकस्वामी* (त्रिलोकीनाथ) *सेतुधृग्* (मर्यादा के रक्षक) *अजः* (अजन्मा) *सतां धाता* (सन्तों के पालन करनेवाले) *निगमगणगीतः* (वेदों द्वारा प्रशंसित) *व्रजपतिः* (श्रीकृष्ण) *प्रकटितवपुः* (अपना शरीर प्रकट करते हैं, अवतार लेते हैं)

जब संसार को क्षुब्ध करनेवाले धर्म का ह्रास होता है, तब मर्यादारक्षक, संतों के प्रतिपालक, दिव्य, वेद-प्रशंसित, व्रजेश्वर त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्ण अवतार लेते हैं। वे शरणागतवत्सल, तीनों लोकों के स्वामी श्रीकृष्ण मुझे दर्शन दें।

(९)

इति हरिरखिलात्माराधितः शङ्करेण
श्रुतिविशदगुणोऽसौ मातृमोक्षार्थमाद्यः।
यतिवरनिकटे श्रीयुक्त आविर्बभूव
स्वगुणवृत उदारः शङ्खचक्राब्जहस्तः॥

इति (इस प्रकार) *असौ श्रुतिविशदगुणः* (वेद-वर्णित गुणोंवाले) *अखिल-आत्मा हरिः* (परमात्मा हरि) *आद्यः* (आदिपुरुष) *मातृमोक्षार्थं* (माता की मोक्ष के लिये) *शङ्करेण आराधितः* (आचार्य शंकर द्वारा आराधित किये गये) *स्वगुणवृतः* (अपने गुणों से युक्त) *उदारः* (परमदयालु) *शङ्खचक्रअब्जहस्तः* (शंख, चक्र और कमल हाथ में लिये हुए) *श्रीयुक्तः* (लक्ष्मीजी के साथ) *यतिवरनिकटे* (यतिवर आचार्य शङ्कर के निकट आविर्बभूव (प्रकट हो गये)

जब इस प्रकार आचार्य शंकर ने वेदवर्णित गुणोंवाले, परमात्मा आदिपुरुष श्रीहरि की आराधना की, तो अपने गुणों से युक्त, परम कृपालु, शङ्ख-चक्रकमल हाथ में लिये, श्रीलक्ष्मीजी सहित, भगवान् हरि यतिवर शङ्कर के निकट प्रकट हो गये।

(परम्पराप्राप्त मान्यता है कि आचार्य शङ्कर ने यह स्तोत्र अपनी माता की मृत्यु के समय, उन्हें भगवान् श्रीहरि के दर्शन कराने के लिये सुनाया था। अन्तिम पद में यह बात स्पष्ट शब्दों में बताई गई है।)

— इति —

श्रीगङ्गास्तोत्रम्

(१)

देवि सुरेश्वरि भगवति गङ्गे
त्रिभुवनतारिणि तरलतरङ्गे।
शङ्करमौलिविहारिणि विमले
मम मतिरास्तां तव पदकमले॥

देवि गङ्गे (हे देवि गङ्गे!) *सुरेश्वरि भगवति* (हे देवगणों की स्वामिनि भगवति!) *त्रिभुवनतारिणि* (आप तीनों लोकों का तारने वाली हो) *तरल तरङ्गे* (हे चञ्चल तरङ्गोवाली देवि!) *शङ्करमौलिविहारिणि विमले* (भगवान् शङ्कर के जटाजूट – मस्तक – पर विहार करने वाली विमले!) *मम मतिः आस्तां तव पदकमले* (मेरी मति सदा आपके चरणकमलों में लगी रहे।)

हे देवि गङ्गे।! आप देवगणों की अधिष्ठात्री हो। आपकी तरल तरङ्गें तीनों लोकों को तारने वाली हैं। हे विमले! आप भगवान् शिव की जटाओं में विहार करती हो। मेरी मति सदा आपके चरणकमलों में लगी रहे।

(२)

भागीरथि सुखदायिनि मात-
स्तव जलमहिमा निगमे ख्यातः।
नाहं जाने तव महिमानं
पाहि कृपामयि मामज्ञानम्॥

मातः भागीरथि सुखदायिनि (हे सुख देनेवाली माता भागीरथि!) *तव जलमहिमा निगमे ख्यातः* (आपके जल का माहात्म्य वेदों में प्रसिद्ध है) *अहं तव महिमानं न जाने* (मैं आपकी महिमा नहीं जानता) *पाहि कृपामयि माम् अज्ञानं* (हे दयामयी माँ! मुझ अज्ञानी की रक्षा करो)

हे भागीरथी माँ! आप सब प्राणियों को सुख प्रदान करती हो। वेदों में आपके जल का माहात्म्य विख्यात है। मैं आपकी महिमा नहीं जानता। हे वात्सल्यमयी माँ! मुझ अज्ञानी की रक्षा कीजिये।

(३)

हरिपदपाद्यतरङ्गिणि गङ्गे

हिमविधुमुक्ताधवलतरङ्गे।

दूरीकुरु मम दुष्कृतिभारं

कुरु कृपया भवसागरपारम्॥

गङ्गे हरि-पद-पाद्य-तरङ्गिणि (हे माँ गङ्गे! आप भगवान् विष्णु के चरणोदक रूप में बहनेवाली नदी हो) *हिम-विधु-मुक्ता-धवल-तरङ्गे* (आप बरफ, चन्द्रमा, और मोती की भाँति शुभ्र तरंगो वाली हैं) *दूरी कुरु मम दुष्कृति-भारं* (मेरे पापों के भार को हटाइये) *कृपया भवसागरपारं कुरु* (कृपा करके मुझे भवसागर से पार लगाइये)

हे माँ गङ्गे! आपकी तरङ्गें भगवान् विष्णु के चरणोदक से प्रकट हुई हैं, और हिम, चन्द्रमा और मोती के समान शुभ्र हैं। आप मेरे दुष्कर्मों के भार को हटाइये, और मुझे भवसागर से पार कीजिये।

(४)

तव जलममलं येन निपीतं

परमपदं खलु तेन गृहीतम्।

मातर्गङ्गे त्वयि यो भक्तः

किल तं द्रष्टुं न यमः शक्तः॥

येन तव अमलं जलं निपीतं (जिस किसी ने भी आपका निर्मल जल पी लिया, तो समझ लो उसने अमरत्व - परमपद - प्राप्त कर लिया) *मातः गङ्गे* (हे गङ्गामातः!) *त्वयि यः भक्तः* (जिसकी आप में भक्ति है) *किल तं यमः द्रष्टुं न शक्तः* (इसमें कोई सन्देह नहीं कि उस पर यमराज की दृष्टि नहीं पड़ सकती।)

हे माँ गङ्गे! जिसने आपका पवित्र जल पी लिया, उसे (समझ लो)

परमपद प्राप्त हो गया। जो आपकी भक्ति करता है उस पर यमराज की दृष्टि नहीं पड़ती, और वह वैकुण्ठ में जाता है।

(५)

पतितोद्धारिणि जान्हवि गङ्गे
खण्डितगिरवरमण्डितभङ्गे।
भीष्मजननि हे मुनिवरकन्ये
पतितनिवारिणि त्रिभुवनधन्ये।।

पतित-उद्धारिणि (हे पतितों का उद्धार करनेवाली मातः!) *जाह्नवि गङ्गे* (हे जन्हुकुमारीगङ्गे) *खण्डित गिरिवर मण्डित भङ्गे* (आपकी तरङ्गे गिरिराज हिमालय को खण्डित कर वहती हुई शोभायमान होती हैं) *भीष्मजननि* (आप भीष्म की माता हैं) हे *मुनिवरकन्ये* (हे जह्नुमुनि की पुत्रि!) *पतित-निवारिणि त्रिभुवनधन्ये* (पतितों का उद्धार करने वाली माता गङ्गा आप तीनों लोकों में धन्य हैं।)

जह्नुमुनि की पुत्री गङ्गामाता आप पतितों का उद्धार करने वाली हो। गिरराज हिमालय को चीर कर बहने वाली आपकी तरङ्गे बड़ी सुशोभित होती हैं। हे भीष्मजननि! पतितों का उद्धार करने के कारण आप त्रिलोकी में धन्य हैं।

गङ्गा का एक नाम जाह्नवी जह्नुमुनि की पुत्री होने के कारण पड़ा। जब गङ्गा भगीरथ की तपस्या द्वारा स्वर्ग से पृथ्वी पर लाई गई तो मैदान में आकर उसने राजा जह्नु की यज्ञभूमि को पानी में डुबो दिया। जह्नु ने क्रुद्ध होकर गङ्गा को पी लिया। देवता और ऋषियों की प्रार्थनाओं और विशेषकर भगीरथ ने उनके क्रोध को शान्त किया। प्रसन्न होकर जह्नु ने अपने कानों से बाहर निकलने की आज्ञा दे दी। तभी से गङ्गा जाह्नवी – जह्नुपुत्री – कहलाई। रघुवंश ६।८५, ८।९५ में यह कथा देखी जा सकती है।

(६)

कल्पलतामिव फलदां लोके
प्रणमति यस्त्वां न पतति शोके।

पारावारविहारिणि गङ्गे

विमुखयुवतिकृततरलापाङ्गे॥

कल्पलतां इव फलदां लोके (आप कल्पलता के समान फल देने वाली हैं) *यः त्वां प्रणमति* (जो आपको प्रणाम करता है) *न पतति शोके* (वह शोक में नहीं पड़ता) *पारावार*-(समुद्र) *विहारिणि* (हे समुद्र में विहार करने वाली माँ!) *विमुख-युवति-कृत-तरल-अपाङ्गे* (आपका चपल नेत्रकोण विमुख युवती की भाँति चञ्चल है)

हे गङ्गे मातः! आप इस संसार में कल्पलता की भाँति फल देने वाली हैं। जो आपको प्रणाम करता है, वह कभी शोक में नहीं पड़ता। आप समुद्र में विहार करती हैं, और आपके नेत्र-कोण (तरङ्गें) विमुख युवती के नेत्रों की भाँति चञ्चल हैं।

(७)

तव चेन्मातः स्रोतःस्नातः

पुनरपि जठरे सोऽपि न जातः।

नरकनिवारिणि जाह्नवि गङ्गे

कलुषविनाशिनि महिमोत्तुङ्गे॥

चेत् मातः (हे माता यदि) *तव स्रोतः स्नातः* (जिसने आपके प्रवाह में स्नान कर लिया) *सः जठरे पुनः अपि न जातः* (वह माता के गर्भ में प्रवेश नहीं करता) *नरकनिवारिणि* (आप नरक से बचाने वाली हो) *जाह्नवि गङ्गे* (हे जाह्नवि गङ्गे!) *कलुषविनाशिनि* (आप पापों का नाश करती हो) *महिमा उत्तुङ्गे* (हे उच्च महिमावाली!)

हे मातः गङ्गे! जिसने आपके प्रवाह में स्नान कर लिया, उसका फिर जन्म नहीं होता। आप नरकों का निवारण करने वाली और पापों को नष्ट करने वाली हैं। हे जह्नुकन्ये गङ्गे! आपकी महिमा बड़ी ऊँची है।

(८)

पुनरसदङ्गे पुण्यतरङ्गे

जय जय जाह्नवि करुणापाङ्गे

इन्द्रमुकुटमणिराजितचरणे

सुखदे शुभदे भृत्यशरण्ये॥

पुण्यतरङ्गे जाह्नवि (हे पवित्र तरङ्गों वाली जाह्नवि गङ्गे!) *असद्-अङ्गे* (मेरे अपावन अङ्गों पर) *करुणा-अपाङ्गे* (कृपादृष्टि रखनेवाली माँ गङ्गे!) *इन्द्रमुकुटमणि-राजित-चरणे* (आपके चरण देवराज इन्द्र के मुकुटमणि से आलोकित हैं) *सुखदे शुभदे भृत्यशरण्ये* (हे सुख देनेवाली! हे शुभ देने वाली! हे भक्तों को शरण देने वाली!) *जय जय* (आप की जय! आपकी जय!)

हे करुणाकटाक्ष वाली जाह्नवि गङ्गे! मेरे अपावन अङ्गों पर अपनी पावन तरङ्गों का उल्लास प्रदान कीजिये। आपके चरण देवराज इन्द्र के मुकुटमणि से आलोकित हैं। आप सबको श्रेयस् और प्रेयस् प्रदान करने वाली हैं और भक्तों को आश्रय देने वाली हैं। आपकी जय हो, जय हो।

(९)

रोगं शोकं तापं पापं

हर मे भगवति कुमतिकलापम्।

त्रिभुवनसारे वसुधाहारे

त्वमसि गतिर्मम खलु संसारे॥

भगवति (हे भगवति गङ्गे!) *मे रोगं शोकं तापं पापं कुमतिकलापं हर* (आप मेरे रोग, शोक, ताप, पाप और दुर्बुद्धिसमूह को दूर कीजिये) *त्रिभुवनसारे* (हे तीनों लोकों की सारभूत माँ!) *वसुधाहारे* (हे पृथ्वी को सुशोभित करने वाली।!) *संसारे खलु त्वम् मम गतिः असि* (आप ही इस संसार में मेरी एकमात्र गति, जीवनाधार हो)

हे मातः गङ्गे! मेरे रोग-शोक, पाप-ताप को दूर कीजिये। हे भगवति मेरी कुमति का हरण कीजिये। आप तीनों लोकों की आधार और पृथ्वी की हार हैं। इस संसार में केवल आप ही मेरी परमगति हैं।

(१०)

अलकानन्दे परमानन्दे

कुरु करुणामयि कातरवन्द्ये।

तव तटनिकटे यस्य निवासः
खलु वैकुण्ठे तस्य निवासः॥

करुणामयि (हे वात्सल्यमयि) *कातरवन्द्ये* (हे मुझ जैसे दीन-दुखियों की वन्दनीय मातः गङ्गे!) *कुरु* (मेरे ऊपर कृपा कीजिये) *अलकानन्दे परमानन्दे* (हे अलकापुरी को आनन्द देने वाली और परमानन्दस्वरूपिणि!) *यस्य तव तटनिकटे निवासः* (जिसका आपके तट पर निवास है) *खलु वैकुण्ठे तस्य निवासः* (उसे तो निश्चय ही वैकुण्ठवासी समझो)

अलकापुरी को आनन्द देने वाली और परमानन्द स्वरूपिणी माँ! आप मुझ जैसे दीन-दुखियों की वन्दनीय हैं। मेरी ओर कृपा दृष्टि कीजिये। जो आपके तट पर निवास करता है, उसे तो वैकुण्ठवासी ही समझना चाहिए।

(११)

वरमिह नीरे कमठो मीनः
किं वा तीरे शरटः क्षीणः।
अथवा श्वपचो मलिनो दीन-
स्तव न हि दूरे नृपतिकुलीनः॥

इह नीरे (आपके इस जल में) *किं वा तीरे कमठः मीनः क्षीणः शरट-* (अथवा आपके तट पर कछुआ, मछली अथवा दुबला-पतला गिरगिट बनकर रहना) *वरं* (अच्छा है) *अथवा मलिनः दीनः श्वपचः* (अथवा दीन-मलीन चाण्डाल कुल में जन्म भी अच्छा है) *तव न हि दूरे नृपतिकुलीनः* (लेकिन आपसे दूर रह कर उच्च कुलीन राजा होना भी अच्छा नहीं।)

हे मातः गङ्गे! आपके जल में, अथवा आपके तीर पर कछुआ, मछली और दुबला-पतला गिरगिट बनकर भी रहना अच्छा है। और तो और, दीन-मलीन चाण्डाल होकर भी आपके तट पर रहना अच्छा है। किन्तु, आपसे दूर, उच्च कुलीन राजा होना भी अच्छा नहीं है।

(१२)

भो भुवनेश्वरि पुण्ये धन्ये
देवि द्रवमयि मुनिवरकन्ये।

गङ्गास्तवमिमममलं नित्यं
पठति नरो यः स जयति सत्यम्॥

भो भुवनेश्वरी देवि (हे तीनों लोकों की अधिष्ठात्रि देवि!) *द्रवमयि* (हे प्रवाहमयि!) *मुनिवरकन्ये* (हे जह्नुपुत्रि!) *धन्ये पुण्ये* (हे पावन, धन्य माँ) *इमं अमलं गङ्गास्तवं* (इस पावन गङ्गा स्तोत्र का) *यः नरः* (जो मनुष्य) *नित्यं पठति* (प्रतिदिन पाठ करता है) *सः जयति सत्यम्* (यह सत्य है कि वह विजयी होता है।)

हे देवि जाह्नवि! हे भुवनेश्वरि! हे प्रवाहमयि गङ्गामातः! जो मनुष्य इस पवित्र गङ्गा स्तोत्र का प्रतिदिन पाठ करता है, उसे अवश्य ही जयलाभ होता है। यह सत्य है।

– इति –

श्रीगङ्गाष्टकम्

(१)

भगवति भवलीलामौलिमाले तवाम्भः-
कणमणुपरिमाणं प्राणिनो ये स्पृशन्ति।
अमरनगरनारीचामरग्राहिणीनां
विगतकलिकलङ्कातङ्कमङ्के लुठन्ति॥

भगवति (हे भगवति गङ्गे!) *भव*-(भगवान् महादेव के) *लीलामौलिमाले* (मस्तक की लीलामयी माला) *तव-अम्भः*-(आपके जल) *कणं अणुपरिमाणं* (की बूँद का एक अणु भी) *ये प्राणिनः स्पृशन्ति* (जो प्राणी स्पर्श करते हैं) *विगत-कलि-कलङ्क-आतङ्क* (कलियुग के कलङ्क के भय को त्याग कर) *अमर-नगर-नारी-चामर-ग्राहिणीनां* (स्वर्ग की चँवर ढुलानेवाली अप्सराओं की) *अङ्के लुठन्ति* (गोद में शयन करते हैं।)

हे भगवति गङ्गे! आप भगवान् शिव के मस्तक की लीलामयी माला हो। जो प्राणी आपके जल की बूँद का एक अणुमात्र भी स्पर्श कर लेता है, वह कलियुग के कलङ्क के भय को त्याग कर स्वर्ग की चँवरधारिणी अप्सराओं की गोद में शयन करता है।

(२)

ब्रह्माण्डं खण्डयन्ती हरशिरसि जटावल्लिमुल्लासयन्ती
स्वर्लोकादापतन्ती कनकगिरिगुहागण्डशैलात्स्खलन्ती।
क्षोणीपृष्ठे लुठन्ती दुरितचयचमूर्निर्भरं भर्त्सयन्ती
पाथोधिं पूरयन्ती सुरनगरसरित्पावनी नः पुनातु॥

ब्रह्माण्डं खण्डयन्ती (ब्रह्माण्ड का भेदन कर निकलनेवाली) *हरिशिरसि* (भगवान् शिव के शिर में) *जटावल्लिम् उल्लासयन्ती* (जटावल्ली को

उल्लसित करती हुई) *स्वर्लोकाद् आपतन्ती* (स्वर्गलोक से गिरती हुई) *कनक-गिरि-गुहा-गण्ड-शैलात्-स्खलन्ती* (सुमेरु की गुफा और पर्वतमाला से नीचे आती हुई) *क्षोणीपृष्ठे लुठन्ती* (पृथ्वी पर बहती हुई) *दुरित-चय-चमूः-निर्भरं भर्त्सयन्ती* (पाप-समूहों की सेना को फटकारती हुई) *पयोधिं पूरयन्ती* (समुद्र को अपने पानी से भरती हुई) *सुर-नगर-सरित्-पावनी* (देवपुरी की पवित्र नदी, गङ्गा) *नः पुनातु* (हमें पवित्र करे)

ब्रह्माण्ड का भेदन कर निकलने वाली, भगवान् शंकर के शिर पर जटालताओं को उल्लसित करती हुई, स्वर्गलोक से नीचे उतरने वाली, सुमेरु पर्वत की गुफाओं और पर्वतश्रेणियों से नीचे आती हुई, पृथ्वीतल पर प्रवाहमयी, पापसमूहों की सेना को कठोर फटकार देती हुई, अपने जल से समुद्र को भरती हुई, देवपुरी की पवित्र नदी पतितपावनी गङ्गा – हमें पवित्र करे।

(३)

मज्जन्मातङ्गकुम्भच्च्युतमदमदिरामोदमत्तालिजालं
स्नानैः सिद्धाङ्गनानां कुचयुगविगलत्कुङ्कुमासङ्गपिङ्गम्।
सायं प्रातर्मुनीनां कुशकुसुमचयैश्छन्नतीरस्थनीरं
पायान्नो गाङ्गमम्भः करिकलभकराक्रान्तरंहस्तरङ्गम्॥

मज्जत्-(नहाते हुए) *मातङ्ग*-(हाथी) *कुम्भच्च्युत*-(कुम्भस्थल से झरते हुए) *मद-मदिरा-आमोद-मत्त-अलि-जालं* (मदरूपी मदिरा की गन्ध से मधुपसमूह जिससे मतवाला हो रहा है) *सिद्ध-अङ्गनानां* (सिद्धों की स्त्रियों के) *स्नानैः* (नहाने से) *कुचयुग-विगलत्* (कुचयुगलों से हटे हुए) *कुङ्कुम-आसङ्ग-पिङ्गम्* (कुङ्कुम के मिलने से जो पिङ्गलवर्ण पीला हो गया है) *सायं-प्रातः* (प्रातः काल और सन्ध्या समय) *मुनीनां* (मुनियों के) *कुश-कुसुम-चयैः - छन्न-तीरस्थ-नीरं* (कुश और अर्पित किये गये पुष्पों के समूह से जिसके किनारे का जल ढक गया है) *करि-कलभ-कर-आक्रान्त-रंहस्-तरङ्गम्* (हाथियों के बच्चों की सूंडों से जिसकी तरङ्गों का वेग आक्रान्त हो रहा है, अवरुद्ध हो रहा है; रंहस्-वेग) *गाङ्ग-अम्भः* (गङ्गा का जल) *नः पायात्* (हमारा कल्याण करे।)

(इस श्लोक में वेग से बहती हुई गङ्गा का वर्णन है। जलधारा में हाथियों और हाथियों के बच्चों का नहाना केरल की नदियों में देखा जा सकता है। वाराणसी के गङ्गातट पर यह दृश्य आचार्य के बचपन की स्मृति हो सकती है।)

गङ्गाजल हमारा कल्याण करे। इस गङ्गाजल की धारा में नहाते हुए हाथियों के गण्डस्थल से रिसती हुई मद-मदिरा से मत्त भ्रमरों की पंक्तियाँ हैं। स्नान करती हुई सिद्धों की स्त्रियों के कुच युगलों पर लगे कुङ्कुम से यह जल पीला हो रहा है। प्रातः काल और सायंकाल मुनियों द्वारा अर्पित कुश और कुसमों से किनारे का जल ढका हुआ है और हाथी के बच्चों की सूँड़ से तरङ्गों का वेग अवरुद्ध हो रहा है।

(४)

आदावादिपितामहस्य नियमव्यापारपात्रे जलं
पश्चात्पन्नगशायिनो भगवतः पादोदकं पावनम्।
भूयः शम्भुजटाविभूषणमणिर्जह्नोर्महर्षेरियं
कन्या कल्मषनाशिनी भगवती भागीरथी दृश्यते॥

आदौ-आदिपितामहस्य नियम-व्यापार-पात्रे जलं (आरंभ में जाह्नवी गंगा आदि पितामह ब्रह्माजी के कमण्डलु में प्रकट हुई) *पश्चात्-पन्नगशायिनः-भगवतः-पाद-उदकं पावनम्* (इसके उपरान्त शेषशायी भगवान् विष्णु के चरणोदक रूप में आगे बढ़ीं) *भूयः* (फिर) *शम्भुजटाविभूषणमणिः* (भगवान् शिव के जटाजूट की शोभा बढ़ाने वाली मणि बनी) *जह्नोः महर्षेः इयं कन्या* (जह्नु महर्षि की यह कन्या) *कल्मषनाशिनी* (पापों का प्रक्षालन करनेवाली) *भगवती भागीरथी दृश्यते* (भगवती भागीरथी दिखाई देती है।)

आरम्भ में जो ब्रह्माजी के कमण्डलु में जलरूप प्रकट हुईं, इसके उपरान्त भगवन् विष्णु के चरणोदक रूप में आगे बढ़ीं, फिर भगवान् शिव की जटाओं को सुशोभित करनेवाली मणि बनी, वे जह्नु महर्षि की कन्या जाह्नवी (गङ्गा) पृथ्वी पर कल्मषनाशिनी भगवती भागीरथी दिखाई दे रही हैं।

(५)

शैलेन्द्रादवतारिणी निजजले मज्जज्जनोत्तारिणी
पारावारविहारिणी भवभयश्रेणीसमुत्सारिणी।
शेषाहेरनुकारिणी हरशिरोवल्लीदलाकारिणी
काशीप्रान्तविहारिणी विजयते गङ्गा मनोहारिणी॥

शैलेन्द्रात् अवतारिणी (पर्वतराज हिमालय से उतरने वाली) *निजजले* (अपने जल में) *मज्जत्-जन-उत्तारिणी* (स्नान करने वाले मनुष्यों का उद्धार करने वाली) *पारावर-विहारिणी* (समुद्र में विहार करने वाली) *भव-भय-श्रेणी-समुत्सारिणी* (संसार के भय-समूहों को उखाड़कर दूर फेंकने वाली) *शेष अहेः अनुकारिणी* (विस्तार में शेषनाग का अनुकरण करने वाली) *हर-शिरोवल्लीदल-आकारिणी* (भगवान् शिव के मस्तक पर लता के आकार के समान) *काशीप्रान्त-विहारिणी* (काशी क्षेत्र में बहने वाली) *गङ्गा मनोहारिणी विजयते* (मनमोहिनी गङ्गाजी विजयनी हो रही हैं।

पर्वतराज हिमालय से उतरने वाली, अपने जल में डुबकी लगाने वालों का उद्धार करने वाली, समुद्र में विहार करने वाली, संसार के भय-समूहों को उखाड़ फेंकने वाली, विस्तार में शेषनाग का अनुकरण करने वाली, भगवान् शिव के मस्तक पर लता के समान आकारवाली, काशीक्षेत्र में बहने वाली मनमोहिनी गङ्गा विजयिनी हो रही हैं।

(६)

कुतोऽवीचिर्वीचिस्तव यदि गता लोचनपथं
त्वमापीता पीताम्बरपुरनिवासं वितरसि।
त्वदुत्सङ्गे गङ्गे पतति यदि कायस्तनुभृतां
तदा मातः शातक्रतवपदलाभोऽप्यतिलघुः॥

कुतः वीचिः (संसार की तरंगे कहाँ हैं?) *तव वीचिः यदि लोचनपथं गता* (यदि आपकी तरङ्गें दृष्टिगोचर हो जायँ) *कुतः अवीचिः (तो नरकविशेष की प्राप्ति कैसे हो सकती है) त्वं* आपीता पीताम्बरपुरनिवासं *वितरसि*

(अपना जलपान करने वालों को भगवान् विष्णु के वैकुण्ठ में निवास प्रदान करती हो) *गङ्गे त्वत् उत्सङ्गे* (हे गङ्गामातः! आपकी गोद में) *पतति यदि कायः तनुभृतां* (देहधारियों का शरीर यदि छूट जाय तो) *मातः* (हे माता) *शातक्रतवपद*-(शतक्रतु-इन्द्र-की पदवी का) *लाभः अपि अति लघुः* (लाभ भी अत्यन्त तुच्छ है।)

हे माँ गङ्गे! यदि आपकी तरङ्गों के दर्शन हों तो संसार की तरंगें कहाँ टिकेंगी? जो गङ्गा जल पीते हैं, उन्हें आप भगवान् विष्णु का वैकुण्ठ लोक प्रदान करती हो। हे गङ्गामातः! यदि किसी शरीरधारी की काया आपकी गोद में छूट जाय तो इन्द्रपद का लाभ भी तुच्छ मालूम होता है।

(७)

गङ्गे त्रैलोक्यसारे सकलसुरबधूधौतविस्तीर्णतोये
पूर्णब्रह्मस्वरूपे हरिचरणरजोहारिणी स्वर्गमार्गे।
प्रायश्चित्तं यदि स्यात्तव जलकणिका ब्रह्महत्यादिपापे
कस्त्वां स्तोतुं समर्थस्त्रिजगदघहरे देवि गङ्गे प्रसीद॥

गङ्गे (हे मातः गङ्गे!) *त्रैलोक्यसारे* (आप तीनों लोकों की सारभूत माता हैं!) *सकलसुरबधूधौत-विस्तीर्णतोये* (सब देवाङ्गनाएँ जिसमें स्नान करती हैं, ऐसे विस्तृत जलाशयवाली माँ!) *पूर्णब्रह्मस्वरूपे* (पूर्णब्रह्मस्वरूपरूपिणी माता) *स्वर्गमार्गे हरिचरणरजोहारिणी* (स्वर्ग के मार्ग में भगवान् विष्णु के चरणों की रज का प्रक्षालन करने वाली हैं) *यदि तव जलकणिका* (यदि आपके जल की एक बूँद भी) *ब्रह्महत्या आदि पापे* (ब्रह्महत्या आदि पापों में) *प्रायश्चित्तं स्यात्* (प्रायश्चित्त, पाप प्रक्षालन का साधन है) *कः त्वां स्तोतुं समर्थः* (तो कौन आपकी स्तुति करने में समर्थ हो सकता है?) *त्रिजगत्-अघ-हरे* (तीनों लोकों का पाप हरण करनेवाली) *देवि गङ्गे प्रसीद* (देवी गङ्गा कृपा कीजिये, प्रसन्न होइये)

हे तीनों लोकों की सारभूत माता गङ्गे! समस्त देवाङ्गनाओं के स्नान से पवित्र जलवाली पूर्ण ब्रह्मस्वरूपिणि! स्वर्गपथ में भगवान् विष्णु के चरणों की रज धोने वाली! जब आपके जल की एक बूँद ही ब्रह्महत्या जैसे पापों

का प्रायश्चित्त है तो हे त्रैलोक्यपापनाशिनि! आपकी स्तुति करने के लिये कौन समर्थ हो सकता है? हे देवि गङ्गे! प्रसन्न होइये, कृपा कीजिये।

(८)

मातर्जाह्नवि शम्भुसङ्गवलिते मौलौ निधायाञ्जलिं
त्वत्तीरे वपुषोऽवसानसमये नारायणाङ्घ्रिद्वयम्।
सानन्दं स्मरतो भविष्यति मम प्राणप्रयाणोत्सवे
भूयाद्भक्तिरविच्युता हरिहराद्वैतात्मिका शाश्वती॥

मातः जाह्नवि (हे गङ्गा माता) *शम्भुसङ्ग-वलिते* (भगवान् शिव की संगिनि!) *त्वत् तीरे* (आपकी तीर पर) *वपुषः अवसान-समये* (शरीर छूटने के समय) *मौलौ निधाय अञ्जलिं* (मस्तक पर अञ्जली बाँध कर) *सानन्दं* (आनन्दपूर्वक) *नारायणाङ्घ्रिद्वयम्* (श्री नारायण के चरण युगल का) *स्मरतः* (स्मरण करते हुए) *मम प्राण प्रयाण उत्सवे* (मेरे प्राणों के प्रयाण के उत्सव के समय) *अविच्युता हरिहर-अद्वैतात्मिका शाश्वती भक्तिः भूयात्* (भगवान् विष्णु और भगवान् शिव में अविचल अद्वैतात्मिका भक्ति बनी रहे)

हे शिव की सङ्गिनी माता गङ्गा! जब मेरे प्राणों के प्रयाण का उत्सव हो रहा हो, उस समय, मैं गङ्गातीर पर, शिर झुका कर अञ्जलि बाँधे, आनन्दपूर्वक भगवान् के चरण युगल का स्मरण करता रहूँ और मेरी अविचल भाव से भगवान् विष्णु और भगवान् शिव में अभेदात्मिका नित्य भक्ति बनी रहे।

(९)

गङ्गाष्टकमिदं पुण्यं यः पठेत्प्रयतो नरः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति॥

जो मनुष्य इस पवित्र *गङ्गाष्टकम्* का शुद्ध मन से पाठ करता है, वह समस्त पापों से छूटकर विष्णुलोक में जाता है।

– इति –

धन्याष्टकम्

(१)

तज्ज्ञानं प्रशमकरं यदिन्द्रियाणां
तज्ज्ञेयं यदुपनिषत्सु निश्चितार्थम्।
ते धन्या भुवि परमार्थनिश्चितेहाः
शेषास्तु भ्रमनिलये परिभ्रमन्ति॥

तत् (वह) *ज्ञानं* (ज्ञान है) *यत्* (जो) *इन्द्रियाणां प्रशमकरं* (इन्द्रियों को शान्त करने वाला हो) *तत् ज्ञेयं* (वह जानने योग्य है) *यत् उपनिषत्सु निश्चितार्थम्* (जो कि उपनिषदों में निश्चित किया गया है) *भुवि* (संसार में) *परमार्थनिश्चित-ईहाः* (जो परम ध्येय की प्राप्ति में प्रयत्नशील हैं) *धन्याः* (वे धन्य हैं) *शेषाः तु* (और सब तो) *भ्रमनिलये* (भूलभुलैया में) *परिभ्रमन्ति* (भटकते रहते हैं।)

ज्ञान वही है जो इन्द्रियों को शान्त करता हो। जानने योग्य वही है जो उपनिषदों में निश्चित किया गया है। संसार में वे ही मनुष्य धन्य हैं जो परम ध्येय की प्राप्ति के लिये दृढ़ता से प्रयत्न कर रहे हैं। इनके अतिरिक्त अन्य लोग तो भूलभुलैया में ही भटकते रहते हैं।

(२)

आदौ विजित्य विषयान्मदमोहराग-
द्वेषादिशत्रुगणमाहृतयोगराज्याः।
ज्ञात्वामृतं समनुभूतपरात्मविद्या-
कान्तासुखा बत गृहे विचरन्ति धन्याः॥

आदौ (सर्वप्रथम) *विषयान्* (इन्द्रियों के विषयों को) *मद-मोह-राग-द्वेष आदि शत्रुगणं विजित्य* (मद, मोह, राग-द्वेष आदि शत्रुसमूह को जीत कर)

आहृत-योगराज्याः (योग साम्राज्य पर अपना अधिकार कर) *अमृतं ज्ञात्वा* (परम ज्ञान, परम सत्य रूपी अमृत पद का अनुभव कर) *सम् अनुभूत परात्मविद्याकान्तासुखाः* (जो आध्यात्मिक ज्ञान रूपी प्रिय पत्नी का सुखपूर्वक अनुभव करते हैं) *वनगृहे* (वनरूपी घर में) *विचरन्ति* (विचरण करते हैं) *धन्याः* (वे धन्य हैं)

वे लोग वास्तव में धन्य हैं जो सर्वप्रथम इन्द्रियों के विषयों तथा मद, मोह, राग-द्वेष आदि शत्रुओं के समूह को जीतकर, योग-साम्राज्य पर अधिकार कर, अमृत पद का ज्ञान प्राप्त कर, ब्रह्मविद्यारूपिणी प्रिय पत्नी का सुखानुभव करते हुए, वनरूपी घर में विचरण करते हैं।

(३)

त्यक्त्वा गृहे रतिमधोगतिहेतुभूता-
मात्मेच्छयोपनिषदर्थरसं पिबन्तः।
वीतस्पृहा विषयभोगपदे विरक्ता
धन्याश्चरन्ति विजनेषु विरक्तसङ्गाः॥

अधोगतिहेतुभूतां गृहे रतिं त्यक्त्वा (पतन की कारण घर में सुख की भावना को त्याग कर) *आत्म-इच्छया* (आत्मा की इच्छा से) *उपनिषद्-अर्थ रसं पिबन्तः* (उपनिषदों के अर्थ का रसपान करते हुए) *वीतस्पृहाः* (जिन्होंने कामनाओं को त्याग दिया है) *विषय-भोग-पदे* (इन्द्रिय-विषयों के सुख को) *विरक्ताः* (त्यागने वाले, विषय-सुखों में रुचि नहीं रखने वाले) *विजनेषु विरक्तसङ्गाः धन्याः चरन्ति* (जो निःसङ्गभाव से, विरक्त होकर, निर्जन स्थानों में विचरण करते हैं वे धन्य हैं।)

अधोगति के हेतु घर के मोह को छोड़कर आत्मज्ञान प्राप्त करने की कामना से, उपनिषदों के अर्थ का रसपान करते हुए, विषय-भोगों से विरक्त, निःस्पृह होकर, जो निःसङ्गभाव से निर्जन वनों में विचरण करते हैं वे धन्य हैं। उनका जीवन कृतार्थ है, वास्तव में सफल है।

(४)

त्यक्त्वा ममाहमिति बन्धकरे पदे द्वे
मानावमानसदृशाः समदर्शिनश्च

कर्तारमन्यमवगम्य तदर्पितानि

कुर्वन्ति कर्मपरिपाकफलानि धन्याः॥

मम अहम् इति (मेरा और मैं) *बन्धकरे पदे द्वे* (बंधन में डालने वाले दो भाव) *त्यक्त्वा* (त्यागकर) *मान-अवमान-सदृशाः* (जिनके लिये मान-अपमान समान हो गये हैं) *समदर्शिनः च* (जो समदृष्टि रखने वाले हैं) *कर्तारं अन्यं अवगम्य* (किसी दूसरे को कर्ता मान कर, अपने-आप को निमित्तमात्र मानते हुए) *कर्मपरिपाक-फलानि तत् अर्पितानि कुर्वन्ति* (कर्मपरिपाक, कर्मफल को, उस अन्य कर्ता को अर्पण कर देते हैं) *धन्याः* (वे वास्तव में कृतकृत्य, धन्य हैं)

जो मै-मेरा रूप दोनों बन्धनकारी भावों को त्याग चुके हैं, जिनके लिये मान-अपमान समान हैं, जो समदर्शी हैं, और जिन्होंने अपने से अलग, किसी अन्य सत्ता को कर्ता मान लिया है, और सम्पूर्ण कर्मफल उसी सत्ता को समर्पण करते हैं, ऐसे विरक्त, समदर्शी, कर्मफल-त्यागी मनुष्य ही वास्तव में धन्य हैं।

(५)

त्यक्त्वैषणात्रयमवेक्षितमोक्षमार्गा

भैक्षामृतेन परिकल्पितदेहयात्राः।

ज्योतिः परात्परतरं परमात्मसंज्ञं

धन्या द्विजा रहसि हृद्यवलोकयन्ति॥

एषणात्रयम् (वित्तैषणा, पुत्रैषणा और लोकैषणा– इन तीनों कामनाओं को) *त्यक्त्वा* (त्याग कर) *अवेक्षितमोक्षमार्गाः* (जो मोक्षमार्ग की ओर चल पड़े हैं) *भैक्षामृतेन* (भिक्षा रूपी अमृत से) *परिकल्पित-देहयात्राः* (देहयात्रा चलाते हैं) *परात्-परतरं* (परात्पर को) *परमात्मसंज्ञकं ज्योतिः* (जिसे परमात्मा कहा जाता है उस ज्योति को) *द्विजाः* (संस्कारित ब्रह्मज्ञानी) *रहसि* (एकान्त में) *हृदि अवलोकयन्ति* (अपने हृदय में देखते हैं) *धन्याः* (वे धन्य हैं)

वित्तैषणा, पुत्रैषणा, और लोकैषणा जैसी कामनाओं को जिन्होंने त्याग दिया है, इनको पीछे छोड़कर जो मुक्तिमार्ग पर चल पड़े हैं, और केवल

भिक्षावृत्ति से शरीर यात्रा का निर्वाह करते हुए, जो परमात्मनामी परात्पर ज्योति को, एकान्त में, अपने हृदय में अवलोकन करते हैं, ऐसे संस्कारी द्विज वास्तव में धन्य हैं।

(६)

नासन्न सन्न सदसन्न महन्न चाणु
न स्त्री पुमान्न च नपुंसकमेकबीजम्।
यैर्ब्रह्म तत्सममुपासितमेकचित्तै
धन्या विरेजुरितरे भवपाशबद्धाः॥

न असत् (जो असत् नहीं) *न सत्* (जो सत् भी नहीं) *न सत् असत्* (जो सदसत् भी नहीं है) *न महत्* (बड़ा नहीं है) *न च अणु* (और छोटा भी नहीं है) *न स्त्री न पुमान् न नपुंसकम्* (जो न स्त्री है, न पुरुष है, न नपुंसक है) *एकबीजम्* (संसार का एकमात्र बीज, कारण है) *यैः* (जिन्होंने) *एकचित्तैः* (एकाग्रचित्त से) *तत् ब्रह्म सममुपासितं* (उस ब्रह्म की भली भाँति उपासना की है) *विरेजुः* (प्रकाशित होते हैं) *इतरे* (अन्य लोग) *भव पाशबद्धाः* (संसार के मोह पाश में बंधे रहते हैं) *धन्याः* (ऐसे लोग धन्य हैं)

संसार में वही लोग धन्य हैं, ऐसे लोग ही महिमान्वित होते हैं, जो एकाग्र चित्त से ऐसे ब्रह्म का चिन्तन करते हैं जो न सत् है, न असत् है, और जो सदसत् भी नहीं है। वह ब्रह्म न बड़ा है, न छोटा है, न स्त्री है, न पुरुष है, और न नपुंसक है। उसमें ऐसे भी भेद नहीं हैं। वह ब्रह्म समस्त संसार का एक बीज, एकमात्र कारण है। ऐसे ब्रह्म की उपासना करने वालों के अतिरिक्त दूसरे अन्य लोग तो भव-बन्धन में बँधे हैं।

एकमेवाद्वितीयम् ब्रह्म (ब्रह्म केवल एक अद्वितीय है) ब्रह्म अनिर्वचनीय है। उसमें छोटे-बड़े का आकार भेद नहीं हो सकता क्योंकि वह निराकार है। स्त्री-पुरुष के लिङ्ग भेद भी उसमें नहीं हो सकते क्योंकि वह अनादि, अयोनिज है। सत्, असत् भी नहीं, क्योंकि वह इनसे पहले भी था। ऋग्वेद का "नासदीय सूत्र" इस बात की व्याख्या करता है।

(७)

अज्ञानपङ्कपरिमग्नमपेतसारं
दुःखालयं मरणजन्मजरावसक्तम्।
संसारबन्धनमनित्यमवेक्ष्य धन्या
ज्ञानासिना तदवशीर्य विनिश्चयन्ति।

अपेत-सारं (सार रहित) *अज्ञान-पङ्क-परिमग्नं* (संसार के बन्धन सार रहित हैं, और अज्ञान-रूपी कीचड़ में डूबे हुए हैं) *दुःखालयं* (दुःख के स्थान को) *मरण-जन्म-जरा-अवसक्तम्* (जन्म, बुढ़ापे, और मृत्यु से युक्त को) *संसार-बन्धनं अनित्यं अवेक्ष्य* (अनित्य संसार-बंधन को पहचान कर) *ज्ञान-असिना तत् अवशीर्य* (ज्ञान की तलवार से उसे काट कर) *विनिश्चयन्ति* (भली भाँति निश्चय कर लेते हैं) *धन्याः* (वे धन्य हैं)

जो ज्ञानी जन अज्ञानरूपी कीचड़ में सने हुए, निःसार, दुःखों से भरे हुए, जन्म-मरण-वृद्धावस्था आदि की पीड़ाओं से युक्त, इस असत्य संसार-बन्धन को ज्ञान की तलवार से काटकर, आत्मतत्त्व का बोध प्राप्त करते हैं, वास्तव में धन्य तो ऐसे ही मनुष्य हैं।

(८)

शान्तैरनन्यमतिभिर्मधुरस्वभावै-
रेकत्वनिश्चितमनोभिरपेतमोहैः।
साकं वनेषु विजितात्मपदस्वरूपं
शास्त्रेषु सम्यगनिशं विमृशन्ति धन्याः।।

शान्तैः (शान्त मन वालों के साथ) *अनन्यमतिभिः* (जिनके मन में दूसरी बातें नहीं हैं उनके साथ) *मधुरस्वभावैः* (मधुर स्वभाव वालों के साथ) *एकत्व-निश्चित-मनोभिः* (उनके साथ जिन्होंने आत्मा-परमात्मा का एकत्व – अद्वैत – अपने मन में निश्चित कर लिया है) *अपेतमोहैः* (उनके साथ जिन्होंने मोह त्याग दिया है) *साकं* (साथ में) *वनेषु* (वनों में) *विजितात्मा पदस्वरूपं* (जिन्होंने आत्मस्वरूप को पहचान लिया है) *तत्* (उस सत्ता को)

सम्यक् (भली-भाँति) *अनिशम्* (सदा) *विमृशन्ति* (चर्चा करते हैं) *धन्याः* (वे धन्य हैं)

जो शान्त चित्त हैं, अनन्य मति हैं (किन्हीं और आकर्षणों से विचलित नहीं हैं), कोमल चित्तवाले हैं, जिन्होंने अपने चिन्तन से आत्मा-परमात्मा का एकत्व निश्चय कर लिया है, जो मोह-जाल से निकल गये हैं, ऐसे महात्माओं के साथ जो वनों में शास्त्रों के अध्ययन द्वारा आत्मतत्त्व की निरन्तर विवेचना करते रहते हैं वे ही वास्तव में धन्य हैं, उन्हीं का जीवन सफल है, वे कृतकृत्य हैं।

– इति –

मनीषापञ्चकम्

मनीषापञ्चकम् के सन्दर्भ में एक परम्परागत आख्यायिका प्रचलित है। जब आचार्य शङ्कर काशी में मणिकर्णिका घाट के पास रह रहे थे तो एक दिन, अपने शिष्यों के साथ गङ्गास्नान के बाद विश्वनाथ के मन्दिर की ओर जाते समय, उन्हें सामने से चार कुत्तों के साथ एक चाण्डाल आता दिखाई दिया। उसे देख शङ्कर ने कहा, "अरे चाण्डाल, अपने कुत्तों के साथ एक ओर हो जा। हमें निकल जाने दे।" शंकर की चेतावनी को अनसुनी-सी करते हुए संस्कृत में चाण्डाल बोला, "तुम किसे हट जाने को कह रहे हो, आत्मा को या शरीर को? आत्मा तो सर्वव्यापी, निष्क्रिय और शुद्धस्वभाव है। यदि देह को हट जाने के लिये कह रहे हो तो देह तो जड़ है, कैसे हट सकता है? और अन्नमय तुम्हारी देह और अन्नमय मेरी देह में क्या अन्तर है? तुम तो *'एकमेवाद्वितीयम्'* इस ब्रह्मतत्त्व में प्रतिष्ठित होने का मिथ्या अभिमान करते हो। तत्त्वदृष्टि से क्या ब्राह्मण और चाण्डाल में कोई अन्तर है? गङ्गाजल में प्रतिबिम्बित सूर्य और सुरापात्र में प्रतिबिम्बित सूर्य में क्या कोई भेद है? क्या यही तुम्हारा ब्रह्मज्ञान है?"

चाण्डाल के सारगर्भित प्रश्नों ने आचार्य शङ्कर को अचम्भे में डाल दिया। वे लज्जित और स्तब्ध हो गये। उनको एकाएक बोध हुआ कि ऐसी वाणी किसी देव की ही — विश्वनाथ शंकर की ही — हो सकती है। उन्होंने नतमस्तक हो उत्तर दिया, "जो सब भूतों के प्रति समान भाव रखता है, और इसी के अनुसार जिसका व्यवहार है, वह चाण्डाल हो या ब्राह्मण, वही मेरा गुरु है। मैं उस गुरुस्वरूप देव को कोटि-कोटि प्रणाम करता हूँ।"

सहसा चाण्डाल व चारों कुत्ते अन्तर्ध्यान हो गये, और एक दिव्यपुरुष – साक्षात् भगवान् विश्वनाथ – चारों वेद हाथ में लिये, आचार्य के सम्मुख खड़े थे। आचार्य ने भक्ति भाव में गद्गद् होकर स्तुति आरम्भ की—

पशूनां पतिं पापनाशं परेशं
गजेन्द्रस्य कृत्तिं वसानं वरेण्यम्।
जटाजूटमध्ये स्फुरद्गाङ्गवारिं
महादेवमेकं स्मरामि स्मरारिम्॥

अजं शाश्वतं कारणं कारणानां,
शिवं केवलं भासकं भासकानाम्।
तुरीयं तमःपारमाद्यन्तहीनं,
प्रपद्ये परं पावनं द्वैतहीनम्॥

वेदसारशिवस्तोत्रम्

उस समय शंकर लगभग बारह वर्ष के रहे होंगे। आठ वर्ष की अवस्था में सन्यास लेकर घर से निकले थे, और तीन वर्ष नर्मदा के किनारे, गोविन्दपूज्यपाद के पास शास्त्रों का अध्ययन कर, चलते-चलते काशी पहुँचे थे। उन्हें अब **सम्बोधि** हो गई कि ब्रह्मज्ञानी के लिये *"एकमेवाद्वितीयम्"* ही एकमात्र तत्त्व है। चाण्डाल के चार कुत्तों के रूप में चारों वेद ही तो सामने थे, उनके सारभूत उपनिषदों का ज्ञान ही तो प्रकाशित हो रहा था।

स्वामी चिन्मयानन्द ने **मनीषापञ्चकम्** पर अपनी टीका में बताया है कि इन पाँच श्लोकों में चारों वेदों के चार महावाक्यों की व्याख्या की गई है। *ऋग्वेद* का *ऐतरेय उपनिषद्* (३:३) परम सत्ता का निरूपण इस महावाक्य में करता है– *"प्रज्ञानं ब्रह्म"*, चेतना ही ब्रह्म है। पहला श्लोक इस महावाक्य का विवेचन करता है।

दूसरे श्लोक में *यजुर्वेद* के *बृहदारण्यक उपनिषद्* (१.१.१०) के महावाक्य *"अहं ब्रह्मास्मि"* की व्याख्या है। जो अविद्या को पार कर, विद्या के दिव्य प्रकाश में आ गया है, वह परम शान्तिमय आनन्द में निरन्तर वास करता है क्योंकि उसके लिये तो *"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः"* ही परम सत्य है। तुच्छ अहंकार से ऊपर उठा हुआ ब्रह्मज्ञानी कह सकता है *"अहं ब्रह्मास्मि"*।

तीसरे श्लोक में *सामवेद* के *छान्दोग्य उपनिषद्* (छठा अध्याय) के

महावाक्य *''तत्त्वमसि''* के आधार पर यह बतलाया है कि समस्त जगत् शाश्वत रूप से नश्वर है, केवल ब्रह्म ही नित्य है। *तत्सत्य ँ स आत्मा।* **''तत्त्वमसि''**, श्वेतकेतो, **''तत्त्वमसि''**।

चौथे श्लोक में *अथर्ववेद* के *माण्डूक्य उपनिषद्* (१.२) के महावाक्य *''अयमात्मा ब्रह्म, सर्व ँ ह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म''* के आधार पर बताया गया है कि जो जीवन तत्त्व एक व्यक्तित्व को प्रकाशित करता है वही सब प्राणियों में विद्यमान चेतना है। उसी के प्रकाश में जड़ शरीर-मन-बुद्धि चेतना प्राप्त करते हैं, और प्रत्येक प्राणी में **''अहम्''** की प्रतीति होती है।

इस प्रकार *मनीषापञ्चकम्* के चार श्लोकों में समस्त अद्वैत वेदान्त का सार – *एकमेवाद्वितीयम्* – चार महावाक्यों के आधार पर निरूपित कर, पाँचवे श्लोक में संक्षेप और उपसंहार किया गया है। जिसको इन चार महावाक्यों पर आधारित इन चार श्लोकों में दिये गये उपदेश से संबोधि प्राप्त हो गई है, जिसकी बुद्धि नित्यानन्द सागर में मग्न है, वह केवल वेत्ता ही नहीं, स्वयं ब्रह्म है। उसकी वन्दना देवाधिदेव भी करते हैं। ऐसा ज्ञानी, आचार्य चार बार कहते हैं, चाहे चाण्डाल हो या ब्राह्मण, वही मेरा गुरु है।

उपनिषदों में प्रश्न और उत्तर – शंका और समाधान – की शैली बहुधा मिलती है। यहाँ भी चाण्डाल और शङ्कराचार्य के संवाद के रूप में द्वैत और अद्वैत का विवेचन किया गया है। सात श्लोकों में पहले दो श्लोकों में सारगर्भित प्रश्न हैं, अगले पाँच श्लोकों में इन प्रश्नों के, बड़ी सारगर्भित भाषा में, उत्तर हैं।

पहला श्लोक कुछ अशिष्ट-सी भाषा में है। जिस अशिष्ट भाषा में चाण्डाल से हटने के लिये कहा गया होगा, उससे भी अधिक अशिष्ट भाषा में, वक्रोक्ति का सहारा लेकर, ऐसे प्रश्न पूछे गये हैं कि उनमें उत्तर भी निहित हैं। इन प्रश्नों में मिथ्या धारणाओं को ध्वस्त करने के लिये, ज्ञानके मिथ्या अभिमान के ऊपर पड़े हुए पर्दे को हटाने के लिये, जानबूझ कर कठोर और स्पष्ट शब्दों का प्रयोग किया गया है। उदाहरण देकर, बात ठोक-ठोक कर कही गई है, और ओझल सत्य उजागर किया गया है।

चाण्डाल के वाग्मिता पूर्ण प्रश्न

(१)

अन्नमयादन्नमयमथवा चैतन्यमेव चैतन्यात्॥
द्विजवर दूरीकर्तुं वाञ्छसि किं ब्रूहि गच्छेति॥

अन्नमयात् अन्नमयं (अन्नमय शरीर से अन्नमय शरीर को) *अथवा चैतन्यं एव चैतन्यात्* (अथवा जो चैतन्य है उसको चैतन्य से) *दूरी कर्तुं वाञ्छसि* (दूर करना चाहते हो) *किं ब्रूहि गच्छ-गच्छ इति* (''दूर हट'', ''दूर हट'' किसलिये कह रहे हो।)

द्विजवर! ''हटो, हटो'' किससे कह रहे हो? किसे हटाना चाहते हो? किसे दूर करना चाहते हो? अन्नमय शरीर से अन्नमय शरीर को, या फिर, चैतन्य को चैतन्य से?

''द्विजवर!'' में व्यङ्ग्य है। आप तो अपने को बड़ा ऊँचा ब्राह्मण, दार्शनिक और सन्त समझते हैं न? और मैं हूँ चाण्डाल! लेकिन, बताइये तो सही आपके शरीर और मेरे शरीर में क्या अंतर है? क्या एक-से हाड़-मांस नहीं हैं? और, जड़ पदार्थों को– शरीर-मन-बुद्धि को– जीवन देने वाली चेतना समस्त भौतिक जगत् का कारण है, और उसमें सर्वत्र व्याप्त है। तो फिर उस चेतना को कैसे विखण्डित करोगे, चैतन्य को चैतन्य से कैसे दूर करोगे?

(२)

किं गङ्गाम्बुनि बिम्बितेऽम्बरमणौ चाण्डालवाटीपयः–
पूरे वान्तरमस्ति काञ्चनघटीमृत्कुम्भयोर्वाम्बरे।
प्रत्यग्वस्तुनि निस्तरङ्गसहजानन्दावबोधाम्बुधौ
विप्रोऽयं श्वपचोऽयमित्यपि महान्कोऽयं विभेदभ्रमः॥

किं अम्बरमणौ गङ्गा-अम्बुनि बिम्बिते (क्या गङ्गाजी में प्रतिबिम्बित सूर्य में) *चण्डालवाटीपयः-पूरे अन्तरं अस्ति* (चाण्डाल के अहाते की नाली में भरे हुए पानी में कोई अन्तर है?) *काञ्चन-घटी-मृत्कुम्भयोः वा अम्बरे* (अथवा सोने के पात्र और मिट्टी के बर्तन में सीमित आकाश में) *निस्तरङ्ग*-(तरङ्ग

रहित, शान्त) *सहज-आनन्द अवबोध-अम्बुधौ प्रत्यग्वस्तुनि* (प्रत्येक आत्मा के विचार-तरङ्ग रहित सहज आनन्दस्वरूप बोध के सागर में) *अयं विप्रः अयं श्वपचः इति* (यह ब्राह्मण है और यह चाण्डाल है ऐसा) *महान् कः अयं विभेदभ्रमः* (यह बड़ा भेद-भ्रम कैसा?)

(अद्वैतवेदान्तवादिन्!) बताइये तो सही गंगाजल में अथवा चाण्डाल के अहाते में इकट्ठे हुए पानी में प्रतिबिम्बित होने से सूर्य में क्या अन्तर होता है? (कुछ भी नहीं) सोने के पात्र में अथवा मिट्टी के घड़े में व्याप्त आकाश में क्या भेद है? (कुछ भी नहीं) प्रत्येक आत्मा के विचारतरंग सहित सहज आनन्दस्वरूप संबोधि के सागर में ऐसा भेद-भ्रम कैसे हो सकता है कि यह ब्राह्मण है और यह चाण्डाल है?

पहले श्लोक की भाषा अशिष्ट, अटपटी थी क्योंकि उसमें चाण्डाल बोल रहा था। इस श्लोक की भाषा शिष्ट और कोमल है, मानों एक गुरु शिष्य को समझा रहा हो। प्रश्न पूछे गये हैं – वाग्मितापूर्ण प्रश्न पूछे गये हैं – और इन प्रश्नों में ही उत्तर निहित हैं। यह भगवान् विश्वनाथ की वाणी है, उपनिषदों के ज्ञान की अमरवाणी है।

सूर्य सब स्थानों पर चमकता है, गङ्गाजल में भी और चाण्डालों की बस्ती की कीचड़भरी नालियों में भी। प्रतिबिम्बों में अन्तर होता है, प्रतिबिम्बित होने वाले सूर्य में नहीं।

आकाश सोने के पात्र में व्याप्त हो अथवा मिट्टी के घड़े में, आकाश में नहीं, पात्र अथवा घड़े में जो आकाश अवरुद्ध है उसमें अन्तर दिखाई देता है। सूर्य और आकाश की भाँति एक ही चेतना सब के हृदय में प्रतिबिम्बित हो रही है। आधार की भिन्नता के कारण प्रतिबिम्बों में अन्तर होता है, प्रतिबिम्बित होने वाली सत्ता में नहीं।

एक अनन्त चेतना जीवों के छोटे-छोटे अहंभावों में व्यक्त हो रही है। इस अनन्त एकता और चारों ओर दिखाई देने वाली भिन्नता की व्याख्या (जैसा कि स्वामी चिन्मयानन्द ने बताया है) वेदान्त में दो सिद्धान्तों से की जाती है– **प्रतिबिम्बवाद** और **अवच्छेदवाद**। हम सब के व्यक्तिगत मन-बुद्धि के सरोवर में परमात्मा की बिम्बरूप चेतना प्रतिबिम्बित होकर जीवनभाव उत्पन्न कर रही है। अगर मन-बुद्धि का यह सरोवर गन्दा है तो

प्रतिबिम्ब – सरोवर के भीतर का प्रतिबिम्ब – धुँधला दिखाई देगा। यदि सरोवर निर्मल है तो प्रतिबिम्ब शुभ्र दिखाई देगा। चाण्डाल और ब्राह्मण का यही भेद है। एक में शरीर-मन-बुद्धि के सरोवर का पानी गन्दा है, दूसरे में निर्मल। किन्तु उस सरोवर में प्रतिबिम्बित होने वाला सूर्य का प्रकाश तो मल से अथवा निर्मलता से अलिप्त है। यह **प्रतिबिम्बवाद** है।

शरीर-मन-बुद्धि के उपकरणों से परिच्छिन्न परमात्म चेतना ही व्यक्तिगत अहं के रूप में भासित होती है। यह व्यक्तिगत विभागीकरण – सर्वव्यापी का छोटे-छोटे खण्डों में दिखाई देने वाला विभाजन **अवच्छेदवाद** कहलाता है।

दूसरे श्लोक में गङ्गाजल और गन्दी नाली के जल में सूर्य का प्रतिबिम्ब और सुवर्णपात्र और मिट्टी के घड़े में व्याप्त आकाश का उदाहरण देकर प्रतिबिम्बवाद और अविच्छेदवाद को समझाया गया है। गङ्गाजल और गन्दी नाली में सूर्य के प्रतिबिम्ब अलग-अलग दिखाई देते हैं, किन्तु सूर्य का बिम्ब तो एक है; सोने अथवा मिट्टी के छोटे-बड़े पात्रों में सिमटा आकाश परिच्छिन्न दिखाई देता है, किन्तु सर्वव्यापी आकाश तो अविच्छिन्न ही रहता है। उसी भाँति, नाना नाम-रूपों में प्रतिबिम्बित चेतना अलिप्त और अखण्डित रहती है। **अयमात्मा ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि** इसी तथ्य का उद्घोष करते हैं।

इस दूसरे श्लोक में वाग्मितापूर्ण प्रश्न (जिसे अंग्रेजी में rhetorical Question कहते हैं) के द्वारा जिस प्रतिबिम्बवाद और अवच्छेदवाद को रेखाङ्कित किया गया है, उसी की अगले चार श्लोकों में व्याख्या है। ध्यान देने की बात है कि इस प्रश्न में ही सम्भावित उत्तर छिपा हुआ है।

आचार्य की व्याख्या

(१)

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु स्फुटतरा या संविदुज्जृम्भते,
या ब्रह्मादिपिपीलिकान्ततनुषु प्रोता जगत्साक्षिणी।
सैवाहं न च दृश्यवस्त्विति दृढप्रज्ञाऽपि यस्यास्ति चेत्
चाण्डालोऽस्तु स तु द्विजोऽस्तु गुरुरित्येषा मनीषा मम।।

जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिषु स्फुटतरा (जाग्रत्, स्वप्न, और सुषुप्ति की तीनों अवस्थाओं में प्रकट) *या संविद्* (जो प्रत्यक्ष ज्ञान) *उज्जृम्भते* (प्रकाशित होता है) *या* (जो) *ब्रह्मा-आदि-पिपीलिका-अन्त-तनुषु* (जो ब्रह्मा से लेकर चींटी तक के शरीरों में) *प्रोता जगत् साक्षिणी* (व्याप्त होकर जगत् की साक्षी है) *स एव अहं* (मैं वही हूँ) *न च दृश्यवस्तु इति* (जो दिखाई दे रही है वह वस्तु नहीं हूँ) *यस्य दृढ़प्रज्ञा अस्ति अपि* (जिसकी यह दृढ़ प्रज्ञा है) *चेत् चाण्डालः अस्तु स तु द्विजः अस्तु* (वह चाहे चाण्डाल हो अथवा द्विज हो) *गुरुः* (मेरा गुरु है) *एषा मम मनीषा* (यह मेरी दृढ़ धारणा है)

जो जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओं के समस्त अनुभवों को प्रकट करती है वह जगत् की साक्षी चेतना, प्रत्यक्षज्ञान (संविद्) है, वह दृश्यवस्तु नहीं है। यही व्याप्त चेतना ब्रह्मा से लेकर चींटी तक के शरीरों में चमकने वाला जीवन स्फुलिङ्ग है। "वही चेतना – दृश्यवस्तु नहीं – मैं हूँ" जिसकी यह दृढ़प्रज्ञा है, वह, चाहे चाण्डाल हो चाहे द्विज, वही मेरा गुरु है। यह मेरा सुस्थिर मत है, दृढ़ निश्चय है।

इस श्लोक में प्रज्ञा (प्रज्ञानं ब्रह्म) और दृश्यमान पदार्थों का अन्तर बताया गया है। शरीर-मन-बुद्धि, उपकरण, स्वयं में भौतिक वस्तु है, जड़ और अचेतन है। न शरीर, अपने-आप में, देख-सुन सकता है, न मन, अपने आप में, संवेगों का अनुभव कर सकता है, न बुद्धि, अपने आप में कुछ जान सकती है। इन जड़-अचेतन पदार्थों को जब आत्मा की चेतना की जीवन-प्रदायिनी शक्ति मिलती है, तब ये जड़-अचेतन पदार्थ सक्रिय हो जाते हैं, इनमें स्फूर्ति आ जाती है। यही प्रज्ञा आत्मा, या यों कहें, ब्रह्म है। यही चेतना जीवन-तत्त्व है, सभी प्राणियों में प्रकाशवान् अस्तित्व है। मैं यह प्रकाशवान् अस्तित्व हूँ, मैं यह आत्मा की चेतना हूँ, मैं ब्रह्म हूँ – सामने दिखाई देने वाला विषय-जगत् नहीं हूँ – यही प्रज्ञा है, यही ब्रह्मज्ञान है। **प्रज्ञानं ब्रह्म ब्रह्मैवाहम्।**

(२)

ब्रह्मैवाहमिदं जगच्च सकलं चिन्मात्रविस्तारितं,
सर्वं चैतदविद्यया त्रिगुणयाऽशेषं मया कल्पितम्।

इत्थं यस्य दृढा मतिस्सुखतरे नित्ये परे निर्मले
चाण्डालोऽस्तु स तु द्विजोऽस्तु गुरुरित्येषा मनीषा मम।

ब्रह्म एव अहं (मैं ब्रह्म ही हूँ) *इदं जगत् च चिन्मात्रविस्तारितं* (और यह सम्पूर्ण जगत् चिन्मात्र का ही विस्तार है) *सर्वं एतत् त्रिगुणया अविद्यया* (त्रिगुणात्मिका, सत्, रज, तम गुणों से युक्त अविद्या द्वारा) *अशेषं मया कल्पितं* (सब मेरे द्वारा कल्पित है, मेरी कल्पना की उपज है) *इत्थं यस्य दृढा मतिः* (जिसकी यह दृढ़ बुद्धि है) *परे सुखतरे नित्ये निर्मले* (नित्य, अतिशय आनन्दस्वरूप परम निर्मल–मायालेशरहित–परमात्मा के विषय में) *चाण्डालः अस्तु स च द्विजः अस्तु* (चाहे वह चाण्डाल हो अथवा द्विज हो) *गुरुः इति एषा मम मनीषा* (वह गुरु स्वरूप है वह मेरी दृढ़ धारणा है।)

मैं सच्चिदानन्द ब्रह्म हूँ। यह सारा दृश्यमान जगत्, जो त्रिगुणात्मक माया के कारण चिन्मात्र का विस्तार है, मेरे द्वारा ही कल्पित है। मेरी अविद्या का आभास है। आनन्दमय, नित्य, परम निर्मल सत्ता के बारे में, जिस किसी की भी, यह दृढ़मति है वह, चाण्डाल अथवा ब्राह्मण कोई भी हो, मेरा गुरु है। मेरी यह दृढ़ धारणा है।

"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव" नापरः

की इस श्लोक में व्याख्या की गई है। जगत् इस अर्थ में मिथ्या है कि हमें यह अपने मन-बुद्धि के दर्पण में दिखाई दे रहा है। यह इन्द्रिय-सापेक्ष है। मैं ब्रह्म हूँ। चिन्मात्र का विस्तार यह दृश्यमान वस्तुजगत् मेरी त्रिगुणात्मक अविद्या के द्वारा कल्पित है।

तत् (वह) है, इदम् (यह) है, और अहम् (मैं) हूँ। 'तत्' – उसका कोई नाम नहीं ढूँढा जा सकता। उसे ब्रह्म कह लेते हैं। केवल वही सत्य है, उसी की एकमात्र सत्ता है। 'इदम्' – यह दृश्यमान, नाना नामरूपात्मक जगत्, यह मन-बुद्धि के दर्पण में दिखाई देने वाला प्रतिबिम्ब, 'अहम्' की कल्पना में निर्माण किया हुआ, त्रिगुणात्मक अविद्या द्वारा रचा हुआ निर्माण है। और मन-बुद्धि के इस दर्पण पर अज्ञान का आवरण पड़ सकता है, विक्षेप हो सकता है, और परिणामस्वरूप अप्रतीति या अन्यथा प्रतीत हो सकती है। यह आवरण और विक्षेप अविद्या के रूप हैं। अप्रतीति प्रतीति

से – या यों कहें अज्ञान ज्ञान से – दूर हो सकता है, पदार्थ-बोध प्रज्ञा की संबोधि से बदला जा सकता है। जब प्रज्ञा परिनिष्ठित हो जाती है तो समझ में आता है, *प्रज्ञानं ब्रह्म, ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः।*

(३)

शश्वन्नश्वरमेव विश्वमखिलं निश्चित्य वाचा गुरो-
र्नित्यं ब्रह्म निरन्तरं विमृशता निर्व्याजशान्तात्मना।
भूतं भावि च दुष्कृतं प्रदहता संविन्मये पावके
प्रारब्धाय समर्पितं स्ववपुरित्येषा मनीषा मम॥

गुरोः वाचा निश्चित्य (गुरु की वाणी से यह निश्चय कर) *अखिलं विश्वं शश्वत् नश्वरं एव* (यह समस्त विश्व शाश्वत रूप से नश्वर ही है) *निर्व्याजि-शान्त-आत्मना* (निश्छल और शान्त मन से) *नित्यं ब्रह्म निरन्तरं विमृशता* (निरन्तर विचार कर यह समझ लिया है कि ब्रह्म नित्य है) *भूतं भावि च दुष्कृतं* (भूतकाल में किये गये अथवा भविष्य में किये जाने वाले दुष्कर्म को) *संविद्-मये पावके* (ज्ञानरूपी अग्नि में) *प्रदहता* (भस्म कर दिया है) *स्ववपुःप्रारब्धाय समर्पितं* (और अपना शरीर प्रारब्ध पर छोड़ दिया है) *इति एषा मम मनीषा* (ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।)

जिसने अपने गुरु के उपदेश से यह निश्चय कर लिया है कि यह सम्पूर्ण विश्व सदा विनाशशील ही है, और निश्छल और शान्त चित्त से नित्य निरन्तर ब्रह्म का विचार करते हुए, ज्ञानरूपी अग्नि में पहले किये हुए अथवा आगे किये जाने वाले कर्मों को जला दिया है, और अपने शरीर को प्रारब्ध के अधीन कर दिया है, वही मेरा गुरु है। यह मेरा निश्चित मत है।

इस श्लोक में बड़े सारगर्भित शब्दों में अद्वैत वेदान्त के सार को समझाया गया है, और उसे समझने में सहायक विचार-शृङ्खला का विवेचन किया है। सर्वप्रथम यह समझना चाहिए कि यह सारा विश्व निरन्तर परिवर्तनशील और नश्वर है। गुरु की सिद्ध वाणी में दिया गया उपदेश इस परम सत्य को उजागर करेगा। फिर शान्त, निश्छल चित्त से विचारकर यह

समझना चाहिये कि केवल ब्रह्म ही नित्य, निरन्तर, और शाश्वत है। "विश्व नश्वर है, और ब्रह्म नित्य है – **ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या–**" यह संबोधि दृढ़ कर लेनी चाहिए। जब यह दोनों तथ्य – विश्व की नश्वरता और ब्रह्म की नित्यता – मन में सुदृढ़ हो जायें तो ज्ञानाग्नि में भूत और भविष्य के दुष्कृत्यों को जला डालना चाहिये। यह ज्ञान से मुक्ति का मार्ग है। इसके बाद अपने शरीर को प्रारब्ध के हाथों में छोड़ देना चाहिये।

जिसने इस चारों बातों को – विश्व नश्वर है, ब्रह्म नित्य है, ज्ञान की अग्नि में दुष्कर्मों का नाश हो सकता है, और, इसके बाद, शरीर को प्रारब्ध के हाथों छोड़ देना चाहिये – अच्छी तरह समझ लिया है, उसके लिये नित्यानन्द का मार्ग सुलभ हो जायेगा। जब यह समझ लिया कि सारा विश्वप्रपञ्च निरन्तर परिवर्तनशील और नश्वर है तो इसमें आसक्ति अपने-आप, क्षीण होने लगेगी और आसक्ति से उपजी पीड़ा का नाश होगा। मनुष्य नश्वर वस्तुओं में सुख प्राप्त करने की अभीप्सा में दुखी होता है, कामनाएँ पूरी नहीं होती और अभावों के कष्ट सताने लगते हैं। जब यह जान लिया कि जिसकी अभीप्सा थी वह परिवर्तनशील और नश्वर है तो आशा-तृष्णा से उपजने वाली मन की पीड़ा शान्त होने लगेगी। यह ज्ञान-वैराग्य की सुखी जीवन की ओर ले जाने वाली पगडण्डी है।

यह समझ लेने के बाद कि समस्त विश्व नश्वर, क्षणभङ्गुर है, और इससे मोह-भङ्ग होना चाहिये, यह भी हृदयङ्गम करना चाहिये कि निश्छल, शान्त चित्त में उतरा हुआ ब्रह्म ही नित्य है। और शरीर-मन-बुद्धि से परे जो आत्मा है वह नित्य और शाश्वत है। उसमें आनन्द का सागर है।

वस्तु जगत् की क्षणभङ्गुरता से मोह-भङ्ग और निश्छल शान्त चित्त से नित्य निरन्तर ब्रह्म की संबोधि होने के बाद, तीसरा सोपान ज्ञानाग्नि में पाप राशि को, दुष्कर्मों के परिणामों को, भस्म करना है। इसके लिये पूर्वकाल में मन को क्षुब्ध करने वाली संचित वासनाओं को, जिनसे हमारे वर्तमान व्यक्तित्व का निर्माण हुआ है, ज्ञान-वैराग्य द्वारा क्षीण करना है।

इन तीन सोपानों के ऊपर पहुँचने के बाद, जो कुछ संचित वासनाओं का अंश परिपक्व होकर कर्मफल के रूप में रह जाय उसे प्रारब्ध मानकर निश्चिन्त हो जाना चाहिये।

(४)

या तिर्यङ्नरदेवताभिरहमित्यन्तः स्फुटा गृह्यते
यद्भासा हृदयाक्षदेहविषया भान्ति स्वतोऽचेतनाः।
तां भास्यैः पिहितार्कमण्डलनिभां स्फूर्तिं सदा भावय-
न्योगी निर्वृतमानसो हि गुरुरित्येषा मनीषा मम।

या (जो) *तिर्यङ्*-(तिर्यग्योनि में जन्म लेने वाली पशु-सृष्टि) *नर-देवताभिः अहं इति अत्यन्तः स्फुटा* (पशु-पक्षी, मनुष्य और देवताओं में 'अहं' रूप में स्पष्ट है) *गृह्यते* (अनुभवगम्य है) *यद्भासा* (जिसके प्रकाश से) *हृदय-अक्ष-देह-विषयाः* (मन, आँखें आदि देह की इन्द्रियाँ) *स्वतः अचेतनाः* (अपने-आप में अचेतन होते हुए भी) *भान्ति* (चेतन भासित होती है) *तां* (उस) *पिहित-अर्कमण्डलनिभां स्फूर्तिं* (बादल में छिपे सूर्य के समान सत्ता को) *सदा भावयन्* (सदा भावना करता हुआ) *निर्वृत्तमानसः गुरु इति* (वृत्तिरहित, सन्तुष्ट चित्त मेरा गुरु है) *एषा मम मनीषा* (यह मेरी दृढ़ धारणा है।)

जो पशु-पक्षी, मनुष्य, देवता – सभी प्राणधारियों में 'अहं' रूप से अत्यन्त स्पष्ट अनुभवगम्य है, जिसकी चेतना के प्रकाश में, स्वयं जड़ होते हुए भी, मन-बुद्धि और शरीर को, बादलों में छिपे सूर्य की भाँति, प्रकाशित कर रहा है, उस परम सत्ता में जिस सन्तुष्टचित्त योगी की दृढ़ आस्था है, वही मेरा गुरु है। मेरा यह निश्चित मत है।

पशु-पक्षी मनुष्य, देवता – सब में एक सर्वव्यापक चेतना की ऊर्जा है। जो जीवनतत्त्व एक व्यक्तित्व को प्रकाशित करता है, वही सब प्राणियों में विद्यमान चेतना है। उसी की ऊर्जा से शरीर-मन-बुद्ध चेतना पाते हैं और प्रत्येक प्राणी में 'अहं' की प्रतीति होती है। शरीर के बाह्य और आन्तरिक उपकरण स्वयं में जड़ हैं। किन्तु आत्म-चेतना की ऊर्जा से वे चेतन क्रियाशील हो जाते हैं। योगी, अपनी कल्पना से निर्मित जगत्-प्रपञ्च से मन को हटा कर, शान्ति और एकाग्रता से, अपने हृदय में स्थित इस चेतनतत्व में लीन रहता है। उसको संबोधि प्राप्त हो जाती है कि आत्मा ही परमात्मा है, **अयमात्मा ब्रह्म।**

(५)

यत्सौख्याम्बुधिलेशलेशत इमे शक्रादयो निर्वृताः
यच्चित्ते नितरां प्रशान्तकलने लब्ध्वा मुनिर्निर्वृतः।
यस्मिन्नित्यसुखाम्बुधौ गलितधीर्ब्रह्मैव न ब्रह्मवि-
द्यः कश्चित्स सुरेन्द्रवन्दितपदो नूनं मनीषा मम॥

यत्-सौख्य-अम्बुधि-लेश-लेशतः (जिस सुख सागर की छोटी-से-छोटी बूँद से) *इमे शक्र-आदयः निर्वृताः* (इन्द्र आदि देवगण भी अपने को तृप्त मानते हैं) *यत् प्रशान्तकलने चित्ते* (जिस प्रशान्त चञ्चल वृत्तियों से रहित-चित्त में) *नितरां लब्ध्वा मुनिर्निर्वृतः* (मुनिजनों की चित्तवृत्ति समाप्त होने पर आनन्द का अनुभव होने लगता है) *यस्मिन्* (जिस) *नित्य-सुख-अम्बुधौ* (शाश्वत सुखसागर में) *गलितधीः* (बुद्धि के गल जाने पर) *ब्रह्म-एव न ब्रह्मवित्* (केवल ब्रह्म ही रह जाता है, ब्रह्मवेत्ता नहीं रहता) *यः कश्चित् स* (ऐसा वह कोई) *सुरेन्द्रवन्दितपदः* (जिसकी देवराज इन्द्र भी वन्दना करते हैं) *नूनं मनीषा मम* (ऐसी मेरी निश्चित धारणा है)।

जिस सुखसागर की छोटी-से-छोटी बूँद से इन्द्र आदि देवता भी अपने को सन्तुष्ट और तृप्त मानते हैं, जिन मुनिजनों की चञ्चल वृत्ति सर्वथा समाप्त हो गई है, वे भी अपने चित्त में जिसका अनुभव कर आनन्द मग्न रहते हैं, तथा जिस नित्य सुख के समुद्र में बुद्धि के विगलित हो जाने पर केवल ब्रह्म ही शेष रह जाता है, न कि ब्रह्मवेत्ता, उस आनन्दसागर में मग्न महात्मा के चरणों की वन्दना देवराज इन्द्र भी करते हैं। ऐसी मेरी निश्चित धारणा है।

पहले दो श्लोकों में एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाया गया – श्वपच और द्विज में क्या अन्तर है? अगले चार श्लोकों में **प्रज्ञानं ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म** – इन चार महावाक्यों के प्रकाश में **"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः"** के सिद्धान्त को आधार बना कर और अद्वैतवेदान्त की प्रमुख धारणा **एकमेवाद्वितीयम्** प्रतिष्ठित की गई। इस अन्तिम श्लोक में उपसंहार और फलश्रुति है। *तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।*

मनीषापञ्चकम् की यह व्याख्या स्वामी चिन्मयानन्द का प्रसाद है।

दशश्लोकी

(१)

न भूमिर्न तोयं न तेजो न वायु-
र्न खं नेन्द्रियं वा न तेषां समूहः।
अनैकान्तिकत्वात् सुषुप्त्येकसिद्ध-
स्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम्॥

न भूमिः न तोयं न तेजः न वायुः (मैं न पृथ्वी हूँ, न जल हूँ, न अग्नि हूँ, न वायु हूँ – जल, थल, पावक, गगन, समीर – कुछ भी नहीं हूँ) *न खं न इन्द्रियं वा न तेषां समूहः* (न आकाश हूँ, न इन्द्रिय हूँ, और न उन सबका समूह ही हूँ) *अन-एक-*(ये सब) *अन्तिकत्वात्* (ये सब चञ्चल, परिवर्तनशील हैं) *सुषुप्ति-एक-सिद्धः* (गहरी निद्रा में वह आत्मतत्त्व अनुभवगम्य, सिद्ध है) *तत् एकः* (वह एक) *अवशिष्टः* (बचा रहता है) *शिवः केवलः अहम्* (मैं वही शिवस्वरूप, केवल आत्मा हूँ)

मैं न पृथ्वी हूँ, न जल, न अग्नि, न वायु, न आकाश हूँ। न कोई एक इन्द्रिय हूँ, न इन्द्रियों का समुदाय ही हूँ। ये सब तो परिवर्तनशील हैं। मैं तो सुषुप्ति अवस्था में जो एक, अद्वितीय, बच रहता है, वह अवशिष्ट शिवस्वरूप केवल आत्मा हूँ।

(२)

न वर्णा न वर्णाश्रमाचारधर्मा
न मे धारणाध्यानयोगादयोऽपि।
अनात्माश्रयाहंममाध्यासहानात्
तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम्॥

न वर्णाः (न मेरा कोई वर्ण है) *न वर्णआश्रम-आचार-धर्माः* (न मैं वर्णाश्रम

धर्म के आचरण में बँधा हुआ हूँ) *न मे धारणा-ध्यान-योग-आदयः अपि* (न ही मेरे लिये कोई धारणा, ध्यान, योग आदि यौगिक क्रियाएँ हैं) *अनात्म-आश्रय-*(अनात्म वस्तुओं में आश्रित) *अहं मम अध्यास-*('मैं' और 'मेरे' का भ्रम) *हानात्* (दूर होने पर) *अहं तत् एकः अवशिष्टः केवलः शिवः* (जो केवल एक शिव रह जाता है मैं वह हूँ।)

न मेरा कोई वर्ण है, न कोई वर्णाश्रम आचार धर्म। यौगिक क्रियायें धारणा, ध्यान आदि भी मेरे लिये नहीं है। शरीर आदि अनात्म वस्तुओं में अहंता-ममता का भ्रम आत्मज्ञान होने पर दूर हो जाता है। इस भ्रम के दूर होने के पश्चात् जो बचता है, मैं वह अवशिष्ट केवल शिव हूँ।

(३)

न माता पिता वा न देवा न लोका
न वेदा न यज्ञा न तीर्थं ब्रुवन्ति।
सुषुप्तौ निरस्तातिशून्यात्मकत्वात्
तदेकोऽविशिष्टः शिवः केवलोऽहम्॥

न माता पिता (न माता पिता) *वा* (और) *न देवाः न लोकाः* (न देवता न चौदह लोक) *न वेदाः न यज्ञाः न तीर्थं ब्रुवन्ति* (न वेद, न यज्ञ, न तीर्थ मेरा वर्णन कर सकते हैं) *सुषुप्तौ* (गहरी निद्रा में) *निरस्त-*(निराकरण होने पर) *अतिशून्य-*(अत्यन्त शून्य हो जाते हैं) *आत्मकत्वात्* (जो शुद्ध आत्मा बच रहता है) *अहं तत् एकः अवशिष्टः केवलः शिवः* (जो एकमात्र बच रहता है मैं वह शिव हूँ।)

न माता-पिता, न तैंतीस करोड़ देवता, न चौदह लोक, न चारों वेद, न यज्ञ, और न तीर्थ – इनमें कोई भी मेरा वर्णन नहीं कर सकता। गहरी निद्रा में ये सब अतिशून्य हो जाते हैं। उस अवस्था में भी जो एकमात्र बच रहता है वह शिवस्वरूप आत्मा मैं ही हूँ।

(४)

न सांख्यं न शैवं न तत् पाञ्चरात्रं
न जैनं न मीमांसकादेर्मतं वा

विशिष्टानुभूत्या विशुद्धात्मकत्वात्
तदेकोऽविशिष्टः शिवः केवलोऽहम्॥

न साख्यं न शैवं न तत् पाञ्चरात्रं (न सांख्यमत, न शैवागम, न पाञ्चरात्र वैष्णव मत) *न जैनं न मीमांसक-आदेः मतं वा* (और न जैनमत, न मीमासंक आदि मत) *विशिष्ट-अनुभूत्या* (अपरोक्ष अनुभूति द्वारा) *विशुद्ध-आत्मकत्वात्* (मायारहित विशुद्ध आत्मा) *अहं तत् एकः अवशिष्टः केवलः शिवः* (जो मायारहित एकमात्र बच रहता है वह शिवस्वरूप आत्मा मैं हूँ।)

न सांख्यमत, न शैवागम, न पाञ्चरात्र वैष्णवमत, न जैन मत, न मीमांसक आदि – कोई भी मेरा प्रतिपादन नहीं कर सकते। विशिष्ट अपरोक्ष अनुभूति द्वारा जिसका मायारहित विशुद्ध रूप जाना जाता है, वह एकमात्र अवशिष्ट शिवस्वरूप आत्मा मैं हूँ।

(५)

न चोर्ध्वं न चाधो न चान्तर्न बाह्यं
न मध्यं न तिर्यङ् न पूर्वापरा दिक्।
वियद्व्यापकत्वात् अखण्डैकरूपः
तदेकोऽविशिष्टः शिवः केवलोऽहम्॥

न च ऊर्ध्वं न च अधः (न ही ऊपर न ही नीचे) *न च अन्तः न बाह्यं* (न भीतर न बाहर) *न मध्यं न तिर्यङ्* (न मध्य न आरपार तिरछा) *न पूर्वा परा दिक्* (न पूर्व न दूसरी पश्चिम दिशा) *वियद्*-(आकाश) *व्यापकत्वात्* (व्यापक होने के कारण) *अखण्ड एकरूपः* (अविच्छिन्न एकरूप)

मैं न ऊपर की दिशा हूँ, न नीचे की। न भीतर हूँ, न बाहर। न बीच में हूँ न तिरछा, न पूर्व दिशा न दूसरी पश्चिम दिशा। आकाश के समान सर्वव्यापक, अखण्डरूप जो कुछ एकमात्र बच रहता है, वह अवशिष्ट शिवस्वरूप आत्मा मैं हूँ।

(६)

न शुक्लं न कृष्णं न रक्तं न पीतं
न कुब्जं न पीनं न ह्रस्वं न दीर्घम्।

अरूपं तथा ज्योतिराकारकत्वात्
तदेकोऽविशिष्टः शिवः केवलोऽहम्॥

न शुक्लं न कृष्णं न रक्तं न पीतं (सफेद, काला, लाल, पीला – मेरा कोई रंग नहीं है) *न कुब्जं न पीनं न ह्रस्वं न दीर्घम्* (न कुबड़ा हूँ, न मोटा हूँ, न बड़ा हूँ, न छोटा) *अरूपं* (मेरा कोई रूप नहीं है) *ज्योतिः आकारकत्वात्* (ज्योतिस्वरूप होने के कारण)

न मेरा रंग सफेद है न काला, न लाल न पीला। मेरा आकार न कुबड़ा है, न मोटा, न बड़ा है, न छोटा। ज्योतिःस्वरूप होने के कारण मेरा कोई रूप नहीं है। इन वर्ण, आकार, रूपों के निराकरण हो जाने के उपरान्त जो केवल एकमात्र बच रहता है, वह शिवस्वरूप आत्मा मैं हूँ।

(७)

न शास्ता न शास्त्रं न शिष्यो न शिक्षा
न च त्वं न चाहं न चायं प्रपञ्चः।
स्वरूपावबोधो विकल्पासहिष्णुः
तदेकोऽविशिष्टः शिवः केवलोऽहम्॥

न शास्ता न शास्त्रं न शिष्यः न शिक्षा (मैं न शासन करने वाला और न शास्त्र हूँ, न मैं शिष्य हूँ, न शिक्षा) *न च त्वं न च अहं न च अयं प्रपञ्चः* (न 'तू' हूँ, न 'मैं' हूँ, न यह दृश्यमान जगत् हूँ) *स्वरूप-अवबोधः विकल्प-असहिष्णु* (स्वरूप का ज्ञान और भेदरहित एकमात्र मैं)

न मैं शास्त्र पढ़ाने वाला हूँ, न शिष्य हूँ; न शास्त्र अथवा शिक्षा भी नहीं हूँ। मैं न तो 'तू' हूँ, न 'मैं'। यह दृश्यमान जगत् जो माया और नानात्व का प्रदर्शनमात्र है वह भी मैं नहीं हूँ। स्वरूप का ज्ञान ही मेरा रूप है। मुझमें कुछ भी भेद नहीं रह सकता। ऐसा मैं एकमात्र शिवस्वरूप आत्मा हूँ।

(८)

न जाग्रन्न मे स्वप्नको वा सुषुप्तिः
न विश्वो न वा तैजसः प्राज्ञको वा।

अविद्यात्मकत्वात् त्रयाणां तुरीयः
तदेकोऽविशिष्टः शिवः केवलोऽहम्।।

न जाग्रत् न मे स्वप्नकः वा सुषुप्तिः (मेरे लिये न जाग्रत् है, न स्वप्न, न सुषुप्ति) *न विश्वः न वा तैजसः न प्राज्ञकः* (न इन तीनों अवस्थाओं के अधिष्ठाता विश्व, तैजस, अथवा प्राज्ञ मेरे लिये हैं) *अविद्यात्मकत्वात्* (अविद्यारूप होने के कारण) *त्रयाणां तुरीयं* (इन तीनों अवस्थाओं से आगे मैं चौथी अवस्था हूँ)

मेरे लिये जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति– तीनों ही अवस्थाएँ नहीं हैं। इनके अधिष्ठाता विश्व, तैजस और प्राज्ञ भी मेरे लिये नहीं हैं। मैं इन तीनों अवस्थाओं से आगे चौथी तुरीय अवस्था हूँ। ये तीनों अविद्यारूप हैं। इन तीनों से परे चौथी तुरीय अवस्था में जो कुछ बच रहता है, वह शिवस्वरूप आत्मा मैं हूँ।

(९)

अपि व्यापकत्वाद्धि तत्त्वप्रयोगात्
स्वतः सिद्धभावादनन्याश्रयत्वात्।
जगत् तुच्छमेतत् समस्तं तदन्यत्
तदेकोऽविशिष्टः शिवः केवलोऽहम्।।

तत् अन्यत् (वह दूसरा) *व्यापकत्वात् हि* (सर्वव्यापक होने के कारण) *तत्त्वप्रयोगात्* ('तत्त्व' शब्द का प्रयोग होने के कारण) *स्वतः सिद्धभावात् अनन्य-आश्रयत्वात्* (स्वतः सिद्ध और अनन्य आश्रय होने के कारण) *एतत् जगत् तुच्छं* (यह जगत् तुच्छ है।)

यह सारा जगत्, आत्मतत्त्व नहीं होने के कारण तुच्छ है। जो सर्वव्यापक है, जिसके लिये 'तत्त्व' शब्द का प्रयोग किया जाता है, जो स्वतः सिद्ध है, किसी अन्य पर आश्रित नहीं है, वह, इन सबसे अलग, जो कुछ बच रहता है, वह शिवस्वरूप आत्मतत्त्व मैं हूँ।

(१०)

न चैकं तदन्यद् द्वितीयं कुतः स्यात्
न वा केवलत्वं न चाकेवलत्वम्।

न शून्यं न चाशून्यमद्वैतकत्वात्
कथं सर्ववेदान्तसिद्धं ब्रवीमि॥

न च एकं तत् अन्यं (उससे भिन्न कोई एक भी नहीं है) *द्वितीयं कुतः स्यात्* (तब दूसरा कहाँ होगा?) *न वा केवलत्वं* (और वह एकमात्र, अद्वितीय भी नहीं है) *न च अकेवलत्वम्* (और न वह अविशिष्ट है) *अद्वैतकत्वात्* (अद्वैत होने के कारण) *न शून्यं न च अशून्यं* (न शून्य है न अशून्य है) *कथं सर्ववेदान्त-सिद्धं ब्रवीमि* (तव फिर सर्ववेदान्तसिद्ध का किस प्रकार वर्णन करूँ)

उस ब्रह्म से भिन्न कोई एक भी नहीं है, दूसरा तो हो ही कैसे सकता है। न वह एकमात्र विशिष्ट है, न अविशिष्ट। वह शून्य है, न अशून्य है। मैं उस अवर्णनीय का जो सर्ववेदान्तसिद्ध है, और किन शब्दों में वर्णन करूँ?

दशश्लोकी के विषय में एक जनश्रुति है। कहते हैं जब बालक शङ्कर नर्मदा के तीर पर गोविन्दपाद के पास पहुँचे तो, उनकी परीक्षा लेने के लिये पूछा गया "तुम कौन हो?" इस प्रश्न का उत्तर बालक शंकर ने इन दस श्लोकों में दिया। अद्वैत वेदान्त की ऐसी सुबोध व्याख्या सुनकर गुरुवर गोविन्दपाद सन्तुष्ट हुए और बालक को अपना शिष्य बनाना स्वीकार किया।

यह भी कहा जाता है कि जब आचार्य स्वर्गारोहण करने जा रहे थे तो शिष्यों ने उनसे अन्तिम उपदेश देने की प्रार्थना की। आचार्य शंकर ने इन दस श्लोकों को सुनाकर इन पर ध्यानपूर्वक मनन करने का अन्तिम उपदेश दिया।

अद्वैत वेदान्त की ऐसी संक्षिप्त और सुबोध व्याख्या अन्यत्र दुर्लभ है।

– इति –

निर्वाणषट्कम्

(१)

मनोवुद्ध्यहंकारचित्तानि नाहं

न कर्णो न जिह्वा न च घ्राणनेत्रे।

न च व्योम भूमिर्न तेजो न वायु-

श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥

अहं न मनः बुद्धि-अहंकारचित्तानि (मैं मन, बुद्धि, अहंकार अथवा चित्त नहीं हूँ) *न कर्णः न जिह्वा न घाणनेत्रे* (न कान हूँ, न जीभ हूँ, और न नासिका अथवा नेत्र हूँ) *न च व्योम भूमिः न तेजः न वायुः* (और न आकाश हूँ, न पृथ्वी हूँ, न अग्नि हूँ, न वायु हूँ) *चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्* (मैं तो चिदानन्दस्वरूप शिव हूँ, केवल शिव हूँ)

मैं मन, बुद्धि, चित्त, अथवा अहंकार नहीं हूँ। कान, नाक, जीभ और नेत्र भी नहीं हूँ। न मैं आकाश हूँ, न पृथ्वी, न अग्नि, न वायु। मैं तो केवल चिदानन्दस्वरूप शिव हूँ, केवल शिव हूँ।

(२)

न च प्राणसंज्ञो न वै पञ्चवायु-

र्न वा सप्तधातुर्न वा पञ्चकोशः।

न वाक् पाणिपादौ न चोपस्थपायु-

श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥

न च प्राणसंज्ञः (मेरी प्राणसंज्ञा नहीं है) *न वै पञ्चवायुः* (न पाँच जीवनप्रद वायु – प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान) *न वा सप्तधातुः न वा पञ्चकोशः* (न सप्तधातु हूँ) *न पञ्चकोशः* (न पाँच प्रकार के परिधान– अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोष, आनन्दमय

कोष हूँ) *न वाक् पाणि-पादौ* (न वाणी हूँ, न हाथ-पैर) *न च उपस्थः वायुः।* (न मूत्रेन्द्रिय हूँ न मलत्याग करने वाली इन्द्रिय) *चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽम्* (मैं तो केवल चिदानन्दस्वरूप शिव हूँ, केवल शिव)

न मैं प्राण हूँ, न पञ्चवायु, न मैं सप्तधातु हूँ, न पञ्चकोष, न वाणी न हाथ-पैर, न जननेन्द्रिय न मलत्याग करने वाली इन्द्रिय। मैं तो केवल चिदानन्दस्वरूप शिव हूँ, केवल शिवस्वरूप आत्मा।

(३)

न मे द्वेषरागौ न मे लोभमोहौ
मदो नैव मे नैव मात्सर्यभावः।
न धर्मो न चार्थो न कामो न मोक्ष-
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥

न मे रागद्वेषौ (न मुझमें राग है, न द्वेष) *न मे लोभमोहौ* (मुझमें लोभ अथवा मोह भी नहीं है) *न एव मदः* (न ही मुझमें पागल बना देने वाला अभिमान है) *न एव मास्तर्यभावः* (और मुझमें डाह भी नहीं है) *न धर्मः न अर्थः न कामः न मोक्षः* (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष – ये चारों पुरुषार्थ भी नहीं हैं।)

मुझमें न राग है न द्वेष, न लोभ है, न मोह; मद अथवा डाह भी नहीं है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष – ये चारों पुरुषार्थ भी नहीं हैं। मैं तो चिदानन्दस्वरूप शिव हूँ, केवल शिवस्वरूप आत्मा।

(४)

न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःखं
न मन्त्रो न तीर्थं न वेदा न यज्ञाः।
अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥

न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःखं (मैं न पाप हूँ, न पुण्य, न सुख हूँ, न दुःख) *न मन्त्रः न तीर्थं न वेदाः न यज्ञाः* (न मैं मन्त्र हूँ, न तीर्थ, न

वेद, न यज्ञ) *न एव अहं भोजनं* (मैं भोजन भी नहीं हूँ) *न भोज्य न भोक्ता* (न भोग किया जाने वाला पदार्थ हूँ, न भोक्ता)

मैं न पाप हूँ न पुण्य, न सुख, न दुःख, न मन्त्र न तीर्थ, न वेद न यज्ञ, न भोक्ता, भोज्य, न भोजन की क्रिया। मैं तो केवल चिदानन्दस्वरूप शिव हूँ, केवल शिवस्वरूप आत्मा हूँ।

(५)

न मृत्युर्न शङ्का न मे जातिभेदः
पिता नैव मे नैव माता न जन्म।
न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्य-
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥

न मृत्युः न शङ्का न मे जातिभेदः (न मेरी मृत्यु होती है, न मुझमें कोई शङ्का है, न जातिभेद) *पिता न एव मे* (मेरा कोई पिता भी नहीं है) *न एव माता न जन्म* (न मेरी कोई माता है, न मेरा जन्म होता है) *न बन्धुः न मित्रं न गुरुः न एव शिष्यः* (न मेरा कोई भाई है, न बन्धु, न मित्र, गुरु और न ही कोई शिष्य।

न मैं मरता हूँ, न मुझे कोई शङ्का होती है, न मुझमें जातिभेद है, न मेरा कोई पिता है, न माता, मेरा जन्म भी नहीं हुआ है। मेरा कोई बन्धु, मित्र, गुरु, अथवा शिष्य भी नहीं है। मैं तो केवल चिदानन्दस्वरूप शिव, केवल शिवस्वरूप आत्मा हूँ।

(६)

अहं निर्विकल्पो निराकाररूपो
विभुत्वाच्च सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणाम्।
न चासंगतं नैव मुक्तिर्न बन्ध-
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥

अहं निर्विकल्पः (मैं भेदशून्य हूँ) *निराकाररूपः* (निराकार रूप हूँ) *विभुत्वात् च सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणाम्* (सर्वव्यापी होने के कारण सब स्थानों में सारी

इन्द्रियों में व्याप्त हूँ) *न च असंगतं न एव मुक्तिः न बन्धः* (न मुझमें अनासक्ति है, न मुक्ति, न बन्धन)

मैं भेदशून्य हूँ। मैं निराकाररूप हूँ। मैं सर्वव्यापी हूँ, इसलिये सर्वत्र हूँ, और सब इन्द्रियों में हूँ। मुझमें न अनासक्ति है, न मोक्ष, न बन्धन। मैं तो केवल चिदानन्दस्वरूप केवल शिव हूँ, केवल शिवस्वरूप आत्मा।

इस स्तोत्र में विधि-निषेध द्वारा यह बताया गया है कि आत्मा क्या है, और क्या नहीं है। अपना परिचय देते हुए वेदान्ती कहता है, ''मैं तो चिदानन्दस्वरूप शिव हूँ, शिव स्वरूप आत्मा। यह मरियल देह, और इससे सम्बन्धित सारे रूप और व्यापार – मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, पञ्चभूत, सप्तधातु, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, सुख-दुख, लोभ-मोह – मैं इन सबसे अलग चिदानन्दस्वरूप शिव हूँ, केवल शिवस्वरूप आत्मा।

अंतिम पद्य में संक्षिप्त विवेचना है। आत्मा भेद शून्य है, निराकार है, सर्वव्यापी है, सम्पूर्ण इन्द्रियों में व्याप्त है। मैं केवल वही निर्विकल्प, निराकार, सर्वव्यापी आत्मा हूँ। 'अहं ब्रह्मास्मि' के स्थान पर यहाँ 'चिदानन्दरूपः शिवोऽहम्' कहा गया है।

— इति —

भज गोविन्दम्

परिचय

भज गोविन्दम् स्तोत्र के बारे में एक छोटी-सी बोध-कथा कही जाती है। आचार्य शंकर, अपने चौदह शिष्यों के साथ, पंडितों की नगरी काशी में कहीं जा रहे थे। रास्ते में देखा एक बूढ़ा पंडित ''डुकृञ् करणे'' ''डुकृञ् करणे'' की रट लगा रहा था। धातुपाठ के बाद, और शास्त्रपाठ की भी कुछ लालसा रही होगी। आचार्य को उस पर बड़ी दया आई। अन्तसमय थोड़ी-बहुत दूर होगा, और वह व्याकरण की रट लगा रहा था। आचार्य बोल उठे–

सम्प्राप्ते संनिहिते काले
न हि न हि रक्षति 'डुकृञ् करणे'।

उन्होंने बारह और पद गाकर बूढ़े ब्राह्मण के अन्धे मोह को भंग करने का यत्न किया। इन बारह गीतिकाओं की पदावली *द्वादशमञ्जरिकास्तोत्रम्* अथवा *द्वादशपञ्जरिकास्तोत्रम्* कहलाई।

इस पदावली से प्रेरित होकर चौदह शिष्यों ने एक-एक पद्य सुनाया, और इन पद्यों का नाम *चतुर्दशमञ्जरिकास्तोत्रम्* अथवा *चर्पटपञ्जरिकास्तोत्रम्* पड़ गया।

कहते हैं, आचार्य ने अन्त में चार पद्य और जोड़ दिये, और पहले टेक पद (भज गोविन्दम्) को मिला कर, इकतीस पद्यों का एक *मोहमुद्गरः* बन गया। इसका पहला पद्य 'भज गोविन्दम्' है, इसलिये इसका *भज गोविन्दम्* नाम प्रसिद्ध हुआ।

कुछ संस्करणों में *द्वादशमञ्जरिकास्तोत्रम्* के अन्त में एक और श्लोक मिलता है, जिसमें इस बोध-कथा की ओर संकेत है—

द्वादशमञ्जरिकाभिरेषः
कथितो वैयाकरणः शिष्यः।
उपदेशोऽभूद् विद्यानिपुणैः
श्रीमच्छङ्करभगवच्चरणैः॥

लेकिन ये तो टीकाकारों द्वारा पीछे जोड़ी हुई कथाएँ हैं। इनका भी अपना महत्त्व है।

ध्यान से पढ़ें तो लगेगा कि पद्यावली की शब्द-संयोजना और शैली सारे पद्यों में एक-सी नहीं है। जब चौदह शिष्य पद्य-रचना करने चले हों, तो शैली एक-सी कैसे होगी? पद्यवार शिष्यों के नाम भी मिलते हैं। जैसे, 'जटिलो मुण्डी' वाला पद्य (१४) पद्मपाद रचित बताया जाता है, 'अङ्गं गलितं' वाला पद्य (१५) तोटकाचार्य का, 'अग्रे वह्नि' वाला पद्य हस्तामलक का कहा जाता है। लेकिन ये तो शैलियों की भिन्नता का कारण बताने के लिए बनाई गई जनश्रुतियाँ हैं।

भले ही इसे **स्तोत्र** कहा जाता हो, वास्तव में, यह पद्यावली **उपदेश** है। यह **प्रकरण ग्रन्थ** ज्ञान-वैराग्य-भक्ति का उपदेश देने के लिए रचित है।

इसकी शब्द-संयोजना इतनी सरल और संगीतमय है कि सैकड़ों वर्षों से हजारों-लाखों लोग इन पद्यों का कीर्तन करते आ रहे हैं। संकीर्तन में एक-एक पद्य के गायन के बाद पहले टेक पद्य के सामूहिक गान का भी चलन मिलता है।

शंकराचार्य के सत्तर-अस्सी स्तोत्रों में **भज गोविन्दम्** सबसे अधिक लोकप्रिय है। इसकी संगीतमय शैली और लोकप्रियता का कुछ लोग अलग ही अर्थ निकालते हैं। वे शंका करने लगते हैं कि शंकराचार्य जैसा वेदान्ती ऐसी पद्य-रचना क्यों करने लगेगा? उन्हें शायद ज्ञान-वैराग्य और भक्ति के छिपे हुए– या यों कहें, अत्यंत सरल-संगीतमय भाषा में समझाये गये– उपदेश की झलक भी नहीं मिलती। इसमें ज्ञान-वैराग्य की– अद्वैत वेदान्त की– गूढ़ शिक्षा को बड़े ही सरल-से-सरल शब्दों में प्रकट किया गया है। गूढ़ बातों को सरल भाषा में कहना बड़ा कठिन है। आचार्य शंकर जैसा कवि ही यह कर सकता था।

इस स्तोत्र में वाद-विवाद नहीं, उपदेश है। जो लोग कामिनी-कञ्चन, ज्ञान-लिप्सा या यश-लिप्सा के मोह में फँसे हैं, जिन लोगों ने परिवार-पोषण को जीवन का सर्वस्व समझ रखा है, जो लोग त्याग-वैराग्य का ढ़ोंग रख रहे हैं, ऐसे लोगों को जगाने के लिए– उनका मोह-भंग करने के लिये– इसमें मुद्‌गर मारने जैसी कठोर शैली अपनाई गई है। 'मूढमति', 'मूढ', 'वातुल' जैसे सम्बोधनों की उपयोगिता है। इसका *मोहमुद्‌गरः* नाम सार्थक है।

वित्तैषणा, पुत्रैषणा, लोकैषणा जैसी दुर्बलताओं से मोह-भङ्ग करने के लिए यह बड़ा उपयोगी स्तोत्र है।

इस स्तोत्र के साथ जो अनुवाद और टीका टिप्पणी है उसके बारे में तो केवल यही कहना है—

आचार्यकृति-सम्बन्धान्मद्वाक्यं श्लाघ्यमेव हि।
रथ्योदकं यथा गङ्गा-प्रवाह-पतनाच्छुभम्।।

भज गोविन्दम्

(१)

भज गोविन्दं भज गोविन्दं
भज गोविन्दं मूढमते।
संप्राप्ते सन्निहिते काले
न हि न हि रक्षति ''डुकृञ् करणे''॥

भज गोविन्द, भज गोविन्द
भज गोविन्द रे मतिमन्द!
निश्चित निर्धारित अन्तकाल में
व्यर्थ सभी व्याकरण-छन्द॥

गोविन्दं भज गोविन्दं भज (गोविन्द का भजन कर, गोविन्द की सेवा कर, गोविन्द की शरण ले) *सन्निहिते* (पूर्वनिर्धारित) *काले* (मरण काल के) *संप्राप्ते* (आने पर) *डुकृञ् करणे* (डुकृञ् क्रिया का रटन) *न हि न हि रक्षति* (रक्षा नहीं करेगा, सचमुच रक्षा नहीं करेगा)।

इस पद्य में आचार्य थोथे ज्ञान की व्यर्थता बता रहे हैं। टीकाकारों ने इसे समझाने के लिये एक उदाहरण दिया है। *छान्दोग्य उपनिषद्* में वर्णन है कि नारद सनत्कुमार के पास परमज्ञान प्राप्त करने गये। जब उनसे पूछा कि क्या-क्या पढ़ लिया है तो उन्होंने शास्त्रों की लम्बी सूची गिना दी। उस सूची में व्याकरण भी थी। बड़े-बड़े शास्त्रों की सूची सुनकर सनत्कुमार बोले, ''नारद, ये तो अपरा विद्या है, सांसारिक ज्ञान है, साधारण जानकारी है। इस अपरा विद्या से भूमा (ब्रह्म) की प्राप्ति नहीं हो सकती।''

व्याकरण का ज्ञान साधन हो सकता है, सोपान नहीं हो सकता। यही बात और-और शास्त्रों के बारे में भी कही जा सकती है। इन शास्त्रों को

पढ़-पढ़ कर लोग दम्भी हो जाते हैं। वे समझने लगते हैं कि हमने सब कुछ जान लिया।

ऐसे लोगों का मोह भंग करने के लिये, उन्हें जगाने के लिये, उन्हें वास्तविक परमज्ञान की ओर मोड़ने के लिये आचार्य कह रहे हैं, "हे मूढ़मते! मरने के समय, अथवा यो कहें, जीवन में– इस थोथे ज्ञान से क्या होने वाला है? जीवन बहुत थोड़ा है, और ज्ञान के भंडार का कहीं ओर-छोर नहीं। वह ज्ञान अर्जित कर जो जीवन और मरण में साथ दे।"

यहाँ 'मूढमते' — (मतिभ्रष्ट, दिग्भ्रांत) में 'मूढ' का अर्थ 'मूर्ख' नहीं है। 'मूढ' का अर्थ है 'मोहित', अज्ञानी जो अपने को बड़ा ज्ञानी मानता हो।

अजीव दुनिया है। कोई ज्ञानार्जन में पागल है, कोई धन के पीछे भाग रहा है, किसी की भोग-लिप्सा पूरी नहीं हो रही है। पहले तीन पद्यों में आचार्य इन तीनों के मोह पर प्रहार कर रहे हैं।

पोथी पढ़-पढ़ कर पण्डित होना सब कुछ नहीं है। शास्त्रज्ञान नहीं, सत्य का साक्षात्कार जीवन-मरण में साथ देगा; पाण्डित्य नहीं, प्रज्ञा काम आयेगी। पाण्डित्य का अभिमान मनुष्य को मूढ़ बना देता है।

आयाते नियतेर्वशात् सुविषमे कालात् करालाद्भये।
कुत्र व्याकरणं क्व तर्ककलहः काव्यश्रमः क्वापि वा॥

शास्त्रज्ञान परिपक्व होकर विवेक बनना चाहिये। किन्तु इसके लिये मन की शुद्धि, निर्मल चित्त चाहिये। इसके लिये भगवद्भक्ति आवश्यक है। भक्तिविहीन ज्ञान पंगु रहेगा, जैसे ज्ञान रहित भक्ति अंधी होगी। चित्त शुद्धि का उपाय बताते हुए आचार्य कह रहे हैं, "गोविन्द का भजन कर, भगवान् की शरण लें।"

आचार्य का 'गोविन्द' से क्या तात्पर्य है यह समझना चाहिये। साधारणतया 'गोविन्द' का अर्थ 'कृष्ण' होता है। गोवर्धनधारण के बाद उन्हें यह उपाधि दी गई थी। किन्तु आचार्य शंकर 'गोविन्द' शब्द का प्रयोग विशेष अर्थ में कर रहे हैं। उन्होंने स्वयं **विष्णुसहस्रनाम** के श्लोक

३३ और ६९ की टीका में उपना मन्तव्य प्रकट किया है। **'गोविन्दो गोविदां पतिः'** और **'गोभिर्वाणीभिर्विन्दते'** यहाँ 'गो' का अर्थ वाणी, वेदवाणी समझना चाहिये। जो वेदवाणी से जाना जा सकता हो, अर्थात् परब्रह्म, परमसत्ता तो 'भज गोविन्दम्' का अर्थ हुआ परब्रह्म का भजन करना, परब्रह्म की शरण लेना।

आचार्य यहाँ कह रहे हैं कि सांसारिक ज्ञान— ज्योतिष, संगीत, व्याकरण आदि– जीवन-मरण में साथ देने वाला नहीं है। इसके लिये तो प्रबुद्ध प्रज्ञा द्वारा संचित परब्रह्म का ज्ञान चाहिये।

(२)

मूढ! जहीहि धनागमतृष्णां
कुरु सद्बुद्धिं मनसि वितृष्णाम्।
यल्लभसे निज कर्मोपात्तं
वित्तं तेन विनोदय चित्तम्।।

मूढ़! धनागम की तृष्णा तज
मन में सद्विवेक तृष्णाविहीन कर!
निज-कर्म-उपार्जित धन-संचय से
निर्मल मन प्रमुदित कर।।

मूढ (हे मतिभ्रम!) *धन-आगम-तृष्णां* (धन आने की तृष्णा को) *जहीहि* (त्याग) *मनसि* (मन में) *सद्बुद्धिं* (सत् सम्बन्धी ज्ञान को) *वितृष्णाम् कुरु* (तृष्णाहीन कर) *यत्* (जो) *कर्म-उपात्तं* (कर्म से उपार्जित) *लभसे* (प्राप्त करता है) *तेन वित्तेन* (उस धन से) *चित्तं विनोदय* (चित्त को प्रसन्न रख)।

पिछले पद्य में थोथे पाण्डित्य के पाखण्ड को उजागर किया। मृत्यु इससे प्रभावित नहीं होगी कि मस्तिष्क में कितने शास्त्रों का बोझ है। मौत का सामना पण्डित नहीं, प्रज्ञावान् कर सकेगा।

इस पद्य में ऐश्वर्यवान्, सम्पन्न लोगों को चेतावनी दी गई है। वित्तैषणा– धन पाने की तृष्णा – बड़ी दुर्बलता है। जैसे-तैसे धन आता है, और अधिक धन आने की तृष्णा, अभीप्सा, बढ़ती जाती है।

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः (कठ उ० १.२७)

इस पद्य का भूल से अर्थ लगाया जा सकता है कि आचार्य धन के त्याग की शिक्षा दे रहे हैं। अगर धन का त्याग कर दिया तो जीवन की आवश्यकताएँ पूरी कैसे होंगी? सन्यासी धन त्याग सकता है, गृहस्थी धन कैसे त्यागेगा?

लेकिन ऐसी शंका तो पद्य का गलत अर्थ लगाने से ही उठ सकती है। आचार्य धन त्यागने की बात नहीं कह रहे हैं, धन आने की तृष्णा त्यागने की बात कह रहे हैं। अगली पंक्ति में स्पष्ट कहा है, **यल्लभसे निजकर्मोपात्तं वित्तं**, अपने परिश्रम से, कर्म से, पुरुषार्थ से जो धन उपार्जित हो उससे अपने चित्त को प्रमुदित रख, "**तेन विनोदय चित्तम्**"।

जीवन में आवश्यकताएँ पूरी करने के लिये धन चाहिये, अभीप्सा पूरी करने के लिये नहीं। सच तो यह है कि अभीप्सा पूरी हो ही नहीं सकती। धन बटोरने की तृष्णा की जड़ में कहीं भय छिपा हो सकता है। भयभीत आदमी अपनी सुरक्षा का कवच धन-सम्पत्ति से बनाने का प्रयत्न करता है। इसलिये बहुत से वृद्ध, सन्तानहीन मनुष्य अधिक लालची हो जाते हैं। उन्हें भ्रम हो जाता है, कि जब कोई और लोग साथ नहीं देंगे, तो धन काम आयेगा। लालच के साथ लोभ बढ़ता है। और फिर, धनहानि की चिन्ता होने लगती है। अगले, उनतीसवें पद्य में आचार्य ने कहा है, "**अर्थमनर्थं भावय नित्यं नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम्**" इतना ही नहीं, आचार्य आगे कहते हैं, "**पुत्रादपि धनभाजां भीतिः।**"

यहाँ 'धनागम' में आये 'धन' शब्द का व्यापक अर्थ लेना चाहिये। धरतीधन, पशुधन, सम्पर्कधन— सभी प्रकार की सम्पत्ति की तृष्णा त्यागने का आग्रह है। कुछ लोग काञ्चनकामी होते हैं, कुछ ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा चाहते है, कुछ यश-लोभी होते हैं। ऐसे सभी लोगों को चेतावनी दी है, "हे विपरीत बुद्धि वाले लोगो, समझो! धन की तृष्णा, धन बटोरने की लालसा कभी पूरी नहीं होगी। जीवन बहुमूल्य है, इसे धन बटोरने में ही नष्ट मत करो। *कठोपनिषद्* में कथा आती है कि जब यम ने नचिकेता को हाथी-घोड़े, अतुल सम्पत्ति, जितना चाहिये उतना राज्य और बड़ा परिवार– सभी

कुछ देने का लालच दिखाया तो नचिकेता ने उत्तर दिया, "इन सब से क्या होगा? इनसे अमरत्व थोड़े ही मिलेगा।"

प्रश्न श्रेयस् और प्रेयस् के बीच में एक को चुनने का है। धन अच्छा लगेगा, ऐश्वर्य, लोकप्रियता, ऊँचा पद, यश, सभी अच्छे लग सकते हैं। लेकिन इनमें किसी एक ही की तृष्णा सारे जीवन को नष्ट कर सकती है। आचार्य इस तृष्णा के विरुद्ध चेतावनी दे रहे हैं।

और तृष्णा का त्याग सद्‌बुद्धि को जागरित करने से होगा। जब तक बुद्धि पर मोह का पर्दा पड़ा है, कहीं भय या लोभ छिपा है, तृष्णा नहीं छूट सकती। इसलिये सद्बुद्धि प्राप्त करो।

(३)

नारीस्तनभरनाभीदेशं
दृष्ट्वा मा गा मोहावेशम्।
एतन्मांसवसादिविकारं
मनसि विचिन्तय वारम्वारम्।।

कामिनि-कुच-कटिप्रदेश देखकर
कभी न हो मोहित-लाचार।
यह सब मांस-वसादि-विकार
मन में चिन्तन कर बारम्बार॥

नारीस्तन-(स्त्री का वक्ष) *भर*-(बोझिल) *नाभीदेशं* (कटि प्रदेश) *दृष्ट्वा* (देखकर) *मोह-आवेशं* (मोह के उन्माद में) *मा गाः* (मत जा) *एतत्* (यह) *मांस-वसा-आदि-विकारं* (मांस, चर्बी आदि की विकृति है) *मनसि वारं वारं विचिन्तय* (मन में अच्छी तरह बार-बार सोच)।

पिछले दो पद्यों में थोथे ज्ञान और धन की तृष्णा के बारे में चेताया। इस पद्य में कामिनी के आकर्षण के बारे में प्रतिपक्ष भावना जाग्रत कर रहे हैं। स्त्री के स्तन और कटि प्रदेश पर दृष्टि पड़ते ही पुरुष मोहित होने लगता है। लेकिन, अगर विचार किया जाय तो मालूम होगा कि ये मांस और चर्बी की थैलियाँ ही तो हैं।

नारी के शरीर के सबसे अधिक आकर्षक भाग को 'मांसवसादि-विकारम्' कह कर आचार्य बुद्धि को झकझोंर रहे हैं। यहाँ स्त्री की सुन्दरता अथवा आकर्षक अङ्गों का अपमान करने का मन्तव्य नहीं है। जितना अधिक सौन्दर्य है, जितना अधिक आकर्षण है, उसके विरुद्ध, उतनी ही असुन्दर अनाकर्षक तस्वीर सामने रखी जा रही है। सुन्दर-से-सुन्दर शरीर को आपरेशन थियेटर में देखिये।

नारी के सौन्दर्य के दो रूप हैं: एक, साज-शृंगार से सुशोभित ऋषि-मुनियों तक को भी मोहित करने वाला। दूसरा, आपरेशन थियेटर में। आचार्य पहले रूप से ध्यान हटाने के लिये दूसरे रूप को ध्यान में ला रहे हैं।

कहा है, ''कनक (सोना) कनक (धतूरा) ते सौ गुनी मादकता अधिकाय'' लेकिन कामिनी में कनक (काञ्चन) से भी सौ गुनी अधिक मादकता है। ब्रह्मा और विश्वामित्र जैसों को भी नारी के आकर्षण ने मोहित कर दिया। नारी की मोहिनी शक्ति, नारी का मोहक सौन्दर्य, उसकी देह यष्टि, पीन पयोधर और पतली कटि अपना जादू आँखों में होकर डालते हैं। इसलिये आचार्य ने 'दृष्ट्वा', देखकर, पागल नहीं होने की बात कही है। 'मोहावेशम्' मोह के आवेश में, उन्माद में, मत आ।

इस उन्माद को रोकना बड़ा कठिन है। इसलिये कहा, ''मनसि विचिन्तय वारम्वारम्''। इस सौन्दर्य, इस आकर्षण में छिपे हुए असौन्दर्य और अनाकर्षण पर बार-बार गम्भीरता से विचार करते रहो।

एक बात और। आचार्य पुरुषों के बीच में थे, उनसे चर्चा कर रहे थे, उन्हें उपदेश दे रहे थे। इसलिये नारी के मोहक सौन्दर्य से सचेत रहने के लिये कहा। अगर स्त्रियों को उपदेश दे रहे होते तो पुरुषों के आकर्षक व्यक्तित्व, उनके शारीरिक सौष्ठव से सचेत रहने के लिये कहते। दोनों में एक-सी ही कामवासना की दुर्बलता है।

इस प्रकार, इन पहले तीन पद्यों में आचार्य ने तीन बड़ी दुर्बलताओं से बचने की बात कही है। थोथे ज्ञान के अहंकार से बचो, धन सम्पत्ति की तृष्णा त्यागों, और काम-वासना नियन्त्रित करो।

(४)

नलिनीदलगतजलमतितरलं
तद्वज्जीवितमतिशयचपलम्।
विद्धि व्याध्यभिमानग्रस्तं
लोकं शोकहतं च समस्तम्॥

नलिनीदल पर जलकण चञ्चल
वैसा जीवन गतिमय पल-पल।
आधि-व्याधि-अभिमान ग्रसित
जग में चहुँदिशि शोक प्रबल॥

नलिनीदलगत-(कमल की पंखुड़ी पर) *जलम्-अतितरलं* (जल की बूँद बड़ी अस्थिर, तरल, चञ्चल होती है) *तद्-वत्* (उसके समान) *जीवितम्* (जीवन) *अतिशय-चपलम्* (अत्यंत अस्थिर है) *व्याधि-अभिमान-ग्रस्तं विद्धि* (इसे रोगों और अहंकार से ग्रस्त समझ) *समस्तं लोकं* (सारा संसार) *शोकहतम्* (शोक से, दुःख से ग्रस्त है)।

बड़ा संगीतमय और अर्थपूर्ण पद्य है। पिछले तीन पद्यों में थोथे पाण्डित्य, धन-तृष्णा और कामवासना को, प्रतिपक्ष भावना जाग्रत कर, त्यागने का उपदेश दिया गया। इस पद्य में, इसी प्रतिपक्ष भावना द्वारा, जीवन की क्षणभङ्गुरता और संताप की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है।

बड़ी सुन्दर उपमा है। जैसे कमलिनी की पंखुड़ी पर ओस की बूँद चञ्चल होती है, वैसे ही हमारा जीवन भी बड़ा अस्थिर, अब गया, अब गया है। और यह सारा संसार शोक-ग्रस्त है। हम आधिव्याधि, शारीरिक और मानसिक दुःखों से पीडित हैं। भगवान बुद्ध के शब्दों में, **"सर्वं दुःखं दुःखं, सर्वं क्षणिकं क्षणिकम्"**।

कोई धन के पीछे भाग रहा है, कोई स्त्रियों के साथ भोग-विलास में लिप्त है। आचार्य आगे (पद्य २८ में) कहेंगे —

सुखतः क्रियते रामा-भोगः
पश्चात् हन्त शरीरे रोगः।

यद्यपि लोके मरणं शरणं
तदपि न मुञ्चति पापाचरणम्॥

स्वामी चिन्मयानन्द ने इस पद की अपनी व्याख्या में दो बातों की ओर विशेष रूप से ध्यान आकर्षित किया है। एक, केवल प्रत्येक व्यक्ति ही आधि-व्याधि से ग्रस्त नहीं है, सारा संसार शोकग्रस्त है, दुःखमय है। दूसरी बात यह है कि जल में कमल की पत्ती पर पानी की बूँद की बड़ी सार्थक उपमा है। कमलिनी जल में उपजी, जल में पनपी, और जल में ही मिल गयी। जीव ब्रह्म से उपजा, ब्रह्म में उसकी सत्ता रही, और ब्रह्म में ही लीन हो गया।

(५)

यावद्वित्तोपार्जनसक्त -
स्तावन्निजपरिवारो रक्तः।
पश्चाज्जीवति जर्जरदेहे
वार्तां कोऽपि न पृच्छति गेहे॥

जब तक वित्त उपार्जन की है शक्ति
तब तक निजजन की अनुरक्ति।
फिर जीता रह जर्जर पंजर में
कोई कुशल न पूछे घर में॥

यावत् (जब तक) *वित्त-उपार्जन-सक्तः* (धन अर्जित करने की शक्ति है) *तावत्* (तभी तक) *निज-परिवारः रक्तः* (अपना परिवार अनुरक्त रहेगा, प्रेम में बँधा रहेगा) *पश्चात्* (इसके बाद, वृद्धावस्था में) *जर्जर-देहे जीवति* (जर्जर शरीर का बोझा ढोता रहता है) *गेहे* (घर में) *वार्तां कः अपि न पृच्छति* (कोई कुशल भी नहीं पूछता, बात भी नहीं पूछता)।

इस पद्य में पारिवारिक जीवन का मोह भंग किया गया है। यहाँ भी प्रतिपक्ष भावना जागृत की गई है। परिवार में बड़ा मोह रहता है, बाल-बच्चे, भाई-बन्धु बड़े अच्छे लगते हैं। ऐसा लगता है सब स्नेह करते हैं।

लेकिन, इस स्नेह-सम्बन्ध का दूसरा भी पक्ष है। जब तक धन-

सम्पत्ति, आदर-सम्मान, पद-प्रतिष्ठा अर्जित करने की सामर्थ्य है, सब परिजन घेरे रहेंगे। किन्तु, बुढ़ापे में, जब इन्द्रियाँ शिथिल पड़ जाती हैं, अर्जित करने की शक्ति नहीं रहती, अपने प्रियजन भी धीरे-धीरे दूर होने लगते हैं।

साधारण आदमी अपने परिवार के लिये बहुत-कुछ करता है। बच्चों का पालन-पोषण करता है, उन्हें पढ़ाता-लिखता है, योग्य बनाता है। मन में शायद यह छुपी हुई आशा रहती होगी कि बुढ़ापे में ये सहारा देंगे।

लेकिन, बहुत बार होता इसका उलटा है। जब तक धन-सम्पत्ति अर्जित करने की सामर्थ्य है, आपका परिवार आपको चारों ओर घेरे रहेगा, आपका आदर करेगा, घर में आपकी पूछ होगी। सच तो यह है कि अधिकतर परिवारों में स्नेह-सम्बन्ध नहीं, स्वार्थ-सम्बन्ध लोगों को एक-दूसरे से जोड़े रहते हैं। जहाँ स्वार्थ को चोट लगी, सम्बन्ध टूटा। वृद्धों की क्या दशा हो जाती है?

इन पिछले पाँच पद्यों को पढ़ कर कुछ लोगों को ऐसा लग सकता है कि इनमें विद्वत्ता, धन, भोग-विलास, मनुष्य-जीवन पारिवारिक सुख-सभी के विरुद्ध कहा गया है। **''वार्तां पृच्छति कोऽपि न गेहे''** यह तो पारिवारिक जीवन का सही चित्रण नहीं है। विद्वत्ता, धन, भोग-विलास, पारिवारिक स्नेह— इन्हीं में तो जीवन की सार्थकता है।

इन पद्यों के भाव को ठीक समझना चाहिये। आचार्य विद्वत्ता का तिरस्कार नहीं कर रहे हैं, वे थोथे– निरर्थक ज्ञान की व्यर्थता बता रहे हैं। वे धन का विरोध नहीं कर रहे हैं, वे धन की तृष्णा का, ध्यान रहे तृष्णा का, विरोध कर रहे हैं, वे नारी का अपमान नहीं कर रहे हैं, उसके सौन्दर्य की अवहेलना नहीं कर रहे हैं। वे तो कामी पुरुषों का मोह भंग करने के लिये प्रतिपक्ष भावना– दूसरा पक्ष भी– उजागर कर रहे हैं। मानव-जीवन में सुख है, सौन्दर्य है। किन्तु यह क्षणभङ्गुर भी है। कहीं हम इसके सुख और सौन्दर्य के मोह में इसकी क्षणभङ्गुरता को न भूल जायें।

आचार्य का मन्तव्य वही है जो गौतम बुद्ध और महावीर स्वामी का था। सिद्धार्थ गौतम और वर्धमान दोनों राजकुमार थे, सुख-समृद्धि, और वैभव में पले थे। लेकिन उनकी दृष्टि सुख के पीछे छिपे दुःख की ओर

गई। सिद्धार्थ गौतम ने देखा यौवन है, किन्तु इसके पीछे बुढ़ापा भी है। भोग-विलास हैं, किन्तु रोग भी हैं। जीवन है, किन्तु मृत्यु भी है। जीवन में कुछ समय तक रहने वाले **सुख हैं**, किन्तु, इन सुखों के ऊपर भी परमसुख है, निर्वाण है, **ब्रह्मविहार है**। गौतम जब बुद्ध हो गये तो उन्हें कहना पड़ा, **"सर्वं दुःखं दुःखं, सर्वं क्षणिकं क्षणिकम्"**। आचार्य शंकर ने विवेकचूड़ामणि में समझाया **"विरज्य विषयव्राताद्दोषदृष्ट्या मुहुर्मुहुः।"**

लेकिन भगवान् बुद्ध और आचार्य शंकर ने आगे यह भी बताया कि दुःख है, अभाव है, किन्तु उसका निवारण भी हो सकता है। भगवान् बुद्ध ने पहला आर्यसत्य बताया— दुःख है। दूसरा, दुःख का कारण तृष्णा है। और इसे हटाने का उपाय भी है। आचार्य ने कहा, "मोह हटाओ और गोविन्द भजो।

(६)

यावत्पवनो निवसति देहे
तावत्पृच्छति कुशलं गेहे।
गतवति वायौ देहापाये
भार्या बिभ्यति तस्मिन्काये॥

जब तक प्राण टिके हैं तन में
तब तक कुशल-क्षेम चर्चा परिजन में।
प्राण-पखेरू उड़ जाने पर
कान्ता कँपे निकट आने पर॥

यावत् (जब तक) *पवनः* (प्राण) *निवसति देहे* (देह में हैं) *तावत्* (तभी तक) *गेहे* (घर में) *कुशलं पृच्छति* (कुशल, हाल-चाल पूछे जाते हैं) *देह-अपाये* (जब शरीर क्षीण हो जाता है) *वायौ गतिवति* (प्राण निकल जाते हैं) *तस्मिन् काये* (उस शरीर को देखकर) *भार्या बिभ्यति* (पत्नी भी डरती है।)

पिछले पद्य में परिवार के मोह के बारे में चेतावनी देने के बाद, इस

पद्य में देह के बारे में प्रतिपक्ष भावना – दूसरा पक्ष – जाग्रत की जा रही है। देह का मोह बड़ा गहरा होता है। लेकिन आचार्य बता रहे हैं कि यह देह तो तभी तक प्रिय है जब तक इसमें प्राण हैं। प्राण निकलते ही निर्जीव शरीर से – शव से – डर लगने लगता है, घरवाले उसे जल्दी-से-जल्दी बाहर ले जाने का प्रबन्ध करने लगते हैं। पत्नी भी मृत देह से डरने लगती है।

इस पद्य में दैहिक सम्बन्धों और देह में आसक्ति– सीमा से अधिक आसक्ति– को रेखांकित करने के लिये उनका अनाकर्षक पक्ष रेखांकित किया है। बात जोर देकर कहने के लिये अतिशयोक्ति भी है।

परिवार के प्रियजनों में पत्नी सबसे अधिक निकट होती है। अपना शरीर उससे भी प्रिय होता है। किन्तु चाहे पत्नी कहती रहे कि मैं जन्म-जन्मान्तर तक साथ दूँगी, वास्तविकता यह है कि प्राण निकलते ही वह देह से भयभीत होने लगती है। प्राण छूटते ही शरीर भी मिट्टी हो जाता है। जिस शरीर की सदा साज-सज्जा करते रहे हैं, उसकी राख हो जाती है।

आचार्य कह रहे हैं इनमें मोहासक्ति रखना मूढ़ता है। परिवार और देह में जब मोह सीमा से आगे बढ़ जाता है, तो मनुष्य भूल जाता है कि इस आसक्ति से ऊपर भी जीवन का आनन्द है। इसके लिये गोविन्द का भजन करो, उनकी शरण लो।

(७)

बालस्तावत्क्रीड़ासक्त -
स्तरुणस्तावत्तरुणीसक्तः।
वृद्धस्तावच्चिन्तासक्तः
परे ब्रह्मणि कोऽपि न सक्तः॥

बचपन यों हँस-खेल गँवाया
यौवन रास-रंग भरमाया।
वृद्ध हुआ तो चिन्ता छाई
परब्रह्म की सुधि कब आई?

बालः तावत् (जब तक बालक है) *क्रीडा-आसक्तः* (हँसने-खेलने में लगा रहता है) *तरुणः तावत्* (जब तक यौवन है) *तरुणी-सक्तः* (रमणियों में आसक्त रहता है) *वृद्धः तावत्* (जब तक वृद्ध है) *चिन्ता-आसक्तः* (चिन्ता में मग्न रहता है) *परे ब्रह्मणि* (किन्तु परब्रह्म में) *कः अपि न सक्तः* (कोई भी आसक्ति नहीं रखता)।

इस पद्य में आचार्य बता रहे हैं कि जीवन छोटी-छोटी आसक्तियों में नष्ट हो जाता है। बचपन खेल-कूद में चला जाता है, यौवन भोग-विलास में बीत जाता है, और बुढ़ापा अपनी और दूसरों की चिन्ताओं में पूर्ण हो जाता है। ब्रह्मानन्द के लिये समय ही नहीं रहता। और वास्तविक आनन्द तो ब्रह्मानंद ही है। खेल-कूद रास-रंग तो थोथे हैं।

आचार्य चेतावनी दे रहे हैं कि हीरा जन्म कौड़ियों में मत गँवाओ। देखो, क्षण-क्षण, पल-पल मौत पास सरकती आ रही है। तुम छोटी-छोटी बातों में उलझे हो, बड़ी बातों का ध्यान ही नहीं है।

एक बड़ा भ्रम है। भगवान् के भजन, गोविन्द की शरण के लिये तो अन्तसमय काफी है। और अन्तसमय अभी बहुत दूर है। तुम्हें नहीं मालूम मौत की दस्तक कब लग सकती है। जब तक इन छोटी-छोटी आसक्तियों में फँसे हो, गोविन्द का भजन नहीं कर सकोगे। और यह भी अच्छी तरह समझ लो कि इन आसक्तियों से मुक्त होने का उपाय है ईश्वरभक्ति, गोविन्द की शरण।

आचार्य ज्ञान और वैराग्य का उपदेश दे रहे हैं। जागो, तृष्णा छोड़ो, समझो इन आसक्तियों में परम सुख मिलने वाला नहीं है, इसमें सच्चा आनन्द नहीं है। और अगर इन आसक्तियों से मुक्त होना चाहते हो तो परमासक्ति, गोविन्द की भक्ति, का आश्रय लो।

(८)

का ते कान्ता कस्ते पुत्रः
संसारोऽयमतीव विचित्रः।
कस्य त्वं कः कुत आयात-
स्तत्त्वं चिन्तय यदिदं भ्रातः॥

तेरी कौन कान्ता? कौन है पुत्र?
यह दुनिया है बड़ी विचित्र।
किसका है तू? कौन? कहाँ से आता
इस पर, तनिक, मनन कर भ्राता॥

का ते कान्ता (तेरी पत्नी कौन है?) *कः ते पुत्रः* (कौन है तेरा पुत्र) *अयं संसारः* (यह संसार, दुनियादारी के सम्बन्ध) *विचित्रः* (बड़े अजीव हैं) *त्वम् कस्य* (तू किसका है?) *कः* (कौन है?) *कुतः आयातः* (कहाँ से आया है?) *तत्वं चिन्तय* (इस अनबूझ पहेली पर विचार कर) *तत् इह भ्रातः* (हे भाई, इसे अभी समझ)।

आरंभिक पद्यों में 'मूढमते' 'मूढ' जैसे कठोर सम्बोधन थे। वहाँ तृष्णा, मोह से जगाना था, फटकार देनी थी। आसक्ति में चिपके हुए को जोर से अलग करना था। यहाँ विचार करने की, समझने की सलाह है। जैसे कोई बड़ा भाई छोटे भाई को समझा रहा हो। तो, "भाई, तनिक सोच-विचार कर, समझ जिस परिवार में तू लिपटा हुआ है, उससे तेरा कितना पुराना, कैसा सम्बन्ध है।"

कौन है तेरी पत्नी? कहने को तो जन्म-जन्म में साथ निभाने के वायदे होते रहते हैं, क्योंकि एक-दूजे के लिये बने हैं, एक प्राण दो शरीरों में बँटे हैं। ये सब बातें सुहावनी हैं, लेकिन इन्हें अक्षरक्षः सत्य मत समझ बैठना, लैला-मजनूँ की कहानी मत दुहराने लगना। वास्तविकता तो यह है कि एक लड़का और एक लड़की दो अलग-अलग परिवारों में जन्मे, जब बड़े हुए, किसी संयोग से विवाह हो गया, पति-पत्नी बन गये, कुछ वर्ष साथ-साथ रहेंगे, अपना दुःख-सुख बाँटेंगे, बेटा-बेटी कुल-परिवार में फलेंगे-फूलेंगे और फिर, मौत के दरवाजे में होकर, अलग हो जायेंगे।

दूसरे ओर, वे लोग हैं जो पति-पत्नी के संबंध को एक समझौता, इकरार मानते हैं, और छोटी-से-छोटी बात पर तलाक देने को तैयार रहते हैं। उनके लिये पत्नी का कोई स्थिर मूल्य ही नहीं है।

आचार्य कह रहे हैं— समझो, पत्नी कौन है, तुम्हारा उससे कैसा संबंध है, उससे कितनी प्रीति निभानी है। उसके लिये तुम्हारे क्या कर्तव्य

हैं, क्या दायित्व हैं— इस सबको समझो। त्याग या वैराग्य की बात नहीं है, केवल अंधी आसक्ति से बचने की सलाह है।

यही बात पुत्र-पुत्रियों के बारे में कही जा सकती है। कौन है तेरा पुत्र? एक स्त्री और एक पुरुष निकट आये, और एक जीवन जन्म लेने के लिए उतावला था। पुत्र जन्म हुआ, बधाई के बाजे बजे, बड़ा हुआ, उसने अपनी गृहस्थी बसायी और अलग हो गया।

बस, इतनी-सी हो तो कहानी है। पुत्र का लालन-पालन करो, जीवन की सार्थकता का अनुभव करो, पुत्र से प्रेम करो, किन्तु उसके प्रेम में पागल मत बनो।

यह संसार – आवागमन का यह चक्कर – बड़ा विचित्र है, बड़ी पहेली है, जो सुलझ नहीं पा रही है।

और कम-से-कम अपने आप को तो पहचान। "आत्मानं विद्धि"। किसका है तू? और कौन है? और कहाँ से आया है? मेरे भाई– मैं और तू, दोनों एक-से ही हैं– इस पहेली को समझ, इस तत्त्व पर विचार कर।

किन्हीं प्रतियों में 'तदिह' (तत् इह) के स्थान पर 'तदिदं' पाठ मिलता है। **तत् इदं** का अर्थ हुआ वह (ब्रह्म) यह है, या यों कहें **'तत् त्वं असि'**, तू वही है।

इन पहले आठ पद्यों में उपदेश एक निश्चित योजना के अनुसार आगे बढ़ रहा है। पहले तीन पद्यों में विद्या-व्यसनी, धन-कामी, और विलासी लोगों को फटकार लगाई, उन्हें चेताया, उनका मोह भंग किया। चौथे पद्य में बताया : जीवन ओस की बूँद की भाँति अस्थिर पल-पल क्षरणशील है। पाँचवे और छठे पद्यों में परिवार और देह में आसक्ति की ओर ध्यान दिलाया। सातवें पद्य में जीवन के अल्पकाल को व्यर्थ नष्ट नहीं करने को कहा। इस पद्य में कहा– आत्मानं विद्धि।

(९)

सत्सङ्गत्वे निस्सङ्गत्वं
निस्सङ्गत्वे निर्मोहत्वम्।

निर्मोहत्वे निश्चलचित्तं

निश्चलचित्ते जीवनमुक्तिः॥

सत्संगति में निस्संगत्व

निस्संगत्व में निर्मोहत्व।

मोह गया तो निश्चलचित्त

निश्चल चित्त तो जीवनमुक्त॥

सत्-संगत्वे (सत्संगति में, सत् का साक्षात्कार होने पर) *निस्सङ्गत्वम्* (वैराग्य, निर्मोह) *निस्सङ्गत्वे* (वैराग्य से) *निर्मोहत्वम्* (मोहनाश) *निर्मोहत्वे निश्चलचित्तं* (निर्मोह से निश्चल चित्त) *निश्चलचित्ते जीवनमुक्तिः* (निश्चल, अविचल चित्त में मोक्ष)।

पिछले आठ पद्यों में अनासक्त – मोहरहित होने का उपदेश दिया। थोथे ज्ञान की भ्रांति, धन की तृष्णा, भोग-विलास, देहासक्ति, परिवार का मोह मिटाने के लिये, कुछ अतिशयोक्ति के साथ, सांसारिक आसक्तियों की बुराइयाँ गिनाईं। इस पद्य में अनासक्त होने का क्या उपाय है, वीतराग होने के लिये क्या करना चाहिये, यह बताया जा रहा है।

आसक्ति– राग-मोह– वैराग्य से, त्याग से, नहीं छूटती। आसक्ति का त्याग महा आसक्ति, गोविन्द में भक्ति, से होगा। **'रसोऽप्यत्र परं दृष्ट्वा निवर्तते'**। यदि प्रिय लगने वाली वस्तुओं का त्याग भी कर देंगे तो उनमें रस, आसक्ति तो बनी रहेगी। आसक्ति तो **'परं दृष्ट्वा निवर्तते'**, गोविन्द की शरण में जाने से छूटेगी।

राजगोपालाचार्य ने इस स्तोत्र की अपनी टीका में बताया है कि शंकराचार्य तो परम वेदान्ती थे, उन्होंने ज्ञान के महासागर में अवगाहन किया था। उन्होंने अपने वेदान्त-ज्ञान को संगीतमय स्तोत्रों में सबके लिये सुलभ किया है। इस स्तोत्र में तो उन्होंने अपने सारे वेदान्त ग्रन्थों का सार सरल और संगीतमय शब्दों में एकत्र कर दिया है। वेदान्त का ज्ञान भगवद्भक्ति से सुलभ हो जाता है। इसीलिये, प्रत्येक पद्य में वेदान्त का उपदेश देने के बाद वे कहते हैं, "भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम्"।

इस पद्य में अनासक्ति से लेकर जीवन-मुक्ति तक की सीढ़ियों का वर्णन है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण उपदेश है। निस्संगत्व (अनासक्ति) सत्संग से प्राप्त होगी। सत्संग से सांसारिक, क्षणिक सुख देने वाली, प्रिय, वस्तुओं में अनुराग, अभिलाषा दूर होगी। जब यह अनुराग दूर हो जायेगा तो निर्मोहत्व – मोहासक्ति का नाश होगा। जब मोहासक्ति नहीं रहेगी, तो चित्त निश्चल हो जायेगा, ब्राह्मी स्थिति प्राप्त हो जायेगी, स्थिरप्रज्ञ बन जायेगा। और इसे ही जीवनमुक्ति, इसी जीवन में मुक्ति कहते हैं।

कहते हैं, पहले टेक पद्य के बाद, अगले बारह पद्य स्वयं शंकराचार्य-रचित हैं। उनके पीछे के चौदह पद्य शिष्यों के बनाये हैं। ये बारह पद्य चार-चार के तीन समूहों में बँटे हैं। इस पद्य के आगे चार पद्य उपसंहार रूप हैं।

चतुर उपदेशक महत्त्वपूर्ण बात को एक से अधिक बार, अलग-अलग तरह से, समझाता है। अगले चार पद्यों में कुछ उदाहरण हैं।

(१०)

वयसि गते कः कामविकारः
शुष्के नीरे कः कासारः।
क्षीणे वित्ते कः परिवारः
ज्ञाते तत्त्वे कः संसारः॥

आयु ढली, कहाँ काम विकार?
सूखा पानी, कहाँ तड़ाग?
सम्पत्ति नाश, कहाँ परिवार?
तत्त्वज्ञान, फिर क्या संसार?

वयसि गते (यौवन बीत जाने पर) *कः कामविकारः* (काम वासना कहाँ रहेगी?) *शुष्के नीरे* (पानी सूख जाने पर) *कः कासारः* (तालाब कहाँ रहता है?) *क्षीणे वित्ते* (जब धन नहीं रहता) *कः परिवारः* (तब परिवार और परिजन कहाँ रहते हैं?) *ज्ञाते तत्त्वे कः संसारः* (और जब तत्त्वज्ञान हो गया तो संसार में आसक्ति कहाँ रहती है)।

इन चार उदाहरणों में आचार्य बता रहे हैं कि यदि कारण हट गया तो कार्य नहीं रहेगा। राग-रंग, काम-केलि तो युवावस्था में रहती हैं। जब यौवन बीत गया तो ये कहाँ रहेंगी। जब पानी नहीं रहता, तो तालाब कहाँ रहता है। जब धन-सम्पत्ति बीत जाती है तो परिजनों की भीड़ अपने आप बिखर जाती है। इसी प्रकार, जब तत्त्वज्ञान हो गया तो सांसारिक वासनाएँ कहाँ रहीं?

पिछले पद्यों में आचार्य प्रतिपक्ष भावना जागृत कर चित्तदशा बदलने का उपदेश दे रहे हैं। पिछले पद्य में अनासक्ति योग – वीतराग, अवस्था-के लिये व्यावहारिक उपाय, सीढ़ियाँ बनाई हैं, **गीता** (अ. १८) में इससे "**असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः**" बताया गया है। इस कठिन मार्ग पर एक-एक पग आगे बढ़ना होता है। मोह से अमोह की ओर जाना हो तो पहले निस्सङ्गत्व प्राप्त करना होगा और निस्सङ्गत्व के लिये सत्संग चाहिये। इस प्रकार सत्संग-निस्सङ्ग-निर्मोह-निश्चलचित्त-जीवनमुक्ति इस प्रकार आगे बढ़ना है। गीता में कई स्थानों पर ऐसी सीढ़ियों का निर्देश है। यथा—

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥

(गी. २-६६)

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च॥
श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि॥

(गी. २-५२-५३)

इन सीढ़ियों के साथ-साथ, कुछ-कुछ उपहार में, इस पद्य में चार उदाहरण दिये हैं। आयु ढली, यौवन बीता, तो कामवासना कहाँ रही? जब पानी नहीं रहा तो तालाब कहाँ ढूंढोगे? जब धन नहीं, तो धन से लिपटे हुए परिवारवाले कहाँ रहेंगे। तत्त्वज्ञान होने पर संसार कहाँ?

यहाँ 'संसार' का अर्थ समझना होगा। संसार बाहर की दुनिया ही नहीं

है। संसार वह है जो हमें मोहनिद्रा के स्वप्नों में दिखाई देता है। संसार तो हमारे मन में निर्मित माया का महल है। आचार्य कह रहे हैं– तत्त्वज्ञान हुआ नहीं कि यह मायाजाल गायब। हमारे चित्त में जो मोहभ्रम है, हमारी जो आसक्तियाँ हैं, मूर्च्छा के माध्यम से जो हम देखते हैं वहीं संसार है। तत्त्वज्ञान होने पर यहा माया का पर्दा हट जाता है, संसार नहीं रहता।

इसके लिये गोविन्द की शरण लो, उनकी भक्ति का आश्रय लो।

(११)

मा कुरु धनजनयौवनगर्वं
हरति निमेषात् कालः सर्वम्।
मायामयमिदमखिलं हित्वा
ब्रह्मपदं त्वं प्रविश विदित्वा॥

मत घमंड कर धन-जन-यौवन पर,
क्षण में काल निगलता, यह सब नश्वर।
मायामय इस सब को तजकर
सब कुछ समझ, ब्रह्मपद में प्रवेश कर॥

धन-जन-यौवन-गर्वं मा कुरु (धन, परिवार, यौवन का गर्व मत करो) *कालः सर्वं निमेषात् हरति* (काल क्षण भर में इन्हें हर लेगा) *इदं अखिलं मायामयं हित्वा* (इस सारे माया जाल को छोड़कर) *त्वं ब्रह्मपदं विदित्वा प्रविश* (तू ब्रह्मपद को जान कर उसमें प्रवेश कर)।

इस पद्य में मिथ्याभिमान त्यागने के लिये कहा गया है। यह जो कुछ हमारे चारों ओर दिखाई दे रहा है, और जिसके मोह में हम फँसे हैं, वह माया का पर्दा है। धन, परिवार, पद-प्रतिष्ठा, यौवन किसी भी क्षण हमसे छूट सकते हैं। ये अल्पकालीन हैं। कालचक्र इन्हें एक क्षण में, पल भर में, छीन सकता है। इनका मिथ्याभिमान दुर्बुद्धि के कारण है, हमारे मोह के कारण है। यह मेरा धन है, यह मेरा परिवार है, यह मेरी पद-प्रतिष्ठा है — यही मिथ्याभिमान हमें संसार में बाँधे रखता है।

इसलिये इस समस्त माया के पर्दे को अच्छी तरह पहचानो, इसकी

क्षणभङ्गुरता का ध्यान करो। मोह और ममता, दुर्बुद्धि और मोहाभिमान, हमारे विवेक को ढके रहते हैं। जो अस्थिर है, उसे हम चिरस्थायी मान लेते हैं, जो अपना नहीं है उस पर मोहित हो जाते हैं।

यह मिथ्याभिमान रजोगुण से उत्पन्न कामना की उपज है। हमारी कामना है हम सदा धनी, सम्मानित, स्वस्थ और यौवन सम्पन्न रहें। हमें मिथ्याभिमान हो जाता है कि हम ऐसे ही सदा सुखी रहेंगे, हमारा विवेक इस मिथ्याभिमान से ढक जाता है, हम भ्रमजाल में फँस जाते हैं, हमें मोहमाया जकड़ लेती है।

इस मायाजाल से छूटना है, और जो सत्य और सनातन है उसे पहचान कर, उसमें प्रवेश करना है। इसके लिये गोविन्द का आश्रय लो।

(१२)

दिनमपि रजनी सायं प्रातः
शिशिरवसन्तौ पुनरायातः।
कालः क्रीडति गच्छत्यायुः
तदपि न मुञ्चत्याशावायुः॥

रात-दिवस और साँझ-सवेरे,
शिशिर-वसन्त के चलते घेरे।
कालचक्र में आयु व्यतीत,
तब भी आशा रही घसीट॥

दिनम् अपि रजनी (दिन और रात भी) *सायं प्रातः* (सायंकाल और सवेरा) *शिशिर-वसन्तौ* (जाड़ों का पतझड़ और वसन्त का नवजीवन) *पुनः आयातः* (बार-बार आते-जाते रहे) *कालः क्रीडति* (काल हमारे साथ खेल खेल रहा है) *गच्छति आयुः* (आयु बीत रही है) *तद्-अपि आशा-वायुः न मुञ्चति* (तब भी हम आशारूपी वायु को मुट्ठी में बाँध कर रखना चाहते हैं, आशा नहीं छूटती)।

बड़ा सरल संगीतमय पद्य है। काल-चक्र का वर्णन है। सुबह और शाम होती है, बस यूँ ही उम्र समाप्त होती है।

संसार में सुंदरता है, आकर्षण है। सूर्योदय और संध्या का सौन्दर्य, तारों भरी रात का आकर्षण, शिशिर और वसन्त की बदलती हुई मादकता– कितना आकर्षण है संसार में!

किन्तु यह सौन्दर्य और आकर्षण अल्पकालीन है। कालचक्र दिन और रात, शिशिर और वसन्त को घुमा रहा है, और हमारी अल्प आयु पल-पल क्षीण होती जा रही है। काल हमारे साथ आँख-मिचौनी का खेल खेल रहा है।

आयु बीत रही है, किन्तु आशा-तृष्णा नही छूटती। भर्तृहरि ने कहा है—

कालो न यातो वयमेव याता-
स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः॥

(१३)

का ते कान्ता-धन-गत-चिन्ता
वातुल! किं तव नास्ति नियन्ता।
क्षणमपि सज्जनसंगतिरेका
भवति भवार्णवतरणे नौका॥

कैसी कान्ता-काञ्चन चिन्ता?
पागल! तेरा क्या न नियन्ता?
क्षणभर सत्संगति का मौका
बनता भवसागर तरने की नौका॥

ते कान्ता-धनगत-चिन्ता का (तेरी पत्नी और धन-सम्पत्ति के बारे में चिन्ता का क्या अर्थ है, ये क्या है?) *वातुल* (अरे पागल!) *किं तव नियन्ता नास्ति* (क्या तेरा नियन्ता, जीवन निर्धारित करने वाला कोई नहीं है?) *क्षणमपि* (क्षणभर की) *एका सज्जन-संगतिः* (अकेली सज्जनों की संगति, सत्संग) *भवार्णव-तरणे नौका भवति* (संसारसागर पार करने के लिये नौका बनेगी)।

कहते हैं, आचार्य शंकर ने पहला टेक पद्य (**भज गोविन्दम्**) और

आगे के बारह पद्यों की रचना की। बाद के चौदह पद्य शिष्यों ने बनाये। प्रस्तुत अन्तिम पद्य में आचार्य अपने उपदेश का उपसंहार कर रहे हैं।

कह रहे हैं, "पगले, पत्नी और धन-सम्पत्ति की चिन्ता में क्यों डूब रहा है। सारा बोझ अपने शिर पर ही क्यों रखे हुए है। तेरे ऊपर कोई नियन्ता, नियन्त्रण करने वाला, भी है। चिन्ता से क्या होगा? कञ्चन-कामिनी के मोह में तू पागल हो रहा है। सब कुछ तेरे बस में नहीं है। तेरे ऊपर कोई और भी शक्ति है, नियन्ता है, उसके भरोसे अपनी चिन्ताएँ छोड़।

लेकिन, यह कैसे होगा, चिन्ताओं से मुक्ति कैसे मिलेगी?

आचार्य बता रहे हैं– एक उपाय है। सत्संग कर, तेरी बुद्धि निर्मल होगी, विवेक का उदय होगा। तेरी मोहासक्ति का खोखलापन सत्संग में बिखर जायेगा। तेरी समझ में आने लगेगा कि मेरे मिथ्याभिमान ने– इस भावना ने कि वह मेरी पत्नी है, यह मेरा धन है— मुझे दिग्भ्रान्त कर दिया था। तू जीवन की वास्तविकता समझने लगेगा।

चिन्ता बन्ध्या होती है। इससे कुछ नहीं उपजता। केवल शक्तिक्षीण होती है, विचार-शक्ति धुँधली हो जाती है, विवेक पर मोह का पर्दा पड़ जाता है। किन्तु थोड़े से भी सत्संग से बुद्धि निर्मल होती है, और सांसारिक कठिनाइयों से जूझने की शक्ति आती है। सत्संग का अर्थ केवल अच्छे लोगों की संगति ही नहीं है। सत्संग का अर्थ है– जो सत् है, सनातन है, उसकी संगति।

(१४)

जटिलो मुण्डी लुञ्चितकेशः
काषायाम्बरबहुकृतवेषः।
पश्यन्नपि च न पश्यति मूढो
ह्युदरनिमित्तं बहुकृतवेषः॥

जटा बढ़ाकर, बाल कटाकर, अथवा नोंच-नोंच कर केश
पहने भगवा वस्त्र, बना बहुरूपी वेष।

आँखें हैं, तब भी अंधा है ढोंगी
पेट पालने बना रहा है ऐसे वेष॥

जटिलः (जटाधारी) *मुण्डी* (जिसने अपने बाल मुड़ा लिये हों) *लुञ्चितकेशः* (जैन मुनियों के समान जिसने अपने एक-एक बाल को नोंचा हो) *काषाय-अम्बर*-(जिसने गेरुआ वस्त्र पहन लिया हों) *बहुकृतवेषः* (तरह-तरह के वेष बनाने वाला, बहुरूपिया) *पश्यन् अपि च* (देखते हुए भी, आँखे होते हुए भी) *न पश्यति मूढः* (मूढ़ नहीं देखता है) *हि-उदर-निमित्तं* (सचमुच उस ढ़ोंगी ने पेट के लिये ही) *बहुतकृतवेषः* (ऐसे अनेक वेष बनाये हैं, बहुरूपिया बना है)।

पिछले बारह पद्यों में ज्ञान और भक्ति के साथ राग-विराग से ऊपर उठने की शिक्षा दी गई। 'त्याग' और 'वैराग्य' दो ऐसे शब्द हैं जिन्हें समझने में हमसे भूल होती है। अगर हम कुछ त्याग दें—व्रत, उपवास निराहार करें—तब भी उनमें रस बना रह सकता है, मन में आसक्ति रहती है। **गीता** (अ. २) में कहा है, **''विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः रसवर्जं''**, त्यागने से विषय तो हट जाते हैं, किन्तु उनमें रस, मन के भीतर प्रीति, रह सकती है। भोजन नहीं करना, निराहार रहना तो शारीरिक क्रिया है, इन्द्रियों का विषयों से सम्पर्क तोड़ना है। असल त्याग तो बीतराग होना है, वह स्थिति है जब मन में विषय-भोग की आसक्ति ही नहीं रहे। अगर राग को अवरुद्ध किया गया, उसका विरोध किया गया, तब भी मन विचलित रहेगा। वैरागी—वीतराग– होने का अर्थ है विषयों में आसक्ति निर्मूल करना, राग का विरोध नहीं, राग से मोक्ष।

वैरागी होने के अर्थ को नहीं समझने वाले ढ़ोंगी हो जाते हैं, सन्यासी का वेष धारण करते हैं, किन्तु असन्यस्त रहते हैं। किसी ने जटाएँ बढ़ा लीं, किसी ने बाल मुँड़वा लिये, किसी ने केश-लुञ्चन कर लिया, किसी ने गेरुए वस्त्र पहन लिये। इस बाहरी ढोंग से दूसरों को धोखा हो सकता है। ऐसे ढोंगी आँखें होते हुए भी नहीं देख पाते कि वे क्या का रहे हैं। ये तो सब पेट पालने की चालाकियाँ हैं, कपटमुनियों का बहुरूपियापन है। अधिकतर सन्यासी कुछ ऐसा ही नाटक करते हुए मिलेंगे। अगर पेट ही

भरना था तो सन्यास से संसार ही अधिक अच्छा था, कम-से-कम ईमानदारी तो थी।

बाहरी ढोंग से कुछ भी उपलब्धि नहीं होती। हम ऊपर-ऊपर जीभ से राम-राम जपते रहें, और भीतर मन में, किसी रमणी का ध्यान करते रहें तो दोनों ही क्रियाएँ व्यर्थ हैं। रमणी के ध्यान में, दिवास्वप्न में, जो थोड़ी-बहुत सन्तुष्टि थी वह राम-राम जपने से कम हो गई। और मन में बैठी रमणी ने राम-राम व्यर्थ कर दिया।

(१५)

अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं
दशनविहीनं जातं तुण्डम्।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं
तदपि न मुञ्चत्याशापिण्डम्।।

अंग गल गये, बाल पक गये,
पोला मुँह अब दन्तविहीन।
बूढ़ा लाठी के बल चलता
तब भी आशापिण्ड न तजता दीन।।

अङ्गं गलितं (शरीर गल गया, बुढ़ापे में झुरियाँ पड़ गईं) *पलितं मुण्डं* (शिर के बाल सफेद हो गये और झड़ गये) *दशनविहीनं जातं तुण्डं* (मुँह पोपला हो गया, दाँत नहीं रहे) *वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं* (अब झुकी कमरवाला वृद्ध लाठी के बल चलता है) *तद्-अपि न मुञ्चति आशा-पिण्डम्* (तब भी आशा का पिण्ड नहीं छोड़ता)

कहीं ध्यान से ओझल न हो जाय इसलिये एक बात बार-बार कहनी पड़ रही है।

आरम्भ के चार पद्यों में आचार्य ने ज्ञान और भक्ति की सहायता से वीतराग-वैरागी-बनने की शिक्षा दी, जीवनमुक्ति का मार्ग बताया। अब इन पद्यों में उनके शिष्य इस मार्ग पर भटक गये लोगों को उनकी भूल बता रहे हैं। क्या गृहस्थी, क्या संन्यासी कहीं-न-कहीं भूल कर बैठते हैं। किसी

ने सब कुछ छोड़कर भी आशा पकड़ रखी है, कोई निराशा में डूबा है। कोई मोह छोड़ने के प्रयत्न में निर्मोही हो गया है। कोई संन्यासी होकर भी मन में संसार का बोझ लिये घूम रहा है।

पद्य १५, १६, १७ में भूल-सुधार है, और पद्य १८ में वीतराग संन्यासी की, स्थित-प्रज्ञ की एक झलक है। पद्य १५ में बताया गया है कि गृहस्थी की बुढ़ापे में, जीवन के अंतिम दिनों में, सब कुछ चले जाने के बाद भी आशा नहीं छूटती। पद्य १६ में सन्यासी को आशा-पाश में उलझा हुआ बताया है। पद्य १७ में दान-पुण्य-व्रत-उपवास-तीर्थ यात्रा करने वाले अज्ञानी गृहस्थों की मनोदशा का वर्णन है। पद्य १८ में सच्चे सन्यासियों के दर्शन कराये गये हैं। इस प्रकार इन पद्यों में एक प्रकार का तारतम्य है, उपदेश एक निश्चित योजना के अनुसार आगे बढ़ रहा है।

प्रस्तुत पद्य बड़ा संगीतमय और लोकप्रिय है। अन्त्य अनुप्रास की सहायता से शब्दचित्र बनाया गया है। बुढ़ापे में अंग गल गये, बाल सफेद हो गये, दाँत नही रहे, कमर झुक गई, और पैर निर्बल हो गये। यहाँ बुढ़ापा आने का क्रम है। पहले अंग गलते हैं, फिर बाल सफेद होते हैं, फिर दाँत गिरते हैं, और फिर सारा शरीर निर्बल हो जाता है। किन्तु आशा निर्बल नहीं होती, बूढ़ी नहीं होती। आशा मरते समय तक बनी रहती है। ''आशा-तृष्णा ना गई कह गये दास कबीर''।

लेकिन बहुत लोग यह भी नहीं जानते कि आशा क्या है। जो नहीं है, वह मिलेगा, इसकी भ्रांति है आशा। जो नहीं है, वह कभी होगा इसका सपना आशा है। और यह सपना नहीं टूटता। एक जापानी कविता का हिन्दी अनुवाद है:

जीवन एक ओसकण है
हाँ यही है, मैं पूरी तरह मानता हूँ

जीव एक ओसकण है, तब भी, तब भी .... तब भी, फिर भी .... आशा है। एक धागा जिससे बँधे हम जी रहे हैं। यह धागा जंज़ीर से भी मजबूत है। जब इस जीवन की सारी आशायें टूट जाती हैं, तो मोक्ष की, स्वर्ग की आशा सँजोने लगते हैं। संसार में दुःखी-से-दुःखी आदमी भी, मरने के बाद, स्वर्ग की आशा करता है।

लाठी को टेक-टेक कर घिसटने वाला अस्सी साल का बूढ़ा भी न जाने कितनी आशायें अपने मन में सँजोये रखता है।

कालस्तिष्ठति पृष्ठतः कचधरः केनाऽपि नो दृश्यते।

भर्तृहरि का एक श्लोक है :

बलिभिर्मुखमाक्रान्तं पलितैरङ्कितं शिरः।
गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णैका तरुणायते॥

और भी कहा है—

वपुः कुब्जीभूतं गतिरपि तथा यष्टिशरणा
विशीर्णा दन्तालिः श्रवणविकलं श्रोत्रयुगलम्।
शिरः शुक्लं चक्षुस्तिमिरपटलैरावृतमहो
मनो मे निर्लज्जं तदपि विषयेभ्यः स्पृहयति॥

(१६)

अग्रे वह्निः पृष्ठे भानुः
रात्रौ चिबुकसमर्पितजानुः।
करतलभिक्षा तरुतलवासः
तदपि न मुञ्चत्याशापाशः॥

आगे अग्नि और पीछे भानु
ठिठुर रात में चिबुक-जानु।
करतलभिक्षा तरुतलवास
तब भी छूटी न आशापाश॥

अग्रे वह्निः (सामने अग्नि) *पृष्ठे भानुः* (पीछे सूर्य की धूप) *रात्रौ* (रात में) *चिबुक-समर्पित-जानुः* (ठोडी को दोनों जांघों के बीच में दबाकर) *करतलभिक्षा* (अञ्जलि में भिक्षा माँगने वाला) *तरुतलवासः* (वृक्ष के नीचे रहने वाला) *तद्-अपि* (तब भी) *आशा-पाशः न मुञ्चति* (आशा की पाश नहीं छूटती)

पिछले पद्य में आशा के धागे को पकड़कर घिसटते हुए वृद्ध गृहस्थ का वर्णन किया। इस पद्य में संसार में बँधे सन्यासी का चित्र है।

वनवास में सन्यासी तपस्या कर रहा है। तन पर कपड़ा नहीं है, रहने को घर नहीं है, भिक्षा माँगने के लिये पात्र तक नहीं है, तब भी आशा की पाश को नहीं छोड़ पा रहा है।

इस पद्य में बड़ा मनोवैज्ञानिक सत्य छिपा है। सब कुछ छोड़ दिया। घरवार, पत्नी-परिजन, धन-दौलत, पद-प्रतिष्ठा सब पर लात मार सन्यास ले लिया। किसी पेड़ के नीचे रहने का स्थान ढूँढ लिया, भिक्षा अञ्जलि में ले ली, जाड़ा-गर्मी सब कुछ सह लिया। पूर्णतया अपरिग्रही हो गया। तब भी, इतना सबकुछ त्यागने के बाद और कठोर तपस्या में संलग्न रहने पर भी, आशा की पाश नहीं छोड़ पाया, आशा-अभीप्सा, स्पृहा से मुक्त न हुआ तो सन्यास व्यर्थ है। केवल बाहरी उपकरणों के त्याग से सन्यास नहीं होता। सन्यास मनोदशा बदलने में होता है, वनवास में नहीं। यदि आशा का फन्दा, मनोवाञ्छा बनी रही तो बाहरी वस्तुओं के त्याग से वीतराग नहीं हुआ जा सकता। बाहर का संसार छोड़ना इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना मन के भीतर का संसार मिटाना है, और वन में सन्यासी बनकर भी कोई संसारी बना रह सकता है। हमारे पास क्या है, और क्या नहीं है इसका महत्त्व नहीं है जितना इस बात का कि हमारी मनोदशा कैसी है, हमारा चित्त कितना निर्लिप्त है। किसने क्या समेटा और किसने क्या त्यागा इससे संसारी और सन्यासी का अन्तर स्पष्ट नहीं होगा। मुख्य बात यह है कि किसकी कैसी मनोदशा है।

(१७)

कुरुते गङ्गासागरगमनं
व्रतपरिपालनमथवा दानम्।
ज्ञानविहीनः सर्वमतेन
मुक्तिं भजति न जन्मशतेन॥

करता गंगासागर में स्नान
व्रत रखता और देता दान।
तब भी विना ज्ञान (यह सब की सम्मति है)
सौ जन्मों में भी न मोक्षगति है।

कुरुते गङ्गासागर-गमनं (कलकत्ता के पास जहाँ गंगा सागर में मिलती है वहाँ जाता है) *व्रत-परिपालनं* (व्रतों का पालन) *अथवा दानम्* (अथवा दान करता है) *सर्वमतेन* (सब लोगों के मत के अनुसार, सब लोग यह मानते हैं) *ज्ञान-विहीनः* (विना ज्ञान) *मुक्तिं जन्मशतेन न भजति* (सौ जन्मों में भी मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता)

इस पद्य का गलत अर्थ लगाया जा सकता है। ऐसा लगता है कि आचार्य गङ्गास्नान, व्रतपालन, दान देने को व्यर्थ बता रहे हैं। उनकी महत्ता को कम कर रहे हैं, और कह रहे हैं कि मोक्ष ज्ञान एकत्र करने से ही मिलेगी।

आचार्य दूसरी ही बात कह रहे हैं। भाषा बड़ी अर्थपूर्ण है, और शब्दों में छिपे मन्तव्य को समझना चाहिये। यहाँ तीर्थ-स्नान, व्रतपालन दान देने की निन्दा नहीं है। आचार्य कह रहे हैं— ये शारीरिक कार्य, विना मन शुद्धि किये, किये जा सकते हैं। काशी में गङ्गास्नान अथवा रामेश्वरम् के सागर में डुबकी लगाई जा सकती है। "कुरुते गमनं" —वहाँ जा सकते हैं, इसमें कौन सी बड़ी उपलब्धि है। कबीर ने कहा है, "अरे मूरख, इन कपड़ों को, शरीर को, गङ्गा में धोने से क्या होगा, मन का मैल मिटा।" रेल का टिकट लिया और पहुँच गये गङ्गासागर, और दस-पाँच बार अपने ऊपर पानी उछाल लिया इससे मोक्ष कैसे प्राप्त होगी?

लेकिन गङ्गा-स्नान, तीर्थयात्रा का दूसरा भी रूप है। आचार्य पद्य २० में कहेंगे, "गङ्गाजललवकणिका पीता·········क्रियते तस्य यमेन न चर्चा"। गङ्गास्नान के लिये जाने में और गङ्गाजल पीने में– गङ्गाजल भीतर, हृदय में, पहुँचाने में अन्तर है। इसपद्य में कहा, "क्रियते गमनं", गङ्गासागर गमन करता है, वहाँ कहा जायेगा, "गङ्गाजल-लवकणिका पीता", गङ्गाजल की एक छोटी बूँद भीतर ले ली। इस अन्तर को ठीक समझना होगा। व्रत करने में, उपवास-निराहार करने में शरीर को थोड़ा-बहुत कष्ट होता है। अपने बहुत-से धन से छोड़ा निकल कर दान भी किया जा सकता है। यह कौन बड़ी बात है।

महाभारत में युधिष्ठिर के यज्ञ में आये नेवले की कथा आती है। यज्ञ

सम्पन्न होने पर युधिष्ठिर के मन में गर्व हुआ कि इतना दान-पुण्य शायद ही किसी ने किया हो। तभी एक नेवले ने आकर कहा, ''युधिष्ठिर, तुम्हारा यह दान उस ब्राह्मण के सामने कुछ भी नहीं है, जिसने स्वयं को और अपने परिवार को भूखा रख अतिथि को भोजन कराया था। उसके हृदय में अतिथि के लिये आदर था, वह इसे सौभाग्य समझ रहा था कि उसके घर पर अतिथि आया।''

आप इतना दान करते हैं यह इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना कि यह कि आपके मन में कैसे भाव हैं। अंग्रेजी में एक शब्द है ''चैरिटी'' जिसका ''दान'' अर्थ मान लिया गया है। ''चैरिटी'' का वास्तविक अर्थ है ''निःस्वार्थ प्रेम''।

व्रत-निराहार, तीर्थयात्रा अगर केवल शारीरिक क्रियाएँ रहीं, तो वे निर्मल, निःस्वार्थ भाव से किये हुए कर्म नहीं हुए तो उनसे मुक्ति मिलने वाली नहीं है। निर्मल, निःस्वार्थ कर्मों से चित्तशुद्धि में सहायता मिलेगी, व्रत-उपवास के संयम से इन्द्रिय विजय होगी, वासनाओं का दमन होगा।

किन्तु मुक्ति के लिये ये सोपान हैं, साधन हैं। मुख्य आधार तो ज्ञान है।

यहाँ ''ज्ञान'' का अर्थ पुस्तकों से इकट्ठी की गई सूचना नहीं है। ज्ञान का अर्थ है आत्म-बोध, ब्रह्म-अनुभूति, स्थिर प्रज्ञा। जब चित्त निश्चल हो जाता है तो, जैसे पद्य ६ में कहा, जीवनमुक्ति मिल जाती है।

इसमें व्रत, दान आदि में अर्जित भक्ति सहायक हो सकती है। इसलिये आत्मबोध के लिये, सच्चा ज्ञान, मुक्तिदाता ज्ञान, प्राप्त करने के लिये ''भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम्''।

(१८)

सुरमन्दिरतरुमूलनिवासः
शय्या भूतलमजिनं वासः।
सर्वपरिग्रहभोगत्यागः
कस्य सुखं न करोति विरागः॥

देवालय या द्रुममूल निवास
धरती शय्या मृगछाल लिबास।
त्याग दिये जब भोग-विलास
किसे न सब सुख दे पूर्ण विराग॥

सुरमन्दिरतरुमूलनिवासः (किसी मन्दिर में लगे वृक्ष के नीचे घर) *शय्या भूतलम्* (पृथ्वी हो पलंग) *अजिनं वासः* (मृगचर्म ही वस्त्र) *सर्व-परिग्रह-भोगत्यागः* (सब धन-सम्पत्ति और भोगों का त्याग) *विरागः कस्य सुखं न करोति* (ऐसा वैराग्य किसे आनन्दित नहीं करता)

इस पद्य को अगर पिछले पद्य १६ **(अग्रे वन्हिः पृष्ठे भानुः)** के साथ पढ़ा जाय तो ऐसा लग सकता है कि दोनों में विरोधाभास है। किन्तु दोनों पद्यों में दो अलग-अलग चित्र हैं। एक सन्यासी कठोर तपस्या कर रहा है, उसने सब कुछ त्याग दिया है, किन्तु "तदपि न मुञ्चत्याशापाशः"। प्रस्तुत पद्य में उस वीतराग, स्थितप्रज्ञ सन्यासी का चित्र है जो हृदय से वैरागी है। वह तपस्यारत भले ही न हो, उसने सच्चा त्याग किया है! किसी मन्दिर के अहाते में लगे पेड़ के नीचे रहता है, मृगचर्म पहन रखी है, धरती पर सो लेता है, उसने सारे परिग्रहों और भोगों से मुक्ति पा ली है। वह सच्चा वैरागी है। "कस्य सुखं न करोति विरागः"। अन्तर "आशा पाश" और "विराग" में है।

गीता में ब्रह्मनिर्वाण के लिये जो साधन बताये गये हें वे इस सन्यासी ने स्वीकार कर लिये हैं।

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थमनोगतान्
आत्मन्येवात्मनातुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।
विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति
एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥

ऐसा सन्यासी वैरागी है, वीतराग है, और महत्त्व की बात यह है कि

वह सुखी है, "कस्य सुखं न करोति विरागः"। उसे वैराग्य से सुख मिला है, वह आनन्दित है। भगवान् महावीर से बड़ा वैरागी शायद कोई और न मिले। लेकिन उनकी मूर्तियों में उन्हें आनंदित चित्रित किया जाता है: अपरिग्रही और आनंदित।

(१६)

योगरतो वा भोगरतो वा
सङ्गरतो वा सङ्गविहीनः।
यस्य ब्रह्मणि रमते चित्तं
नन्दति नन्दति नन्दत्येव॥

योगी हो अथवा वह भोगी
सामाजिक अथवा एकान्त।
जिसका चित्त ब्रह्मरमण में शान्त
वह आनन्दित, वह आनन्दित, परम प्रशान्त॥

योगरतः (योग में तल्लीन) *वा भोगरतः वा* (अथवा भोग में लिप्त) *सङ्गरतः* (समाज में सङ्गति में, दूसरों के साथ) *वा सङ्गविहीनः* (अथवा एकान्त में) *यस्य चित्तं ब्रह्मणि रमते* (जिसका चित्त ब्रह्म में रमण करता है) *नन्दति नन्दति नन्दत्येव* (वह आनन्दित रहता है, सदा आनन्दित ही रहता है।)

यह बड़ा महत्त्वपूर्ण वचन है। भारतीय मनीषा की ऊँची-से-ऊँची खोज है। श्रीकृष्ण "योगेश्वर" हैं और भगवान् शंकर "योगीश्वर" हैं। श्रीकृष्ण गोपियों के साथ रास करते हैं, और द्वारिका के राजमहल में भोग-विलास करते हैं, और वे योगेश्वर हैं। भगवान् शंकर, अर्धनारीश्वर, सदा भवानी के सम्पर्क में हैं, और वे योगीश्वर हैं।

कोई योगी है या भोगी है यह इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना कि यह कि उसकी चित्तदशा कैसी है। जो ब्रह्म में रमण करता है— सत्, चित् आनन्द में लीन है– उसके लिये क्या योग और क्या भोग। वह राजमहल में रहे या जंगल की किसी गुफा में, लोगों के साथ रहे या एकान्त में

रहे— इससे उसके लिये कोई अन्तर नहीं पड़ता क्योंकि वह ब्रह्म–सच्चिदानंद-में आनन्दित है, वह सदा सचमुच आनन्दित है।

यह ध्यान देने की बात है कि इन सारे पद्यों में चित्तदशा सुधारने का उपदेश है। जब आचार्य शंकर ज्ञान की बात करते हैं तो उनका तात्पर्य चित्तदशा सुधारने वाले ज्ञान से है, उस बोध से है जो विवेक में परिणत हो गया है। बाहरी क्रियाओं का उनके लिये अधिक महत्त्व नहीं है। *गीता* में इसे 'ज्ञानयोग' कहा गया है। **उपनिषदों** और *गीता* का यही उपदेश है। आचार्य शंकर ने इस गूढ़ ज्ञान को सरल शब्दों में सबके लिये सुलभ कर दिया है।

(२०)

भगवद्गीता किञ्चिदधीता
गङ्गाजललवकणिका पीता।
सकृदपि येन मुरारिसमर्चा
क्रियते तस्य यमेन न चर्चा॥

जिसने थोड़ी-सी भी गीता पढ़ ली
गङ्गाजल की अञ्जलि पी ली।
कर ली एक बार मुरारि की अर्चा
उसकी यम के यहाँ न चर्चा॥

भगवद्गीता किञ्चिद्-अधीता (भगवद्गीता थोड़ी-सी ही समझ ली) *गङ्गाजललवकणिका पीता* (गङ्गाजल की एक बूँद ही भीतर ले ली) *सकृदपि* (केवल एक बार भी) *येन* (जिसने) *मुरारिसमर्चा* (भगवान् मुरारि की अच्छी तरह अर्चना कर ली) *तस्य यमेन चर्चा न क्रियते* (उसकी यम के यहाँ चर्चा नहीं होती)

इस पद्य में प्रयुक्त क्रियाओं पर ध्यान देना है। "गीता अधीता" "गङ्गाजल-लवकण्किा पीता", "मुरारि-समर्चा"। पिछले पद्य १७ में "कुरुते गङ्गासागर-गमनं" कहा। कोई गङ्गासागर चला जाय, वहाँ डुबकी भी लगा ले, किन्तु गङ्गाजल की पवित्र ज्ञानधारा उसके भीतर प्रवेश ही न कर पायेगी। उसके हृदय का द्वार बंद है।

यहाँ *भगवद्गीता* भगवान् द्वारा गाया गीत और उसमें दिया गया उपदेश अध्ययन करने की, उसे समझने की बात कही गई है। पढ़ने में और अध्ययन करने में अन्तर है। लोग गीता का पाठ करते हैं– सैकड़ों हजारों पाठ करते हैं। नौ दिन में रामायण पढ़ते हैं। किन्तु उनके बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि *''भगवद्गीता अधीता''*। गीता पढ़ना, गीता का पाठ करना एक बात है। गीता का अध्ययन, गीता को समझकर उसके बोध को आचरण में उतारना, दूसरी बात है। यहाँ आचार्य कह रहे हैं कि गीता-ज्ञान का बहुत थोड़ा भाग भी, अगर ठीक से समझ लिया तो, तुम्हें वीतराग, स्थित-प्रज्ञ बना देगा।

यहाँ गङ्गाजल का अर्थ समझना है। भगीरथ आकाशगङ्गा को पृथ्वी पर लाये और भगवान् शङ्कर ने अपनी जटाओं में उसकी अजस्र धारा को झेला। एक और कथा के अनुसार गङ्गा विष्णु के चरण-नख से प्रवाहित हुई। कथा है कि ब्रह्मा ने विष्णु के बाँये पैर का अँगूठा धोकर इसकी सृष्टि की। गङ्गा पुण्यतोया नदी है।

इन प्रतीक कथाओं के सन्दर्भ में गङ्गाजल की महिमा है। यदि इस पुण्यतोया गङ्गा की एक बूँद भी भीतर पहुँच गई तो मन निर्मल जो जायेगा, सारे कषाय धुल जायेंगे। काम, क्रोध, लोभ, मोह की कालिमा हट जायेगी।

'मुरारि-समर्चा', मुरारि कृष्ण की हृदय से अर्चना, समर्चा। ''मुरारि'' यहाँ सार्थक है। ''मुरस्य अरिः, मुरारिः'' अहंकार का नाश करने वाले मुरारि।

यहाँ यमराज की पहुँच से बाहर होने के तीन उपाय बताये : *गीता* का अध्ययन, पुण्यतोया गङ्गाजल से मन के कषायों का प्रक्षालन, और अहंकार रूपी राक्षस का नाश करने वाले मुरारि की समर्चा।

जिसने यह तीनों प्रयोग कर लिये उसे जन्म-मरण, यम की यातनाओं, से अवश्य छुटकारा मिलेगा। उसकी तो यम के दरबार में चर्चा भी न होगी। जिसने प्रार्थना का एक गीत गा लिया, जिसके भीतर पवित्रता की एक बूँद भी चली गई, जिसने मुरारि की अर्चना में मन लगा दिया वह धन्य है।

(२१)

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं
पुनरपि जननीजठरे शयनम्।
इह संसारे बहुदुस्तारे
कृपया पारे पाहि मुरारे॥

जनम-मरण-जनम-मरण-जनम-मरण यह बारम्बार
फिर-फिर जननी-जठर नियंत्रित कारागार।
(अतुलित दुःखों का) अगाध सागर संसार
परम कृपालु मुरारि! दयामय मुझे लगा दो पार॥

पुनः अपि (एक बार फिर) *जननं* (जन्म लेना) *पुनः अपि मरणं* (और फिर मर जाना) *पुनः अपि जननी-जठरे शयनं* (और फिर माता के गर्भ में पड़े रहना, सोते रहना) *इह* (इस) *अपारे* (बड़े) *बहु-दुस्तारे संसारे* (बहुत गहरे संसार-सागर में) *मुरारे कृपया पाहि* (हे कृष्ण मुरारि कृपाकर मेरी सहायता कीजिये)।

इस पद्य की शैली, शब्दावली बिल्कुल अलग है। यहाँ उपदेश नहीं दिया जा रहा है। यहाँ हृदय की पुकार है।

बार-बार जन्म, बार-बार मरण, और फिर माता के गर्भ में बार-बार पड़े रहना। यही तो है भव-चक्र। बड़ा लम्बा-चौड़ा है यह भवसागर। इसे पार पाना बड़ा कठिन है। हे मुरारे! मेरे अहंकार का नाश करो। मुझे सहारा दो।

यह प्रार्थना धन-मान पद-प्रतिष्ठता के लिये नहीं है। इसमें स्वर्ग की अभिलाषा नहीं है। इसमें भवचक्र से बचाने की याचना है, हृदय की चीत्कार है।

कितने जन्म हुए, कितने मरण हुए। कितनी योनियों में आना-जाना हुआ। कितनी बार माता की कोख के कारागार में पड़ा रहा। प्रभो! अब थक गया हूँ। इस भवसागर को अपनी शक्ति से पार नहीं कर सकता। मुझे सहारा दीजिये।

भव-चक्र से निकलना जरूरी है। न सुख चाहिये, न दुःख चाहिये। न इस संसार का वैभव, न स्वर्ग की आकांक्षा। सुख-दुख बहुत भोग लिये। इस भव-चक्र में बहुत बार ऊपर-नीचे आ चुका। अब, हे मुरारे कृष्ण! कृपा करो। मुझे इस दुस्तर भवसागर से पार लगाओ।

(२२)

रथ्याचर्पटविरचितकन्थः
पुण्यापुण्यविवर्जितपन्थः।
योगी योगनियोजितचित्तो
रमते बालोन्मत्तवदेव॥

सड़क-समेटे चिथड़ों से संचित की कंथा
पाप-पुण्य सीमा से ऊपर हो राह।
चित्त-वृत्ति-निरुद्ध योगी की अब क्या है चाह?
बालक-सा, पागल-सा, रमता वेपरवाह॥

रथ्याचर्पट-(मार्ग में फेंके हुए चिथड़े) *विरजित-कन्थः* (बनाई हुई गुदड़ी) *पुण्य-अपुण्य* (पुण्य और जो पुण्य नहीं है) *विवर्जित*-(उन सब से अलग) *पन्थः* (मार्ग पर चलने वाला) *योगी योगनियोजितचित्तः* (ऐसा योगी जिसका चित्त पूर्णरूप से योगनिष्ठ है) *रमते* (रहता है, आनन्द लेता है) *वालवत् एव* (बालक के समान) *उन्मत्तवत् एव* (पागल के समान)।

मुण्डक-उपनिषद् (३1.1.४) में जिस "**आत्मक्रीडः आत्मरतिः क्रियावान्**" वीतराग सन्यासी का वर्णन है उसी का यहाँ चित्रण किया गया है। रास्ते में पड़े चिथड़ों को बीन कर उसने गुदड़ी बना ली है, पाप और पुण्य के विचार से उसका मार्ग मुक्त है, क्योंकि उसके हृदय में मोक्ष अवतरित हुआ है। कहते हैं पाप करोगे तो नर्क, पुण्य करोगे तो स्वर्ग। लेकिन इस बीतराग सन्यासी का जीवन पाप और पुण्य की धारणा से ऊपर उठ चुका है। जो तीनों गुणों (सत्, रज, तम) से ऊपर उठर चुका है, उसके लिये क्या मर्यादा, क्या निषेध। वह निर्भय, एकाकी मनमौजी सारी सीमाओं से बाहर जा चुका है। **निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतां को विधिः को निषेधः।**

वह कुछ बातों में बालक सा दिखाई देगा, कुछ बातों में उन्मत्त। वह पूर्णरूप से सन्यस्त है, मुक्त है। उसके जीवन में केवल विकल्परहित बोध रह गया है। उसका जीवन चुनाव मुक्त है। कृष्ण मूर्ति जिसे "च्वाइसलैस अवेयरनैस" कहते हैं वह उसने प्राप्त कर ली है।

यह अवस्था मोक्ष से जुड़ी है, ऐसा सन्यासी जीवनमुक्त है। वह परमज्ञानी है क्योंकि वह न कोई चीज माँगता है न कोई चीज़ अस्वीकार करता है। उसकी चेतना कंपती नहीं, स्थिर हो गई है। उसका चित्त योग में नियोजित है। **"योगः चित्तवृत्तिनिरोधः"**। वह द्वन्द्वों से ऊपर उठ गया है। उसके लिये स्वर्ग-नर्क, पाप-पुण्य, सुख-दुःख, अंधेरा-उजाला सब खो चुके हैं। उसने 'एकत्व' प्राप्त कर लिया, वह परम आनन्द में रमण करता है। भगवान् महावीर ऐसे वीतराग सन्यासी के आदर्श हो सकते हैं।

वह आनंदित, उन्मत्त पागल जैसा, बालक जैसा दिखाई देता है। बालक-जैसा क्योंकि उनका निर्मल चित्त विकल्परहित है, कल्मषरहित है। पागल-जैसा क्योंकि वह विकल्पों, सोच-विचार की उलझनों को पार कर गया।

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते॥
नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः॥

(गीता ३.१७)

लेकिन, ध्यान रहे, इस अवस्था का नकल करते बहुत से ढ़ोंगी मिलेंगे। नंगे घूम रहे हैं, पत्थर फेंक रहे हैं, गालियाँ दे रहे हैं। ये पागल का ढ़ोंग रच कर लोगों को भरमा रहे हें, नंगे घूम कर मन की निर्मलता का नाटक कर रहे हैं। वीतराग सन्यासी बालक-सा, पागल-सा दिखाई देता है, है नहीं। वह प्रबुद्ध है। ढ़ोंगी पागल-सा व्यवहार कर वीतराग होने की नौटंकी करते हैं। ये सच्चे पागल भी नहीं हैं, पागलपन का प्रहसन कर रहे हैं। कोई भी नट किसी भी नायक का स्वांग भर सकता है लेकिन इस स्वांग से वह नायक नहीं बन जाता।

(२३)

कस्त्वं कोऽहं कुत आयातः

का मे जननी को मे तातः।

इति परिभावय सर्वमसारं

विश्वं त्यक्त्वा स्वप्नविचारम्॥

कौन है तू? और मैं हूँ कौन? कहाँ से आये?

किन मात-पिता के हम हैं जाये?

स्वप्न-सदृश मायामय असार संसार

इस रहस्य पर चिन्तन कर बारम्बार॥

कः त्वम् (तू कौन है?) *कः अहं* (मैं कौन हूँ?) *कुतः आयातः* (कहाँ से आये हैं) *का मे जननी* (मेरी माता कौन है?) *कः मे तातः* (मेरा पिता कौन है?) *विश्वं त्यक्त्वा स्वप्नविचारम्* (दृश्यमान समस्त जगत् को स्वप्न के समान त्याग कर) *सर्वं असारं इति परिभावय* (यह सब निस्सार है— ऐसा जानो)

प्रस्तुत पद्य पिछले पद्य ८ से मिलता-जुलता है। वहाँ कहा, "**कस्य त्वं कः कुत आयातस्तत्वं चिन्तय तदिह भ्रातः**"। यहाँ पर "**इति परिभावय सर्वमसारं विश्वं त्यक्त्वा स्वप्नविचारम्**" द्वारा कुछ समाधान किया। सारा अनुभवगम्य संसार स्वप्नवत् है? यदि हम विचार करें कि "तू", "मैं" कौन हैं, कहाँ से आये, तो मालूम होगा कि यह सारा दृश्यमान जगत्, ये सारे मेरे-तेरे सम्बन्ध, यह सब नाम-रूप का संसार स्वप्न जैसा है।

दक्षिणामूर्तिस्तोत्रम् के आरम्भ में आचार्य ने घोषणा की —

विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतम्।

पश्यन्नात्मनि मायया बहिरिवोद्भूतं यथा निद्रया॥

प्रस्तुत पद्य में उसी भाव को व्यक्त किया है। हम एक-दूसरे के सम्बन्धों के जाल में फँसे हैं। यह मेरे पिता हैं, यह माता है, यह "मैं" हूँ, यह "तू"। यदि विचार करें तो धीरे-धीरे वास्तविकता प्रकट होने

लगेगी। ये सारे सम्बन्ध तो जन्म लेने के बाद बने हैं, और मृत्यु होने पर इनका अन्त हो जायेगा। स्वप्न में तरह-तरह के चित्र दिखाई देते हैं, किन्तु जागते ही कुछ नहीं रहता। जब हमारे जीवन का स्वप्न टूट जायेगा तो यह नामरूपात्मक संसार भी लुप्त हो जायेगा।

इसलिये यहाँ आचार्य कह रहे हैं कि संसार के सम्बन्धों को समझो, "मैं" और "तू" की यथार्थता को पहचानो। बोध होने पर पता चलेगा कि यह जगत्-जंजाल तो स्वप्नसागर जैसा है; अब है, कुछ समय बाद नहीं रहेगा। कौन किसका पिता और कौन किसकी माता है? सब नदी-नाव संयोग है।

इस वास्तविकता का ज्ञान होने पर पारिवारिक मोह, आपसी सम्बन्धों का ताना-बाना टूट जायेगा। यही परमज्ञान है, यही वेदान्त की शिक्षा है। अपने को पहचानो— **आत्मानं विद्धि**– यही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण ज्ञान है।

(२४)

त्वयि मयि चान्यत्रैको विष्णुः
व्यर्थं कुप्यसि मय्यसहिष्णुः।
भव समचित्तः सर्वत्र त्वं
वाञ्छस्यचिराद्यदि विष्णुत्वम्॥

तुझमें, मुझमें, और सभी में केवल ब्रह्म
व्यर्थ कुपित मुझ पर हे अस्थिरचित्त!
सभी दशाओं में तू बन समचित्त।
होना है तुरन्त यदि तुझको ब्रह्म॥

त्वयि (तुझमें) *मयि च* (और मुझ में) *अन्यत्र च* (और दूसरों में भी) *एकः विष्णुः* (अद्वैत ब्रह्म है, सर्वव्यापक सत्ता है।) *व्यर्थं कुप्यसि मयि असहिष्णुः* (मेरे प्रति असहिष्णु होकर मेरी बात को सहन नहीं करने के कारण, मुझ पर व्यर्थ ही क्रुद्ध हो रहे हो।) *सर्वत्र त्वं समचित्तः भव* (तू सर्वत्र चित्त को एक स्थिति में, निश्चल, निर्द्वन्द्व रख) *यदि अचिराद् विष्णुत्वम् वाञ्छसि* (यदि शीघ्र ब्रह्मत्व प्राप्त करना चाहता है।)

एकत्त्व का अनुभव होने पर संकल्प-विकल्प, मन की दुविधायें नहीं टिकतीं। गीता में यह बात बार-बार समझाई गई है, **"समत्वं योग उच्यते"**, **"नित्यं च समचित्तत्वं इष्टानिष्टोपपत्तिषु"**। जो कुछ प्रिय 'अप्रिय घटित हो उसमें निश्चलचित्त रहे। **"सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ"**, **सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा"** आदि।

इस पद्य में अहंता-ममता से उपजे भेद-भाव की व्यर्थता बताई जा रही है। जब मुझमें, तुझमें, और सब लोगों में एक ही ब्रह्म व्याप्त है तो झगड़ा किस बात का? **तत्र को मोहः कः शोव पुरु[illegible]त्वमनुपश्यतः** (ईश. ७)

(**सोऽमृतत्वाय**

शत्रौ मित्रे पुत्रे बन्धौ
मा कुरु यत्नं विग्रहसन्धौ।
सर्वस्मिन्नपि पश्यात्मानं
सर्वत्रोत्सृज भेदज्ञानम्।।

शत्रु-मित्र में, बन्धु-पुत्र में,
वैर-मित्रता का न यत्न कर।
सब में दर्शन कर आत्मा का,
भेद-भावना का मार्जन कर।।

शत्रौ (शत्रु के प्रति) *मित्रे* (मित्र के प्रति) *बन्धौ* (बान्धव के, सम्बन्धी के प्रति) *विग्रहसन्धौ* (शत्रुता अथवा मित्रता करने के लिये) *मा कुरु यत्नं* (कोई चेष्टा मत कर) *सर्वस्मिन् अपि* (सब लोगों में) *आत्मानं पश्य* (अपने आप को देख) *भेद-अज्ञानं* (भेदभाव से उत्पन्न अज्ञान को) *सर्वत्र उत्सृज* (सब जगह से हटा दे)

पिछले पद्य में जिस एकत्व बोध का उपदेश दिया गया, उसका इस पद्य में विवेचन किया गया है। 'समचित्त' होने का क्या उपाय है, उसका व्यावहारिक पक्ष क्या है? जिसे 'समत्त्व' कहते हैं उस योग को कैसे साधें?

आचार्य इस पद्य में मार्ग बता रहे हैं। शत्रु और मित्र, पुत्र और भाई,

युद्ध और सन्धि— इन द्वन्द्वों में अपनी ऊर्जा व्यर्थ नष्ट मत करो। थोड़ा विचार करोगे तो पाओगे कि न कोई मित्र है, न कोई शत्रु है, न वैर बाँधना है, न मित्रता की डोरी बाँधना है। एकत्व का अनुभव करो, समत्त्व को साधो।

सुख-दुःख में समान, जय-पराजय में समान, सफलता-असफलता में समान यह भावना एकत्त्व अनुभव की सीढ़ी है।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्र [illegible] स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥
यः सर्वत्र। [illegible] त्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

(गीता २.५६-५७)

जब सुख-दुःख में एकभाव है तो शत्रुता-मित्रता कहाँ रहते हैं? कोई गाली देता है अथवा यशगान करता है इससे क्या होता है? भगवान् महावीर, महात्मा बुद्ध, और आधुनिक युग में, महात्मा गाँधी ने यह समत्त्व योग सिद्ध कर लिया था। आचार्य बता रहे हैं कि अज्ञान से उत्पन्न भेद-भाव को छोड़, सर्वत्र अपने आपको देख-न कोई मित्र है, न कोई शत्रु।

(२६)

कामं क्रोधं लोभं मोहं
त्यक्त्वाऽऽत्मानं भावय कोऽहम्।
आत्मज्ञानविहीना मूढा-
स्ते पच्यन्ते नरकनिगूढाः॥

काम-क्रोध-लोभ मोह तज
'मैं कौन हूँ?' तू यह पहचान।
वे महामूर्ख हैं जिन्हें नहीं है आत्मज्ञान
नरक-यातना का दुख देगा उनका अज्ञान॥

कामं (कामना, इच्छा) *क्रोधं* (कामना पूर्ण न होने का क्षोभ) *लोभं* (जो अपने पास है उसे दबाये रखने की इच्छा, उसे और बढ़ाने की तृष्णा)

मोहं (मतिभ्रम) *त्यक्त्वा* (त्यागकर) *आत्मानं भावयति* (अपने आपको समझता है) *कः अहम्* (मैं कौन हूँ) (किन्तु) *आत्मज्ञानविहीनाः मूढाः* (जिन विवेकहीन लोगों को आत्मज्ञान नहीं हुआ) *ते पच्यन्ते नरकनिगूढाः* (वे नरक के कारागार में पड़ते हैं।)

पिछले पदों में समत्त्वयोग और एकत्व बोध की विवेचना की गई। जो बात **गीता** में बार-बार, अनेक प्रकार से, कही गई उसे यहाँ सूत्ररूप में समझाया। **गीता** के कुछ श्लोकों को देखिये—

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते॥
यदा ते महोकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च॥
श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि॥
नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥
तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥

प्रस्तुत पद्य में समत्व योग और एकत्व बोध में बाधाओं का वर्णन है।

काम, क्रोध, लोभ और मोह को त्याग कर स्वयं को समझने का प्रयत्न करो। ये चार बन्धन हैं, जिन्होंने तुम्हारी मुक्ति के द्वार बन्द कर दिये हैं। **गीता** में कहा है—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥

इस पद्य में आत्मज्ञान (सोऽहम्) प्राप्त करने का उपाय बताया है, और आत्मज्ञान विहीन मनुष्यों की गति बताई है, *"ते पच्यन्ते नरकनिगूढाः"।*

गीता में काम, क्रोध और लोभ को तीन मेहरावों वाला नरक का द्वार

बताया। यहाँ कहा गया है कि काम, क्रोध, लोभ, मोह को जो अज्ञानी नहीं त्याग सकेंगे वे नरक की यातनाएँ भोगेंगे।

काम, क्रोध, लोभ, मोह वैसे अलग-अलग दिखाई देते हैं, किन्तु यदि विचार करें तो मालूम होगा कि चारों के मूल में काम है। जब काम अवरुद्ध होता है, कामना के मार्ग में बाधा आती है तो क्षोभ, क्रोध होता है। जहाँ कामना पूरी होने वाली हो वहाँ उसे सँजोये रखने के लिये मोह होता है, उसी मोह से लोभ उत्पन्न होता है। इस प्रकार चारों के मूल में काम है।

काम का अर्थ है कहीं बाहर से, किसी दूसरे से सुख की आशा। इसके विपरीत ज्ञान का— आत्मज्ञान का अर्थ है सुख मेरे भीतर है। कामातुर व्यक्ति कहीं बाहर सुख ढूँढता है, लेकिन उसे सुख नहीं मिलता, वह क्रुद्ध होता है।

प्रस्तुत पद्य में कहा गया है कि काम, क्रोध, लोभ, मोह से मुक्त होकर आत्मज्ञान प्राप्त करे। जब तक ये मनोविकार रहेंगे आत्मज्ञान नहीं हो सकेगा। इन मनोविकारों से बुद्धिनाश होता है।

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणस्यति॥

(गीता २.६२-६३)

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥
धूमेनाव्रियते बह्निर्यथादर्शो मलेन च।
यथोत्त्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम्॥

(गीता ३.३७-३८)

प्रस्तुत पद्य में आचार्य का उपदेश है कि काम-क्रोध-लोभ-मोह के त्याग से आत्मज्ञान (सोऽहम्) प्राप्त होता है। आत्मज्ञान विहीन प्राणी नरक की यातना भोगते हैं।

(२७)

गेयं गीतानामसहस्रं
ध्येयं श्रीपतिरूपमजस्रम्।
नेयं सज्जनसङ्गे चित्तं
देयं दीनजनाय च वित्तम्॥

गीता नामसहस्र गेय है।
श्रीपतिरूप अजस्र ध्येय है।
सत्संगति में चित्त नेय है।
वित्त दीनजन हेतु देय है॥

गीतानामसहस्रं गेयं (*गीता* और *विष्णुसहस्रनाम* को गाना चाहिये, इन दोनों का सस्वर पाठ करना चाहिये) *श्रीपतिरूपं अजस्रं ध्येयम्* (लक्ष्मीपति श्रीमन्नारायण के रूप का निरन्तर ध्यान करना चाहिये।) *चित्तं सज्जनसङ्गे नेयं* (चित्त को सत्संग में लगाना चाहिये) *दीनजनाय वित्तम् देयं* (निर्धन गरीबों को धन देना चाहिये।)

मान्यता है कि यह पद्य आचार्य के चौदह शिष्यों द्वारा रचे चौदह पद्यों में अन्तिम है। इसमें, उपसंहार रूप में, एक शिक्षार्थी के लिये चार सोपानों वाला आत्मोत्थान का कार्यक्रम बताया गया है। इस पद्य को पिछले पद्य २० के साथ पढ़ना चाहिये। पिछले पद्य में बताया गया कि गीता-पाठ, गङ्गा जल पीने और मुरारि समर्चा करने वाले का यमराज कुछ नहीं कर सकता। इस पद्य में फलश्रुति का संकेत नहीं है। शिक्षार्थी के ये कर्तव्य हैं, करने योग्य है, बस इतना ही कहा है।

इन चारों कर्तव्यों में तारतम्य है। *गीता* और *विष्णुसहस्रनाम* के गान से वाणी और मन की शुद्धि होगी। जब मन शुद्ध हो जायेगा तब श्रीपति का ध्यान करने में लीन होगा। ध्यान से पहले चित्तशुद्ध की आवश्यकता

है। शुद्ध चित्त को शुद्ध बनाये रखने के लिये, उसमें अच्छे संस्कार भरने के लिये सत्संग चाहिये। अन्त में दीन जनों को दान देना चाहिये। दान दूसरे लोगों के साथ सहानुभूति, आत्मीयता का लक्षण है।

(२८)

सुखतः क्रियते रामाभोगः
पश्चाद्धन्त शरीरे रोगः।
यद्यपि लोके मरणं शरणं
तदपि न मुञ्चति पापाचरणम्॥

कामिनि-काम-केलि का सुख भोग
पीछे तन में पाये, हाय, अनेकों रोग।
अन्तसमय में नियत मरण
तब भी न तजता पापाचरण॥

सुखतः (आमोद-प्रमोद के लिये) *रामाभोगः क्रियते* (काम केलि की जाती हैं, भोग-विलास का सुख लिया जाता है) *हन्त पश्चात् शरीरे रोगः* (किन्तु, हाय, परिणामस्वरूप शरीर में रोग हो जाते हैं) *यद्यपि लोके मरणं शरणं* (संसार में मरण निश्चित अंतिम गति है) *तद्-अपि न मुञ्चति पाप-आचरणम्* (तब भी, कैसी आश्चर्य की बात है, मनुष्य पापों का आचरण, पाप कर्म, नहीं छोड़ता।)

कहते हैं कि आरम्भ के बारह पद्यों की *द्वादशमञ्जरिका* और अगले चौदह पद्यों की *चतुर्दशमञ्जरिका* के संक्षेप और उपसंहार के रूप में ये अंतिम चार पद्य आचार्य की रचना हैं। इन चार पद्यों में पिछले पद्यों में दिये गये उपदेश को संक्षेप में दुहराया गया है।

पापकर्म के बुरे परिणाम को मनुष्य जानता है, किन्तु फिर भी उसे करता है। कामातुर मनुष्यों की दुर्गति सर्वविदित है, लेकिन, तब भी, हाय, मनुष्य काम-केलि के आकर्षण से दूर नहीं रहता। मरण निश्चित है, किन्तु पापाचरण तब भी नहीं छूटता। ऐसा क्यों होता है? **गीता** में अर्जुन ने भगवान् से यह प्रश्न पूछा है—

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥

और भगवान् का संक्षिप्त उत्तर है —

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥
आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च॥

रजोगुण से कामवासना उत्पन्न होती है, और यह ऐसी आग है कि बुझाये नहीं बुझती। परिणाम कुछ भी हो, शरीर का क्षरण कितना ही हो जाय, कामवासना नहीं छूटती।

(२६)

अर्थमनर्थं भावय नित्यं
नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम्।
पुत्रादपि धनभाजां भीतिः
सर्वत्रैषा विहिता रीतिः॥

''अर्थ अनर्थकर'' इस पर चिन्तन कर बारम्बार
''सचमुच लेशमात्र भी न इसमें सुख है'' इसे विचार।
पुत्रों से भी धनवाले भयभीत
सभी जगह जानी-मानी यह रीति॥

अर्थ (धन) *अनर्थ* (अनर्थ, दुष्परिणाम वाला) *भावय नित्यं* (इस पर सदा विचार करो) *ततः सत्यं सुखलेशः नास्ति* (इससे किञ्चित् मात्र भी सुख नहीं मिलता) *धनभाजां पुत्रात् अपि भीतिः* (धनी लोगों को अपने पुत्रों तक से डर लगता है) *सर्वत्र एषा रीतिः विहिता* (सब जगह यही अवश्यंभावी रीति है)

पद्य संख्या २ में आचार्य ने धनागम तृष्णा छोड़ने के लिये कहा, धन को बुरा नहीं बताया। ''**तेन विनोदय चित्तम्**'' कहा। पद्य ५ में धन हीन हो जाने पर वृद्धों की क्या गति हो जाती है यह बताया। पद्य १० में

"**क्षीणे वित्ते कः परिवारः**" द्वारा धन-सम्पत्ति का महत्त्व स्थापित किया। फिर, यहाँ धन के विरोध में ऐसी कठोर सूचना क्यों दी जा रही है? "**यावद् वित्तोपार्जनसक्तः तावत् निजपरिवारो रक्तः**" और "**पुत्रादपि धनभाजां भीतिः**" इन दोनों वचनों में अन्तर्विरोध दिखाई देता है। "**अर्थं नित्यं अनर्थं**" तो धन की कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण निन्दा लगती है।

यहाँ, ऐसा लगता है, आचार्य धन-लोलुपता के विरुद्ध बोल रहे हैं। धन के दुष्परिणाम, धनी लोगों के दुर्गुण, उनका जीवन-क्षण चारों ओर दिखाई देता है। "धन-भाजां", जो धन के पीछे पड़े हैं, जिन्होंने धन को ही सब कुछ समझ रखा है, वे किसी से सम्बन्ध नहीं रख सकते, न वे किसी के हैं, न उनका कोई है।

यह सही है कि अगर धनहीन हो गये तो बुढ़ापे में कोई बात भी नहीं पूछेगा। और यह भी सही है कि अगर बहुत धनी हो गये तो बेटों से भी डर लगेगा, कब धन छीन लें, कब मारने की योजना बना लें। मन ऐसा शंकालु हो जाता है।

(३०)

प्राणायामं प्रत्याहारं
नित्यानित्यविवेकविचारम्।
जाप्यसमेतसमाधिविधानं
कुर्ववधानं महदवधानम्॥

प्राणायाम और प्रत्याहार
नित्य-अनित्य का विवेक विचार।
जाप समेत समाधि प्रयत्न
इसमें कर यत्न, अधिकाधिक यत्न॥

प्राणायामं (जीवन की ऊर्जा का संयम) *प्रत्याहारं* (इन्द्रियों को विषयों से खींच कर अन्तर्मुखी करना) *नित्य-अनित्य-विवेक-विचारम्* (क्या नित्य है और क्या अनित्य है इसका विवेकपूर्ण विचार) *जाप्यसमेतसमाधिविधानं* (जप के साथ समाधि, समत्व योग, की साधना) *कुरु अवधानं महत् अवधानम्* (बड़े यत्न से, सदा बड़े यत्न से करो।)

यह अंतिम उपदेश दीक्षान्त निर्देश जैसा है। संक्षेप में, सूत्ररूप में, जीवन दर्शन है। प्राणायाम द्वारा मन की शुद्धि करो। इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाकर अन्तर्मुखी करो। नित्य और अनित्य का अन्तर समझने के लिये विवेकपूर्ण विचार करो। और सदा, अनवरत रूप से, समाधि-साधना करते रहो।

(३१)

गुरुचरणाम्बुजनिर्भरभक्तः
संसारादचिराद्भव मुक्तः।
सेन्द्रियमानसनियमादेवं
द्रक्ष्यसि निजहृदयस्थं देवम्॥ भजगोविन्दम्॥

गुरु-चरण-कमल आश्रित हे भक्त!
आवागमनचक्र से हो मुक्त।
इन्द्रियसहित मन को संयम कर
मनमन्दिर में परम प्रकाश का दर्शन कर॥ भजगोविन्दम्॥

गुरु-चरणाम्बुज-निर्भरभक्तः (गुरु के चरण कमलों में अनुरक्त शिष्य) *संसारात् अचिरात् मुक्तः भव* (संसारचक्र, आवागमन के बन्धन से शीघ्र ही मुक्त हो जा) *स-इन्द्रिय-मानस-नियमाद् एवं* (इन्द्रियों सहित मन को संयमित करने से) *निज-हृदयस्थं देवं द्रक्ष्यसि* (अपने हृदय में स्थित ज्योति का दर्शन करेगा)।

यह आशीर्वादात्मक पद्य है। सारा उपदेश आचार्य दे चुके। दीक्षान्त निर्देश भी दे दिया। अब आशीर्वाद दे रहे हैं, शिष्य के लिये शुभ कामना प्रकट कर रहे हैं।

''प्रिय शिष्य, तू गुरु के चरणारविन्दों का सेवक रहा है, तूने गुरुभक्ति की है। हमारा आशीर्वाद है कि तू भवचक्र से छूट कर, मुक्ति प्राप्त कर। इन्द्रियोंसहित मन को संयमित करने पर तुझे अपने हृदयस्थित देव, ज्योतिःस्वरूप ब्रह्म के दर्शन होंगे।

– इति –

हरिस्तुतिः

(हरिमीडे)

इस स्तोत्र को स्वयंप्रकाश यति की व्याख्या के प्रकाश में समझने का प्रयत्न किया गया है। अधिकतर पद्यों का अर्थ और व्याख्या में दूसरे ग्रन्थों के उद्धरण, मूल स्रोतों से नहीं, इसी व्याख्या से लिये गये हैं। मैं विनयपूर्वक स्वीकार करता हूँ कि शृंगेरीमठ से प्राप्त स्वयंप्रकाशयति की व्याख्या ने इस गंभीर स्तोत्र को समझने में मेरा मार्गदर्शन किया है।

ऐसी प्रचलित मान्यता है कि जब आचार्य अपने अन्तिम दिनों में वदरिकाश्रम पहुँचे तो वहाँ श्रीनारायण के दर्शन करते समय उन्हें इस स्तोत्र की प्रेरणा हुई। शायद आचार्य द्वारा रचित यह अंतिम स्तोत्र है। गणेशवन्दना से आरम्भ कर, हरिस्तुति के साथ प्रस्तुत ग्रन्थ का समापन करते समय इस अंतिम स्तोत्र की महत्ता को ध्यान में रखा गया है।

स्तोत्र की स्वर-लहरी से ऐसा लगता है कि इसकी रचना संकीर्तन के लिये की गई है। अंतिम ध्रुवपद, ''तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे'' में एक पंक्ति में स्तोत्र का संक्षिप्त सार है। इसी कारण यह स्तोत्र 'हरिमीडे' नाम से भी प्रसिद्ध है।

(१)

स्तोष्ये भक्त्या विष्णुमनादिं जगदादिं
यस्मिन्नेतत्संसृतिचक्रं भ्रमतीत्थम्।
यस्मिन्दृष्टे नश्यति तत्संसृतिचक्रं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥

यस्मिन् (जिसमें, जिस अज्ञात सत्ता में) *एतत्* (यह अनुभूयमान) *संसृतिचक्रं* (आवागमन का संसारचक्र) *इत्थम्* (इस प्रकार) *भ्रमति* (घूमता है) *जगत्*

आदिं (संसार के आदिकारण को) *अनादिं* (अजन्य; जिसका कोई आदि कारण न हो) *विष्णुं* (सर्वव्यापी "त्रिविधपरिच्छेदशून्य ब्रह्म इति तं") *स्तोष्ये* (स्तुति करता हूँ) *यस्मिन् दृष्टे* (जिस सदानन्दचित्प्रकाश परिपूर्ण विष्णु को जान लेने पर; निरन्तर श्रवण, मनन, निदिध्यासन के सम्यक् अनुष्ठान द्वारा साक्षात्कार कर लेने के उपरान्त) *तत्* (वह) *संसृतिचक्रं* (संसारचक्र) *नश्यति* (निर्मूल नष्ट हो जाता है) *तं* (उस) *संसार-ध्वान्त-विनाशं* (संसार के अहंता-ममता के अज्ञान को नाश करने वाले) *हरिं ईडे* (उन विष्णुहरि का स्तवन करता हूँ)

जिस अज्ञात सत्ता में आवागमन का यह संसारचक्र बार-बार घूम रहा है, जो इस अनुभूयमान संसार के आदिकारण हैं, और जिनका कोई और आदिकारण नहीं है, उन सर्वव्यापी त्रिविधपरिच्छेदशून्य विष्णु की मैं भक्तिभावना से स्तुति करता हूँ। जिनका साक्षात्कार श्रवण-मनन-निदिध्यासन आदि के निरन्तर अनुष्ठान द्वारा होने पर, यह संसारचक्र निर्मूल नष्ट हो जाता है, और संसार की अहंता-ममता का अज्ञान पूर्णरूप से मिट जाता है, उन विष्णुहरि की मैं स्तुति करता हूँ।

यहाँ 'विष्णु का अर्थ ब्रह्मा-विष्णु-महेश त्रिदेवों में एक नहीं है। यहाँ 'विष्णु' से तात्पर्य है *"व्यापनशीलं त्रिविधिपरिच्छेदशून्यं ब्रह्म इति"*। तभी तो विष्णु के लक्षण बताते हुए उन्हें जगत् का आदिकारण और अनादि कहा गया है। यह संसारचक्र विष्णुस्वरूप ब्रह्म में ही आवर्तित हो रहा है, और उस परम सत्ता का साक्षात्कार होते ही, संसाररूपी अज्ञानान्धकार नष्ट हो जाता है। 'भक्तिपूर्वक स्तुति' का अर्थ है श्रवण-मनन-निदिध्यासन के निरन्तर अनुष्ठान द्वारा। संक्षेप में कहें तो, *"यस्मिन् सदानन्दचित्प्रकाशे परिपूर्णे विष्णौ दृष्टे शान्त्यादिसहितनिरन्तरानुष्ठितश्रवणमनननिदिध्यासनैः सम्यक् साक्षात्कृते सति तत् संसृतिचक्रं समूलं नश्यति तं हरिं ईडे"*। ब्रह्मज्ञान से अज्ञान का नाश होते ही **'तरति शोकमात्मवित्** (छ.७.१.३) **'भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्ति'** (श्वे. १-१०)

गीता में कहा है :

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् (५.१६)

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता।। (१०.११)

इस प्रथम प्रतिज्ञाश्लोक के सार को संक्षेप में यों कह सकते हैं—

तरत्यविद्यां विततां हृदि यस्मिन्निवेशिते।
योगी मायाममेयाय तस्मै ज्ञानात्मने नमः।।
"तस्मै ज्ञानात्मने नमः"।

(२)

यस्यैकांशादित्थमशेषं जगदेत–
त्प्रादुर्भूतं येन पिनद्धं पुनरित्थम्।
येन व्याप्तं येन विबुद्धं सुखदुःखै–
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।।

यस्य-एक-अंशात् (जिस माया अवच्छिन्न विष्णुरूप ब्रह्म के एक अंश से) *इत्थं* (ऐसा अनुभूयमान) *एतत् अशेषं जगत्* (यह समस्त जगत्) *प्रादुर्भूतं* (उत्पन्न हुआ) *पुनः येन पिनद्धं* (इसके उपरान्त जिस ब्रह्म द्वारा यह समस्त संसार वर्णाश्रम आदि की मर्यादा में सुदृढ़ बँधा हुआ है) *येन विबुद्धं सुखदुःखैः* (जिस स्वप्रकाश-चिद्रूप सत्ता द्वारा सुख-दुख से अवशिष्ट यह सब प्रकाशित हो रहा है; "तस्य भासा सर्वमिदं विभाति", कठ. ५.१५) *येन व्याप्तं* (जिस सर्वव्यापी विष्णु से यह ओतप्रोत है)

जिस माया-अवच्छिन्न विष्णु के एक अंश से इस अनुभवगम्य समस्त संसार की उत्पत्ति हुई है, जिससे यह व्याप्त है, जिसने वर्णाश्रम आदि की मर्यादा में इसे बाँध रखा है, और दुःख-सुख की सीमाओं के बाहर इसे जो प्रकाशित कर रहा है, संसार के अज्ञानान्धकार का नाश करने वाले श्रीहरि का मैं स्तवन करता हूँ।

यहाँ एक शंका हो सकती है। इस सत्त्व-रज-तमोगुणात्मक जड संसार की उत्पत्ति-पालन-प्रकाशन निश्चेष्ट, निर्विकल्प ब्रह्म से कैसे संभव है? ऐसा लगता है यह तो सब माया का खेल है। कहा भी है, "**अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां वह्वं प्रजां जनयन्तीं सरूपाम्**" (याज्ञि. १२)

इस शंका का निवारण अगले पद्य में किया गया है।

(३)

सर्वज्ञो यो यश्च हि सर्वः सकलो यो
यश्चानन्दोऽनन्तगुणो यो गुणधामा।
यश्चाव्यक्तो व्यस्तसमस्तः सदसद्य-
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥

यः सर्वज्ञः (जो सर्ववित्, सब कुछ जाननेवाला है) *यः च हि सर्वः* (और जो सभी कुछ है; *"सर्वं खल्विदं ब्रह्म"* छ. ३।१४।१) *सकलः यः* (जो समस्त प्रकृति और उसका अधिष्ठाता है, *"सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेय"*, तै. २.६; *"तदेक्षत बहुस्यां प्रजायेय"* छा, ६.२.३) *यः च आनन्दः* (परम आनन्दस्वरूप; *"आनन्दो ब्रह्म"* तै, ३.६; *एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति"*, बृह. ६.३.३८) *अनन्तगुणः यः गुणधामा* (जो अनन्त गुणसम्पन्न और शुद्धसत्त्वस्वरूपा माया की उपाधि धारण करने वाला है; *"मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं महेश्वरम्"*, *श्वेत.* ४.१०) *यः च अव्यक्तः* (जो इन्द्रियों से ग्राह्य नहीं है; जो अचिन्त्य है) *व्यस्तसमस्तः* (जैसे एक ही समुद्र फेन, तरङ्ग, बुदबुद आदि अनेक रूपों में विभक्त दिखाई देता है, वैसे ही एकमात्र ब्रह्म भोक्ता-भोग्य आदि अनेक रूप धारण करता है) *यः सद् असद्* (जो सद् और असद् दोनों हैं; जो है भी और नहीं भी है; *"सत्यं च अनृतं च सत्यं अभवत्"*, *तै.* १.६)

जो ब्रह्म सर्ववित् है, सभीकुछ है, जो समस्त प्रकृति और उसका अधिष्ठाता है, जो परम आनन्दस्वरूप है, जो अनन्तगुणसम्पन्न, माया की उपाधि धारण करने वाला, अचिन्त्य, एकमात्र होते हुए भी अनेक रूपों में दिखाई देता है, जो है भी और नहीं भी है –संसाररूपी अंधकार को नष्ट करनेवाले ऐसे श्रीहरि की मैं स्तुति करता हूँ)

यह हरिस्तुति है, किन्तु विष्णुहरि के रूप में निर्विकार ब्रह्म के लक्षणों का यहाँ वर्णन है। ऐसा लगता है इस पद्य की रचना करते समय आचार्य की स्मृति में **तैत्तिरीय उपनिषद्** (छठे अनुवाक) के ये सूत्र रहे होंगे:

सोऽकामयत। बहु स्यां प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत्। स तपस्तप्त्वा इदं सर्वं असृजत यदिदं किं च। तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्। तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्चाभवत्। निरुक्तं चानिरुक्तं च। निलयनं चानिलयनं च। विज्ञानं चाविज्ञानं च। सत्यं चानृतं च सत्यमभवत्। यदिदं किं च। तत्सत्यमित्याचक्षते।

(सृष्टि के आरम्भ में परब्रह्म परमात्मा ने विचार किया कि मैं एक से अनेक हो जाऊँ। फिर उन्हेंने सृष्टि उत्पन्न करने का संकल्प किया। जो कुछ भी जड़-चेतन अनुभ़वगम्य है उसकी रचना की। फिर वे उसमें स्वयं प्रविष्ट हो गये। परमात्मा ब्रह्म अन्तर्यामी होने से यह संभव हुआ। फिर वे मूर्त और अमूर्तरूप में प्रकट हो गये। फिर जिनका वर्णन किया जा सकता है और नहीं भी किया जा सकता है, ऐसे विभिन्न नाना रूपों में विभक्त हो गये। वे एक सत्यस्वरूप परमात्मा ही सत्य और असत्य, इन सब रूपों में हो गये। इसीलिये ज्ञानीजन कहते हैं कि जो कुछ भी अनुभवगम्य है– जैसा कुछ भी है– वह सब सत्यस्वरूप परमात्मा ही है)

(४)

यस्मादन्यन्नास्त्यपि नैवं परमार्थं
दृश्यादन्यो निर्विषयज्ञानमयत्वात्।
ज्ञातृज्ञानज्ञेयविहीनोऽपि सदा ज्ञ–
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥

यस्मात्-अन्यत्-न-अस्ति अपि (सच्चिदानन्द ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं होने पर भी; "एकमेवद्वितीयम् ब्रह्म", "यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चित्") *अपि न एवं परमार्थं* (यह जगत् भी वास्तव में नहीं है) *दृश्यात् अन्य* (जो कुछ अनुभवगम्य है उसके अतिरिक्त) *निर्विषयज्ञानमयत्वात्* (विषय अनपेक्ष विज्ञान स्वभाव के कारण) *ज्ञातृ-ज्ञान-ज्ञेय विहीनः अपि* (जो ज्ञाता-जाननेवाला-ज्ञान और ज्ञान के विषय के भेद से शून्य है) *सदा ज्ञः* (तब भी वह सब कुछ जाननेवाला है;

उस ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं होने पर भी यह जगत् वास्तव में नहीं है। जो दिखाई देता है उससे अलग उस अदृश्य सत्ता की

वास्तविकता में संदेह नहीं किया जा सकता। जो ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय के भेद से रहित होने पर भी सदा सब कुछ जानता है। "स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता"। संसार का मोहान्धकार नाश करनेवाले ऐसे सर्वव्यापी सर्ववेत्ता की मैं स्तुति करता हूँ।

इन चार पद्यों में ब्रह्म, जगत् और जीव की विवेचना की गई है। जिस ब्रह्म को 'विष्णु' 'हरि' नाम दिया गया है वह केवल तार्किक वेदान्तियों के ज्ञान का विषय है। वेदों में उस सत्ता को ब्रह्म कहा गया है। माया की उपाधि धारण कर वही सत्ता इस जगत् की कारण बनती है। उस सत्ता के अतिरिक्त कुछ भी अन्य नहीं है। किन्तु वह कारणरूप सत्ता सत्य है, और यह कार्यरूप जगत् वास्तव में मिथ्या है। ऐसे ज्ञान द्वारा अहंता-ममता-रूपी अन्धकार का नाश करनेवाले का इन चार पद्यों में स्तवन किया गया है।

अब आगे गुरुशुश्रूषापरायण भक्ति आदि साधनों से सम्पन्न लोगों की समझ में आनेवाले सगुणस्वरूप भगवान् विष्णुहरि की स्तुति आरंभ होती है।

(५)

आचार्येभ्यो लब्धसुसूक्ष्माच्युततत्त्वाः
वैराग्येणाभ्यासबलाच्चैव द्रढिम्ना।
भक्त्यैकाग्र्यध्यानपरा यं विदुरीशं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥

आचार्येभ्यो (आचार्यों से) *लब्ध-सुसूक्ष्म-अच्युत-तत्त्वाः* (जिन्होंने अत्यंत सूक्ष्म अच्युत तत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर लिया है) *वैराग्येण-अभ्यासबलात् च एव* (सुदृढ़ वैराग्य, निरन्तर अभ्यास और मनन द्वारा) दृढिम्ना भक्त्या (सुदृढ़ भक्तिभावना से) *एकाग्र्य-ध्यान-पराः* (निर्विघ्न एकाग्र ध्यान में डूबे हुए मुनिजन) *यं ईशं विदुः* (जिस ईश्वर का साक्षात्कार करते हैं, जानते हैं)

जिन गुरुशूश्रूषापरायण भक्तजनों ने वैराग्य, सतत अभ्यास, और मनन द्वारा ब्रह्मवित् आचार्यों से अच्युत तत्त्व का अत्यन्त सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त कर लिया है, और जो सुदृढ़ भक्तिपूर्वक एकाग्र ध्यान में लीन है, ऐसे साधक

ईश्वर का साक्षात्कार करते हैं। अज्ञानान्धकार नाश करनेवाले उन हरि का मैं स्तवन करता हूँ।

श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्यों के उपदेश से ही अच्युत तत्त्व का ज्ञान प्राप्त हो सकता है। लेकिन इस ज्ञान को प्राप्त करने का अधिकारी वही हो सकता है जो गुरुभक्त हो, एकनिष्ठ वैरागी हो, और सतत अभ्यास और निरन्तर मनन करने वाला जिज्ञासु हो। *"आचार्यवान् पुरुषो वेद"; ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः", "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"* आदि श्रुतिवचनों में अधिकारी के ऐसे लक्षण अनेक बार बताये गये हैं। *गीता* में इसी तथ्य को स्पष्ट शब्दों में उजागर किया गया है—

अभ्यासेन च कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते। (६.३५)

भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः। (१८.५५)

अगले पद्य में वैराग्य, अभ्यास, निरन्तर ध्यान और दृढ़ भक्ति के लिये साधनाक्रम बताया जायेगा।

(६)

प्राणानायम्योमिति चित्तं हृदि रुध्वा
नान्यत् स्मृत्वा तत् पुनरत्रैव विलाप्य।
क्षीणे चित्ते भादृशिरस्मीति विदुर्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥

भक्तिसाधना के सोपानों की चर्चा करते हुए कहते हैं—

प्राणान् (इन्द्रियों को) *आयम्य* (प्रत्याहार द्वारा अवरुद्ध कर) *ओ३म् इति चित्तं हृदि रुध्वा* (ओ३म् जप की सहायता से चित्त को हृदयाकाशस्थित ब्रह्म में अवरुद्ध कर; *"ओमित्यात्मानं युञ्जीत"; ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्"*) *न अन्यत् स्मृत्वा* (किसी दूसरी वस्तु का स्मरण न करते हुए) *तत् पुनः* (इसके पश्चात्) *अत्र एव विलाप्य* ("मैं ब्रह्म हूँ" यह निरन्तर ध्यान करते हुए इसी में चित्त स्थिर कर) *चित्ते क्षीणे* (ध्यान के अभ्यास से चित्तवृत्तियों का निरोध होने पर) *भादृशिः अस्मि इति* (मै स्वप्रकाश चिद्रूप परमात्मा हूँ) *यं ईशं विदुः* (जिन विष्णु को जानते हैं)

वाक् आदि इन्द्रियों को निरुद्ध कर, तत्पश्चात् 'ओ३म्' का निरन्तर जप करते हुए अन्तःकरण (चित्त) को हृदयस्थित ब्रह्म में अवरुद्ध कर, अन्य समस्त रूप-रसों को स्मृति से बाहर कर, फिर निरन्तर ध्यानावस्थित चित्त को '*अहं ब्रह्मास्मि*' के चिन्तन में लीन कर, स्वयंप्रकाश चिद्रूप सत्ता का ध्यान करते हुए जिन विष्णु का साक्षात्कार होता है, उनकी मैं स्तुति करता हूँ।

इस पद्य में प्रत्याहार, धारणा, ध्यान आदि साधन-सोपानों का विवेचन है। "*योगश्चित्तवृत्तिः निरोधः*"। किन्तु चित्त की वृत्तियों का निरोध बड़ा कठिन है। इसके लिये योगदर्शन में कुछ उपाय और प्रक्रियाएँ निर्धारित की गई हैं। मन के संकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया का संक्षेप में यहाँ संकेत है। *गीता* के छठे अध्याय में इस प्रक्रिया का कुछ विस्तार से वर्णन है।

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः॥
यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते।
निस्प्रहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा॥
संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेयषतः।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः॥
शनैश्शनैरुपरमेत् बुद्ध्या धृतिगृहीतया
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्॥
यतोयतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतत् आत्मन्येव वशं नयेत्॥

"*आत्मन्येव वशं नयेत्*" के उपरान्त "*क्षीणे चित्ते*" "*भादृशिरस्मीति*" का अनुभव होता है। स्वप्रकाशचिद्रूप जिस परमात्मा का अनुभव होता है उसकी इस पद्य में स्तुति है।

(७)

यं ब्रह्माख्यं देवमनन्यं परिपूर्णं
हृत्स्थं भक्तैर्लभ्यमजं सूक्ष्ममतर्क्यम्।
ध्यात्वाऽऽत्मस्थं ब्रह्मविदो यं विदुरीशं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥

यं ब्रह्माख्यं देवं (उसको जो स्वयंप्रकाश देव "ब्रह्म" कहा जाता है) *अनन्यं परिपूर्णं हृत्स्थं* (उसको जो हृदय में स्थित अनन्य और परिपूर्ण है) *अजं* (अजन्मा को) *सूक्ष्मं-अतर्क्यम्* (उसको जो अत्यन्त सूक्ष्म है और तर्कातीत है) *भक्तैः लभ्यं* (उसको जो निरन्तर श्रवण-मनन आदि साधनों से भक्तिभावना में लीन होकर प्राप्त किया जा सकता है) *ब्रह्मविदः यं आत्मस्थं ईशं ध्यात्वा विदुः* (आत्मा में स्थित जिस ईश्वर को ब्रह्मवेत्ता ध्यान द्वारा जानते हैं)

आत्मा में स्थित जिस परमात्मा का ब्रह्मवेत्ता ध्यान की प्रक्रियाओं द्वारा साक्षात्कार करते हैं उसके लक्षण इस पद्य में बताये गये हैं। वह स्वयंप्रकाश देव है, *"अत्रायं पुरुषस्स्वयंज्योतिः"*, *बृह.* ६.३.६)

वह अनन्य है, *"यस्मात्परं नापरमस्ति"*, *श्वेत.* ३.६। उस त्रिविधिपरिच्छेदशून्य का 'ब्रह्म' नाम है। भक्तजन निरन्तर श्रवण-मनन आदि साधनों से उसे प्राप्त कर सकते हैं'। *"ते सर्वगं सर्वगतं प्राप्य धीरा युक्तात्मानः"*, *मु.*, ३.२.५। सब प्राणियों के हृदय में अन्तर्यामी रूप में स्थित परमात्मा के ध्यान द्वारा भक्तजन ब्रह्मविद् होते हैं' *"अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति। ईशानो भूतभव्यस्य,"* *कठ.* ४.१२। यहाँ ध्यान देने की बात है कि स्वतः पुरुष पूर्ण है, किन्तु हृदय उपाधि में अङ्गुष्ठमात्र है।

(८)

मात्रातीतं स्वात्मविकासात्मविबोधं
ज्ञेयातीतं ज्ञानमयं हृद्युपलभ्य।
भावग्राह्यानन्दमनन्यं च विदुर्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥

मात्रा-अतीतं (उसको जो आँख आदि इन्द्रियों से अग्राह्य है) *स्व-आत्म-विकास-आत्म-विबोधं* (जिसकी आत्मा में अभिव्यक्ति-विकास-होती है और जिसका अन्तःकरण में विशेष बोध होता है) *ज्ञेय-अतीतं* (उसको जो ज्ञानविषय की सीमा से बाहर है) *ज्ञानमयं* (जो ज्ञानस्वरूप है उसको) *हृदि-उपलभ्य* (जिसका हृदय में प्रस्फुरण होता है उसको प्राप्त कर) *भावग्राह्य-*

आनन्दं-अनन्यं च (जो भावरूप से ग्राह्य आनन्द है और अनन्य है उसको)
यं विदुः (जिसको जानते है उसको)

जो इन्द्रियों की पहुँच से बाहर है, जिसकी केवल अन्तःकरण में संबोधि होती है, जो ज्ञान का विषय भी नहीं है, तब भी जो ज्ञानमय है, उसे हृदय (बुद्धि) में आत्मसात् कर, जिस अद्वितीय भावग्राह्य आनन्द को जानते हैं, संसार के मोहान्धकार को नाश करनेवाले श्रीहरि का मैं स्तवन करता हूँ।

यह क्लिष्ट पद्य है। पहले चार पद्यों में ब्रह्म-जीव-जगत् की विवेचना करते हुए त्रिविधपरिच्छेदशून्य विष्णु की स्तुति की गई। अगले तीन पद्यों में श्रवण-मनन आदि साधनों से भक्तों द्वारा ईश्वर का स्तवन किया गया। अब 'तत्' 'त्वं' पदार्थ के विवेक में निष्णात साधकों के लिये जानने योग्य विष्णु की स्तुति आरम्भ की जा रही है।

यह ब्रह्म (विष्णु) इन्द्रियातीत है।

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः॥

(मु. ३.१.८)

(उस परब्रह्म को मनुष्य इन आँखों से नहीं देख सकता। वह वाणी आदि दूसरी इन्द्रियों की पहुँच से भी बाहर है। तपस्या और कर्मों से भी उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। उस अवयवरहित परम विशुद्ध परमात्मा का तो विशुद्ध अन्तःकरण के द्वारा उसी का निरन्तर ध्यान करते-करते ज्ञान की निर्मलता से ही साक्षात्कार किया जा सकता है।

उसका साक्षात्कार केवल दूसरों से प्राप्त ज्ञान की सहायता से भी नहीं हो सकता।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेघया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्॥

(मु. ३.२.३)

(परब्रह्म परमात्मा न तो उनको मिलते हैं जो शास्त्रों से ज्ञान बटोर कर लम्बी-चौड़ी बातें करते हैं, न तर्क-वितर्क के अभिमान से प्रमत्त बुद्धिमानों

को मिलते हैं, न कोरे शास्त्रज्ञों को मिलते हैं। वे तो उसी को प्राप्त होते हैं, उसी को स्वीकार करते हैं जो विशुद्ध मन से उनका ध्यान करते हुए उनकी कृपा की प्रतीक्षा करता रहता है)

इस ब्रह्मज्ञान के अधिकारियों के विषय में कहा गया है, *"वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः सन्यासयोगाद् यतयः शुद्धसत्त्वाः"* (मु. ३.६)

वह परमात्मा अनन्य और भावग्राह्य आनन्दस्वरूप है। *"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म"* (तै २.१); *"विज्ञानमानन्दं ब्रह्म"* (वृह. ५.६.२८)। *"यतो वाचो निवर्तन्ते। अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न विभेति कुवश्चन"* (तै. २.६)। परब्रह्म परमात्मा तो भावग्राह्य आनन्दस्वरूप हैं।

(६)

यद्यद्वेद्यं वस्तुसतत्त्वं विषयाख्यं
तत् तत् ब्रह्मैवेति विदित्वा तदहं च।
ध्यायन्त्येवं यं सनकाद्या मुनयोऽजं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥

यत् यत् (जो कुछ भी) *विषयाख्यं* (विषयरूप) *वस्तुसतत्त्वं* (जो कुछ भी है वह ब्रह्म की सत्ता का ही स्वरूप है) *तत् तत् ब्रह्म एव इति* (वह सब ब्रह्म ही है) *तत् अहं च विदित्वा* (मैं भी वही हूँ यह जान कर) *यं अजं सनकाद्या मुनयः* (जिस अजन्मा का सनकादि मुनिजन) *ध्यायन्ति* (ध्यान करते हैं)

"जो कुछ भी जाननेयोग्य इन्द्रियों के विषय हैं वे सभी ब्रह्मस्वरूप हैं" यह जानकर, और मैं भी वही ब्रह्म हूँ ऐसी भावनावाला साधक जिस परमात्मा का साक्षात्कार करता है, और सनकादि मुनिजन जिस परब्रह्म परमात्मा का ध्यान करते रहते हैं, मैं संसाररूपी अन्धकार का नाश करने वाले उन्हीं श्रीहरि की स्तुति करता हूँ।

(१०)

यद्यद्वेद्यं तत्तदहं नेति विहाय
स्वात्मज्योतिर्ज्ञानमयानन्दमवाप्य।

तस्मिन्नस्मीत्यात्मविदो यं विदुरीशं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥

यत् यत् वेद्यं तत् तत् अहं न इति विहाय (देह आदि से अहङ्कार पर्यन्त जो कुछ भी जाना जासकता है वह मैं नहीं हूँ'' इस भ्रम को त्याग कर) *स्व-आत्मज्योतिः –ज्ञानमय-आनन्दं अवाप्य* (स्वयंज्योतिस्वरूप आनन्द का अनुभव कर) *तस्मिन्-अस्मि-इति-आत्मविदः यं ईशं विदुः* (''मैं उसमें हूँ' ऐसे अनुभव द्वारा जिस ईश्वर को आत्मवेत्ता जानते हैं।

''जो कुछ जाना जा सकता है वह मैं नहीं हूँ'' इस भ्रम को त्यागकर, अपनी स्वयं की ज्योति से जो प्रकाशित है और ज्ञानमय आनन्दस्वरूप है उसे प्राप्त कर, ''उसमें मैं भी हूँ'' ऐसा अनुभव करते हुए आत्मवेत्ता जिसका साक्षात्कार करते हैं उन मोहान्धकार का नाश करनेवाले श्रीहरि की मैं स्तुति करता हूँ।

कैवल्य उपनिषद् (१८-१९) में कहा है—

त्रिषु धामसु यद्भोग्यं भोक्ता भोगश्च यद्भवेत्।
तेभ्यो विलक्षणः साक्षी चिन्मात्रोऽहं सदाशिवः॥
मय्येव सकलं जातं मयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।
मयि सर्वं लयं याति तत् ब्रह्माद्वयमस्म्यहम्॥

(जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति-- इन तीनों अवस्थाओं में जो भोग, भोग्य और भोक्ता के रूप में हैं, उससे भिन्न वह सदाशिव, चिन्मय, और अद्भुत साक्षी मैं ही हूँ। मैं ही वह अद्वैत ब्रह्म हूँ। मुझमें ही सबकुछ उत्पन्न होता, मुझमें ही सबकुछ प्रतिष्ठित रहता, और मुझमें ही सब का लय होता है।)

(११)

हित्वाहित्वा दृश्यमशेषं सविकल्पं
मत्वा शिष्टं भादृशिमात्रं गगनाभम्।
त्यक्त्वा देहं यं प्रविशन्त्यच्युतभक्ता-
स्तं संसार ध्वान्त विनाशं हरिमीडे॥

हित्वा-आहित्वा सविकल्पं अशेषं दृश्यं (इस दृश्यमान विश्वप्रपञ्च को मिथ्या

जान कर धीरे-धीरे निरस्त करते हुए) *शिष्टं गगनाभं भादृशिमात्रं मत्वा* (और जो कुछ वच रहता है उस आकाश के समान स्वप्रकाश चिन्मात्र को समझ कर) *देहं त्यक्त्वा* (देहभाव त्याग कर) *अच्युतभक्ताः यं प्रविशन्ति* (विष्णु के भक्त जिस ब्रह्म में प्रवेश करते हैं)

धीरे-धीरे समस्त दृष्टिगोचर विश्वप्रपञ्च को मिथ्या जानकर निरस्त करते हुए अवशिष्ट एकमात्र सत्ता को ही जो मानते हैं, और देहाभिमान त्यागने के उपरान्त अच्युतभक्त जिसमें प्रवेश करते हैं, मैं उन्हीं संसार का मोहान्धकार नष्ट करनेवाले श्रीहरि का स्तवन करता हूँ।

यहाँ देहत्याग का अर्थ मृत्यु नहीं है, यहाँ देहत्याग का अर्थ देहाभिमान का त्याग है। *''ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति''*। **बृहदारण्यक उपनिषद्** में याग्यवल्क्य और उद्दालक के संवाद में आत्मा (साक्षी) का विवेचन करते हुए बताया गया है,

''यह दिखाई न देनेवाला किन्तु देखनेवाला है, सुनायी न देनेवाला किन्तु सुननेवाला है, मन का विषय न होनेवाला किन्तु मनन करने वाला है, और विशेषतया ज्ञात न होनेवाला किन्तु विशेषरूप से जानने वाला है। इससे भिन्न सब नाशवान्, मिथ्या है।''

(१२)

सर्वत्रास्ते सर्वशरीरी न च सर्वः
सर्वं वेत्त्येवेह न यं वेत्ति च सर्वः।
सर्वत्रान्तर्यामितयेत्थं यमयन् यः
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥

यः सर्वत्र-आस्ते (जो कपड़े में तन्तुओं की भाँति उपादान रूप में सर्वव्यापी है) *सर्वशरीरी न च सर्वः* (यह सबकुछ, कपड़े में तन्तुओं की भाँति, —सर्वशरीरी है किन्तु सबकुछ नहीं है; अधिष्ठानरूप में वह सब के भीतर है) *इह* (यहाँ, पृथ्वी आदि में) *सर्वं वेत्ति* (समस्त विश्वप्रपंच को जानता है) *न यं च वेत्ति सर्वः* (किन्तु आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक रूप में उसे कोई नहीं जानता) *सर्वत्र-अन्तर्यामितया यः इत्थं यमयन्* (जो

अन्तर्यामी पृथ्वी इत्यादि सब को विहित कार्यों में प्रेरणा देता है और निषिद्ध कार्यों में अवरोध करता है)

जो अन्तर्यामी परमात्मा सर्वव्यापी, सर्वशरीरी है वह समस्त विश्वप्रपञ्च को जानता है, किन्तु उसे कोई नहीं जानता। अन्तर्यामी होने के कारण वह समस्त विश्व-व्यापार का नियमन करता है। उस ब्रह्मस्वरूप की मैं स्तुति करता हूँ।

गीता में भगवान् अर्जुन से कहते हैं—

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन॥ (७.२६)

ईश्वरस्सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥ (१८.६१)

स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता।
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्।" (श्वेत. ३.१९)

(१३)

सर्वं दृष्ट्वा स्वात्मनि युक्त्या जगदेतत्
दृष्ट्वाऽऽत्मानं चैवमजं सर्वजनेषु।
सर्वात्मैकोऽस्मीति विदुर्यं जनहृत्स्थं
तं संसारध्वान्त विनाशं हरिमीडे॥

युक्त्या (कल्पना की युक्ति से) *एतत् सर्वं जगत्* (इस समस्त आकाश आदि प्रपञ्च को) *स्व-आत्मनि दृष्ट्वा* (अपनी आत्मा में देखकर) *अजं आत्मानं च* (और अपनी अजन्मा आत्मा को) *सर्वजनेषु दृष्ट्वा* (सब लोगों में देखकर) *जनहृत्स्थं* (जन-जन के हृदय (बुद्धि) में स्थित को) *सर्वात्मैकोऽस्मि इति* (सब आत्माओं में भी मैं व्याप्त हूँ)

इस जड़-चेतन समस्त जगत् को अपनी आत्मा में अनुभव कर, और अपनी आत्मा को जन-जन के हृदय में स्थित समझकर, और यह अनुभव कर कि मैं ही सब लोगों में व्याप्त हूँ– ऐसी भावना से जिस ब्रह्म को जाना जाता है उसी मोहान्धकार नाश करनेवाले श्रीहरि की मैं स्तुति करता हूँ।

इस पद्य का सार उपनिषदों में बहुधा मिलता है, जैसे—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षस्सर्वभूताधिवासस्साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।। (श्वेत.६.११)
अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपंरूपं प्रतिरूपो वभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपंरूपं प्रतिरूपो बहिश्च।। (कठ. ५.९)

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
संपश्यन् ब्रह्म परमं याति नान्येन हेतुना।।
मय्येव सकलं जातं मयि सर्वं प्रतिष्ठतम्।
मयि सर्वं लयं याति तद्ब्रह्माद्वयमस्म्यहम्।।(कै.उ. १०-११)

(१४)

सर्वत्रैकः पश्यति जिघ्रत्यथ भुङ्क्ते
स्प्रष्टा श्रोता बुध्यति चेत्याहुरिमं यम्।
साक्षी चास्ते कर्तृषु पश्यन्निति चान्ये
तं संसारध्वान्त विनाशं हरिमीडे।।

सर्वत्र (ब्रह्मा से लेकर स्थावर तक) *एकः* (एक होते हुए भी कार्यकारणसंघातो में विभक्त) *पश्यति जिघ्रति भुङ्क्ते स्प्रष्टा श्रोता बुध्यति* (अलग-अलग इन्द्रियों से अलग-अलग काम करता है, जैसे आँखों से देखता है, नासिका से सूँघता है, मुँह से भोजन करता है, त्वचा से ठंडा-गरम अनुभव करता है) *च-इति-आहु-इमं यं* (अज्ञान की अवस्था में ऐसा कहा जाता है) *साक्षी च आस्ते* (वह अन्तस्थ आत्मा तो केवल साक्षी है) *कर्तृषु पश्यन्-इति च अन्ये* (किन्तु वह तो साक्षी भाव से केवल देखता ही रहता है)

ब्रह्मा से लेकर पेड़-पौधों तक सर्वत्र एक ही साक्षी (आत्मा) अनेक रूपों में विभक्त हुआ इन्द्रियों के व्यापार— देखना, सुनना, सूँघना आदि अज्ञानावस्था में करता हुआ दिखाई देता है। वास्तव में वह तो केवल साक्षी है, कर्ता-भोक्ता नहीं। विवेकीजन जिस साक्षी को जानते हैं उसकी मैं स्तुति करता हूँ।

(१५)

पश्यन् शृण्वन्नत्र विजानन् रसयन् सं-
जिघ्रद्बिभ्रद्देहमिमं जीवतयेत्थम्।
इत्यात्मानं यं विदुरीशं विषयज्ञं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥

इमं देहं (कार्यकारणसङ्घात इस देह में) *इत्थं जीवतया* (जीवरूप में प्रविष्ट होकर) *बिभ्रत्* (आत्मा) *पश्यन् शृण्वन् विजानन् रसयन् जिघ्रत् सन्* (देखता हुआ, सुनता हुआ, जानता हुआ, स्वाद लेता हुआ दिखायी देता है) *इति विषयज्ञं आत्मानं यं ईशं विदुः* (इस आत्मास्वरूप विषयज्ञ जिस ईश्वर को जानते हैं)

कार्यकारणसंघात इस देह में जीवरूप से प्रवेश कर जो आत्मा इन्द्रियों के विविध व्यापार करता दिखाई देता है उस विषयज्ञ को जिस वास्तविक रूप में जाना जाता है मैं उसी की स्तुति करता हूँ।

(१६)

जाग्रत् दृष्ट्वा स्थूलपदार्थानथ मायां
दृष्ट्वा स्वप्नेऽथापि सुषुप्तौ सुखनिद्राम्।
इत्यात्मानं वीक्ष्य मुदाऽऽस्ते च तुरीये
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥

जाग्रत् दृष्ट्वा स्थूलपदार्थान् (जीव जागते समय स्थूल पदार्थों को देखकर) *अथ स्वप्ने मायां दृष्ट्वा* (और स्वप्नावस्था में मायाकल्पित प्रपञ्च को देखकर) *अथ अपि सुषुप्तौ सुखनिद्राम्* (और इसके अनन्तर सुषुप्तावस्था में सुखनिद्रा का अनुभव कर) *इति आत्मानं तुरीये वीक्ष्य मुदा आस्ते* (चौथी अवस्था में– समाधि में – अपने वास्तविक स्वरूप को समझ कर स्वात्मानंद के अनुभव से उत्पन्न सन्तोष में जो रहता है)

जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय अवस्थाओं में आत्मा इन्द्रिय-मन युक्त होकर स्थूल पदार्थों को देखता है, स्वप्नों के काल्पनिक संसार में विचरण करता है, और सुषुप्तावस्था में सुखनिद्रा का अनुभव करता है। फिर

चौथी तुरीय अवस्था में अपने वास्तविक स्वरूप का अनुभव करते हुए स्वात्मानंदानुभवजनित संतोष में जो मुदित रहता है, उस मोहान्धकार को नाश करने वाले का मैं स्तवन करता हूँ।

(१७)

पश्यंच्छुद्धोऽप्यक्षर ऐको गुणभेदान्
नानाकारान् स्फटिकवद्भाति विचित्रः।
भिन्नश्छन्नश्चायमजः कर्मफलैर्यः
तं संसारध्वान्त विनाशं हरिमीडे॥

अयं अजः एकः शुद्धः अक्षरः (वह जो अजन्मा अद्वितीय, स्वतःशुद्ध –दुखः-सुख आदि सम्बन्धों से शून्य– और नाशरहित है) *गुणभेदान् नाना आकारान् पश्यन्* (सत्त्व-रजः–तमः के परिणाम भेदों से उत्पन्न सुर-नर-तिर्यग आकारों को साक्षीभाव से देखता हुआ) *स्फटिकवत् विचित्रः भाति* (जैसे स्फटिक शिला विविध रंगों के सम्पर्क से रंग-बिरंगी दिखाई देती है, उसी प्रकार स्वतःशुद्ध आत्मा नानारूपधारी विचित्र दिखाई देता है) *कर्मफलैः* (कर्मों के परिणाम सुख-दुःखों से) *भिन्नः* (अनेक और परिच्छिन्न) *अयं छन्नः* (देहत्याग के बाद अज्ञायमान हो जाता है)

अजन्मा अद्वितीय नाशरहित आत्मा गुण-भेद के अनुसार नाना रूप और आकारों का दृष्टा है और वह उनके तादात्म्य अध्यास के कारण कर्मों के परिणाम सुख-दुःखों से नाना रूपों में विचित्र दिखायी पड़ता है। यह ऐसा ही है जैसे स्फटिक शिला भिन्न-भिन्न रंगों के सम्पर्क में अनेक रंगोंवाली दिखाई देती है। देहत्याग के बाद यह ज्ञायमान नहीं रहता। उसी अक्षर अजन्मा की मैं स्तुति करता हूँ क्योंकि वह संसार के मोहान्धकार को नाश करने वाला है।

इस पद्य का सार इन श्लोकों में देखा जा सकता है—

एक एव तु भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः।
एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत्॥
अचिन्त्यं अव्यक्तं अनंतरूपं शिवं प्रशान्तं अमृतं ब्रह्मयोनिम्।
तदाऽदिमध्यान्तविहीनमेकं विमुं चिदानन्दं अरूपं अद्भुतस्य॥ (कै. २.६)

(१८)

ब्रह्माविष्णू रुद्रहुताशौ रविचन्द्रा-
विन्द्रो वायुर्यज्ञ इतीत्थं परिकल्प्य।
एकं सन्तं यं बहुधाऽऽहुर्मतिभेदात्
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥

ब्रह्माविष्णू (जगत्सृष्टा हिरण्यगर्भ और पालनकर्ता विष्णु) *रुद्रहुताशौ* (संहर्ता परमेश्वर शिव और अग्नि) *रविचन्द्रौ* (सूर्य और चन्द्रमा) इन्द्रः वायुः यज्ञः इति इत्थं परिकल्प्य *(इन्द्र, वायु, यज्ञ आदि देवों के कल्पना कर) एकं सन्तं* (उसके केवल एक होते हुए भी) *मतिभेदात् बहुधा आहुः* (जिसे मतिभेद के कारण अनेक नामों से पुकारा जाता है।)

ब्रह्मा-विष्णु, रुद्र-अग्नि, सूर्य-चन्द्र, वायु-यज्ञ और इन्द्र– ऐसे अनेक रूपों की कल्पना कर जिस अद्वितीत एक को, मतिभेद के कारण, अनेक नाम दिये जाते हैं, उस संसाररूपी अंधकार का नाश करनेवाले का मैं स्तवन करता हूँ।

''अनेक में एक'' की कल्पना वैदिक ऋषियों द्वारा शायद सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण आविष्कार है। ऋग्वेद (१-१३४) में स्पष्ट घोषणा है—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यस्स सुवर्णो गरुत्मान्
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

स ब्रह्म स शिवस्स हरिस्सेन्द्रस्सोऽक्षरः परमस्स्वराट्।
स एव विष्णुस्स प्राणः स कालोऽग्निस्स चन्द्रमा॥ (कैवल्य २.२९)

तदेवाग्निस्तद्वायुस्तत्सूर्यस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रममृतं तद् ब्रह्म तदापस्स प्रजापति॥ (श्वेत. ४.२)

(१९)

सत्यं ज्ञानं शुद्धमनन्तं व्यतिरिक्तं
शान्तं गूढं निष्कलमानन्दमनन्यम्।
इत्याहादौ यं वरुणोऽसौ भृगवेऽजं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥

सत्यं ज्ञानं शुद्धं अनन्तं (जो अबाध्य सत्स्वरूपज्ञान है, निर्मल है, त्रिविधपरिच्छेदशून्य अनन्त है) *व्यतिरिक्तं* (अन्नमय, प्राणमय आदि कोश पञ्चक से भिन्न है) *अजं शान्तं-गूढं-निष्कलं-आनन्दं-अनन्यम्* (जो अजन्मा अविचल, अज्ञेय, अवयवरहित निराकार, आनन्दस्वरूप और अद्वितीय है) *वरुणः असौ भृगवे आदौ इति आह* (प्राचीनकाल में महर्षि वरुण ने अपने पुत्र भृगुसे यह कहा)

प्राचीनकाल में महर्षि वरुण ने अपने पुत्र भृगु से ऐसा कहा– "वह ब्रह्म सत्यस्वरूप ज्ञान है, वह निर्मल है, वह त्रिविधपरिच्छेदशून्य अनन्त है, वह कोशपञ्चक से भिन्न है, वह अजन्मा, अविचल, अज्ञेय, अवयवरहित निराकार, आनन्दस्वरूप, और अद्वितीय है।" मैं उसी ब्रह्म की स्तुति करता हूँ।

इस पद्य की भूमिका में **तैत्तिरीय उपनिषद्** में वर्णित वरुण-भृगु संवाद है। भृगु को भ्रम था कि अन्न, प्राण, चक्षु, क्षोत्र, मन, वाणी आदि ब्रह्म हैं। वरुण ने बताया, *"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिवसंविशन्ति। तद्विजितासस्व। तद् ब्रह्मेति।"*

(भृगु को भ्रम था कि इन्द्रियाँ ब्रह्म की उपलब्धि के द्वार हैं। वरुण ने कहा, "शायद तुम ठीक कह रहे हो। किन्तु, ये सब बाह्य उपकरण जिससे उत्पन्न होते हैं, और उत्पन्न होकर जिसके सहारे जीवित रहते हैं, और अन्त में, इस लोक से प्रयाण करते हुए, जिसमें लीन हो जाते हैं– उस सत्ता को जानने की इच्छा कर। वही ब्रह्म है।")

बहुत सोच विचार के परिणामस्वरूप भृगु की समझ में आया कि *"आनन्दो ब्रह्मेति। आनन्दात् हि एव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।"*

(२०)

कोशानेतान् पञ्च रसादीनतिहाय
ब्रह्मास्मीति स्वात्मनि निश्चित्य दृशिस्थम्।
पित्रा शिष्टो वेद भृगुर्यं यजुरन्ते
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥

पञ्च रसादीन् एतान् कोशान् अतिहाय (अन्नरसविकाररूप देह आदि पाँच कोशों के अनात्मत्व को जानकर और उनका त्याग कर) *दृशिस्थं* (जो चैतन्य साक्षीरूप से नेत्रों में आत्मा में स्थित है) *ब्रह्म अस्मि इति आत्मनि निश्चित्य* ('मैं ब्रह्म हूँ' यह अपनी बुद्धि में निश्चित कर) *यजुः अन्तेःपित्रा शिष्टः यं भृगुः वेद* (पिता द्वारा शिक्षित भृगु न जिसको जाना)।

स्थूल देह आदि पञ्चकोशों के अनात्मत्व का अनुभव कर और उन्हें त्याग कर, ज्ञानदृष्टि में स्थित आत्मा को अपने स्वरूप में निश्चित कर, यज्ञ के अन्त में पिता द्वारा शिक्षित भृगु ने जिसको जानकर अनुभव किया कि "मैं ब्रह्म हूँ", उसी मोहान्धकार का नाश करनेवाले हरि की मैं स्तुति करता हूँ।

(२१)

येनाविष्टो यस्य च शक्त्या यदधीनः
क्षेत्रज्ञोऽयं कारयिता जन्तुषु कर्तुः॥
कर्ता भोक्ताऽऽत्माऽत्र हि यच्छक्त्यधिरूढ-
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥

क्षेत्रज्ञः येन आविष्टः (जिसके आवेश में क्षेत्रज्ञ-(जीव)-कठिन-से-कठिन कार्यों को भी कर लेता है, और उस आवेश से रहित नहीं कर सकता उस शक्ति को परमेश्वर कहते हैं।) *यस्य च शक्त्या* (उस परमेश्वर की शक्ति माया-से) *यत्-अधीनः* (और उसके अधीन ज्ञानस्वरूप होकर भी मूढ हो जाता है) *जन्तुषु कर्तुः कारयिता* (सब भूतों में वह ईश्वर ही सारे कार्य कराने वाला है) *यत्-शक्ति-अधिरुढः* (जिस ईश्वर की शक्ति पर आश्रित आत्मा) *कर्ता भोक्ता* (करने वाला और भोगने वाला है)

जिस परमेश्वर के आवेश–प्रेरणा–से जीव कठिन-से-कठिन कार्य भी कर लेता है और जिसकी माया से, ज्ञानस्वरूप होते हुए भी, किंकर्तव्यविमूढ हो जाता है, वह परमेश्वर ही समस्त भूतों में कार्य-प्रेरक है। उस परमात्मा पर आश्रित आत्मा कर्ता-भोक्ता कहलाता है। मैं संसार का अज्ञानान्धकार दूर करनेवाले उन परमेश्वर श्रीहरि की स्तुति करता हूँ।

यह थोड़ा कठिन पद्य है। गीता के तेरहवें अध्याय में ज्ञेत्र-क्षेत्रज्ञ का जो विवेचन किया गया है उसके प्रकाश में इसे समझने का प्रयत्न करना चाहिए। *"येन आविष्टः यस्य च शक्त्या यदधीनः"* क्षेत्रज्ञ कभी-कभी किंकर्तव्य-विमूढ हो जाता है क्योंकि *"दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया"*। इस माया से भ्रमित *"अनीशया शोचति मुह्यमानः"*। स्वयंप्रकाश यति ने मोहाविष्ट अर्जुन का उदाहरण दिया है। वह ईश्वर ही सब कुछ करने की शक्ति देता है। उसी ईश्वर की शक्ति के बल पर आत्मा कर्ता-भोक्ता बनता है।

स्वयंप्रकाश यति की व्याख्या के प्रकाश में शायद इस पद्य को ठीक समझा जा सकता है।

"क्षेत्रज्ञो येन परमेश्वरेण आविष्टो दुष्करमपि कर्म कश्चित्करोति ग्रहाविष्टवत्। आवेशविनिर्मुक्तश्च न शक्नोति कर्तुं सोऽस्ति कश्चित् परमेश्वरः। अर्जुनादावीश्वरावेशश्रवणात्। यस्य च शक्त्या मायया आविष्टो ज्ञानस्वरूपोऽपि मूढोहं न जाने किंचिज्ज्ञः इत्याभिमन्यते सोऽस्ति शक्तिमान् काश्चिदिति गम्यते। अत एव क्षेत्रज्ञोऽयं यदधीनः सर्वव्यापारेषु वर्तते अस्ति स ईश्वरो जन्तुषु सर्वभूतेषु कर्तुः कारयिता इत्यभ्युपगन्तव्यम्। यस्य परमात्मनः चिच्छक्त्यारूढः चित्स्वरूपव्याप्तः कर्ता भोक्ता आत्मा इति।"

(२२)

सृष्ट्वा सर्वं स्वात्मतयैवेत्थमतर्क्यं
व्याप्याथान्तः कृत्स्नमिदं सृष्टमशेषम्।
सच्च त्यच्चाभूत्परमात्मा स य एक–
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥

सः (वह परमात्मा जो वास्तव में जीव से अभिन्न है) *इत्थं* (अनेक प्रकार से अनुभूयमान) *सर्वं-इदं अतर्क्यं जगत् सृष्ट्वा* (इस समस्त तर्कातीत जगत् की सृष्टि कर) *स्वात्मतया एव* (केवल अपने-आप) *व्याप्य* (उसमें प्रविष्ट होकर) *अथ अन्तः सत् च (मूर्त)त्यत् च (अमूर्त) अभवत्* (परोक्ष और प्रत्यक्षरूप में प्रकट हो गया।)

वह जीवात्मा से अभिन्न अद्वितीय (एक) परमात्मा इस समस्त जगत् का स्रष्टा है। उसने अपने-आप इस अतर्क्य जगत् की सृष्टि की और फिर इसमें व्याप्त होकर वह परोक्ष से प्रत्यक्ष हो गया।

इस पद्य में **तैत्तिरीय उपनिषद्** (२.६) की ओर संकेत है—

"सोऽकामयत्! बहु स्यां प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत्। स तपस्तप्त्वा इदं सर्वं असृजत यदिदं किं च। तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्। तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्चाभवत्।"

(सृष्टि के आरम्भ में परब्रह्म परमात्मा ने विचार किया कि मैं नानारूपों में प्रकट होकर एक से अनेक हो जाऊँ। यह विचार कर उन्होंने तप किया (सृष्टि करने का संकल्प किया) इस संकल्प के उपरान्त जड़ चेतनमय विश्वप्रपञ्च की सृष्टि की। फिर उस सृष्टि में वे स्वयं प्रविष्ट हो गये। इस प्रकार परब्रह्म परमेश्वर, मूर्त और अमूर्त (नानारूपों में पृथ्वी, जल, और तेज मूर्त हैं। वायु और आकाश अमूर्त हैं)– प्रकट हो गये।

(२३)

वेदान्तैश्चाध्यात्मिकशास्त्रैश्च पुराणैः
शास्त्रैश्चान्यैः सात्त्वततन्त्रैश्च यमीशम्।
दृष्ट्वाऽथान्तश्चेतसि बुद्ध्वा विविशुर्यं।
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।।

वेदान्तैः (सच्चिदानन्द अद्वय ब्रह्म का प्रतिपादन करने वाले वेदान्तियों द्वारा) *आध्यात्मिक शास्त्रैः च* (सांख्य आदि शास्त्रों द्वारा) *पुराणैः-शास्त्रैः च अन्यैः* (और पुराणों द्वारा, शिव-विष्णु आदि से संबंधित दूसरे शास्त्रों द्वारा) *सात्त्वततन्त्रैश्च* (सत्त्वस्वरूप वासुदेव के उपासक वैष्णवों के शास्त्रों द्वारा) *यं ईशं दृष्ट्वा* (जिस ईश्वर का साक्षात्कार कर) *अथ अन्तः चेतसि* (तत्पश्चात् ध्यान द्वारा अन्तश्चेतना में) *बुद्ध्वा* (यह अनुभव कर कि "मैं ईश्वर ही हूँ") *यं विविशुः* (कुछ महात्मा स्वयं प्राप्त करते हैं)

जिस ईश्वर को अद्वय सच्चिदानन्द ब्रह्म का प्रतिपादन करनेवाले वेदान्ती, सांख्य आदि मतावलम्बी, पौराणिक लोग, शिव, विष्णु आदि से

संबंधित अन्य शास्त्रों के ज्ञाता, सात्त्वत तन्त्रों के अनुयायी वैष्णव आचार्यों के उपदेश और शास्त्र ज्ञान द्वारा जानकर ध्यान द्वारा अन्तश्चेतना में सुदृढ़ करते हैं, और महात्मा *'ईशोस्मि'* (ईश्वर मैं भी हूँ) रूप में जिसका साक्षात्कार करते हैं, उन संसार का मोहनाश करनेवाले श्रीहरि की मैं स्तुति करता हूँ।

यहा बड़ा महत्त्वपूर्ण पद्य है। वेदान्तियों, भक्तों और 'अहं' 'त्वम्' 'तत्' आदि का विवेचन करने वाले मुनियों द्वारा जिस ईश्वर की उपासना की जाती है उसका स्तवन करने के बाद अब अन्य मतावलम्बियों द्वारा उपास्य ईश्वर की स्तुति आरम्भ की जा रही है। कुछ आधुनिक विद्वानों का मत है कि ऐसी उदार मान्यता आचार्य शंकर की नहीं हो सकती।

(२४)

श्रद्धाभक्तिध्यानशमाद्यैर्यतमानैः
ज्ञातुं शक्यो देव इहैवाशु य ईशः।
दुर्विज्ञेयो जन्मशतैश्चापि विना तै–
स्तं संसारध्वान्तविनाशं शिवमीडे॥

श्रद्धा (शास्त्र, गुरु आदि के वाक्यों में विश्वास; *"श्रद्धावान् लभते ज्ञानं"*) *भक्ति–* (अपने इष्टदेव में अनन्य प्रेम) *ध्यान-शमआद्यैः* (ध्यान, संयम आदि में) *यतमानैः* (प्रयत्नशील साधकों द्वारा) *इह एव ईशः देवः आशु ज्ञातुं शक्यः* (यहाँ, इसी जीवन में शीघ्रही, जिस दिव्य ईश्वर को जाना जा सकता है, जो यही, इसी जन्म में, साक्षात् हो सकता है) *तैः विना जन्मशतैः च अपि दुर्विज्ञेयः* (वह ईश्वर, इन साधनों के बिना, सौ जन्मों में भी नहीं जाना जा सकता)

श्रद्धा, भक्ति, इन्द्रियदमन आदि साधनों से जिस दिव्य ईश्वर का शीघ्र ही, इसी जन्म में, साक्षात्कार हो सकता है, वह, इन साधनों के बिना, सौ जन्मों में भी प्राप्त नहीं हो सकता।

(२५)

यस्यातर्क्यं स्वात्मविभूतेः परमार्थं
सर्वं खल्वित्यत्र निरुक्तं श्रुतिविद्भिः।

तज्जादित्वादब्धितरङ्गाभमभिन्नं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।।

स्व-आत्म-विभूतेः (जिनकी सारी विभूतियाँ अपनी ही हैं उनका) *यस्य परमेश्वरस्य अतर्क्यं परमार्थं* (जिन परमेश्वर का वास्तविक विकाररहित स्वरूप तर्क की सीमा से बाहर है) *सर्वं खलु-इति-अत्र* ("सर्वं खल्विदं ब्रह्म") *श्रुति-विद्भिः निरुक्तं* (ऐसा वेदावेत्ताओं ने निरूपित किया है; ऐसी व्याख्या की है) *तज्जातित्वात्* (तेज, अप्-जल और अन्नादि क्रम से सारा जगत् उस ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है, इसलिये यह 'तज्ज' है) *अब्ध-तरङ्ग-आभं-अभिन्नं* (**समुद्र** में जैसे तरङ्गें भिन्न दिखाई देती हैं, किन्तु **भिन्न नहीं** होती, उसी प्रकार यह जगत्, ब्रह्म से भिन्न दिखाई देता हुआ **भी**, **भिन्न** नहीं है)

इस पद्य की भूमिका में **छान्दोग्य** उपनिषद् (३.१४.१) का यह प्रसिद्ध वचन है– *"सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत"*। यहाँ *"तज्जलानिति"* का अर्थ समझना होगा। *'तज्ज'*, *'तल्लम्'*, *'तदन्'* जगत् की तीन अवस्थाएँ हैं। *'तज्ज'* का अर्थ है 'यह जगत् ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है। *'तल्लम्'* का अर्थ है "यह जगत् विपरीत क्रम से, अन्त में, ब्रह्म में ही लीन हो जाता है। *'तदन्'* का अर्थ है "यह जग ब्रह्म में ही अनन (चेष्टा) करता है।" अतः *"तदेवैकमद्वितीयम्"* वह ब्रह्म ही सारा जगत् है, यह जगत् एकमात्र अद्वितीय ब्रह्म ही है।

जिस तर्कातीत सर्वप्रभुत्वसम्पन्न ब्रह्म का वेदवेत्ताओं ने "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" कह कर प्रतिपादन किया है, और जिस ब्रह्म में इस जगत् की उत्पत्ति, लय, और समस्त चेष्टाएँ होती हैं, और जो समुद्र और तरङ्गों की भाँति भिन्न दिखाई देते हुए भी इस जगत् से अभिन्न है, उन संसार का मोहान्धकार दूर करनेवाले श्रीहरि का मैं स्तवन करता हूँ।

(२६)

दृष्ट्वा गीतास्वक्षरतत्त्वं विधिनाऽजं
भक्त्या गुर्व्या लभ्य हृदिस्थं दृशिमात्रम्।

ध्यात्वा तस्मिन्नस्म्यहमित्यत्र विदुर्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥

गीतासु (गीता में वर्णित) *अक्षरतत्त्वं दृष्ट्वा* (सर्वव्यापक ब्रह्मरूप अक्षरतत्त्व का साक्षात्कार कर) *विधिना अत्रं* (इस अजन्मा की विधि-विधान से उपासना कर, "तद्विद्धि प्रणिपातेन") गुर्व्या भक्त्या हृदिस्थं दृशिमात्रं लभ्य (अनन्य भक्ति से हृदयस्थ (बुद्धि में) साक्षीभाव से स्थित चैतन्य स्वरूप–दृशिमात्र को प्राप्त कर) *ध्यात्वा तस्मिन्–अस्मि-अहं-इति-अत्र* (ध्यान द्वारा यह अनुभव करने के उपरान्त कि "उस ब्रह्म में मैं ही हूँ) *यं विदुः* (जिन को जानते हैं)

गीता में जिस सर्वव्यापक ब्रह्म का अक्षरत्व प्रतिपादित किया गया है, जिस अजन्मा की विधिपूर्वक उपासना की जाती है, अनन्य दृढ भक्ति से जिस हृदयस्थ, बुद्धि में साक्षी रूप स्थित, को प्राप्त किया जाता है, और जिसके विषय में ध्यान द्वारा यह अनुभव किया जाता है कि "ब्रह्म में मैं भी हूँ", मैं उन संसार का मोहान्धकार नष्ट करनेवालो श्रीहरि की स्तुति करता हूँ।

गीता के जिन श्लोकों की ओर यहाँ संकेत है वे ये हैं—

ये त्वक्षरमनिर्देश्यं अव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्।
क्षेत्रज्ञं चापि मां बिद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत॥
ज्ञेयं यत्तत् प्रवक्ष्यामि यत् ज्ञात्वाऽमृमश्नुते।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते॥
सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्विकम्॥

(गी. १२.३.; १३.३; १३.१२; १८.२०)

(२७)

क्षेत्रज्ञत्वं प्राप्य विभुः पञ्चमुखैर्यो
भुङ्क्तेऽजस्त्रं भोग्यपदार्थान् प्रकृतिस्थः।

क्षेत्रेक्षेत्रेऽप्स्विन्दुवदेको बहुधाऽऽस्ते
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥

यः विभुः (जो परमात्मा) *प्रकृतिस्थः* (अविद्या में प्रतिबिम्बित) *क्षेत्रज्ञत्वं प्राप्य* (जीवभाव में) *पञ्चमुखैः* (पाँच भोगों के द्वारा, इन्द्रियों द्वारा) *भोग्यपदार्थान्* (विषयभोगों को) *अजस्रं भुङ्क्ते* (निरन्तर उपभोग करता रहता है) *क्षेत्रे-क्षेत्रे अप्सु इन्दुवत् बहुधा आस्ते* (अलग-अलग अन्तःकरणों में पानी से भरे अनेक पात्रों में प्रतिबिम्बित चन्द्रमा की भांति, रहता है)

जो परमात्मा, अविद्यारूपी प्रकृति की उपाधि धारण करते हुए, जीवभाव को प्राप्त कर, विषय-भोगों को पाँच इन्द्रियमुखों द्वारा भोगता है, वह पानी भरे अलग-अलग पात्रों में प्रतिबिम्बित चन्द्रमा की भाँति, एक ही ब्रह्म है। मैं उसी की स्तुति करता हूँ।

एक एव हि भूतात्मा भूतेभूते व्यवस्थितः।
एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत्॥

(२८)

युक्त्याऽऽलोऽ्य व्यासवचांस्यत्र हि लभ्यः
क्षेत्रक्षेत्रज्ञान्तरविद्भिः पुरुषाख्यः।
योऽहं सोऽसौ सोऽस्म्यहमेवेति विदुर्यं
तं संसारध्वान्त विनाशं हरिमीडे॥

व्यासवचांसि अत्र हि युक्त्या आलोऽ्य (भगवान् वादरायण के ब्रह्मसूत्रों की भलीभाँति युक्तिपूर्वक समालोचना कर) *लभ्यः* (जो जाना जा सकता है) *क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ-अन्तर-विद्भिः* (क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का अन्तर जानने वालों द्वारा) *पुरुषाख्यः* (जिसे 'पुरुष' कहा जाता है) *यः अहं सः असौ सः अस्मि–अहं-एव इति* (''जो कुछ भी मैं हूँ, और यह जगत् वही है'' ''मैं वही हूँ'' इत्यादि सिद्धान्तों द्वारा) *यं विदुः* (जिसे जानते हैं)

भगवान् वादरायण व्यास के ब्रह्मसूत्रों का युक्तिपूर्वक, तार्किक दृष्टि से विवेकपूर्ण विचार-विमर्श कर जिसे प्राप्त किया जा सकता है, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के अन्तर को समझने वाले जिसे 'पुरुष' कहते हैं, ''मैं वही हूँ'', ''यह

जगत् भी वही है' इत्यादि वचनों द्वारा जिसका प्रतिपादन किया जाता है, मैं उस ब्रह्म की स्तुति करता हूँ।

(२९)

एकीकृत्यानेकशरीरस्थमिमं ज्ञं
यं विज्ञायेहैव स एवाशु भवन्ति।
यस्मिन् लीना नेह पुनर्जन्म लभन्ते
तं संसारध्वान्तविनाशं हरि मीडे॥

अनेकशरीरस्थं (साक्षीरूप में अनेक शरीरों में स्थित को) इमं ज्ञं (चैतन्य को) *एकीकृत्य* (जीव और परमात्मा एक हैं इसलिये सब भूतों में भी एक को समझ कर) *विज्ञाय* (देह इन्द्रिय आदि में उस साक्षी को अपरोक्ष अभिन्न मान कर) *इह एव* (इस देह में ही) *आशु* (शीघ्र ही) *स एव भवन्ति* (सब भूतों में वही एक परमात्मा है, इसलिये उसे जानकर परमात्मा ही हो जाते हैं, ''ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति'', ''तद्यो यो देवानां प्रत्यवुध्यत स एव तदभवत्'') *यस्मिन् लीनाः* (उस परब्रह्म में लीन हुए) *न इह पुनर्जन्म लभन्ते* (उनका पुनर्जन्म नहीं होता)

उस ब्रह्म को, जो साक्षी रूप में अनेक-अनेक देहों में स्थित है, और जिस चैतन्य को जान कर तत्काल इसी देह में ज्ञानी तद्रूप हो जाते हैं, और जिसमें लीन होने के उपरान्त पुनर्जन्म नहीं होता, मैं उन्हीं संसार का मोहान्धकार नष्ट करनेवाले श्रीहरि का स्तवन करता हूँ।

यत्परं ब्रह्म सर्वात्मा विश्वस्यायतनं महत्।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नित्यं तत्त्वमेव त्वमेव तत्॥ (कै.उ. १६)

(३०)

द्वन्द्वैकत्वं यच्च मधुब्राह्मणवाक्यैः
कृत्वा शक्रोपासनमासाद्य विभूत्या।
योऽसौ सोऽहं सोऽस्म्यहमेवेति विदुर्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥

मधुब्राह्मणवाक्यैः (*बृहदारण्यक उपनिषद्* के दूसरे और पाँचवे अध्याय में 'मधुब्राह्मण' में वर्णित ज्योतिर्मय अमृतमय पुरुष को आत्मा बताया गया है, और यह आत्मा ही समस्त ब्रह्म और सर्वरूप है। इस प्रकार इस ब्राह्मण में अधिष्ठान दृष्टि से सम्पूर्ण प्रपञ्च की ब्रह्मरूपता का प्रतिपादन किया गया है। *''इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते''* इस श्रुति से स्पष्ट किया गया है कि वह आत्मतत्त्व ही अपनी मायाशक्ति से अनेकों आकार धारण कर क्रीडा कर रहा है) *यद्वन्द्वैकत्वं* (पृथिवी, अग्नि, शरीर इत्यादि अनेक रूपों में छुपा हआ एकत्व) *कृत्वा* (उनके गुणों को ग्रहण कर) *विभूत्या* (ईश्वरभाव प्रतिपत्ति से) *शक्रोपासनं आसाद्य* (इन्द्र की उपासना प्राप्त कर; *''यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्। तस्य देवा असन्वशे''*; *''असन्नित्यस्य आसन्नित्यर्थः''*) *यः असौ* (वह सर्वात्मा परमेश्वर) *सः अहं सः अस्मि अहम् एव इति* (''वह मैं हूँ'', ''मैं वही हूँ'') *यं विदुः* (जिस परमेश्वर को जानते हैं)

'मधुब्राह्मण' के शब्दों में द्वन्द्वों का एकत्व अनुभव कर, जिसका इन्द्र की उपासना के रूप मे साक्षात्कार किया जाता है और जिस ब्रह्म की विभूति को ''वह मैं हूँ'', ''मैं वही हूँ'' की धारणा से प्राप्त किया जाता है, और जाना जाता है, उसी संसार का मोहान्धकार नाश करनेवाले की मैं स्तुति करता हूँ।

(३१)

योऽयं देहे चेष्टयिताऽन्तःकरणस्थः
सूर्ये चासौ तापयिता सोऽस्म्यहमेव।
इत्यात्मैक्योपासनया यं विदुरीशं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥

यः देहे (जो इस पञ्चभूतों से बनी जड़ देह में) *अन्तःकरणस्थः चेष्टयिता* (अन्तःकरण में चेतनास्वरूप है) *सूर्यः च असौ तापयिता* (जिस अन्तर्यामी के तेज से सूर्य तपता है) *सः अस्मि अहं एव* (वह मैं ही हूँ) *इति-आत्म-ऐक्य-उपासनया* (इस प्रकार आत्मा और ब्रह्म के ऐक्य की उपासना द्वारा) *यं ईशं विदुः* (जिस ईश्वर को जानते हैं; ''जीवों ब्रह्मैव नापरः'')

जो अन्तर्जगत् में स्थित हुआ इस जड़ देह में चेतना उत्पन्न करता है, सूर्य जिसके तेज से तपता है, यह अनुभव कर कि "मैं भी वही हूँ" जिसकी आत्मैक्यरूप में उपासना की जाती है, उन्हीं संसार का मोहान्धकार मिटानेवाले श्रीहरि का मैं स्तवन करता हूँ।

(३२)

विज्ञानांशो यस्य सतः शक्त्यधिरूढो
बुद्धेर्बुध्यत्यत्र बहिबोध्यपदार्थान्।
नैवान्तस्स्थं बुध्यति यं बोधयितारं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥

यस्य सतः (जिस परमेश्वर का, जिस परमार्थ सत् रूप का) *विज्ञान-अंशः* (स्वरूप ज्ञान का अंश) *शक्ति-अधिरूढः* (अविद्याशक्तिमाया में प्रतिबिम्बित जीव) *बहिः-बोध्य-पदार्थान्* (बाह्य उपकरणों से ज्ञातव्य पदार्थों को) *बुध्यति* (बुद्धि द्वारा जानता है) *न एव अन्तस्थं य बोधयितारं बुध्यति* (किन्तु अन्तर्जगत् में स्थित जिस जाननेवाले को नहीं जानता)

जिस परमार्थ सत्स्वरूप परमेश्वर के उस अंश को जो शक्ति (माया) की उपाधि धारण किये हुए है, और जो बुद्धिगम्य हैं ब्रह्म का अंश जीव जानता है। किन्तु, अन्तःकरण में छिपे हुए और सब कुछ जाननेवाले को कौन जान सकता है? *"विज्ञातारमरे केन विजानीयाद्येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात्"*। मैं उन्हीं अज्ञेय ब्रह्मस्वरूप श्रीहरि की स्तुति करता हूँ।

बृहदारण्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क्य-उषरूषस्त और याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी संवाद में इसका विस्तार से विवेचन है।

"न दृष्टेर्द्रष्टारं पश्येर्न श्रुतेः श्रोतारं
श्रृणुया न मतेर्मन्तारं मन्वीथा न
विज्ञातेर्विज्ञातारं विजानीयाः।"

("तुम दृष्टि से दृष्टा को नहीं देख सकते, श्रुति के श्रोता को नहीं सुन सकते, मति के मन्ता का मनन नहीं कर सकते, विज्ञाति के विज्ञाता को नहीं जान सकते)

(३३)

कोऽयं देहे देव इतीत्थं सुविचार्य
ज्ञाता श्रोता मन्तयिता चैष हि देवः।
इत्यालोच्य ज्ञांश इहास्मीति विदुर्यं।
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।।

देहे (कार्य-करण-संघात के भीतर) *कः अयं देवः* (कौन ज्ञाता है? क्या यह ज्ञाता शरीर है, इन्द्रिय हैं, प्राण अथवा अन्तःकरण है?) *इति इत्थं सुविचार्य* (इस प्रश्न पर भली भाँति विचार-विमर्श कर) *ज्ञाता-श्रोता-मन्तयिता च एष हि देवः* (जो स्वयंप्रकाश अपरोक्षरूप से शरीर, मन, बुद्धि आदि में सर्वव्यापी है वही जाननेवाला, सुननेवाला, और मनन करनेवाला है) *इति आलोच्य* (इस बात को भलीभाँति समझ कर) *ज्ञ-अंशः* (चैतन्य अंश) *अस्मि इति यं विदुः* (जिसको "मैं वही हूँ" ऐसा जानते हैं)

इस देह में वह कौन है जो ज्ञाता, श्रोता, और मन्ता है? क्या वह शरीर है, इन्द्रियाँ हैं, प्राण है, अथवा मन है? इस प्रश्न पर भली भांति विचार करने के उपरान्त जिस अन्तरात्मा के विषय में यह ज्ञान होता है कि "मैं भी वही हूँ" उन्हीं संसार का मोहान्धकार नाश करनेवाले श्रीहरि की मैं स्तुति करता हूँ।

(३४)

को ह्येवान्यादात्मनि न स्यादयमेष
ह्येवानन्दः प्राणिति चापानिति चेति।
इत्यस्तित्वं वक्त्युपपत्या श्रुतिरेषा
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।।

आत्मनि (कार्य-कारण-संघात रूप इस देह में) *अयं* (यह चिद्रूपानन्द आत्मा) *न स्यात्* (यदि न हो) *कः हि एव अन्यात्* (तो किस दूसरे से शरीर के व्यापार हो सकते हैं?) *एष हि एव आनन्दः* (जीवभाव को प्राप्त हुआ यह परमात्मा ही) *प्राणिति च अपानिति च* (प्राण और अपान है)

यस्य अस्तित्वं उपपत्त्या एषा श्रुतिः वक्ति (ऐसा श्रुति– *ऐतेरेय उपनिषद्*–में कहा गया है।)

यदि इस देह में चिद्रूप आनन्द आत्मा न तो दूसरा कौन शरीर के व्यापार चला सकता है? जीवभाव को प्राप्त हुआ परमात्मा ही प्राण है, वही अपान है। श्रुति उसके अस्तित्व का इसी प्रकार वर्णन करती है। उसी की मैं स्तुति करता हूँ।

(३५)

प्राणो वाऽहं वाक्छ्रवणादीनि मनो वा
बुद्धिर्वाऽहं व्यस्त उताथापि समस्तः।
इत्यालोच्य ज्ञप्तिरिहास्मीति विदुर्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥

प्राणः वा अहं (मैं प्राण हूँ अथवा) *वाक्-श्रवण-आदिनि मनः वा* (वाणी, कान आदि इन्द्रियाँ अथवा मन हूँ?) *बुद्धिः वा अहं* (अथवा मैं बुद्धि हूँ) *व्यस्त उत-अथ-अपि समस्तः* (अथवा इन सब का समुदाय हूँ) *ज्ञप्तिः इह अस्मि इति आलोच्य यं विदुः* (अथवा जिसको भली भाँति विचार कर इन सबका साक्षी जानते हैं)

मैं प्राण हूँ? अथवा मैं वाक्, श्रवण आदि इन्द्रियाँ हूँ? क्या मैं मन हूँ? अथवा मैं बुद्धि हूँ? अथवा इन सबका समुदाय हूँ। इन धारणाओं पर भली भांति विचार कर जिसको इस सारे समूह का साक्षी कहा जाता है, उन्हीं श्रीहरि की मैं स्तुति करता हूँ।

(३६)

नाहं प्राणो नैव शरीरं न मनोऽहं
नाहं बुद्धिर्नाहमहङ्कारधियौ च।
योऽत्र ज्ञांशस्सोऽस्म्यहमेवेति विदर्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥

न अहं प्राणः न एव शरीरं न अहं मनः (न मैं प्राण हूँ, न ही शरीर हूँ, और मन भी नहीं हूँ। ये सब दृश्य, भौतिक और अवयवयुक्त हैं) *न अहं बुद्धिः न अहं अहङ्कारधियौ* (न मैं बुद्धि हूँ न अहङ्कार अथवा चित्त हूँ)

यः अत्र ज्ञ अंशः सः अहं सः अस्मि अहं एव (इस देह में जो ज्ञाता है वह मैं हूँ, वही हूँ मैं) इति यं विदुः (जिसको इस प्रकार जानते हैं)

मैं न प्राण हूँ, न शरीर ही हूँ, मन भी नहीं हूँ। मैं बुद्धि भी नहीं हूँ। अहंकार और चित्त भी मैं नहीं हूँ। जो इस देह में 'ज्ञ' अंश है वही मैं हूँ – जिसे इस प्रकार जानते हैं उन श्रीहरि की मैं स्तुति करता हूँ।

(३७)

सत्तामात्रं केवलविज्ञानमजं सत्
सूक्ष्मं नित्यं तत्त्वमसीत्यात्मसुताय।
साम्नामन्ते प्राह पिता यं विभुमाद्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥

सत्तामात्र ('है' द्वारा जिसका बोध होता है, *"अस्तिप्रत्ययवेद्यं" "सदेव सौम्य"*) *केवल विज्ञानं* (विषयविनिर्मुक्त चिद् रूप को) *अजं सत् सूक्ष्मं नित्यं* (अजन्मा, सत्य– *"तत्सत्यं"* – सूक्ष्म इन्द्रियों की पहुँच से दूर– नित्य – नाशरहित को) *तत्वमसि इति आत्मसुताय* (पिता उद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहा– "वही तू है") *साम्नामन्ते* (सामोपनिषद् में, *सामवेद* के *छान्दोग्योपनिषद्* ६.१–१६ में) *पिता यं विभुं आद्यं आत्मसुताय प्राह* (पिता उद्दालक ने उस आदिकारण सर्वव्यापक ब्रह्म को अपने पुत्र श्वेतकेतु को बताया)

जो अजन्मा, इन्द्रियातीत, नित्य चिद्रूप है उसके बारे में, सामवेद के अन्त में छान्दोग्य उपनिषद् (६.१–१६) के उद्दालक-श्वेतकेतु संवाद में, पिता उद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु से जिसके विषय में कहा, *"तत्वमसि"*। *"तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो"* (वह आत्मा सत्य है, और हे श्वेतकेतो! वही तू है) मैं उसी सर्वव्यापी आत्मा की, जिन्हें 'हरि' बताया जाता है, स्तुति करता हूँ।

(३८)

मूर्तामूर्ते पूर्वमपोह्याथ समाधौ
दृश्यं सर्वं नेति च नेतीति विहाय।

चैतन्यांशे स्वात्मनि सन्तं च विदुर्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥

समाधौ (विकाररहित स्वस्थ चित्त में; ब्रह्म चिन्तन में सम्पूर्णतया लीन में; "तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशन्यमिव समाधिः") *चैतन्य अंशे* (जड़ अंश का परित्याग होने पर जो केवल चैतन्य बचता है, उस चिन्मात्र अंश में) *स्व आत्मनि* (अपनी आत्मा में) *सन्तं* (विद्यमान) *मूर्त-अमूर्ते* (दृश्य और अदृश्य में) *अपोह्य* (निषेध करने के बाद) *दृश्यं सर्वं न इति न इति च विहाय* (जो दृश्यमान है उस सब का "यह नहीं", "यह नहीं" द्वारा निषेध कर) *यं विदुः* (जिसको जानते हैं)

मूर्त और अमूर्त में, दृश्य और अदृश्य में, जड़ अंश को हटाने के बाद, जो केवल चैतन्य बचता है, उसे छोड़कर, जो भी रह जाता है उसका "यह नहीं", "यह नहीं" कह कर निषेध द्वारा जिस चिन्मात्र को जानते हैं, उस मोहान्धकार नाश करनेवाले का मैं स्तवन करता हूँ।

(३६)

ओतं प्रोतं यत्र च सर्वं गगनान्तं
योऽस्थूलानण्वादिषु सिद्धोऽक्षरसंज्ञः।
ज्ञाताऽतोऽन्यो नेत्युपलभ्यो न च वेद्य-
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥

गगन-अन्तं सर्वं (आकाश पर्यन्त सभी कुछ) *यत्र ओतं प्रोतं* (कपड़े में तन्तुओं के समान ओतप्रोत है, सर्वव्यापी है) *यः अक्षर-संज्ञः अस्थूलान् अणु-आदिषु अक्षर संज्ञः सिद्धः* (अणु आदि में अक्षर प्रसिद्ध है) *ज्ञाता* (जानने वाला) *अतः अन्यः न इति उपलभ्यः* (इसके अतिरिक्त कोई दूसरा ज्ञातव्य नहीं है) *न च वेद्यः* (न ही उसे विषयों की भांति जाना जा सकता है।)

जो आकाशपर्यंत सभी में ओत-प्रोत, व्याप्त है, और जो अक्षरनामधारी छोटे-से-छोटे अणु में भी प्रसिद्ध है। वह सबको जाननेवाला है किन्तु उसके अतिरिक्त कोई दूसरा जाननेवाला नहीं है। वह न तो ज्ञातव्य है और जाना

जा सकता है। मैं संसार का मोहान्धकार नाश करनेवाले श्रीविष्णु का स्तवन करता हूँ।

(४०)

तावत् सर्वं सत्यमिवाभाति यदेतत्
यावत् सोऽस्मीत्यात्मनि यो ज्ञो न हि दृष्टः।
दृष्टे यस्मिन् सर्वमसत्यं भवतीदं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥

यावत् (जब तक) *आत्मनि* (इस कार्य– कारण रूप संघात आत्मा में) *यः ज्ञः* (जो साक्षीरूप में वर्तमान) *स यावत् न दृष्टः* (वह जब तक "ब्रह्म मैं हूँ" इस रूप में नहीं पहचाना जाता) *तावत् एव यत् एतद् सर्वं* (तभी तक यह सबकुछ) *सत्यं इव आभाति* (स्वप्न में दिखाई देने वाला सत्य जैसे दिखाई देता है) *यस्मिन् दृष्टे सर्वं इदं असत्यं भवति* (और जिसे पहचानने के उपरान्त यह सब असत्य हो जाता है)

जो आत्मा में साक्षीरूप विद्यमान है, जब तक वह "मैं ब्रह्म ही हूँ" इस प्रकार नहीं पहचाना जाता, तब तक यह समस्त बाह्य जगत् सत्य जैसा ही प्रतीत होता है। उसे जान लेने पर यह स्वप्न में दिखाई देने वाले भ्रम की भाँति असत्य-मिथ्या-पहचान लिया जाता है। मैं उसी ब्रह्म की स्तुति करता हूँ।

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः"

(४१)

रागामुक्तं लोहयुतं हेम यथाऽग्नौ
योगाष्टाङ्गैरुज्ज्वलितज्ञानमयाग्नौ।
दग्ध्वाऽऽत्मानं ज्ञं परिशिष्टं च विदुर्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥

(अभी तक ब्रह्म, जीव, जगत् के आपसी संबंधों की विवेचना करते हुए श्रीविष्णु की स्तुति की गई। अनेक मतावलम्बियों के दृष्टिकोण से

आराध्य देव का वर्णन किया गया। किन्तु, कितना भी, कैसे भी आराध्य का प्रतिपादन किया जाय, जब तक हृदय निर्मल नहीं है उसका साक्षात्कार नहीं हो सकता। स्तोत्र के अंत में अब उन साधनों का निरूपण है जिनसे स्तुति फलीभूत हो सकती है।)

राग-आमुक्तं (राग-द्वेषों से कलुषित) *आत्मानं दग्ध्वा* (बुद्धि को शुद्धीकरण के लिए तपाकर) *यथा* (जैसे) *लोहयुतं हेम अग्नौ* (जैसे लोहा मिले हुए सोने को अग्नि में तपा कर शुद्ध किया जाता है) *योग-अष्टाङ्गैः-उज्ज्वलित-ज्ञानमय-अग्नौ* (अष्टाङ्गयोग-यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधि से प्रज्ज्वलित ज्ञानमय अग्नि में) *परिशिष्टं यं विदुः* (शुद्ध किये हुए को जानते हैं)

जैसे लोहयुक्त सोना आग में तपा कर शुद्ध किया जाता है, उसी भाँति, अष्टाङ्ग योग द्वारा प्रज्ज्वलित ज्ञानाग्नि में राग-द्वेषों से कलुषित बुद्धि ('आत्मा' का अर्थ यहाँ बुद्धि लेना चाहिए) को निर्मल करने के उपरान्त जो चिन्मात्र बच रहता है, उस संसार का अन्धकार मिटाने वाले का मैं स्तवन करता हूँ।

(४२)

यं विज्ञानज्योतिषमाद्यं सुविभान्तं
हृद्यर्केन्द्वग्न्योकसमीड्यं तटिदाभम्।
भक्त्याऽऽराध्येहैव विशन्त्यात्मनि सन्तं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥

हृदि (हृदय में) *तटित्-आभं* (विजली के समान चमकीले को) *सुविभान्तं* (अत्यन्त प्रकाशमान् को) *विज्ञानज्योतिषं* (विज्ञान–विशेष ज्ञान-स्वरूप को; ''ज्योतिषां ज्योतिः'') *आद्यं* (सब का आदिकारण) *अर्क-इन्दु-अग्नि-ओकसं* (सूर्य, चन्द्र, अग्नि जिसके उपलब्धिस्थान हैं) *भक्त्या ईड्यं* (भक्तिपूर्वक जिसकी स्तुति की जाती है) *यं आराध्य* (जिसकी आराधना कर) *आत्मनि* (अपने स्वरूप में) *सन्तं* (वर्तमान को) *इह एव* (इसी देह में) *विशन्ति* (तदात्मा हो जाते हैं, उसमें तदाकार हो जाते हैं)

जिस आदिकारण, विद्युत की भांति अत्यन्त प्रकाशवान् विज्ञानज्योति स्वरूप, हृदयस्थ, सूर्य-चन्द्र-अग्नि जिसकी उपलब्धि के स्थान हैं, जो आत्मा में वर्तमान है, जिसकी भक्तिपूर्वक आराधना द्वारा इस देह में ही उससे तादात्म्य हो जाता है, उस संसार का मोहान्धकार नाश करनेवाले ''ज्योतिषां ज्योति'' की मैं स्तुति करता हूँ।

(४३)

पायाद्भक्तं स्वात्मनि सन्तं पुरुषं यो
भक्त्या स्तौतीत्याङ्गिरसं विष्णुरिमं माम्
इत्यात्मानं स्वात्मनि संहृत्य सदैक-
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे॥

स्वात्मनि सन्तं (''मैं ही विष्णु हूँ इस अभेद स्वरूपमें आत्मा में वर्तमान को) *आत्मानं* (अपने अन्तःकरण को) *स्वात्मनि* (अपने स्वरूप को) *संहृत्य* (समेट कर) *आङ्गिरसं* (अङ्गो के रस को; ''अङ्गानां रसः'', *बृह.* ३.३.१९; चिदानन्दस्वरूप को) *यः इमं भक्तं पायात्* (जो विष्णु इस परम भक्त की रक्षा करें)

विष्णु इस परम भक्त की रक्षा करे। मैं उनकी स्तुति करता हूँ। आत्मस्वरूप वे भगवान विष्णु मेरी आत्मा में ही वर्तमान हैं। देह आदि अनात्माओं को त्यागने के उपरान्त जो एक चिदानन्दस्वरूप रहता है, उसे हृदय में सँजो कर, भक्तिपूर्वक उसका स्तवन करता हूँ।

(४४)

इत्थं स्तोत्रं भक्तजनेड्यं भवभीति-
ध्वान्तार्काभं भगवत्पादीयमिदं यः।
विष्णोर्लोकं पठति शृणोति व्रजति ज्ञो
ज्ञानं ज्ञेयं स्वात्मनि चाप्नोति मनुष्यः॥

(फलश्रुतिरूप यह अन्तिम पद्य आचार्य शंकर रचित नहीं प्रतीत होता। आचार्य स्वयं 'भगवत्पादीयमिदं' कैसे कहते ?)

यः (जो मनुष्य) *इत्थं स्तोत्रं* (उपरोक्त इस स्तोत्र को) *भक्तजन-ईड्यं* (भगवान् विष्णु के भक्तों द्वारा पठनीय) *भवभीतिध्वान्त-अर्क-आभं* (संसार के दुःखरूपी अन्धकार को सूर्य के समान नाश करने वाले को) *भगवत्पादीयं पठति* (सर्वज्ञ श्री शङ्कर भगवत्पाद द्वारा प्रणीत इस स्तोत्र का) *पठति* (उच्च स्वर से पाठ करता है) *श्रृणोति* (अथवा दूसरे लोगों द्वारा पढ़े गये इस स्तोत्र को सुनता है) *सः विष्णोर्लोकं व्रजति* (वह विष्णुलोक-वैकुण्ठ-में जाता है। *ज्ञः यः सः स्वात्मनि ज्ञानं ज्ञेयं मनुष्यः इहैव आप्नोति* (जो मनुष्य इस स्तोत्र का भली भाँति अर्थ समझ कर इसका पाठ करता है, तत्त्व साक्षात्कार (ज्ञानं) और ज्ञेयं (जानने योग्य) ब्रह्म हो जाता है।

जो मनुष्य भगवत्पाद शंकराचार्य द्वारा रचित और विष्णुभक्तों के लिये पठनीय इस स्तोत्र को, जो संसार के दुःखों का नाश करने वाला है, पढ़ता है अथवा सुनता है, वह विष्णुलोक प्राप्त करता है। जो मनुष्य इसका भलीभाँति, अर्थ समझ कर, पाठ करता है, वह इसी देह में भगवत्स्वरूप हो जाता है।

– इति –

लेखक की अन्य कृतियाँ

आलवन्दार-स्तोत्ररत्नम्। श्रीयामुनमुनिविरचितम्।
(चतुःश्लोकी वरदवल्लभास्तोत्रसमेतम्।)
हिन्दी अनुवाद एवं टीका सहित। संपा. डॉ. कल्याणलाल शर्मा 30-00

मुकुन्दमाला। कुलशेखरकृत। अन्वय, हिन्दी अनुवाद,
पदच्छेद तथा टिप्पणी सहित। संपा. - डॉ. कल्याणलाल शर्मा 50-00

भजगोविन्दम् (स्तोत्र)। आदिशंकराचार्यकृत।
अन्वय, शब्दार्थ, अनुवाद व्याख्या सहित।
डॉ. कल्याणलाल शर्मा सम्पादित 40-00

शिवानन्दलहरी (स्तोत्र)। आदिशंकराचार्यरचित।
पदच्छेद, अन्वय, शब्दार्थ एवं अनुवाद सहितं
डॉ. कल्याणलाल शर्मा सम्पादित 40-00

शिवमहिम्नः स्तोत्रम्। पुष्पदन्त विरचित। अन्वय - शब्दार्थ-
अनुवाद व्याख्या सहित। सम्पादक - डॉ. कल्याणलाल शर्मा 25-00

कृष्णकर्णामृतम्। लीलाशुकबिल्वमंगल विरचित। अन्वय, शब्दार्थ,
अनुवाद व्याख्या सहित। डॉ. कल्याणलाल शर्मा 150-00

अन्य महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

सदुक्तिकर्णामृतम्। हिन्दी व्याख्या सहितम्।
व्याख्या : प्रो. ओमप्रकाश पाण्डेय। प्रथम भाग - 250-00, (द्वितीय भाग) शीघ्र

श्रीस्वामिनारायणदर्शनम्। (परब्रह्मसूत्राणि)
वैष्णवविद्वत्सार्वभौम श्रीकृष्णवल्लभाचार्य विरचितम्।
संपादक - गो. प्रह्लादगिरी वेदान्तकेशरी 300-00

कृषिपाराशरः। पराशरमुनिविरचितः। अनु. संपा.
श्रीद्वारिकाप्रसाद शास्त्री 80-00

भूगर्भजलज्ञानशास्त्रम्। श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीतं कुङ्कुमनाम्नी
हिन्दी व्याख्या सहितम्। व्याख्याकार - डॉ. सुरकान्त झा 40-00

योगसूत्रम्। पूज्यपाद भगवत्पतञ्जलिमहामुनि कृत। मूल मात्र 12-00

ऋग्वेदकालीन भारत। श्री कन्छेदीलाल गुप्ता 150-00

Also can be had from

Chowkhamba Krishnadas Academy

K. 37/118, Gopal Mandir Lane, Near Golghar (Maidagin)
Post Box 1118, Varanasi-221 001 (India)
Phone : (0542) 2333458 (P.P.) & (0542) 2335020, 2334032
Fax : (0542) 2333458, e-mail : cssoffice@satyam.net.in
Web site : www.chowkhambaseries.com

ISBN : 81-7080-162-1

Price : Rs. 250.00